राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण

१९५२-१९५६

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय

भारत सरकार

३ दिसम्बर, १९५७ (अग्रहायण १२, १८७९)

३.५० रु०

मुद्रक—एलबियन प्रेस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

विषय-सूची

आन्तरिक मामले

शिक्षा तथा संस्कृति

विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण

गान्धी दर्शन

बुद्ध तथा उनकी शिक्षा

आर्थिक मामले

सामान्य

सेवा का व्रत

मैंने अभी-अभी राष्ट्रपति के पद की शपथ ली है और इस महान् देश की सेवा में अपने को समर्पण कर देने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया है। मैं आपके सामने भारत के गणराज्य के प्रतीक और चिन्हस्वरूप राष्ट्रपति के रूप में खड़ा हूँ।

हमें अपने प्राचीन इतिहास में देश के विभिन्न भागों में और विभिन्न युगों में गणराज्यों की स्थापना के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु उनका प्रभुत्व देश के छोटे-छोटे भागों तक ही सीमित था और हमें उनकी राज्य-पद्धति का भी पूरा ज्ञान नहीं है। यह पहला ही अवसर है जब यह सारा देश एकछत्र गणराज्य के आधिपत्य और शासन के नीचे आया है। हमारे संविधान ने इस गणराज्य की व्यापक नींव का आधार इस देश के सब वयस्क स्त्री-पुरुषों को बनाया है। भारत के प्रशासन और उसके भाग्य का निर्माण करने के लिए १७ करोड़ से अधिक भारतीयों ने अपने प्रतिनिधि चुने हैं। इन प्रतिनिधियों ने मुझे राष्ट्रपति चुना है और यह कार्य करके उन्होंने उस संविधान को कार्यान्वित किया है जिसे हमने इतने परिश्रम से बनाया था।

व्यक्तिगत रूप में, आपके एक देशवासी के नाते तथा इससे भी कहीं अधिक भारत की स्वतन्त्रता के संघर्ष में आप में से अनेकों के एक साथी के नाते, मैं आपके विश्वास के इस अपूर्व प्रदर्शन के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। किन्तु कृतज्ञता से भी कहीं अधिक मैं इस उच्च पद के गुरुतर उत्तरदायित्व और भार का अनुभव कर रहा हूँ।

इस लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना तो स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद ही हो सकती थी। अतः इस स्वतन्त्रता को, जिसे हमने कई पीढ़ियों के संघर्ष और तपस्या के बाद प्राप्त किया है, सुरक्षित रखना हम में से प्रत्येक का प्रथम और सर्वोपरि कर्तव्य है। हमारा अटल उद्देश्य यह है कि हम जनता की स्थिति सुधारें और उसकी उन्नति करें, किन्तु देश के सुधार और उन्नति की हमारी सब योजनाएँ हमारी स्वतन्त्रता स्थिर बने रहने पर ही निर्भर करती हैं। उसी आधारभूत स्वतन्त्रता पर ही तो हमारा वैयक्तिक और राष्ट्रीय जीवन निर्भर है। अतः आपके समान ही मेरा भी यह कर्तव्य है कि चाहे जो भी त्याग करना पड़े, हम इस स्वतन्त्रता को स्थिर बनाये रखें और इसकी रक्षा करें।

भारत के राष्ट्रपति के पद की शपथ लेने के अवसर पर भाषण, १३ मई, १९५२

इस कर्तव्य को पूरा करने में मेरा प्रथम और सर्वोपरि प्रयास यह होगा कि देश के विभिन्न भागों, विभिन्न धर्मों और विचारों के लोगों के प्रति मैं समता और निष्पक्षता बरतूँ। दूसरा कर्तव्य, जिसमें कि मैं आपका सहभागी हूँ, यह है कि मैं अन्य सब देशों की मैत्री प्राप्त करने का प्रयास करूँ और उनसे सहयोग करने के रास्ते निकालूँ।

इस देश के सब लोगों से मेरा निवेदन है कि वे मुझे अपने में से ही एक मानें और मुझे ऐसा अवसर और प्रोत्साहन दें जिससे मैं यथाशक्ति उनकी सेवा कर सकूँ। भगवान से मेरी विनती है कि वह मुझे शक्ति और सुबुद्धि दे ताकि मैं सच्ची सेवा-भावना से अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकूँ।

राष्ट्र प्रगति के पथ पर

भारत गणराज्य की सर्वप्रथम संसद् के, जो हमारे संविधान के अनुसार चुनी गयी है, सदस्यों के रूप में मैं आप लोगों का स्वागत करता हूँ। विधान सभाओं की रचना और राज्य के अधिपति सम्बन्धी संविधान के उपबन्धों को हमने पूरी तरह से कार्यान्वित किया है और इस प्रकार हमने अपनी यात्रा की एक मंजिल पूरी कर ली है। जैसे ही यह मंजिल समाप्त होती है दूसरी मंजिल शुरू हो जाती है। कोई भी जाति या राष्ट्र अपनी भावी निर्माण-यात्रा में आराम से नहीं बैठ सकता। १७ करोड़ से अधिक भारतीयों द्वारा नव-निर्वाचित संसद् के सदस्यों के रूप में आप ऐसे यात्री हैं जिन्हें उनके साथ-साथ आगे बढ़ना है। आपका यह बड़ा सौभाग्य है और आप पर भारी उत्तरदायित्व है।

इस ऐतिहासिक अवसर पर जब मैं आपके सामने बोल रहा हूँ, मुझे अपने प्राचीन देश और उसमें बसने वाले करोड़ों नर-नारियों का ध्यान हो उठता है। भाग्य हमारे सामने है और यह हमारा काम है कि हम उसके निमन्त्रण को स्वीकार करें। वह आवाहन महान् भारत देश की सेवा के लिए है जिसने इतिहास के ऊषाकाल से ही, जबकि सहस्रों वर्ष पूर्व उसकी कहानी आरम्भ हुई थी, सुदिन और दुर्दिन दोनों ही देखे हैं। इस दीर्घकाल में इस देश को महान् गौरव भी मिला और हमारा भाग्य विपत्तिमय भी रहा। अब जबकि हम भारत की लम्बी कहानी का नया अध्याय आरम्भ करने वाले हैं, हमें पुनः यह निर्णय करना है कि हम उसकी सर्वोत्तम सेवा किस प्रकार कर सकते हैं। आपने और मैंने अपने इस देश की सेवा का व्रत लिया है। मेरी प्रार्थना है कि हम अपने व्रत में सत्य-निष्ठ सिद्ध हों और इसे पूरा करने के लिए अपना तन-मन-धन लगा दें।

सुदीर्घ काल की पराधीनता के बाद भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की है। सब कुछ सह कर भी इस स्वतन्त्रता को बनाये रखना है, बचाना है और बढ़ाना है, क्योंकि इसी स्वतन्त्रता के आधार पर ही तो प्रगति की जा सकती है। किन्तु केवल स्वतन्त्रता ही पर्याप्त नहीं है। उसे अपने साथ जनता को भी कुछ सुख-लाभ कराना चाहिए और वे जिन बोझों से दबे हुए हैं, उनको कम करना चाहिए। इसलिए, यह बात हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी है कि हम तेजी के साथ जनता की आर्थिक-उन्नति करने के लिए जुट जायें और समता

सर्वप्रथम निर्वाचित संसद् के समक्ष अभिभाषण, १६ मई, १९५२

तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के जो उच्च आदर्श हमारे संविधान में अंकित हैं, उनको पूरा करने के लिए हम प्रयास करने लगें।

अपने सारे इतिहास में भारत ने मानवात्मा की कुछ अन्य प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व किया है। सम्भवतः भारतवर्ष का विशिष्ट लक्षण यही रहा है और अभी हाल में ही उस प्राचीन भावना के उत्तम प्रतीक को हमने महात्मा गान्धी के रूप में देखा है, जिन्होंने अपने नेतृत्व में हमें स्वतन्त्रता दिलायी। उनकी दृष्टि में राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण कदम था, पर मानवात्मा की महत्तर स्वतन्त्रता की दृष्टि से वह केवल एक प्रयास-मात्र था। उन्होंने हमें शान्ति और अहिंसा का पाठ पढ़ाया, किन्तु श्मशान की शान्ति अथवा कायरों की अहिंसा का नहीं। उन्होंने भारत के प्राचीन ऋषियों और महात्माओं की शिक्षा के अनुरूप ही हमें यह सिखाया कि घृणा और हिंसा द्वारा कोई भी बड़ा उद्देश्य नहीं सध सकता और उचित लक्ष्यों की साधना और प्राप्ति केवल उचित साधनों द्वारा ही हो सकती है। यह न केवल भारतवासियों के लिए ही वरन् संसार भर के लोगों के लिए एक आधार-भूत शिक्षा है।

मेरा यह हार्दिक विश्वास है कि जो बड़े-बड़े काम हमारे सामने हैं, उन्हें करते समय आप भारत के इस प्राचीन तथा चिर-नवीन सन्देश को याद रखेंगे और छोटे उद्देश्यों की तुलना में राष्ट्र और मानवता के हित की ओर अधिक ध्यान देकर सहकारी प्रयास की भावना से कार्य करेंगे। हमें भारत की एकता का, अर्थात् अपने भावी भाग्य-निर्माण के लिए प्रयत्नशील स्वतन्त्र लोगों की एकता का निर्माण करना है। इसलिए हमें उन सब प्रवृत्तियों को, जो इस एकता को क्षीण करती हैं तथा हम लोगों में एक दूसरे के बीच दीवारें, साम्प्रदायिक दीवारें, प्रान्तीयता की दीवारें और ज्ञातपाँत की दीवारें खड़ी करती हैं, खत्म कर देना है। अनेक राजनीतिक और आर्थिक विषयों पर मतभेद होगा और होना भी चाहिए, किन्तु यदि भारत और उसके लोगों का हित ही हमारा प्रधान उद्देश्य हो और हम इस बात को समझें, जैसा कि हमें समझना ही चाहिए, कि इस हित की प्राप्ति पारस्परिक सहयोग और लोकतन्त्रात्मक रीतियों से ही की जा सकती है तो ये मतभेद हमारे सार्वजनिक जीवन को समृद्ध ही करेंगे।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप इसी दृष्टिकोण से देश की समस्याओं को हल करें और संसार के अन्य देशों के साथ निर्भयतापूर्वक और मैत्रीपूर्ण ढंग से व्यवहार करें। आज सारा संसार किसी आने वाली विपत्ति के भय से भयभीत है। किसी व्यक्ति अथवा किसी राष्ट्र का उत्कर्ष भय से नहीं होता, वह तो जैसा हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखा हुआ है, केवल अभय से ही हो सकता है।

हमने संसार के सभी देशों के साथ बराबर मैत्री की नीति बरती है। और यद्यपि कभी-कभी इसके बारे में भ्रान्ति हुई है तो भी इस नीति को दूसरे लोग अधिकाधिक समझने लग गये हैं और इसका परिणाम भी अच्छा हुआ है। मुझे विश्वास है कि हम इस नीति का दृढ़ता से पालन करते रहेंगे और आज संसार के अधिकांश भागों में जो तनातनी है, इस प्रकार उसको कुछ कम करने का प्रयास करेंगे। भारत सरकार दूसरे देशों के मामलों में

हस्तक्षेप नहीं करना चाहती क्योंकि हम अपने देश में दूसरों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। जहाँ कहीं सम्भव हुआ है, हमने सहयोग से ही काम लिया है और हम शान्ति-स्थापना में सहायता देने के लिए सदा तत्पर हैं। हम अपनी सहायता का भार किसी पर लादना नहीं चाहते किन्तु हम इस बात को समझते हैं कि आज के संसार में कोई भी देश बिल्कुल अलग होकर नहीं रह सकता और यह अनिवार्य भी है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ता रहे ताकि सुदूर भविष्य में मानव जाति की उन्नति के लिए संसार के सारे राष्ट्र महान् सहकारी प्रयास में सम्मिलित हो जायें।

प्रायः एक वर्ष से कोरिया में विराम-सन्धि स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिससे उन बहुतेरी समस्याओं को, जिन्होंने सुदूरपूर्व एशिया में उथल-पुथल मचा रखी है, शान्तिमय ढंग से निबटाया जा सके। मैंने कई बार यह आशा प्रकट की है कि ये प्रयत्न सफल होंगे और फिर से शान्ति स्थापित हो जाएगी। यह एक महानतम दुर्घटना है कि कोरिया की जनता के प्रति प्रकट की जाने वाली सद्भावना के बावजूद, यह देश लड़ाई, भूख और महामारियों के फलस्वरूप एकबारगी ही नष्ट हो गया है। संसार के लिए यह एक चेतावनी है कि युद्ध का परिणाम क्या होता है, चाहे फिर उसके पक्ष में किसी प्रकार की तात्कालिक सफाई ही क्यों न पेश की जाये। युद्ध से कोई समस्या हल नहीं होती बल्कि वह तो समस्याएँ पैदा करता है। अब ऐसा मालूम होता है कि कोरिया में विराम-सन्धि के कार्य में जो भी रुकावटें थीं, वे करीब-करीब सब दूर हो गयी हैं और एक ही बड़ी रुकावट रह गयी है। वह है युद्धबन्दियों की अदला-बदली की समस्या। इस अन्तिम रुकावट को दूर करना नीतिज्ञों की बुद्धि से परे नहीं होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो इसका अर्थ यह होगा कि न केवल बुद्धि की ही बल्कि सामान्य मानवता की भी हार हमने मान ली। आज संसार शान्ति का भूखा है और जो नीतिज्ञ शान्ति स्थापित कर सकेंगे, वे एक ऐसे भारी और भयावह संकट को दूर करेंगे जो आज संसार को व्यथित कर रहा है।

मैं एशिया और अफ्रीका के उन विभिन्न प्रदेशों की महान् राष्ट्रीय भावना का जिक्र कई बार कर चुका हूं जो अब तक स्वतन्त्रता से वंचित हैं। विशेषतया मैंने ट्यूनीशिया की हाल की घटनाओं का जिक्र किया है और उस देश के लोगों की स्वतन्त्रता की अभिलाषा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। मुझे बड़ा खेद है कि एशिया और अफ्रीका के बहुत से देशों की इच्छा के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ में इस विषय पर विचार-विमर्श तक नहीं हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ तो विश्वसमुदाय के प्रतिनिधियों के लिए बना था जिसमें कि सब जातियाँ सम्मिलित हैं, तथा इसका मुख्य उद्देश्य शान्ति बनाये रखना था। शनैः शनैः संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापकों के तथा उन्होंने जो घोषणापत्र बनाया था उसके महान् उद्देश्य धुंधले पड़ते जा रहे हैं और उनकी व्यापक दृष्टि का स्थान अपेक्षाकृत सीमित दृष्टिकोण ले रहा है। विश्व-भावना का विचार अपेक्षाकृत संकुचित भावना में परिणत हो रहा है और शान्ति की प्रेरणा क्षीण पड़ती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना मानव जाति की महान् आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए हुई थी। यदि वह इस आवश्यकता की पूर्ति करने में असफल होता है और शान्ति की रक्षा और स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि करने का एक

प्रभावहीन साधन-मात्र रह जाता है, तो वास्तव में यह एक भारी दुखद घटना होगी। मेरी यह उत्कट आशा है कि यह महान् संस्था जिसके साथ संसार की आशाएँ बंधी हुई हैं अपने पुराने आदर्श पर लौट आएगी और यह शान्ति तथा स्वतन्त्रता का स्तम्भ बन जाएगी जैसी कि इससे अपेक्षा की गयी थी।

भारत सरकार ने हमारे महान् पड़ौसी चीन को एक सांस्कृतिक शिष्ट मण्डल भेजा है। वह शिष्ट-मण्डल भारतीयों का चीन के लोगों के प्रति अभिनन्दन और सद्भावना लेकर गया है। चीन की सरकार और चीन के लोगों ने उसका जो हार्दिक स्वागत किया है उसके लिए मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मुझे दुख है कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार की जातीय नीति अभी भी जारी है और उसके कारण गम्भीर परिस्थिति पैदा हुई है। भारतीय इस नीति से बहुत चिन्तित हैं क्योंकि भारतीय उद्भव के अनेक लोग दक्षिण अफ्रीका में रहते हैं। किन्तु यह प्रश्न अब केवल दक्षिणी अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों का ही प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि उसका महत्व कहीं अधिक बड़ा और विस्तृत हो गया है। यह जातिगत आधिपत्य और जातिगत असहिष्णुता का प्रश्न है। अफ्रीका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों से भी अधिक अब यह अफ्रीका के रहने वालों के भविष्य का प्रश्न है। इस प्रश्न और ऐसे ही अन्य प्रश्नों के निपटारे में विलम्ब करना समस्त मानव जाति के लिए अच्छा नहीं है। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि अफ्रीका में वहाँ के आदिवासियों और वहाँ रहने वाले हिन्दुस्तानियों के बीच मैत्री भाव बढ़ रहा है। हमारी इच्छा अफ्रीका के लोगों की उन्नति में लेशमात्र हस्तक्षेप करने की नहीं है, बल्कि जहाँ तक हो सके हम उनकी सहायता करना चाहते हैं।

मुझे यह भी खेद है कि श्रीलंका में बहुत दिनों से रहने वाले अनेक भारतीय मत देने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हैं। वे श्रीलंका के वैसे ही नागरिक होने का दावा करते हैं जैसे कि उस देश के अन्य निवासी करते हैं। श्रीलंका के साथ हमारा सम्बन्ध सहस्रों वर्षों से रहता आया है और हमारे सम्बन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण रहे हैं। हमने श्रीलंका की स्वतन्त्रता का स्वागत किया था और हम यह आशा करते थे कि उसके लोग स्वतन्त्र जाति के रूप में हर प्रकार की प्रगति करेंगे, पर वहाँ के नागरिकों की एक बड़ी संख्या को उनके अपने नैसर्गिक स्वत्वों से वंचित कर देने से सच्ची प्रगति नहीं हो सकती। उससे तो बहुतेरे जटिल प्रश्न और उलझनें ही पैदा हो सकती हैं जैसे कि हो भी गयी हैं।

पिछले अनेक वर्षों से हमारे यहाँ खाद्य पदार्थों की कमी रही है और अन्न बड़ी मात्रा में बाहर से लाना पड़ा है। इस काम में संयुक्त राज्य अमेरिका से हमें बड़ी सहायता मिली है और उस महान् देश ने जो उदारतापूर्ण सहायता की है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। हाल के इतिहास में आज पहले-पहल चावल को छोड़कर और सब अन्नों का हमारे पास बड़ा भण्डार है और हम एक बड़ा भण्डार बना रहे हैं जिससे आवश्यकता पड़ने पर हमें सहायता प्राप्त हो सकेगी। इस बात का तो हमें स्वागत करना चाहिए। किन्तु देश के बड़े भागों में वर्षा न होने से वहाँ के लोगों के लिए कठिन समस्या पैदा हो गयी है। लगातार पाँच सालों तक रायलसीमा में अनावृष्टि का कष्ट सहना पड़ा है और वहाँ

आज पानी की सबसे अधिक आवश्यकता है। कुएँ गहरे करके, पानी ढोकर और दूसरे प्रकार से जनता की सहायता करने का बहुत अच्छा काम हमारी सेना वहाँ कर रही है। इन सूखे और अन्नाभाव के प्रदेशों में अनेक छोटी-मोटी योजनाएँ हाथ में ली गयी हैं जिनके द्वारा लोगों को काम मिल रहा है और सस्ते गल्ले की दूकानें खोली गयी हैं। जहाँ आवश्यक है, वहाँ मुफ्त खाना भी दिया जा रहा है।

विदेशों से आये हुए अन्न की कीमत अधिक होने के कारण अन्न का दाम चढ़ गया है। सरकार की ओर से घाटा सहते हुए सस्ता अन्न बेचकर जो सहायता की जाती थी, उसे कम कर देने से भी कीमतों में बढ़ोतरी हुई है और जहाँ नाप-तोल कर अन्न बाँटा जाता था, वहाँ लोगों का कष्ट कुछ बढ़ा है और कुछ असन्तोष पैदा हुआ है। वस्तुओं के मूल्य में गिरावट आने से इसका प्रभाव कुछ कम हो गया है। अन्न सम्बन्धी सहायता कम कर दिये जाने के कारण कई राज्यों की सरकारों ने अन्न आयात करने की अपनी आवश्यकता का वास्तविकता की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक ठीक अनुमान लगाया है और इससे जो अन्न की माँग राज्यों में आया करती थी, वह कुछ कम हो गयी है और फलतः उनका आयात कम हो जाएगा। यह आज की स्थिति में और आगे के लिए भी अवश्य ही लाभदायक है। जो राशि अन्न सम्बन्धी सहायता न देने से बची है, वह छोटी-मोटी आवश्यक योजनाओं में लगा दी जाएगी जिनसे आगे अन्न की उत्पत्ति बढ़ेगी और इस तरह हमें अपनी खाद्य-समस्या हल करने में सहायता मिलेगी। हमारी सरकार इन सब बातों पर बहुत ध्यान से विचार कर रही है। उसे तात्कालिक और भविष्य के लाभ को तुलनात्मक दृष्टि से देखना है। साथ ही वह इस बात के लिए भी चिन्तित है कि लोगों को कोई कष्ट न हो और उससे जो कुछ हो सकेगा वह इस विपत्ति को टालने के लिए करेगी।

योजना आयोग अपनी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप दे रहा है। इस योजना में एक महत्वपूर्ण बात और जोड़ी गयी है। वह है देश भर में ५५ सर्वोन्नति योजनाओं का प्रस्ताव। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राविधिक सहयोग योजना द्वारा दी गयी सहायता से ही यह सम्भव हो सका है। इस सर्वोन्नति योजना का प्रयोजन न केवल खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाना ही है बलिक उससे भी कहीं अधिक यह है कि सब लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा किया जाये। आशा की जाती है कि यह योजना उन्नति करेगी और भारत का एक बड़ा भू-भाग इसके अन्तर्गत आ जाएगा। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब इसे जनता का पूरा सहयोग मिले। मेरा हार्दिक विश्वास है कि इस बात में भी, जैसे कि योजना आयोग के और दूसरे प्रस्तावों को पूरा करने में मिला है, जनता का पूरा-पूरा सहयोग मिलेगा।

कृषि द्वारा उत्पादन के मिले-जुले कार्यक्रम में सन्तोषप्रद प्रगति हुई है। १६४७-४८ की तुलना में जब पटसन का उत्पादन १६.६ लाख गाँठ था, १६५१-५२ में उत्पादन बढ़कर ४६.८ लाख गाँठ हो गया है। इन्हीं दिनों रूई का उत्पादन भी २४ लाख गाँठ से बढ़कर ३३ लाख गाँठ हो गया है। अन्न का उत्पादन १४ लाख टन बढ़ गया है, यद्यपि कुछ प्रदेशों

में सूखा पड़ जाने से इस बढ़ती से कोई लाभ नहीं पहुँचा है। १९४७-४८ में १०.५ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ जो १९५१-५२ में बढ़कर १३.५ लाख टन हो गया। इस्पात, कोयले, सीमेण्ट और नमक के उत्पादनों में भी वृद्धि हुई है। नमक के मामले में भारत अपनी जरूरतों को पूरा कर लेता है और जो बच जाता है, उसे बाहर भी भेजा जाता है। सौराष्ट्र में एक केन्द्रीय नमक अनुसन्धानशाला स्थापित की जा रही है।

भारत सरकार देश की आर्थिक स्थिति पर बराबर गौर करती रही है। मैंने संसद् के अपने पिछले अभिभाषण में थोक दामों में थोड़ी कमी का उल्लेख किया था। कमी की ओर का यह झुकाव फरवरी और मार्च के महीनों में और जोर से बढ़ गया। कुछ अंश में यह सारे संसार में चीजों की कीमतों के पुनस्समायोजन के कारण हुआ। जो कमी १९५० में ही शुरू हुई थी, वह कोरिया में युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण कुछ रुक सी गयी थी। कोरिया में विराम-सन्धि की आशा की झलक से कीमतों के पुनस्समायोजन की यह प्रक्रिया जोर पकड़ गयी है। देश में अधिक उत्पादन होने से और उपभोक्ताओं द्वारा ऊँची कीमतों का अधिकाधिक विरोध किये जाने से इस पुनस्समायोजन के झुकाव को और भी बल मिला है। रुपये और साख सम्बन्धी सरकारी नीति ने भी जो मुद्रास्फीति रोकने के विचार से आरम्भ की गयी थी, दामों को गिराने में सहायता की है। जो लोग वाणिज्य और कारबार में लगे हैं, वे और विशेषकर कपड़े और पटसन की बुनाई के कारबार वाले मूल्यों में गिरावट आने से कुछ संकट में पड़ गये हैं। इससे हमारे निर्यात से जो आय होती है उसमें भी कमी होने लग गयी है। हमारी सरकार स्थिति को बहुत ध्यानपूर्वक देख रही है जिससे इसका हमारे यहाँ के उत्पादन पर और लोगों को धन्धा मिलने पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। उसका विचार है कि मूल्यों को एक उचित स्तर पर ठहरा देने के लिए जो कार्यवाही आवश्यक होगी, वह करेगी।

इस बात की मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि एक नया उत्पादन मन्त्रालय स्थापित किया गया है। सरकार के कारखानों के उत्पादन का बड़ा महत्व है और इस काम के लिए एक नये मन्त्रालय की स्थापना किये जाने से स्पष्ट है कि इस ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

सरकार ने पिछले वर्ष संसद् को आश्वासन दिया था कि समाचारपत्रों सम्बन्धी विविध प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक पत्र-आयोग नियुक्त किया जाएगा। आशा है कि सरकार निकट भविष्य में ही ऐसा आयोग नियुक्त करेगी। ऐसा सोचा गया है कि संसद् के सामने समाचार पत्र कानून जाँच समिति (प्रेस लॉज़ इन्क्वायरी कमेटी) की सिफारिशों से उद्भूत एक विधेयक उपस्थित किया जाये।

संसद् का यह सत्र विशेष करके बजट का काम करेगा और दूसरे प्रकार के कानून बनाने के लिए शायद बहुत समय नहीं मिलेगा। १९५२-५३ के वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार की आय-व्यय का अनुमानपत्र पेश किया जाएगा और लोक सभा के सदस्यों को खर्च की माँगों पर विचार करके उनको पारित करना होगा।

अन्तर्कालीन संसद् के अन्तिम सत्र के बाद, सौराष्ट्र पोर्ट डेवलपमेण्ट लेवी (एबोलिशन ऑफ लोकल सी कस्टम्स ड्यूटीज़ एण्ड इम्पोजीशन) का निरसन करने के

लिए एक अध्यादेश जारी करना आवश्यक हो गया था। वह अध्यादेश आपके सामने एक नये विधेयक के रूप में आएगा और आपसे निवेदन किया जाएगा कि आप उस पर विचार करें और उसको पारित करें। एक दूसरा अध्यादेश डिस्प्लेस्ड परसन्स क्लेम्स ऐक्ट, १९५० को जारी रखने के लिए जारी किया गया था। उस अध्यादेश के स्थान पर भी आपके सामने एक विधेयक उपस्थित किया जाएगा।

कई विधेयक जो अन्तर्कालीन संसद् में पेश किये गये थे अब व्यपगत हो गये हैं। जहाँ तक हो सकेगा उनमें से कुछ को आपके सामने रखा जाएगा। यह भी विचार है कि संसद् के सामने निवारक अवरोध सम्बन्धी विधेयक भी रखा जाये।

विधि सम्बन्धी एक प्रस्ताव जिस पर अन्तर्कालीन संसद् में काफी बहस हुई थी हिन्दू कोड बिल था। यह पारित नहीं हो सका था और दूसरे विधेयकों के साथ यह भी व्यपगत हो गया है। मेरी सरकार का विचार यह है कि इस विषय पर एक नया विधान पेश किया जाये। किन्तु यह सोचा गया है कि इस विधेयक के कई भाग कर दिये जायें और प्रत्येक भाग को संसद् के सामने अलग-अलग उपस्थित किया जाये जिससे उस पर विचार करना और उसे पारित करना आसान हो जाये।

मैंने यह प्रयत्न किया है कि संसद् के इस सत्र में जो काम आपके सामने आएँगे उनमें से कुछ आप को बता दूँ। मुझे आशा है कि आपका परिश्रम हमारे देश के कल्याण के लिए सफल होगा और भारत गणराज्य की यह नयी संसद् मैत्रीपूर्ण सहयोग और योग्यतापूर्वक काम करने का एक उदाहरण उपस्थित करेगी। आपकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि आप अपने सारे कामों में सहिष्णुता की भावना से कहाँ तक काम लेते हैं और आपके सारे प्रयास सद्बुद्धि से कहाँ तक आलोकित हैं। मेरा यह हार्दिक विश्वास है कि बुद्धिमत्ता और सहिष्णुता की भावना आपको बराबर अनुप्राणित करती रहेगी।

उत्पादन में चतुर्मुखी वृद्धि

नौ महीने हुए, जब हमारे संविधान के अनुसार भारत गणराज्य की प्रथम संसद् के निर्वाचित सदस्यों के रूप में मैंने आपका स्वागत किया था। तब से आपको बड़े भार वहन करने पड़े हैं और घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों ही प्रकार की कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है। आज जब हम यहाँ समवेत हो रहे हैं, हमें अपने देश के भाग्य में पूरा

संसद् के समक्ष अभिभाषण, ११ फरवरी, १९५३

विश्वास है तथा अपने परिश्रम के परिणामस्वरूप हमारे लोग उस ध्येय की ओर बढ़ रहे हैं जिसे हमने अपने सामने रखा है। इन नौ महीनों में अनेक औद्योगिक और कृषिक क्षेत्रों में प्रगति हुई है और उस पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप दे दिया गया है जिसमें आगामी वर्षों की हमारी प्रगति की दिशा का चित्रण किया गया है। अब हमारा काम यह है कि हम उस पथ पर बढ़े चलें और हमने जनता से जो प्रतिज्ञा की है, उसको कार्यान्वित और पूरा करें। यह कोई आसान काम नहीं है, क्योंकि पुरानी और नयी अनेक समस्याएँ हम पर सर्वदा छा जाने के लिए प्रस्तुत रहती हैं और हमारी सामर्थ्य और साधनों की अपेक्षा हमारी इच्छाएँ बहुधा ज्यादा तेज दौड़ लगाती हैं।

इस समय जब कि हमें अपने नेताओं के अनुभव और बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है, यह दुर्भाग्य की बात है कि अपने ज्येष्ठ राजनायकों में से अत्यन्त प्रमुख और लगन वाले एक राजनायक को हमने खो दिया है। बड़े दुःख के साथ मैंने यह सुना कि बड़े सबेरे कल श्री एन० गोपालस्वामी अयंगार की मृत्यु हो गयी। अपने पूरे जीवन में उन्होंने अनेक उच्च पदों को दुर्लभ योग्यता से सुशोभित किया था। अपने स्वास्थ्य तथा अपने आराम का जिसके कि वह पूरी तरह अधिकारी हो चुके थे, विचार न करके वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक देश और जनता की सेवा में लगे रहे। जब कोई भी कठिन समस्या हमारे सामने आती थी, तो सरकार में उनके सहकारी और मैं उनकी परिपक्व बुद्धिमत्ता पर निर्भर करते थे। उनकी मृत्यु देश और हम सबके लिए भारी हानि है।

जब कि हम नवीन और समृद्ध भारत का निर्माण करने में तथा उन लाखों लोगों को सुख-सुविधा पहुँचाने में लगे हुए हैं, जिन्हें दरिद्रता के अभिशाप से भूतकाल में काफी पीड़ित रहना पड़ा, अवशिष्ट संसार की समस्याएँ हमारे सामने बलात् आ खड़ी होती हैं और हम न तो उनसे बच सकते हैं और न अपने को उनसे अलग रख सकते हैं। मेरी सरकार की अन्य देशों के मामलों में हस्तक्षेप करने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है किन्तु स्वतन्त्रता के साथ-साथ अनिवार्यरुपेण भारत पर जो जिम्मेदारी आ पड़ी है, उसको तो इसे निभाना ही है। जैसा कि सर्वविदित है, हमने संसार के सब देशों के प्रति मैत्री और शान्ति की नीति बरतने का प्रयास किया है। शनैः शनैः वे लोग भी, जो इससे सर्वदा सहमत नहीं होते, इसे समझने और इसका आदर करने लगे हैं, और यह बात मानी जाने लगी है कि भारत संसार में शान्ति का समर्थक है और वह ऐसा कोई कदम न उठाएगा जिसका परिणाम लड़ाई की प्रवृत्ति को जगाना हो। इसी नीति के अनुसरणार्थ मेरी सरकार ने कुछ ऐसे प्रस्ताव पेश किये थे जिनसे उसे यह आशा थी कि कोरिया-युद्ध के बारे में समझौता हो जाएगा। इन प्रस्तावों को बहुत भारी समर्थन मिला, किन्तु दुर्भाग्यवश उन महान् देशों में से कुछ इन्हें स्वीकार न कर सके जिनका उससे निकटतम सम्बन्ध था। वह युद्ध जारी है, और उससे न केवल कोरिया की जनता को ही कठोर यातना सहन करनी पड़ रही है, वरन् अवशिष्ट संसार के लिए भी वह खतरे का निशान है। सुदूर पूर्व पर प्रभाव डालने वाले हाल में दिये गये कुछ वक्तव्यों से और उनके परिणामस्वरूप कोरिया के युद्ध का विस्तार होने से समस्त संसार में बहुत आशंका पैदा हुई है। मेरी सरकार भी इन बातों को गम्भीर

चिन्ता से देखती है। मुझे विश्वास है कि युद्ध का, जो अपने साथ पहले ही भारी विपत्ति लाया है, विस्तार न होने दिया जाएगा तथा राष्ट्रों और जातियों के हृदय को इन समस्याओं को शान्तिपूर्ण रीति से सुलझाने की ओर मोड़ दिया जाएगा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मेरी सरकार प्रयत्नशील रहेगी और किसी एक राष्ट्रपुंज के विरुद्ध दूसरे राष्ट्रपुंज से गठबन्धन किये बिना सब देशों के प्रति मैत्री की नीति पर चलती रहेगी। अपने देश में जिन लोकतन्त्रात्मक तरीकों से हम आबद्ध हैं, उनमें समस्याओं को सुलझाने का शान्तिपूर्ण तरीका निहित है। यदि लोकतन्त्र को बचाये रखना है तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी शान्ति का वातावरण और समझौते की प्रवृत्ति अपनायी जानी चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की बैठक निकट भविष्य में फिर होगी और उसमें उन गम्भीर समस्याओं पर विचार किया जाएगा जिन पर संसार में शान्ति अथवा युद्ध के महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय आश्रित है। मेरी यह हार्दिक आशा है कि वे महान् राष्ट्र, जिनके प्रतिनिधि वहाँ इकट्ठे होंगे, संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में समाविष्ट उद्देश्यों के परिपालन तथा समझौते की प्रवृत्ति को बढ़ाने का प्रयास करेंगे।

अफ्रीका महाद्वीप में, जो उपनिवेशवाद का आज भी सबसे बड़ा अड्डा है, हालत पहले से खराब हो रही है। दक्षिण अफ्रीका में मूलवंशीय प्रभुता के सिद्धान्त का खुले आम ढिंढोरा पीटा जा रहा है और पूरी शक्ति से उसे लोगों पर लादा जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस समस्या को तय करने के जो प्रयत्न किये हैं, दक्षिण अफ्रीका की सरकार उनकी अवहेलना कर रही है। मूलवंशीय विभेद के विरुद्ध आन्दोलन को, जो शान्ति और अनुशासनपूर्ण ढंग के लिए उल्लेखनीय है, ऐसे कानूनों और सरकारी कार्यवाही द्वारा कुचलने की कोशिश की जा रही है जो लोकतन्त्रात्मक तरीकों और संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में उद्घोषित प्रयोजन की अवहेलना के लिए इससे पूर्व कभी नहीं अपनाये गये। पूर्वी अफ्रीका में आज जो मूलवंशीय संघर्ष चल रहा है उसे यदि जनता के सन्तोष के साथ समाप्त न किया गया, तो वह अफ्रीका के बहुत अधिक क्षेत्रों में भी फैल जाएगा। अब भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो इस बात को नहीं पहचानते कि आज के संसार में मूलवंशीय प्रभुता और विभेद को सहन नहीं किया जा सकता और इनको जारी रखने के किसी भी प्रयास का परिणाम भयानक ही होगा।

पश्चिमी और दक्षिणपूर्व एशिया के हमारे पड़ोसी देशों से हमारे सम्बन्ध घनिष्ट और मैत्रीपूर्ण हैं और हममें पारस्परिक सहयोग की मात्रा बढ़ती जा रही है। पाकिस्तान से भी जिससे कि दुर्भाग्यवश हमारे सम्बन्ध कुछ खिंचे से रहे हैं, हमारे सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ है। यह सुधार कुछ बड़ा नहीं है, किन्तु यह ऐसा चिन्ह है जिसका मैं स्वागत करता हूँ। दोनों देशों के प्रतिनिधियों के बीच हाल में हुए सम्मेलन मैत्रीपूर्ण वातावरण में हुए और मुझे आशा है कि ये फलदायी सिद्ध होंगे। पारपत्र प्रणाली आरम्भ किये जाने से दोनों देशों में जो उथल-पुथल हुई थी, वह अब शान्त हो गयी है और इसके कारण जो बहुत सी कठिनाइयाँ पैदा हुई थीं, वे अब शनैः शनैः दूर की जा रही हैं। मुझे विश्वास है कि यह प्रयत्न आगे भी जारी रहेगा जिससे पूर्व बंगाल के अल्पसंख्यकों के सामने जो

आधारभूत समस्याएँ अब भी हैं, वे दूर की जा सकें।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की सहायता से दोनों देशों के प्रतिनिधि नहरों के पानी के प्रश्न पर शिल्पिक स्तर पर संयुक्त रूप से विचार कर रहे हैं। यह प्रश्न विशेषकर ऐसा है कि जिस पर केवल वस्तु स्थिति की दृष्टि से तथा शान्तिपूर्ण ढंग से विचार किया जाना चाहिए जिससे दोनों देशों में होकर बहने वाले जल से दोनों देशों को महत्तम लाभ हो। इस जल का बहुत बड़ा भाग व्यर्थ में ही समुद्र में चला जाता है। यदि इसको ठीक तरह से बांध लिया जाये तो भारत और पाकिस्तान, दोनों के ही असंख्य लोगों को यह सुखदायक, सुबिधाप्रद और समृद्धिकारी सिद्ध होगा। यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे प्रश्न पर वैमनस्य और होड़ की वृत्ति से और ऐसे वातावरण में विचार किया जाये। मुझे विश्वास है कि हमारा नया ढंग दोनों देशों के लिए फलदायी और सुन्दर परिणाम वाला होगा। यही ढंग निष्क्रान्त सम्पत्ति की उस समस्या को सुलझाने के लिए काम में लाया जा सकता है, जो भारत और पाकिस्तान के लाखों लोगों के भाग्य की निर्णायक है।

भारत और पाकिस्तान के बीच दूसरी सजीव समस्या जम्मू और कश्मीर राज्य की समस्या है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि के साथ हमारे प्रतिनिधि इस समस्या पर फिर बातचीत कर रहे हैं। इस समस्या पर भी उस राज्य के लोगों के कल्याण को सर्वदा दृष्टि में रख कर शान्त भाव से विचार किया जाना चाहिए। युद्ध अथवा युद्ध की धमकियों से भारत और पाकिस्तान के बीच यह अथवा अन्य कोई अवशिष्ट समस्या हल नहीं की जा सकती। मेरी सरकार बार-बार इस बात की घोषणा कर चुकी है कि जब तक उस पर आक्रमण न होगा, वह युद्ध न छेड़ेगी और हमने पाकिस्तान को भी इसी प्रकार की घोषणा करने के लिए आमन्त्रित किया है। यदि युद्ध का भय दूर कर दिया जाये तो हमारे सामने जो समस्याएँ हैं, उन पर विचार करना कहीं अधिक आसान होगा।

आन्तरिक क्षेत्र में जम्मू और कश्मीर राज्य में काफी प्रगति हुई है। उस राज्य के साथ भारत के सम्बन्ध के विषय में हमारे संविधान में विशिष्ट उपबन्ध हैं, और भारत सरकार तथा जम्मू और कश्मीर के बीच हुए समझौतों के द्वारा वे बन्धन जो उस राज्य को भारत से बांधे हुए हैं और भी सुदृढ़ तथा घनिष्ट कर दिये गये हैं। इस समझौते का एक भाग कार्यान्वित किया जा चुका है और अवशिष्ट भाग जल्द ही कार्यान्वित कर दिया जाएगा। दुर्भाग्यवश जम्मू में नासमझी से एक आन्दोलन आरम्भ किया गया है, यद्यपि उसका उद्देश्य भारत के साथ और अधिक निकट एकता स्थापित करना है तथापि सम्भावना यह है कि उसका परिणाम बिलकुल उलटा ही हो। मुझे आशा है कि यह पथभ्रष्ट आन्दोलन शीघ्र ही बन्द हो जाएगा और जम्मू और कश्मीर के लोग भारत के वृहत्तर संघ में उस राज्य की प्रगति और अभिवृद्धि के कार्य में सहयोग देंगे। जहाँ भी कोई न्यायपूर्ण शिकायतें होंगी, उनकी निस्सन्देह जाँच की जाएगी और उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाएगा।

भाषावार प्रान्तों के प्रश्न पर देश के विभिन्न भागों के लोग बहुधा उत्तेजित हो उठे हैं। जबकि राज्य-निर्माण में भाषा और संस्कृति का महत्वपूर्ण हाथ होता है, वहाँ यह भी

स्मरण रखना चाहिए कि राज्य भारतीय संघ की प्रशासकीय इकाइयां हैं और उनके विषय में अन्य बातों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। सर्वोपरि बात यह है कि भारत की एकता और राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वदा वरीयता देना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में वित्तीय और प्रशासनिक बातों और साथ ही साथ आर्थिक प्रगति का भी बहुत महत्व है। इनको देखते हुए ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न पर पूरी तरह और शान्त भाव से इस प्रकार विचार न किया जाये जिससे जनता की इच्छाएँ भी पूर्ण हों और उनकी आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रगति में सहायता मिले। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरी सरकार ने पृथक् आन्ध्र राज्य के निर्माण के विषय में कदम उठाये हैं, और आशा है कि इस नये राज्य की स्थापना में अधिक विलम्ब न होगा। नये राज्य की स्थापना के सम्बन्ध में ऐसे परिवर्तन के लिए तत्सम्बन्धित सब लोगों के पूरे-पूरे सहयोग की आवश्यकता होती है, और मुझे आशा है कि यह सहयोग प्राप्त भी होगा।

योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी प्रतिवेदन अन्तिम रूप से तैयार करके अपने काम का पहला भाग समाप्त कर लिया है। दूसरा और अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य अर्थात् योजना को कार्यान्वित करने का काम देश के सामने है और अब हमें उसमें लग जाना है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि यह योजना तथा देश में जो ५५ सामुदायिक योजनाकार्य आरम्भ किये गये हैं, वे हमारी जनता में भारी उत्साह पैदा कर रहे हैं। कुछ ही महीनों में सैंकड़ों मील लम्बी सड़कें बना ली गयी हैं, तालाब खोद लिये गये हैं, पाठशाला-गृह निर्मित कर लिये गये हैं, और अन्य बहुत से छोटे-मोटे काम हाथ में ले लिये गये हैं जो लगभग सारे ही हमारी जनता के स्वेच्छा श्रम से ही पूरे हुए हैं। यह आशा और आश्वासन का चिन्ह है क्योंकि अन्ततोगत्वा यह हमारी जनता पर ही निर्भर करता है कि वह अपना भविष्य कैसे बनाये।

देश की साधारण आर्थिक अवस्था में भी सुधार के स्पष्ट चिन्ह दिखायी पड़ रहे हैं, हालाँकि अब भी दुर्भाग्य से ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जहाँ सूखा के कारण दुर्भिक्षसम स्थिति विद्यमान है। उपयोगी कामों द्वारा अथवा अन्य रीति से लोगों को सहायता देने के लिए इन क्षेत्रों में राज्य सरकारें पूरी-पूरी कोशिश कर रही हैं। किन्तु इस समस्या को तो अपेक्षाकृत अधिक मौलिक तरीके से हल करना आवश्यक है जिससे न तो दुर्भिक्ष जैसी स्थिति की पुनरावृत्ति हो और न अनिश्चयजन्य वर्षा पर ही पूर्णतया आश्रित रहना पड़े।

संविधान के अनुच्छेद २८० के उपबन्धों के अधीन १९५१ के अन्तिम दिनों में संगठित वित्त आयोग ने अपना प्रतिवेदन पेश कर दिया है। मेरी सरकार ने आयोग की सिफारिशें स्वीकार कर ली हैं और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाएगी। चालू सत्र में आयोग की सिफारिशें संसद् के दोनों सदनों में प्रस्तुत कर दी जाएँगी।

खाद्य स्थिति में निरन्तर सुधार होता रहा है और १९५२ के अन्त में १६ लाख टन का भण्डार हमारे पास था जो पहले से कहीं अधिक है। जिन साधनों से इतना खाद्य संचित किया जा सका, उनमें से एक साधन संयुक्त राज्य अमेरिका से उधार मिला गेहूँ है।

१९५२-५३ के वर्ष के लिए पिछले दो वर्षों से कहीं अधिक खाद्यान्न प्राप्त होने की सम्भावना है। अपर्याप्त वर्षा के कारण बम्बई, मद्रास और मैसूर के भागों में सूखा पड़ने से खाद्यान्नों का आयात करना होगा, किन्तु पिछले वर्षों से उसका परिमाण कम होगा। यह अत्यन्त महत्व की बात है कि हम खाद्यान्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बन जायें और मुझे आशा है कि पंचवर्षीय योजना के अवशिष्ट तीन वर्षों में सम्भवतः ऐसा हो जाएगा। यह पहला ही अवसर है जब खाद्यान्नों के पर्याप्त भण्डार के साथ यह वर्ष आरम्भ हो रहा है। हमें इसमें इतनी अधिक वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिए जिससे हम किसी भी अनसोची स्थिति का सामना कर सकें। हाल के महीनों में खाद्यान्नों की कीमतों का झुकाव नीचे की ओर रहा है। भारत के बहुत से भागों में नियन्त्रणों को ढीला कर दिया गया है और अन्न को लाने-ले जाने की अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी है। किन्तु सरकार का यह विचार है कि खास-खास स्थानों पर नियन्त्रण जारी रखे जायें जिससे ऐसा कोई अदृश्य परिणाम न हो जिसका कीमतों या अनाज की वसूली पर बुरा प्रभाव पड़े।

१९५१-५२ में १५ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ जितना पहले कभी नहीं हुआ था। यह पहला ही अवसर था जब हमारी घरेलू आवश्यकता की तुलना में उत्पादन अधिक हुआ। इसी के फलस्वरूप १९५२-५३ में उत्पादित चीनी, गुड़ और खाण्डसारी के मूल्यों, यातायात और वितरण पर लगा नियन्त्रण ढीला किया जाना सम्भव हुआ। पर्याप्त मात्रा में मूंगफली का तेल प्राप्त होने के परिणामस्वरूप उन नियन्त्रणों को छोड़ कर जो उसकी किस्म को अच्छी बनाये रखने के लिए आवश्यक है, हमने उदजनित तेलों के मूल्यों पर से अन्य नियन्त्रण हटा लिये हैं।

रूई और पटसन के उत्पादन में भी काफी प्रगति हुई है। १९४८-४९ में रूई का उत्पादन १७.७ लाख गाँठ और पटसन का २०.७ लाख गाँठ था। रूई का उत्पादन १९५१-५२ में बढ़ कर ३१.३ लाख गाँठ और पटसन का ४६.८ लाख गाँठ हो गया।

देश में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के लिए दो हजार नलकूप बनाने तथा छोटे-मोटे सिंचाई के कामों के कार्यक्रम को तेजी से पूरा करने के लिए विशेष ध्यान दिया जा रहा है। फसल प्रतियोगिताएँ अधिकाधिक मात्रा में सारे देश में लोकप्रिय होती जा रही हैं और इनके परिणाम काफी उल्लेखनीय हैं। धान की खेती के लिए उस रीति को जो जापानी रीति कही जाती है आरम्भ करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग किये जा रहे हैं। आशा की जाती है कि इस रीति से उत्पादन बढ़ाने में इसके बहुत ठोस परिणाम होंगे। जम्मू प्रान्त में एक विस्तृत यन्त्रसज्जित फार्म स्थापित किया गया है। उर्वरकों और अन्य प्रकार के खाद के अधिकाधिक प्रयोग तथा अच्छी किस्म के बीज के प्रयोग के लिए जोरों से प्रयास किये जा रहे हैं। सामुदायिक केन्द्र इस बात के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील है कि विभिन्न तरीकों से जिनमें ग्राम्य विस्तार सेवा भी सम्मिलित है, खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाया जाये।

ढोरों के सुधार के लिए १९५१-५२ में ९२ प्रमुख फार्म केन्द्र आरम्भ किये गये हैं। इसके अतिरिक्त यह विचार किया गया है कि प्रत्येक सामुदायिक योजनाकार्य क्षेत्र में एक

प्रमुख ग्राम्य इकाई स्थापित की जाये। अच्छी किस्म के ऊन के उत्पादन का प्रबन्ध करने के हेतु भेड़-अभिजनन की योजना का पुनर्गठन किया गया है। वन्य जीवन को बनाये रखने के लिए एक मण्डल की स्थापना की गयी है। जोधपुर में मरुभूमि वन रोपण शोध संस्थान की स्थापना की गयी है जो मरु क्षेत्रों के सुधार का काम अपने हाथ में ले लेगा।

१९५२ में सिन्दरी उर्वरक कारखाने में एक लाख अस्सी हजार टन अमोनियम सल्फेट तैयार हुआ। १९५३ में यह उत्पादन बढ़कर ३ लाख टन हो जाएगा, ऐसी आशा है। इसकी दर ३६५ रुपया प्रति टन से घटा कर ३३५ रुपया प्रति टन कर दी गयी है।

१९५२ में सूती कपड़े का उत्पादन जो ४ अरब ६० करोड़ गज़ था, बहुत ही सन्तोषप्रद रहा और अगले वर्ष इसके और अधिक उत्पादन की सम्भावना है। यद्यपि मिलनिर्मित कपड़े की कीमतों का कम होना खुशी की बात है तथापि उसके कारण करघे के बने कपड़े की बिक्री कम हो गयी और करघा वस्त्र व्यवसाय को विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है। इस व्यवसाय से हमारे देश में लाखों व्यक्तियों की जीविका चलती है। मेरी सरकार इसको और अन्य कुटीर उद्योगों को बहुत महत्वपूर्ण मानती है क्योंकि ये बहुत लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं और इसलिए भी कि बेकारी को दूर करने के ये अत्यन्त प्रभावशाली साधन हैं। अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग मण्डल की स्थापना की गयी है और ग्राम तथा कुटीर उद्योगों के लिए आवश्यक प्राविधिक विकास और शोध के लिए धन प्राप्त करने के हेतु कानून बनाया जा रहा है। करघा वस्त्र व्यवसाय को सहायता देने के लिए मिलों द्वारा बनायी जाने वाली धोतियों का परिमाण १९५१-५२ के उत्पादन का साठ प्रतिशत निर्धारित कर दिया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों के गिरने के कारण चाय व्यवसाय पर बुरा प्रभाव पड़ा है। सरकार ने चाय बाग़ान को अपेक्षाकृत अच्छी साख-सुविधाएँ दिलाने के लिए कार्यवाही की है और उसका विचार है कि चाय उद्योग के प्रत्येक पहलू की जिसमें बाजार में माल भेजने की व्यवस्था भी सम्मिलित होगी, जाँच करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जाये। चाय के मूल्य में सुधार के चिन्ह अब दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

संसारव्यापी मूल्यों में पुनस्समायोजन के फलस्वरूप वैदेशिक व्यापार और निर्यात कम मूल्य का हुआ है, और कुछ सीमा तक उसकी मात्रा में भी कमी हुई है। भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी सन्तोषजनक रही है क्योंकि आयात भी कम हुआ है।

मेरी सरकार भारत के उत्तर पूर्व और अन्य भागों के आदिमजाति क्षेत्रों के प्रति विशेष ध्यान देती रही है और उनके विकास के लिए सहायता दी जा रही है। पिछड़े वर्गों की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की गयी है। भारत में समाचार-पत्रों की समस्याओं पर भी विचार करने के लिए एक समाचार पत्र आयोग नियुक्त किया गया है।

बड़ी बहुमुखी नदी योजनाओं में अच्छी प्रगति हुई है और उनमें से कुछ शीघ्र ही प्रवर्तन स्थिति में आने वाली हैं। अन्य योजनाओं के निर्माण-कार्य में निरन्तर प्रगति हो रही है।

विशाखापटनम् में हिन्दुस्तान शिपयार्ड की कार्यक्षमता में सुधार करने के लिए तथा लोहे और इस्पात उद्योग के विस्तार के लिए कदम उठाये गये हैं। कोयला, इस्पात, सीमेण्ट नमक और उर्वरकों का उत्पादन इस वर्ष पिछले वर्ष से अधिक हुआ।

नयी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और शोध प्रतिष्ठानों की स्थापना द्वारा वैज्ञानिक शोध में और अधिक प्रगति हुई है। कराईकुडी में एक केन्द्रीय विद्युत् रासायनिक शोध प्रतिष्ठान और मद्रास में एक केन्द्रीय चर्म शोध प्रतिष्ठान खोला गया है। रुड़की में शीघ्र ही एक वास्तु शोध प्रतिष्ठान खोला जाएगा। मोनाजाइट बालू के विधायन के लिए तिरुवांकुर कोचीन में अलवाए में एक कारखाना स्थापित किया गया है और बम्बई राज्य में अम्बरनाथ में हाल में एक यन्त्रोपकरण कारखाना खोला गया है। बंगलोर के हिन्दुस्तान विमान कारखाने ने अपनी ही प्ररचनाओं के अनुकूल कई प्रशिक्षक विमान बनाये हैं जो अब काम में आ रहे हैं। जबलपुर के निकट एक प्रतिरक्षा कारखाना बन कर पूरा होने वाला है।

मेरी सरकार ने यह निश्चय किया है कि वह वर्तमान वैमानिक निगमों को अपने नियन्त्रण में ले ले और अनुसूचित वैमानिक सेवाओं का संचालन करे। इस प्रयोजन के लिए दो राज्य निगम स्थापित करने का विचार है—एक आन्तरिक सेवाओं के लिए और दूसरा बाह्य सेवाओं के लिए।

भारतीय रेलें अगले मास में अपनी शताब्दी प्रदर्शनी का समारोह कर रही हैं। यह सरकारी उद्योग, जिसकी जनता मालिक है, बराबर प्रगति कर रहा है और अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ा रहा है।

किसी जाति या राष्ट्र की प्रगति अन्ततोगत्वा शिक्षा पर निर्भर करती है। मेरी सरकार देश में शिक्षा की वर्तमान अवस्था के बारे में बहुत चिन्तित है जिसमें अनेक प्रकार की कमियाँ हैं। इसमें डिप्लोमा और डिग्री प्रदान करने की ओर तो बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, किन्तु सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक विषयों में और सर्वोपरि अच्छी नागरिकता के प्रशिक्षण में व्यक्ति के वास्तविक सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। बुनियादी तालीम एक प्रयोग के रूप में आरम्भ की गयी है, किन्तु इस दिशा में दुर्भाग्यवश अब तक बहुत धीमी प्रगति हुई है। बुनियादी, माध्यमिक और सामाजिक शिक्षा के सुधार की बहुत सी योजनाएँ विचाराधीन हैं और माध्यमिक शिक्षा के लिए एक आयोग नियुक्त किया गया है।

भारत की स्थिति पर सब ओर से दृष्टि डालने से यह प्रतीत होता है कि बढ़ती हुई गति से चतुर्मुखी प्रगति हुई है। यह सन्तोष की बात है, किन्तु जो ध्येय हमने अपने सामने रखा है, वह अभी बहुत दूर है। उसके लिए अधिक तथा सतत प्रयास की और अधिक गतिशील परिवर्तन की आवश्यकता है। हमारा उद्देश्य ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने का है जिसमें इस देश के सब लोग भागीदार होंगे, और इसके लाभों और दायित्व में समान रूप से हाथ बटाएँगे। जब तक दरिद्रता और बेकारी जारी है, समुदाय के एक भाग को इस साझेदारी से कोई लाभ नहीं मिलता। अतः आवश्यक यह है कि हमारा ध्येय यह हो कि सब लोग पूरी तरह से उत्पादन-कार्य में लग जायें।

१९५३-५४ के वित्तीय वर्ष के लिए आपके सामने भारत सरकार की प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखा जाएगा। संसद् के सदस्यों से अपेक्षा की जाएगी कि वे अनुदान की माँगों पर विचार करें और उन्हें स्वीकार करें।

आप से चालू वित्तीय वर्ष में होने वाले अतिरिक्त व्यय के लिए अनुपूरक अनुदानों को स्वीकार करने के लिए भी कहा जाएगा।

आपके सामने २४ विधेयक हैं। उनमें से कुछ पर तो समिति विचार कर चुकी है। और कुछ जो अभी समितियों के विचाराधीन हैं इस सत्र के अभ्यन्तर उनकी सिफारिशों सहित आपके सामने प्रस्तुत किये जाएँगे।

आपके सामने जो अन्य विधायक प्रस्ताव लाये जाने का विचार किया गया है उनमें से कुछ का यहाँ विशेष उल्लेख किया जा सकता है। लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, राष्ट्रीय गृह संयोजन विधेयक, वैमानिक सेवा निगम विधेयक, न्यूनतम भृत्ति (संशोधन) विधेयक तथा भारतीय प्रशुल्क (संशोधन) विधेयक।

मुझे हार्दिक विश्वास है कि बुद्धिमत्ता, सहिष्णुता तथा सहकारी प्रयास की प्रवृत्ति आपका पथ-प्रदर्शन करेगी और जिस देश और जनता की सेवा का सौभाग्य हम सबको प्राप्त है, उनके लिए सुन्दर फल प्रदान करेगी।

प्रथम योजना में देश की उन्नति

मैं आज पूरे एक वर्ष बाद संसद् के नये सत्र के लिए आप लोगों का स्वागत करने यहाँ आया हूँ। इस एक वर्ष की अवधि में आपको बहुत सी गहन समस्याओं और भारी जिम्मेदारियों का सामना करना पड़ा है। इनमें से बहुत सी समस्याएँ अभी भी उसी प्रकार हमारे सामने हैं, किन्तु मेरा विश्वास है आप लोग कह सकते हैं कि गत वर्ष हमें काफी सफलता मिली है। अविजेय बाधाओं और कठिनाइयों पर विजय पाने के मानव के अदम्य उत्साह के प्रतीकस्वरूप एवरेस्ट पर अन्तिम विजय प्राप्त हुई। इस महत्वपूर्ण सफलता में एक वीर भारतीय का भी हाथ था। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पुराने भय और तनाव अब भी पहले के समान बने हैं। परन्तु समझौते के प्रयत्न बराबर जारी हैं और मैं हृदय से विश्वास करता हूँ कि इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप तनाव के वातावरण में सुधार होगा और पश्चिम तथा सुदूर पूर्व में भावी समझौते का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

संसद् के समक्ष अभिभाषण, १५ फरवरी, १९५४

भारत, संसार के सभी देशों के साथ शान्ति और मैत्री की नीति का अनुसरण करता रहा है और ऐसे अवसरों पर जब भी यह आशा हुई कि हम शान्ति-स्थापना के हेतु कुछ कर सकते हैं, हमारे देश ने जिम्मेदारियों को उठाने में कोई संकोच नहीं किया। कोरिया में मेरी सरकार ने तटस्थ राष्ट्रीय प्रत्यावर्तन आयोग की अध्यक्षता स्वीकार की और युद्ध-बन्दियों के भविष्य के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय होने तक उनकी देखभाल के लिए संरक्षण सेना वहाँ भेजी। दुर्भाग्यवश विराम-सन्धि समझौते में सुझायी गयी पद्धति के अनुसार कार्यवाही नहीं की जा सकी, जिसके कारण एक कठिन स्थिति पैदा हो गयी। कुछ दिनों में ही आयोग अपना काम समाप्त कर देगा और संरक्षण सेना अब धीरे-धीरे भारत वापस आ रही है। कोरिया में प्रमुख विवादग्रस्त प्रश्नों का अभी तक निबटारा नहीं हुआ है। मुझे पूर्ण आशा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में अथवा कहीं और इन आवश्यक मामलों को सुलझाने का शीघ्र ही प्रयत्न किया जाएगा। आप सबकी ओर से और अपनी ओर से, मैं कोरिया में तटस्थ राष्ट्रीय प्रत्यावर्तन आयोग में अपने प्रतिनिधियों और संरक्षक सेना के अधिकारियों तथा सिपाहियों की इस बात के लिए प्रशंसा करना चाहूँगा कि उन्होंने एक कठिन और नाजुक काम को बड़ी योग्यता तथा निष्पक्षता के साथ निभाया।

विदेशों से भारत के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे हैं, यद्यपि कभी-कभी गलतफहमियाँ पैदा हो जाती हैं। इस समय मेरी सरकार के प्रतिनिधि चीनी गणतन्त्र की सरकार से तिब्बत के सम्बन्ध में सामान्य हित के विभिन्न मामलों पर बातचीत कर रहे हैं। मुझे पूरी आशा है कि इस बातचीत के परिणामस्वरूप सभी विशिष्ट समस्याओं के बारे में समझौता हो सकेगा। सोवियत संघ और कई अन्य देशों से हमारी व्यापारिक सन्धियाँ हुई हैं। पिछले वर्ष हमारे प्रधान मन्त्री पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री से मिले। ये मुलाकातें मैत्रीपूर्ण थीं और इनके फलस्वरूप दोनों देशों के बीच कई एक विवादग्रस्त मामलों के बारे में, जो बहुत दिनों से चले आ रहे थे, पारस्परिक सद्भावना पैदा हो सकी। इस दिशा में हम कुछ आगे बढ़े थे पर दुर्भाग्य से कुछ ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिनके कारण प्रगति में रुकावटें पड़ रही हैं। मुझे खुशी है कि मेरी सरकार और श्रीलंका की सरकार के बीच श्रीलंका के भारतीय प्रवासियों के प्रश्न पर समझौता हो गया है। इस समझौते द्वारा उक्त समस्या का अन्तिम रूप से निबटारा नहीं होता, परन्तु उस दिशा में यह पहला कदम है और समस्या के हल के लिए गम्भीर प्रयास है, इसलिए मैं इसका स्वागत करता हूँ। अपने पड़ोसी राष्ट्रों, श्रीलंका तथा बर्मा से जिनके साथ हमारा भौगोलिक ही नहीं बल्कि चिरकाल से सांस्कृतिक सम्बन्ध भी है, मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को उन्नत करने का मेरी सरकार सतत प्रयत्न करती रही है।

पश्चिमी एशिया के देशों और मिस्र के साथ हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण और पारस्परिक सहयोग के रहे हैं। मुझे खुशी है कि सूडान के निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में हमारे मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवाओं की प्रशंसा की गयी है और चुनाव व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हो गये हैं। मैं सूडान में स्वाधीनता के उदय का स्वागत करता हूँ,

जो स्वयमेव तो शुभ है ही, चिरकाल से त्रस्त और आजकल भी अनेक संकटों के शिकार अफ्रीकी भूखण्डों की भावी उन्नति के लिए भी यह एक शुभ लक्षण है।

गत वर्ष इस अवसर पर मेरे अभिभाषण के बाद भारतीय संघ में आन्ध्र नामक नये राज्य का उदय हुआ है। भारतीय राज्यों में इस अभिवृद्धि का मैं स्वागत करता हूँ और नये राज्य की सफलता की कामना करता हूँ। भारत में राज्यों के पुनर्गठन की माँग को देखते हुए मेरी सरकार ने इस कार्य के लिए एक आयोग की स्थापना की है, जिसमें योग्य और अनुभवी सदस्य रखे हैं। यह कार्य बड़े और ऐतिहासिक महत्व का है। इसे वस्तुगत रूप से पूर्ण शान्तचित्तता के साथ करना है, जिससे सम्बन्धित क्षेत्रों की जनता का और इसके साथ ही समस्त राष्ट्र का अधिक कल्याण हो सके। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस आयोग के काम में सभी लोग सद्भावना और समझदारी के साथ सहयोग देंगे।

हमारे संघ के दो राज्यों में, तिरुवांकुर-कोचीन और पटियाला तथा पूर्वी पंजाब रियासती संघ में, आजकल आम चुनाव हो रहे हैं। उपर्युक्त दूसरे राज्य में संविधान सुचारु रूप से नहीं चल सका और नये चुनाव होने तक प्रशासन का कार्यभार मुझे अपने अधीन लेना पड़ा।

हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना की आधी अवधि समाप्त हो चुकी है। कुछ मामलों में प्रगति इतनी अच्छी नहीं हुई जितनी हम आशा करते थे, परन्तु कुछ अन्य मामलों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। सामुदायिक योजनाकार्यों के कार्य में विशेष रूप से उन्नति हुई है और राष्ट्रीय विकास कार्य में भी, जिसका श्रीगणेश अक्तूबर, १९५३ में हुआ था, सन्तोषजनक उन्नति हुई है। इस कार्य में जनसाधारण का योगदान बहुत उत्साहवर्धक है। इस कार्य का यह पहलू बहुत ही आशाजनक है। यद्यपि औद्योगिक उत्पादन में और कई एक दूसरे क्षेत्रों में विशेष प्रगति हुई है, फिर भी व्यापक बेरोजगारी की समस्या मेरी सरकार के लिए चिन्ता का विषय है। लोगों को अधिक रोजगार दिलाने के उद्देश्य से योजना आयोग पहली पंचवर्षीय योजना पर पुनर्विचार कर रहा है।

साधारण आर्थिक स्थिति में बराबर सुधार हुआ है। १९५२-५३ में अनाजों का उत्पादन उसके एक वर्ष पहले की अपेक्षा पाँच लाख टन अधिक हुआ है और इस वर्ष की स्थिति भी अच्छी है। खाद्य की स्थिति में सुधार बहुत सन्तोषजनक है और देश इस दिशा में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की ओर तेजी से आगे बढ़ रहा है। औद्योगिक उत्पादन में, विशेषकर सूती कपड़े, कागज, रासायनिक पदार्थ, बाइसिकल, नमक और बहुत से इंजीनियरिंग सम्बन्धी उद्योगों के क्षेत्र में उत्पादन काफी ज्यादा होता रहा है। औद्योगिक उत्पादन की सूचक संख्या बढ़कर १९५३ में १३४ हो गयी जबकि १९५२ में वह १२९ थी। युद्ध के बाद से हमारे औद्योगिक उत्पादन का यह उच्चतम स्तर है। इस्पात उद्योग के विस्तार और इस्पात के एक नये कारखाने की स्थापना के सम्बन्ध में इस समय अन्तिम कार्यवाही हो रही है। पटसन और चाय उद्योग, जिन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, अब अच्छी स्थिति में हैं।

मेरी सरकार घरेलू उद्योगों की उन्नति को विशेष महत्व देती है। मुझे खेद है कि इस दिशा में सन्तोषजनक प्रगति नहीं की जा सकी है। आशा है कि अखिल भारतीय खादी

और ग्रामोद्योग बोर्ड, अखिल भारतीय करघा बोर्ड और अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस दिशा में निकट भविष्य में ठोस कार्य हो सकेगा।

महान् नदीघाटी योजनाओं के सम्बन्ध में सन्तोषजनक प्रगति हुई है और इन योजनाओं में से कुछ पूर्ण भी हो चुकी हैं और इस समय चालू हैं। पाँच नयी योजनाएँ अर्थात् कोसी, कोयना, कृष्णा, रिहन्द और चम्बल योजनाएँ पंचवर्षीय योजना में शामिल कर ली गयी हैं। इन योजनाओं के सम्बन्ध में प्रारम्भिक व्यवस्था की जा रही है, जिससे आगामी वित्तीय वर्ष में इन्हें चालू किया जा सके। कोसी योजना के बारे में नेपाल सरकार से बातचीत चल रही है।

भारत के हवाई यातायात का पुनर्गठन हो चुका है और दो सरकारी निगम—एक आन्तरिक यातायात के लिए और दूसरा विदेशी यातायात के लिए स्थापित किये जा चुके हैं। विदेशी सेवाओं का सुदूरपूर्व तक विस्तार करना सरकार के विचाराधीन है।

पिछले साल हमने दो युगान्तरकारी घटनाओं को मनाया—भारत में रेल व्यवस्था तथा तार-डाक व्यवस्था की शताब्दियाँ। रेल यातायात में बराबर प्रगति हुई है और रेल के डिब्बों तथा इंजिनों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। नये रेल मार्ग खोलने के लिए निकट भविष्य में कई एक बड़ी योजनाओं को हाथ में लिया जाएगा। डाक और तार सम्बन्धी सुविधाओं का भी, विशेष रूप से देहाती और पिछड़े हुए क्षेत्रों में विस्तार किया गया है।

मेरी सरकार आवास की समस्या को महत्वपूर्ण मानती है। विभाजन के बाद से विस्थापित लोगों के लिए आवास पर अब तक ७२ करोड़ रुपये व्यय किये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं के लिए घरों के निर्माण के सम्बन्ध में ऋण और सरकारी सहायता दी गयी है। सस्ते और आकर्षक मकानों के निर्माण को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से हाल में ही एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का उद्घाटन किया गया है, जिसकी ओर बहुतों का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

१९५४-५५ के वित्तीय वर्ष में भारत सरकार के अनुमानित आय तथा व्यय का ब्यौरा आपके सम्मुख रखा जाएगा।

संसद् के विगत सत्र के बाद सात अध्यादेश परिवर्तित करने आवश्यक हो गये हैं। इनमें से दो का सम्बन्ध उन दो मामलों से है जिनके बारे में एक विधेयक अभी आपके विचाराधीन है। इनमें से उन सभी अध्यादेशों पर विचार करने का आपको अवसर मिलेगा, जिन्हें स्थायी विधान का रूप देना आवश्यक होगा।

आपके सम्मुख २८ विधेयक विचाराधीन हैं। इनमें से कुछ पर प्रवर समितियाँ विचार कर चुकी हैं। दूसरे विधेयक जिन पर प्रवर समितियाँ आजकल विचार कर रही हैं, उक्त समितियों की सिफारिशों समेत आपके सामने रखे जाएँगे। इन विधेयकों में हिन्दू विधि के सुधार सम्बन्धी विधेयक भी सम्मिलित हैं, जिन्हें मेरी सरकार बड़ा महत्व देती है। संसद् के इस सत्र में आपके सम्मुख अन्य विधायक प्रस्ताव भी रखे जाएँगे जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक कल्याण से है। न्यायालयों के कार्य को गतिशील करने और मुकदमेबाजी के

व्यय को घटाने के लिए मेरी सरकार न्यायिक कार्यप्रणाली में सुधार करने को बहुत उत्सुक है।

इस मास के आरम्भ में इलाहाबाद में कुम्भ के मेले के अवसर पर एक भीषण दुर्घटना घटी। इस अवसर पर यात्रियों का अपूर्व जनसमूह एकत्रित हुआ था। इस विशाल जनसमुदाय की सुविधा के लिए उत्तर प्रदेश की सरकार ने सन्तोषजनक व्यवस्था करने का बड़ा प्रयास किया था। परन्तु अमावस्या के दिन अचानक एक दुर्घटना घटी जिसके कारण बहुत से लोग बेकाबू भीड़ के पाँव तले आकर रौंदे गये और मर गये। इस दुखद दुर्घटना से यह शुभ समागम विषादपूर्ण बन गया और हमारे अनेक देशवासियों के लिए शोक का विषय हो गया। आपकी ओर से और मैं अपनी ओर से दिवंगत आत्माओं के सभी सम्बन्धियों को समवेदना तथा सहानुभूति भेजता हूँ।

नये वर्ष का आरम्भ इस प्रकार हुआ है कि इसमें जितनी आशा की झलक है उतना ही भय भी दिखायी देता है। शान्ति-स्थापना में प्रगति और तत्सम्बन्धी प्रयत्नों के सफल होने की आशा है। हमें और विश्व को कठिन परीक्षाओं का सामना करना पड़ सकता है, इस बात की भी आशंका है। यदि हम उन सिद्धान्तों पर अडिग रहें जिन्होंने अतीत में हमारा पथ-प्रदर्शन किया है और यदि हम राष्ट्रपिता के शान्ति, सहिष्णुता और आत्म-विश्वास के सन्देश को याद रखें तो मानव जाति के लिए संकट के इस समय में हम अपने देश की और समस्त विश्व की सेवा कर सकते हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि आपके कार्य-कलाप में यह सन्देश आपका पथ आलोकित करेगा।

जनता में नयी जागृति

पूरे एक वर्ष बाद आप से कुछ कहने मैं फिर संसद् में आया हूँ। मुझे खुशी है कि पिछला वर्ष, घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की दृष्टि से, हमारे देश के लिए काफी सफलता का वर्ष रहा है। भारत के लोग और यह संसद् अपने कार्य पर सन्तोष कर सकती है। किन्तु सन्तुष्ट हो कर बैठ रहने का यह अवसर नहीं है। हमें अपने देश में गहन समस्याओं का सामना करना है और उधर मानवता के भविष्य पर फिर से युद्ध के काले बादल मँडरा रहे हैं।

मुझे हर्ष है कि सभी दूसरे देशों से हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे हैं और कुछ देशों के साथ मैत्री तथा सहयोग की भावना में और भी अधिक वृद्धि हुई है। बहुत से देशों से

'संसद् के समक्ष अभिभाषण, २१ फरवरी १९५५

सम्मान्य नेतागण हमारे देश में आये। पिछले वर्ष हमारे यहाँ पधारने वालों में कनाडा, इण्डोनीशिया, चीन और श्रीलंका के प्रधानमन्त्री हैं। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति और पाकिस्तान के गवर्नर जनरल का भारत में स्वागत करने का भी हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारे उपराष्ट्रपति ने हमारी सद्भावना का सन्देश अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, अर्जनटीना, चिली, बोलिविया, पेरू, ब्राजील, यूरूगोए और इटली तक पहुँचाया। हमारे प्रधान मन्त्री मित्र के नाते, चीन, बर्मा, इण्डोनीशिया, इण्डोचीन और मिस्र गये। हाल ही में लन्दन में होने वाले राष्ट्रमण्डलीय प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया, जहाँ संसार की शान्ति से सम्बद्ध महत्वपूर्ण मामलों पर स्पष्टता से और मैत्रीपूर्ण ढंग से बातचीत हुई।

तिब्बत के बारे में चीन और भारत के बीच किये गये समझौते का मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा। इस समझौते द्वारा इन दोनों महान् देशों के बीच मैत्री की पुष्टि हुई, जिसका एशिया तथा संसार की शान्ति से बहुत अधिक सम्बन्ध है। इस समझौते में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उन्हें अधिक व्यापक रूप दिया जा सकता है। बहुत से देशों ने उन सिद्धान्तों को स्वीकार भी किया है। ये पाँच सिद्धान्त, जिन्हें प्रायः पंचशील कहा जाता है, ये हैं: एक दूसरे के प्रभुत्व तथा प्रादेशिक अखण्डता के लिए पारस्परिक समादर, अनाक्रमण की नीति, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना, पारस्परिक समता तथा लाभ और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व। इन सिद्धान्तों को मैं आपके समक्ष रखता हूँ और आशा करता हूँ कि ये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आधार बनते जाएँगे और इस प्रकार संसार की सुरक्षा तथा शान्ति का कारण बनेंगे।

आलोच्य वर्ष में श्रीलंका के प्रधानमन्त्री के सुझाव पर एक महत्वपूर्ण घटना घटी। यह घटना थी कोलम्बो में श्रीलंका, बर्मा, इण्डोनीशिया, पाकिस्तान और भारत के प्रधानमन्त्रियों का सम्मेलन। तत्पश्चात् इसी प्रकार का एक सम्मेलन इण्डोनीशिया में बोगोर नामक स्थान पर हुआ। इन सम्मेलनों में उपर्युक्त देशों ने, जो एशिया महाद्वीप के बहुत बड़े भूभाग हैं, अपने विचारों और उद्गारों को संगठित रूप से व्यक्त किया और इससे निस्सन्देह शान्ति के पक्ष को समर्थन मिला। इन सम्मेलनों के परिणामस्वरूप अब एशिया और अफ्रीका के स्वतन्त्र देशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन इण्डोनीशिया में बुलाने का आयोजन किया गया है। यह सम्मेलन इन दो महाद्वीपों के देशों के विकास और विश्वव्यापी हलचलों के क्षेत्र में इनके उत्थान का दूसरा चरण है। मेरा विश्वास है कि इनके कारण विश्वशान्ति के पक्ष को बल मिलेगा और इन देशों के बीच सहयोग और सद्भावना बढ़ेगी।

गत वर्ष की सबसे बड़ी घटना, जो वास्तव में दूसरे विश्व युद्ध के बाद की सबसे बड़ी घटना है, जेनेवा सम्मेलन था जिसके कारण इण्डोचीन में युद्ध समाप्त हो सका और इण्डोचीन के राज्यों की समस्याओं को शान्तिपूर्वक सुलझाने का मार्ग प्रशस्त किया जा सका। जेनेवा सम्मेलन को अनेक महत्वपूर्ण और कठिन समस्याओं से जूझना पड़ा, किन्तु सौभाग्य से शान्तिपूर्ण ढंग से इस समस्या को सुलझाने की दिशा में सम्बद्ध राष्ट्रों के

प्रयत्न सफल हुए। इस प्रकार उस सम्मेलन ने संसार के सामने एक उदाहरण रखा है। मैं आशा करता हूँ कि दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिए भविष्य में इस उदाहरण का अनुसरण किया जाएगा।

जेनेवा सम्मेलन के परिणामस्वरूप भारत ने इण्डोचीन में नियुक्त किये गये तीन आयोगों में अपने ऊपर भारी जिम्मेदारी ली है। भारत की अध्यक्षता में ये आयोग जेनेवा में किये गये निर्णयों को कार्यरूप देने में काफी आगे बढ़ चुके हैं और इनका कार्य प्रशंसनीय है।

दुर्भाग्य से कुछ झगड़े अभी भी चल रहे हैं जिनके कारण विश्वशान्ति संकट में है। इनमें सबसे प्रमुख सुदूरपूर्व सम्बन्धी, विशेष कर फारमोसा और चीन के तटीय द्वीपों सम्बन्धी संघर्ष है। मेरी सरकार चीन की एक ही सरकार को मान्यता देती है और वह है चीनी लोक गणराज्य, और वह समझती है कि इस गणराज्य के दावे उचित हैं। कुछ भी हो, मुझे पूर्ण आशा है कि ये कठिन समस्याएँ आपसी बातचीत द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझ सकेंगी।

यदि हम चाहते हैं कि संसार में समझदारी का बोलबाला रहे, तो यह स्वीकार करना होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने का और कोई रास्ता नहीं रह गया है। न्यूक्लियर और थरमोन्यूक्लियर शस्त्रास्त्र इस सीमा तक विकसित हो चुके हैं कि कोई भी युद्ध जिसमें इनका उपयोग किया जाएगा संसार के लिए घातक सिद्ध होगा। इस आत्महत्या की नीति से संसार की कोई समस्या नहीं सुलझ सकती और न किसी उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। एक उद्जन बम एक विस्तृत क्षेत्र में न केवल प्रत्येक प्राणी को मार डालता है बल्कि तीव्र विनाशकारी लहरें पैदा करता है, और विनाश लीला का दूर-दूर तक प्रसार कर देता है। ऐसे घातक अस्त्रों से सुरक्षा का कोई उपाय नहीं। कुछ देशों के प्रमुख सैनिकों ने निर्विवाद शब्दों में कहा है कि ऐसा व्यापक युद्ध जिसमें इन अस्त्रों का उपयोग किया जाये एकदम प्रलयंकारी होगा। मुझे आशा है कि इन अस्त्रों की भयानकता को देखते हुए न केवल इनका उत्पादन बन्द हो जाएगा बल्कि मानव समाज यह भी समझ लेगा कि युद्ध किसी भी प्रकार की समस्या को सुलझाने का साधन नहीं है।

अणुशक्ति से जहाँ संसार के विनाश का भय पैदा हो गया है, वहाँ एक नवीन आशा की किरण का भी जन्म हुआ है, बशर्ते कि इसका उपयोग शान्तिपूर्ण कार्यों में किया जाये। समस्त संसार के लोगों के जीवनयापन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अणुशक्ति द्वारा आवश्यक साधन जुटाये जा सकते हैं। अर्धविकसित देशों को उन्नत करने की दिशा में इसका विशेष महत्व है। इसलिए अणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोगों पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने जेनेवा में वैज्ञानिक सम्मेलन का जो आयोजन किया है हमें उसका स्वागत करना चाहिए। यह सम्मेलन न केवल अणुशक्ति के उपयोग की सम्भावनाओं पर ही विचार करेगा, बल्कि जीव-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान और कृषि-विज्ञान की दृष्टियों से भी उस पर विचार करेगा।

शान्तिपूर्ण बातचीत द्वारा एक कठिन समस्या के निपटारे का एक और उदाहरण

भारत में फ्रांसीसी बस्तियों का भारत सरकार को सौंपा जाना है। इन बस्तियों के नागरिकों का हम सहर्ष स्वागत करते हैं। इस समस्या को सुलझाने में फ्रांसीसी सरकार ने जिस नीतिज्ञता का परिचय दिया, उसकी मैं सराहना करना चाहूँगा। मैं आशा करता हूँ कि भारत में पुर्तगाली बस्तियों की समस्या भी इसी प्रकार शान्तिपूर्ण ढंग से जल्द ही सुलझ जाएगी।

देश की आर्थिक स्थिति में बराबर सुधार हुआ है। पंचवर्षीय योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, उनमें से बहुत से पहले तीन वर्षों में ही प्राप्त कर लिये गये हैं। १९५३-५४ में अनाजों का उत्पादन पंचवर्षीय योजना के निर्धारित लक्ष्य से ४४ लाख टन अधिक हुआ। कृषि-उत्पादन के सूचक-अंक जो १९५०-५१ में ९६ थे, १९५३-५४ में बढ़ कर ११४ हो गये। औद्योगिक उत्पादन के सूचक-अंक १९५४ में १४४ तक जा पहुँचे, जबकि १९५३ में वे १३५ ही थे, जो संख्या स्वाधीनता के बाद सबसे ऊँची थी। गत ४ वर्षों से सूचक-अंक औसतन १० प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़े हैं।

उत्पादन में सुधार हो जाने के कारण नियन्त्रण भी उठा दिये गये हैं। अनाजों का अधिक उत्पादन होने से उन क्षेत्रों में जहाँ पैदावार, माँग की अपेक्षा अधिक थी, भाव बहुत अधिक गिरने की प्रवृत्ति पायी गयी। भावों को लाभहीन स्तर तक न गिरने देने के लिए सरकार ने निर्धारित मूल्यों पर अनाज खरीदने का निश्चय किया।

मेरी सरकार ने इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को अपने सक्रिय नियन्त्रण में लेने का निश्चय किया है, विशेषकर इसलिए कि देहाती और पिछड़े हुए क्षेत्रों को साख सम्बन्धी सुविधाएँ अधिक से अधिक दी जा सकें। इण्डियन इण्डस्ट्रीयल क्रेडिट एण्ड इन्वेस्टमेण्ट कार्पोरेशन की स्थापना से, आशा है हमारे गैर-सरकारी उद्योगों के क्षेत्र को बहुत लाभ पहुँचेगा।

सिन्दरी में वैज्ञानिक खाद तैयार करने में काफी प्रगति की जा चुकी है। विगत वर्ष में विशाखापटनम् के हिन्दुस्तान शिपयार्ड ने आठ-आठ हज़ार टन के दो जहाज़ तैयार किये और एक सात हज़ार टन का पोत समुद्र में उतारा। पश्चिम बंगाल में रूपनारायण-पुर की टेलीफोन केबल फैक्टरी में भी उत्पादन आरम्भ हो गया है। तार और डाक विभाग की इस सम्बन्ध में जितनी भी आवश्यकताएँ होंगी, उन्हें इस कारखाने द्वारा पूरी करने की व्यवस्था की गयी है। पिम्परी का पेनिसिलीन कारखाना और दिल्ली का डी० डी० टी० कारखाना भी चालू होने जा रहा है और मलेरिया-निरोधक कार्यक्रम की आवश्यकता पूरी करने के हेतु एक और डी० डी० टी० कारखाना खोलने का भी विचार है।

मेरी सरकार देश के इस्पात और लोहे के उत्पादन में वृद्धि को बहुत महत्व देती है। इस उद्देश्य से दो नये कारखाने खोलने का निश्चय किया जा चुका है। इन कारखानों का मालिक राष्ट्र होगा। एक कारखाना रूरकेला में खोला जाएगा और दूसरा मध्य प्रदेश के भिलाई प्रदेश में स्थापित किया जाएगा। इस दूसरे कारखाने के सम्बन्ध में सोवियत रूस की सरकार से एक प्रारम्भिक करार किया जा चुका है।

उत्पादन में वृद्धि और रोज़गार के विकास की दृष्टि से मेरी सरकार कुटीर और छोटे उद्योगों की उन्नति को भी बहुत महत्वपूर्ण मानती है। इन उद्योगों में आधुनिक कार्य-

प्रणाली का संचार करने के लिए चार विशेष प्रादेशिक संस्थाओं की स्थापना की जा रही है।

हमारी महान् नदी-घाटी योजनाएँ काफी आगे बढ़ चुकी हैं। कई एक नयी योजनाएँ भी बनायी जा रही हैं। इन योजनाओं को कार्यरूप देने में हमें जनता द्वारा जो सहयोग मिल रहा है, उसका मैं खास तौर से जिक्र करना चाहूँगा। इनमें भी कोसी योजना में जो सार्वजनिक सहायता प्राप्त हुई है, वह उल्लेखनीय है।

दो वर्ष से कुछ अधिक समय में ही, अक्तूबर १६५२ में चालू किये गये सामुदायिक योजना तथा राष्ट्रीय विस्तार के कार्यक्रम के अन्तर्गत देश भर की देहाती जनसंख्या का पाँचवाँ हिस्सा आ चुका है। इस समय इस कार्यक्रम से ८८,००० ग्राम लाभ उठा रहे हैं और इससे कृषि, पशु सुधार, सार्वजनिक स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा और सिंचाई के क्षेत्रों में बहुत उन्नति हुई है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक, आशा है, राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त देश आ चुकेगा। इस कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जनता में सहयोग और उत्साह का संचार हुआ है, उनमें एक नवीन जागृति आयी है और वे मिलजुल कर सबके हित के लिए काम करने में विश्वास करने लगे हैं।

पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों में उन्नति तथा सार्वजनिक व्यय में क्रमिक वृद्धि हुई है। अभावग्रस्त क्षेत्रों में सुधार की दिशा में स्थायी कार्य तथा देहातों और शहरों में पानी और बिजली की व्यवस्था को विशेष महत्व दिया गया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के निर्माण का कार्य अभी आरम्भ हुआ है। पहली योजना की अपेक्षा इस योजना के अधिक व्यापक होने की आशा है। विचार है कि इस योजना में भारी उद्योगों की स्थापना, रोजगार के विस्तार और शिक्षा-प्रणाली के पुनर्गठन पर अधिक बल दिया जाएगा।

आन्ध्र राज्य में ऐसी स्थिति पैदा हो जाने से जिसमें संविधान के अनुसार राज्य का प्रशासन-कार्य नहीं चल सकता था, मैंने संविधान के अनुच्छेद ३५६ के अनुसार आवश्यक पग उठाने की उद्घोषणा की। इस राज्य में इस समय चुनाव हो रहे हैं और आशा है यथाशीघ्र साधारण वैधानिक प्रणाली से प्रशासन-कार्य फिर से चालू हो सकेगा।

आपको चतुर्थ संविधान संशोधन विधेयक पर विचार करना होगा। आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए और संविधान में दिये गये आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए यह संशोधन आवश्यक हो गया है।

१६५५-५६ का भारत सरकार का आय और व्यय सम्बन्धी विवरण आपके सामने रखा जाएगा।

लोक सभा के पिछले सत्र के बाद एक अध्यादेश जारी करना आवश्यक हो गया। इस अध्यादेश के बारे में एक विधेयक आपके सामने रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से विधेयक विचारार्थ हैं, जिनमें से कुछ पर प्रवर समितियाँ विचार कर चुकी हैं।

विगत वर्ष में हमने जो उन्नति की है, उससे हमारे देशवासियों में भविष्य के प्रति आशा और आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न हो सकी है। भावी निर्माण का यही

एक आधार है। इस आशा को मूर्तिमान करना और देश को उसके निर्धारित लक्ष्य अर्थात् कल्याणकारी राज्य की स्थापना तक पहुँचाना तथा समाज का समाजवादी ढाँचे के अनुरूप पुनर्गठन करना आप लोगों का कार्य है।

द्वितीय योजना अधिक महत्वाकांक्षी

संसद् के इस नये सत्र के समय एक बार फिर आपका स्वागत करते हुए मुझे खुशी हो रही है। घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों मामलों की दृष्टि से गत वर्ष हमारे लिए सतत प्रयत्न और सफलता का रहा है। भारतीय जनता और संसद् सकारण विगत वर्ष के सतत प्रयत्नों और सफलताओं को सन्तोष तथा आशा के साथ देख सकती हैं। फिर भी, बाहरी जगत में और देश में कुछ ऐसी घटनाएँ अवश्य घटी हैं जिनसे हमारा शंकित हो जाना स्वाभाविक है। इन घटनाओं का हमें साहस, धैर्य तथा पूर्ण प्रयत्न के साथ सामना करना चाहिए। साथ ही ये इस बात की चेतावनी भी देती हैं कि न तो हमें निराश होना चाहिए और न पूर्ण सन्तोष मानकर ही बैठ जाना चाहिए।

विदेशों से हमारे सम्बन्ध बराबर मैत्रीपूर्ण रहे हैं। गत वर्ष बहुत से देशों के साथ हमारे सहयोग और सद्भावना में वृद्धि हुई और इस दिशा में हम जो कुछ भी करने का प्रयास कर रहे हैं, विदेशी राष्ट्र अब उसका अधिक आदर करने लगे हैं। इस वर्ष हमारे देश में बहुत से देशों से सम्मानित अतिथि आये, जिनमें राष्ट्रों के अधिपति, प्रधान मन्त्री और विदेश मन्त्री सम्मिलित हैं। हमने इन महानुभावों का सहर्ष स्वागत किया। हमारे प्रधान मन्त्री ने सरकारी रूप से सोवियत संघ, चेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, आस्ट्रिया, यूगोस्लाविया, इटली और मिस्र की सद्भावना-यात्रा की।

स्वर्गीय नेपाल नरेश महामहिम महाराजाधिराज त्रिभुवन वीर विक्रम शाह की मृत्यु से हमें भारी वेदना हुई। उनके निधन से हमारा देश एक सच्चे मित्र और नेपाल एक प्रबुद्ध तथा साहसी नरेश से वंचित हो गया है। हाल ही में महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रम शाह तथा महिष्मती सम्राज्ञी के इस देश में आगमन से भारत और नेपाल के लोगों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ हो गये हैं। मैं यह कामना करता हूँ कि महामहिम का राज्यकाल उन्नति तथा सम्पन्नता का सूचक हो।

भारत तथा पश्चिम पाकिस्तान के बीच रेलमार्ग खोलने और भारत तथा पाकिस्तान के मध्य पारपत्र सम्बन्धी नियमों को अधिक ढीला करने के लिए पाकिस्तान के साथ

संसद् के समक्ष अभिभाषण, १५ फरवरी, १९५६

हमारी बातचीत सफल रही है। नहर के पानी के सम्बन्ध में झगड़ों का निबटारा करने के के लिए बातचीत अभी भी जारी है। विस्थापित लोगों की चलसम्पत्ति के सम्बन्ध में समझौता हो चुका है।

पूर्व पाकिस्तान से लोगों की निकासी और उनका भारत में आगमन हाल में बहुत बढ़ गया है, जिससे हम चिन्तित हैं। यह एक बहुत बड़ी मानवीय समस्या है जिसका असंख्य लोगों पर दुखद प्रभाव पड़ता है। पश्चिम बंगाल राज्य पर आगे ही अत्यधिक भार है, अब उसे और भी अधिक भार वहन करना पड़ रहा है। मेरी सरकार बराबर आशा करती रहेगी कि पाकिस्तान की सरकार उन कारणों को दूर करने के लिए यथोचित कार्यवाही करेगी जिनके कारण यह निकासी हो रही है।

मेरी सरकार को दुख है कि भारत में पुर्तगाली बस्तियों की समस्या को सुलझाने के लिए हमारे शान्तिपूर्ण सुझावों के बावजूद, पुर्तगाल सरकार की ओर से कोई सन्तोषजनक कार्यवाही नहीं की गयी और वह सरकार दमन, आतंक और उपनिवेशवादी नीति का बराबर आश्रय ले रही है। मेरी सरकार को इस बात का बहुत क्षोभ है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश मन्त्री ने इस सम्बन्ध में बोलते हुए पुर्तगाली बस्तियों को पुर्तगाल के प्रान्त कहा जिससे इस बात का भ्रम होता है मानों वे बस्तियाँ पुर्तगाल देश का एक अंग हों।

बाण्डुंग में एशिया और अफ्रीका के देशों के सम्मेलन का, जिसमें २६ राष्ट्रों ने भाग लिया, स्वागत न केवल एशिया में एक महान् घटना के रूप में किया गया बल्कि उसे संसार की एक महत्वपूर्ण घटना माना गया है। बाण्डुंग में जो ऐतिहासिक महत्व की घोषणा हुई और जिसकी ओर विश्व का काफी ध्यान गया है, उसके अनुसार सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी देशों पर यह दायित्व आता है कि वे सभी समस्याओं को सुलझाने के लिए और विश्व में शान्ति और पारस्परिक सहयोग को बढ़ाने के लिए शान्तिपूर्ण दृष्टिकोण और नीति अपनायें।

मेरी सरकार को आशा है कि अफ्रीका में गोल्डकोस्ट में शीघ्र ही स्वाधीनता और स्वशासन की स्थापना हो सकेगी और वह देश राष्ट्रमण्डल तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में अन्य देशों के साथ बराबर का हिस्सेदार हो सकेगा। पश्चिम अफ्रीका के अन्य भागों में भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ घट रही हैं और मेरी सरकार को आशा है कि उन्नति की इस प्रवृत्ति को समुचित प्रोत्साहन मिलेगा और गोल्डकोस्ट का उदाहरण अफ्रीका के उन भूभागों को भी प्रभावित करेगा जो आजकल औपनिवेशक शासन के अन्तर्गत हैं। हम मलय में भी इसी प्रकार की प्रगति का स्वागत करते हैं।

हम स्वाधीन तथा स्वतन्त्र गणराज्य के रूप में सूडान का स्वागत करते हैं और इस प्रक्रिया में मिस्र तथा ब्रिटेन ने जो महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक योगदान दिया है, उसकी प्रशंसा करते हैं। मेरी सरकार ने सूडान गणराज्य के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं। मिस्र के साथ भी हमने मैत्री की सन्धि की है।

मेरी सरकार ने उन सभी राष्ट्रों के साथ सहानुभूति प्रकट की है जो औपनिवेशिक शासन के चंगुल से निकल कर स्वतन्त्र होने का यत्न कर रहे हैं। उनमें विशेष रूप से ट्यूनीशिया, अल्जीरिया और मोरक्को की जनता सम्मिलित है। मेरी सरकार का यह दृढ़ विश्वास है कि शान्तिपूर्ण बातचीत और आपसी समझौते से ही इन समस्याओं को सफलतापूर्वक और उचित ढंग से सुलझाया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का हाल का अधिवेशन इस बात के लिए महत्वपूर्ण रहा है कि सदस्यता के आधार को अधिक व्यापक करने के सम्बन्ध में जो अड़चनें थीं, वे दूर हो गयीं और इस बार सोलह नये राष्ट्रों को सदस्यता प्रदान की गयी। हमें इस बात की विशेष प्रसन्नता है कि दूसरे देशों के साथ-साथ हमारे निकट पड़ोसी राष्ट्र—नेपाल, श्रीलंका, कम्बोडिया, लाओस, लीबिया और जोर्डन भी इन राष्ट्रों में सम्मिलित हैं। हमें इस बात का बहुत दुख है कि जापान और मंगोलिया संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के लिए अभी भी उम्मीदवार ही हैं। मेरी सरकार इस समस्या को सुलझाने का भरसक प्रयत्न करेगी और वह निकट भविष्य में सूडान के प्रवेश की भी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है।

मेरी सरकार को इस बात का दुख है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा चीन के बीच मतभेदों को दूर करने के लिए गत वर्ष जो प्रयत्न किये गये थे और इस दिशा में जो प्रगति हुई थी, वह आगे नहीं बढ़ सकी। आपसी बातचीत के द्वारा समझौता न होने के जो सम्भाव्य दुष्परिणाम हैं, वे मेरी सरकार के लिए चिन्ता का विषय हैं। शान्तिपूर्ण बातचीत के लिए मेरी सरकार हर सम्भव प्रयत्न करेगी।

इण्डोचीन में अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने, कुछ दुर्घटनाओं के बावजूद, देखरेख और नियन्त्रण के काम में उचित सन्तोषजनक प्रगति की है। जेनेवा में महान् शक्तियों ने तथा इण्डोचीन से सम्बद्ध दूसरे पक्षों ने जिन राजनीतिक निबटारों को स्वीकार किया था, वियतनाम के प्रश्न को लेकर वे अब आपत्ति में हैं। लाओस के सम्बन्ध में भी भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। आयोग द्वारा देखरेख और नियन्त्रण के कार्य पर भी इस समस्या का प्रभाव पड़ा है। मेरी सरकार को आशा है कि सभी सम्बन्धित पक्ष, जेनेवा सम्मेलन के दोनों अध्यक्ष तथा अन्य राष्ट्र इस बात की पूरी कोशिश करेंगे कि न केवल विराम-सन्धि ही बनी रहे, बल्कि वास्तविक राजनीतिक समझौते का मार्ग प्रशस्त हो सके जिससे उन सभी देशों का कल्याण हो और एशिया की स्थिति अधिक स्थायी हो सके और संघर्ष का संकट, जिसकी सीमाएँ सहज ही दृष्टिगोचर नहीं होतीं, टल सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ से चीन का बहिष्कार और उसके विरुद्ध व्यापार सम्बन्धी प्रतिबन्ध सुदूरपूर्व में और साधारणतः एशिया में अस्थायित्व तथा संघर्ष की ओर प्रेरित करते हैं। मेरी सरकार अन्य राष्ट्रों के सहयोग से जो हमसे सहमत हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ में तथा उससे बाहर इस स्थिति में सुधार करने की अधिक से अधिक चेष्टा करेगी जो विश्व-शान्ति के लिए सम्भवतः गम्भीरतम संकट उपस्थित करती है।

सब मिलाकर, गत वर्ष संसार की स्थिति में विभिन्न गतिविधियों तथा सम्मेलनों, विशेष रूप से चार सरकारों के अध्यक्षों के सम्मेलन के फलस्वरूप काफी सुधार हुआ है।

मुझे खेद है कि यह प्रगति जारी नहीं रह सकी और इसमें इधर कुछ न्यूनता आयी है। निश्शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में वास्तव में हम कुछ भी आगे नहीं बढ़ सके हैं और न ही शीत-युद्ध के भय से उत्पन्न तनाव को दूर कर सके हैं। अन्य देशों के साथ हमारे देश के सम्बन्ध बराबर मैत्रीपूर्ण बने रहे, किन्तु विश्वशान्ति की स्थिति में जो बिगाड़ हुआ है उसके कारण संसार के अन्य भू-भागों में भी शान्तिपूर्ण सम्बन्धों और पारस्परिक सहयोग की प्रगति पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

शक्ति के सन्तुलन, पारस्परिक सन्देह और भय पर आधारित सैनिक सन्धियों को नीति से, विशेष रूप से पश्चिमी एशिया में स्थिति बिगड़ी है जिसके कारण अरब राष्ट्र दलों में बँट गये हैं और पश्चिमी एशिया के राष्ट्र शस्त्रास्त्र जुटाने लगे हैं। इसके कारण अपनी सीमाओं के निकट हमें भी चिन्ता हुई है। बग़दाद की सन्धि से भी हमें बहुत अधिक खेद हुआ है, जैसा हमें दक्षिणपूर्व एशिया सुरक्षा संघ से हुआ था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि अब समाप्त होने को है और मेरी सरकार दूसरी पंचवर्षीय योजना तैयार करने में व्यस्त रही है। पहली योजना की सफलता से लोगों में विश्वास की भावना का उदय हुआ है और उसके परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था के विकास की नींव रखी जा चुकी है। कई विषयों में हम पहली योजना के लक्ष्य से आगे बढ़ गये हैं और राष्ट्रीय आय में १८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। औद्योगिक उत्पादन में ४३ प्रतिशत की और कृषि उत्पादन में १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह विशेष सन्तोष की बात है कि अन्न का उत्पादन २० प्रतिशत बढ़ गया है—और यह जबकि विध्वंसकारी बाढ़ ने उत्तर भारत में और आंधी-तूफ़ान ने दक्षिण भारत में बड़ी बरबादी की। इन विपत्तियों के कारण हुई क्षति की पूर्ति में सरकार ने और उससे भी अधिक लोगों ने जो काम किया, मैं उसकी सराहना करता हूँ।

हमारा ध्येय इस देश में समाजवाद के नमूने पर समाज की व्यवस्था करना है और विशेष रूप से उत्पादन को इस प्रकार बढ़ाना है कि देश शीघ्र से शीघ्र समुन्नत हो सके। लोगों के लिए अधिक रोजगार उपलब्ध करने का प्रश्न असाधारण महत्व का है। सार्व-जनिक क्षेत्र के अधिक विस्तार पर, विशेषकर आधारभूत उद्योगों और मशीनों के निर्माण के उद्योग के विकास पर, अधिक जोर दिया गया है। हमने लोहे और इस्पात के तीन बड़े कारखाने और भारी बिजली कलों के तैयार करने वाले कारखाने खोलने का निश्चय किया है। बड़े पैमाने पर देश के खनिज पदार्थों का सर्वेक्षण किया जाएगा जिससे देश में निहित साधनों को उपयोग में लाया जा सके। लोगों को अधिक रोजगार दिलाने और कई प्रकार का उपभोग का सामान पैदा करने की दृष्टि से, उत्पादन की उन विधियों पर अधिक जोर दिया जाएगा जिनमें अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सकें। विशेषकर कुटीर और ग्रामोद्योगों पर अधिक भरोसा किया जाएगा। सामुदायिक योजनाकार्य और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के फलस्वरूप देश के बहुत से देहातों में पहले ही क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके हैं। ये योजनाएँ बराबर जारी रहेंगी और इन्हें अधिक विस्तृत किया जाएगा। आशा है कि द्वितीय योजना की अवधि के अन्त तक इन योजनाओं के अन्तर्गत देश के प्रायः सभी ग्राम आ चुकेंगे।

दूसरी योजना, प्रथम योजना की अपेक्षा अधिक महत्त्वाकांक्षापूर्ण है और उसे कार्य रूप देने के लिए देश के लोगों को पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रयत्न करना होगा। समाजवाद के नमूने पर समाज की स्थापना, राष्ट्रीय आय का समुचित स्तर तक विकास और देश के सभी नागरिकों के लिए समान अवसर—इन सभी आदर्शों को पूरा करने के लिए अभी हमें बहुत कुछ करना है। परन्तु हम प्रगति के पथ को अपना चुके हैं। हमारी उन्नति के आधारभूत मापदण्ड सदा समाज का हित और असमानता का क्रमिक निराकरण होंगे। हम अपनी यात्रा की एक मंजिल तय कर चुके हैं और अब दूसरी भाग्य-निर्णायक मंजिल की ओर और बढ़ने वाले हैं। जो सफलता हमने विगत वर्षों में प्राप्त की है, उससे हमें सन्तोष होता है, आत्म-विश्वास की भावना प्राप्त होती है और भविष्य के लिए हमारे हृदयों में आशा का संचार होता है। किन्तु, उन्नति करने और विश्व में शान्ति की स्थापना और सहयोग के लिए अपने कर्तव्य का पालन करने के हेतु हमारी क्षमता का आधार हमारी आर्थिक दृढ़ता और एकता होगी। राष्ट्रपिता द्वारा निर्धारित मौलिक सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रति हमारी आस्था तथा राष्ट्रीय भावना ही हमारी सफलता की आधारशिला बन सकती है। उस अदम्य राष्ट्रीय एकता और सार्वजनिक सेवा की भावना के बिना, जिसके फलस्वरूप हम स्वाधीनता प्राप्त कर पाये हैं, हम न उन्नति कर सकते हैं और न ही विश्व के महान् कार्यों में योगदान दे सकते हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य हैं—२ करोड़ १० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि की सिंचाई, १ करोड़ टन अधिक खाद्यान्न का उत्पादन ३४ लाख किलोवाट अतिरिक्त बिजली का उत्पादन, २ करोड़ ३० लाख टन कोयले का अधिक उत्पादन जिससे १९६० तक उत्पादन कुल ६ करोड़ टन हो सके, इस्पात में ३३ लाख टन की वृद्धि, सीमेण्ट में ५२ लाख टन की वृद्धि और कृत्रिम खाद में १७ लाख टन की वृद्धि। आशा की जाती है कि नयी योजनाओं के फलस्वरूप एक करोड़ आदमियों को उद्योग और कृषि के नये काम मिलेंगे।

भारत के कुछ भागों में घटी हाल की घटनाओं से मुझे भारी खेद हुआ है, जैसा कि आप सबको भी हुआ होगा। अपनी भाषा के प्रति उचित प्रेम के अतिरेक में हममें से कुछ यह भूल जाते हैं कि यह महान् देश हम सबकी मातृभूमि है और सब के लिए एक जैसी विरासत है। राज्यों का पुनर्गठन एक महत्वपूर्ण विषय है और इसके लिए सद्बुद्धि और सहिष्णुता अपेक्षित है, किन्तु भारत और भारत के भविष्य के प्रश्न की तुलना में राज्यों की सीमा-निर्धारण का यह मामला नगण्य है। यह तथ्य सर्वोपरि है कि हम अहिंसा, सहिष्णुता और राष्ट्र की महानता सूचक मौलिक दृढ़ता के बिना अपने देश को ऊँचा नहीं उठा सकते। हाल के वर्षों में हमने अपने देशवासियों द्वारा प्राप्त की गयी अपूर्व सफलताओं को देखा है। हमने कुछ पुरानी कमजोरियों को अपने मार्ग में आते और पृथकता तथा असहिष्णुता की भावनाओं को उभरते हुए भी देखा है। अतीत में अनेकों बार हमें संकटों का सामना करना पड़ा है और हमने उन पर विजय पायी है। अब फिर हमारे राष्ट्र और लोगों की परीक्षा का समय आया है। अपने प्राचीन आदर्शों और सिद्धान्तों पर चलकर ही हम सफल हो

सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है आप इन बातों पर व्यापक सहिष्णुता की भावना से विचार करेंगे और इस महान् देश के हित को जिसकी हम जी-जान से सेवा करना चाहते हैं, सदा सामने रखेंगे। मुझे यह भी आशा है कि यह संसद् जो भी निर्णय करेगी, सब लोग उसे स्वेच्छा से स्वीकार करेंगे।

जैसा आपको विदित है, भारत के पुराने इम्पीरियल बैंक को राज्य बैंक बना दिया गया है और जीवन-बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण का निश्चय मेरी सरकार ने बहुत सोच-विचार के बाद किया है। प्रारम्भिक कार्यवाही के रूप में और पॉलिसी-होलडरों के हितों के रक्षार्थ, गत मास एक अध्यादेश जारी किया गया था जिसके अनुसार इस व्यवसाय की व्यवस्था करने का अधिकार सरकार को दिया गया है। उस अध्यादेश को अधिनियम में परिवर्तित करने के लिए शीघ्र ही एक विधेयक संसद् के समक्ष रखा जाएगा। निस्सन्देह यह पग जनता के और बीमा व्यवसाय के हित में सिद्ध होगा और यह हमारे समाजवादी आदर्श के अनुरूप होगा।

मेरी सरकार ग्राम-अर्थ-व्यवस्था और कृषि तथा छोटे-छोटे उद्योगों में सहयोग की उन्नति को बहुत महत्व देती है। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन, उन्हें बनाने और उनको जमा रखने तथा बाजार में लाने के लिए सहकारी समितियों द्वारा उनको संगठित करने का विधेयक संसद् के समक्ष उपस्थित किया जाएगा।

राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में मेरी सरकार एक विधेयक पेश करेगी। संसद् के समक्ष कई विधेयक हैं जिनमें से कुछ पर प्रवर समितियाँ विचार कर चुकी हैं। पिछड़े वर्ग आयोग की सिफारिशों के प्रकाश में और सरकार द्वारा उन पर किये गये निर्णयों के अनुसार एक विधान अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों की सूची में संशोधन करने के हेतु होगा। कर-जाँच-आयोग की सिफारिश के अनुसार अन्तर्राज्यीय व्यापार पर और आवश्यक वस्तुओं पर कर लगाने के सम्बन्ध में भी विधान सम्बन्धी प्रस्ताव संसद् के समक्ष रखे जाएँगे।

तीन अध्यादेश, जो संसद् के गत सत्र के बाद जारी किये गये हैं, संसद् के समक्ष रखे जाएँगे। वे इस प्रकार हैं :

१. लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश, १९५५,

२. जीवन बीमा (संकटकालीन व्यवस्था) अध्यादेश, १९५६, और

३. बिक्री-कर कानून मान्यता अध्यादेश, १९५६

१९५६-५७ के वित्तीय वर्ष का भारत सरकार का आय-व्यय सम्बन्धी विवरण भी आपके सामने रखा जाएगा।

इस वर्ष हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण समारोह मनाने जा रहे हैं। आज से २,५०० वर्ष पूर्व भारत की एक महानतम विभूति महात्मा बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था, जिनकी अमर स्मृति और अक्षय सन्देश आज भी विद्यमान हैं। पूर्ण सत्य और शक्ति से ओतप्रोत वह जीवित सन्देश अभी भी हमारे साथ है। विश्व के इतिहास में उस सन्देश की आवश्यकता इतनी किसी भी समय नहीं रही जितनी आज है, जबकि अणु और उद्जन बमों का भयावह संकट हमारे सामने है। मेरी कामना है कि महात्मा बुद्ध का सहिष्णुता तथा दया का वह सन्देश आपके सभी कार्यों में आपके साथ रहे।

हमारा कर्त्तव्य

पिछले स्वतन्त्रता दिवस समारोह से आज एक वर्ष और व्यतीत हो गया है। इन दिनों में हमारा देश संविधान के अन्तर्कालीन उपबन्धों को पार कर गया है। साधारण निर्वाचनों के हो जाने से तथा राज्यों और केन्द्र में नये मन्त्रिमण्डलों के बन जाने से संविधान पूरा-पूरा अमल में आ गया है। साधारण निर्वाचन तो लोकतन्त्र का अभूतपूर्व पैमाने पर प्रयोग था और जिन लोगों पर उसका भार था और जिन करोड़ नर-नारियों ने उसमें भाग लिया, उन्होंने इसमें अपना जैसा व्यवहार रखा उससे इस बात की आशा बंधती है कि हमारा नवजात लोकतन्त्र ठीक दिशा में जा रहा है और समय पाकर अपने अस्तित्व को सार्थक सिद्ध कर सकेगा। हमारे विधानमण्डलों में न केवल वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुए प्रजा के और भी अधिक प्रतिनिधि आये हैं वरन् पर्याप्त संख्या में वहाँ नये लोग भी आये हैं जो सभी अपनी पूरी योग्यता से देश की सेवा करने की नयी आशाओं और आकांक्षाओं से प्रेरित हैं।

हमारे यहाँ नये मन्त्रिमण्डल अपने सामने की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिए अपना समय और शक्ति लगाने की प्रतिज्ञा करके देश भर में उत्तरदायित्व संभाल रहे हैं। इन सफलताओं के लिए हम औचित्यपूर्वक अपने को बधाई दे सकते हैं, तो भी यह समय सन्तोष से बैठ जाने का नहीं है। ढाँचा तो बन गया है पर अभी उसमें माँसपेशियाँ बैठानी हैं और यह कार्य तो तभी पूरा होगा जब हम गरीबी, रोग और अज्ञान की समस्या को सुलझा चुकेंगे। समय से पहले हमें न तो हर्षोन्मत्त ही होना चाहिए और न इन समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें जिन अनेक और वास्तविक कठिनाइयों को जीतना पड़ेगा उनसे भयभीत और निराश होना चाहिए। हमें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साधारण निर्वाचनों के समान ही बड़े और अभूतपूर्व पैमाने पर रचनात्मक प्रयास करना है। यदि इन समस्याओं को सुलझाने के लिए हम में एक राष्ट्र के रूप में दृढ़ निश्चय और लगन हो तो मुझे इस बारे में कोई भी सन्देह नहीं है कि इन समस्याओं के सुलझाने की हममें पूरी क्षमता है।

उदाहरणार्थ आप खाद्य-समस्या को ही लें। भूख की समस्या की तह में यही

स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में १४ अगस्त, १९५२ की रात्रि को प्रसारित सन्देश

बात है कि देश में पर्याप्त अन्न नहीं होता। यद्यपि यह एक विरोधाभास तो है पर है सत्य कि जो देश कृषिप्रधान देश होने का दावा करता है, और वास्तव में बहुत करके कृषिप्रधान देश है भी, और जो अनगिनत पीढ़ियों से खेती-बाड़ी की कला से परिचित है तथा उसे सफलतापूर्वक करता रहा है, जिसकी भूमि उर्वरा है, जिसकी भूमि की सतह के नीचे पर्याप्त जल का भण्डार है तथा जहाँ हर प्रकार के अन्न और फल, जड़ी-बूटी और साग-सब्जी के पैदा होने और बढ़ने के लिए अनुकूल जलवायु है, उस देश में अन्न की कमी है। प्रकृति ने अपना भण्डार दिल खोल कर हमें दिया है, किन्तु हम उसकी इस अपार देन अथवा अपनी सामर्थ्य का भी ठीक रूप से उपयोग नहीं कर रहे हैं। जिन महान् और भीमकाय बहुमुखी नदी योजनाओं को हाथ में लिया जा चुका है या जो विचाराधीन हैं तथा जिनके पूरे और फलदायी होने में कुछ समय लगेगा, उनकी बात न भी सोचें तो भी मेरा मत है कि हमारे लोग खेतीबाड़ी का थोड़े-अधिक ध्यान, थोड़े-अधिक परिश्रम और थोड़े-अधिक ज्ञान से संगठन करके इस कमी को पूरा कर सकते हैं। सर्वोत्तम लाभ के लिए आवश्यक यह है कि अन्न-उत्पादन में लगी हुई सरकार और जनता, दोनों ही में पूरी-पूरी सहानुभूति और सहयोग हो। हमारी यह सामर्थ्य नहीं है कि हम वर्ष-प्रतिवर्ष सैकड़ों-करोड़ों रुपये के मूल्य का अन्न आयात कर सकें। हरेक व्यक्ति को इस बात का ध्यान रखना चाहिए और उसका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि अन्न का जो भी दाना वह बचा सकता है उसे बचाये, अन्न-उत्पादन की वृद्धि में वह जो कुछ सहयोग दे सकता है, दे और उसके उचित एवं न्यायपूर्ण वितरण में सहायता करे। हमें चाहिए कि हम आलस्य और सुस्ती को छोड़ दें और अपना समय तथा शक्ति उत्पादक कार्य में लगायें। जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की अन्य वस्तुओं के बारे में भी यही बात लागू है।

जीवन की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की योग्यता प्रदान करने के लिए हमें इस बात की आवश्यकता है कि हमारे सब लोग चिन्ता से मुक्त हों और हमारे लोगों के विभिन्न वर्गों में तथा अन्य देशों और विशेषतया हमारे निकटतम पड़ोसी देशों से अच्छे सम्बन्ध हों। हमारे यहाँ विभिन्न धर्मों के मानने वाले, विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले तथा विभिन्न रीति-रिवाज पर चलने वाले लोग हैं। आवश्यकता इस बात की है कि परस्पर पूरी सहानुभूति और सहिष्णुता हो और प्रत्येक व्यक्ति पूरा स्वतन्त्र हो जिससे वह अपने निजी ढंग से जीवन व्यतीत कर सके। दूसरों के इसी प्रकार के अधिकारों में हस्तक्षेप किये बिना प्रत्येक व्यक्ति को अपने चरम विकास के लिए पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जब हम अपने राज्य को धर्मनिरपेक्ष राज्य कहते हैं तो हम इन्हीं बातों को तो एक शब्द में व्यक्त करते हैं और आज यह स्पष्ट है कि न केवल हर प्रकार की प्रगति वरन् हमारे कोरे अस्तित्व के बनाये रखने की यह पहली शर्त है कि पारस्परिक सहानुभूति के आधार पर शान्ति बनी रहे। इसलिए मैं इस बात का आग्रह करता हूँ कि हम सब स्वयं ऐसे जीवित रहना और दूसरों को ऐसे जीवित रहने देना सीखें जिसमें कि कोई किसी को दबाना न चाहता हो, कोई किसी का शोषण करने का प्रयास न

करता हो और कोई किसी दूसरे का अपमान न करता हो। यह हम केवल उस अहिंसा के सहारे ही कर पाएँगे जो प्राचीनकाल के ऋषियों के समान ही राष्ट्रपिता ने हमें सिखायी थी।

असन्तोष और फूट, शंका और द्वेष से भरे संसार में शान्ति बनाये रखने के लिए हमें अपना विनम्र कर्त्तव्य करना है। हमें इसके अतिरिक्त और कोई महत्वाकांक्षा नहीं है कि हम अपनी जनता की और दूसरों की भी सेवा कर सकें, चाहे फिर हमारी सामर्थ्य कितनी ही सीमित क्यों न हो और सेवाएँ कितनी ही मामूली क्यों न हों। हमने एक नवीन और अद्भुत रीति से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की है। हमारे साधन उतने ही सच्चे और उदात्त रहे हैं जितने कि हमारे ध्येय। अतः हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति यह कर्त्तव्य है कि हम केवल मुख से ही नहीं वरन् अपने कार्यों से उन उच्च आदर्शों के प्रति अपनी निष्ठा की घोषणा कर दें जिनसे कि हम अपने स्वतन्त्रता आन्दोलन के युग में अनुप्राणित हुए थे। चाहे हमारे हाथ क्यों न काँपे और हमारे पैर क्यों न लड़खड़ायें, हमारा धर्म यह है कि हम अपनी दृष्टि को धुँधली न होने दें और न सही रास्ते पर चलने की अपनी लगन को कमज़ोर होने दें। आज जो वर्ष आरम्भ हो रहा है उसके लिए हमें यही व्रत ले लेना चाहिए।

किसी भी राष्ट्र की समुन्नति उस समय तक नहीं हो सकती और कोई भी जाति ऊपर उठने की आशा नहीं कर सकती जब तक कि उसके व्यक्तियों की आचार-विचार सम्बन्धी और आध्यात्मिक आदर्शों में गहरी श्रद्धा न हो। जो राष्ट्र लम्बी दासता और दलितावस्था से मुक्त होकर उठने का प्रयास कर रहा हो, उसके लिए तो उनकी और भी कहीं अधिक आवश्यकता है। अतः महात्मा गान्धी के कार्य का यह अनिवार्य और आवश्यक अंग था कि राष्ट्रीय अथवा वैयक्तिक जीवन के कार्यक्रम को वे उस बात पर आधृत करें जिसे कि वह व्यापकतम दृष्टि से सत्य की संज्ञा देते थे। आज जब हम अपने भाग्य के निर्माता हो गये हैं तो हमें इस आदर्श के सम्बन्ध में कोई कमी नहीं करनी है। हम में से हरेक को चाहिए कि वह अपने जीवन और कार्यों को जाँचे और यह देखे कि अपने दैनिक व्यवहार में वह समाज में सामान्यतया मान्य चारित्रिक स्तर पर कहाँ तक रहा है। यदि हमने कमियों और कमज़ोरियों को दूर कर दिया तो चाहे फिर हम ...च्च स्तर तक न भी पहुँच पायें जिसे महात्मा जी अपना ध्येय मानते थे तो भी हमने ...श की अच्छी सेवा कर दी होगी। यदि हम इतना ही कर लें तो जिन दोषों से हम आज पीड़ित हैं और जिन शिकायतों को हम निरन्तर सुनते हैं उनमें से अनेक अतीत की बात हो जाएँगी। हम में से हरेक को यह बात समझ और पहचान लेनी चाहिए कि व्यक्तियों से मिलकर ही राष्ट्र बनता है और राष्ट्र भी वैसा ही हो सकता है जैसे कि उसके व्यक्ति हों। राष्ट्रीय और वैयक्तिक, आध्यात्मिक और साम्पत्तिक हमारी सभी प्रकार की समस्याओं को हमारे लिए सुलझाने की सामर्थ्य सरकार में ही है। यह दयनीय मान्यता सरकार की शक्ति और सामर्थ्य के गलत अन्दाज़ और जो कुछ जनता कर सकती है और जो उसे करना है उसके कम अनुमान पर ही ठहरी हुई है।

इसका स्थान तो अब इस सबल भावना और इस अविकल विश्वास को ले लेना चाहिए कि यह हमारा ही काम है और एक राष्ट्र के नाते हमें ही यह करना है कि हम अपनी सब कठिनाइयों को जीतें और हम इस काम को पूरा करेंगे भी। इसके लिए हमें एक ऐसे चरित्र की आवश्यकता है जो आसानी से उन प्रलोभनों से पराजित न हो जो हमें घेरे हुए हैं बल्कि जो त्याग करने के लिए तत्पर रहे, जो अपार कठिनाइयों के बावजूद सचाई पर दृढ़ रहे और जो हमें यह सामर्थ्य प्रदान करे कि हम दूसरे लोगों के हृदय में पैठ सकें और उनके दुख और दर्द को अपना बना सकें, जो सर्वदा लेने के बजाय देने के लिए तत्पर रहे। ऐसे चरित्रशील व्यक्तियों वाला राष्ट्र स्वयमेव सुखी और सम्पन्न होगा और दूसरों को भी सुखी और सम्पन्न करेगा। हमें ऐसा ही राष्ट्र बनने का प्रयास करना चाहिए और जो स्वतन्त्रता हमने प्राप्त की है, उसे अपने और सबके लिए वरदान बना लेना चाहिए।

भारत का नव-निर्माण

अपने गणराज्य के इस तृतीय वार्षिकोत्सव की पूर्व सन्ध्या को आप सबको मेरा हार्दिक अभिनन्दन और सद्कामनाएँ हैं।

आज यह स्मरण कर लेना उचित ही है कि हमारी स्वतन्त्रता के प्रभात काल में ही हमारे सामने ऐसी समस्याएँ आ गयी थीं, जिन्हें हल करने के लिए हमें अपनी सब शक्तियों को लगाना आवश्यक हो गया था। हमने केवल उसी परिस्थिति से ही अपना बचाव नहीं कर लिया है जो अनेकों को इतिहास का अनिवार्य विधान प्रतीत होती थी वरन् इस काल में हमने राष्ट्रीय लोकतन्त्रात्मक और शान्तिप्रिय राज्य की संस्थाओं और उपकरणों का भी निर्माण कर लिया है। यदि हम आज भूतकाल की ओर देखते हैं तो हमें यह दिखायी पड़ता है कि हमने इस कार्य को किस प्रकार मंज़िल दर मंज़िल पूरा किया है। सर्वप्रथम तो हमें उन शक्तियों को नाकाम करने में लगना पड़ा जिनके कारण देश छोटे-छोटे राजनीतिक टुकड़ों में बँट सकता था और सामाजिक अशान्ति फैल सकती थी। आपको यह बात भली-भाँति मालूम है कि हमारे स्वर्गीय नेता सरदार पटेल ने इस कार्य को हमारी स्वतन्त्रता के पहले दो वर्षों में ही देशी रियासतों को मिलाकर किस प्रकार सफलता से पूरा किया। साथ ही साथ उन्हीं दिनों हमने उस कमी को भी पूरा कर दिया जो प्रशासन, सेना तथा राज्य-व्यवस्था के अन्य विभागों में पैदा हो गयी थी।

गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में सन्देश, २५ जनवरी, १९५३

इस प्रकार अपनी यात्रा की पहली मंजिल हमने उन समस्याओं को हल करने में पूरी की जो एक विदेशी सत्ता को राष्ट्रीय सत्ता में परिवर्तित करने में निहित होती हैं। अपनी यात्रा की इसके बाद की मंजिल में हमने लोकतन्त्र की मूलभूत संस्थाओं का निर्माण किया। आज यह बात एक ऐतिहासिक तथ्य हो चुकी है कि संविधान सभा ने हमारे देश और जनता को ऐसे सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राज्य में गठित कर दिया जिसमें राजनीतिक सत्ता, आर्थिक अवसर और सांस्कृतिक निधि में प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग को बिना किसी प्रकार के विभेद के समान अंश प्राप्त है। हमारे देश में जिस शान्तिपूर्ण रीति से संविधान अंगीकृत कर लिया गया उसके कारण हमको इस घटना के महान् और ऐतिहासिक गौरव को भूल न जाना चाहिए। मानव जाति और राष्ट्रों के इतिहास में कठिनता से ही कहीं ऐसा उदाहरण मिल सकेगा जहाँ राज्य की सत्ता और आर्थिक तथा सांस्कृतिक अवसर किसी लम्बे संघर्ष, कटुता और रक्तपात के बिना बल्कि इच्छापूर्वक प्रसन्नता के साथ सब व्यक्तियों, वर्गों, सम्प्रदायों और नर-नारियों को समान रूप से प्राप्त करा दिये गये हों, जिस प्रकार कि हमारे देश में करा दिये गये ह। हमारी संविधान सभा ने ऐसे एक सारे उन्मादक इतिहास को राष्ट्रीय जीवन के अत्यन्त छोटे काल में शान्ति के साथ पूरा कर दिया।

हमारी यात्रा की तीसरी मंजिल तब आरम्भ हुई जब हमने संविधान के अधीन प्रथम सामान्य निर्वाचन किये। पिछले वर्ष इस समय आप भारत के लोग उस कार्यक्रम को छाँट लेने में लगे हुए थे जिसे कि आप चाहते थे कि आपकी सरकार अपनाये और उन लोगों का चुनाव कर रहे थे जिन्हें आपकी पसन्द का कार्यक्रम कार्यान्वित करना था। जैसा कि मैं आज से पहले भी कह चुका हूँ, यह निर्वाचन राजनीतिक बुद्धिमत्ता, प्रशासनिक योग्यता और लोकतन्त्रात्मक प्रणालियों के प्रति हमारी लगन की एक प्रकार से कसौटी थे। वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचकों की संख्या की बहुलता तथा निर्वाचनों का सम्पादन करने के लिए आवश्यक संगठन के विस्तार के कारण यह कार्य बहुत बड़ा था और लोकतन्त्रात्मक निर्वाचनों के इतिहास में अभूतपूर्व तो अवश्य ही था। निर्वाचन सम्बन्धी प्रचारों में संयम, निर्वाचकों की राजनीतिक बुद्धिमत्ता तथा सर्वोपरि अपनी इच्छानुकूल मतदान की पूर्ण स्वतन्त्रता की आवश्यकता थी और यह सब हमें पर्याप्त मात्रा में मिले भी। अतः अत्यन्त विनम्रता के साथ मैं यह कह सकता हूँ कि हम इस परीक्षा में भी पूरी तरह सफल हुए हैं।

इसके अतिरिक्त अपने देश की कृषि-व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी हेर-फेर करने के लिए हमने आवश्यक कानूनी आधार और साधन सफलतापूर्वक तैयार कर लिये हैं। देश के लगभग सभी भागों में जमीन्दारी और जागीरदारी व्यवस्था कानूनन या तो समाप्त की जा चुकी है या की जा रही है। विभिन्न राज्य सरकारें जमीन्दारियों को अपने हाथ में लेने के लिए कदम उठाने में लगी हुई हैं और यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में भारत सामन्तशाही के अवशिष्ट चिन्हों से सर्वथा मुक्त हो जाएगा।

किन्तु यह कृषिक क्रान्ति तब तक पूर्णतया फलवती नहीं हो सकती जब तक कि

आप हमारे किसान भाइयों को आधुनिक विज्ञान और विशेषतया खेती और स्वास्थ्य सम्बन्धी विज्ञान के लाभ भी प्राप्त न करायें। अतः आप तक विज्ञान और शिल्प की नयी-नयी बातें पहुँचाने के लिए महात्मा गान्धी की वर्षगाँठ के अवसर पर ५५ सामूहिक ग्राम्य योजनाएँ आरम्भ की गयी हैं। हर नयी बात को जन-मन में घर करने के लिए समय लगता है। मुझे यह आशा है कि हमारे लोग इन योजनाओं के महत्व को समझने लगे हैं और उन लोगों से जिस सहायता और सहयोग की आशा की जाती है वह उसको पूर्णतया देने लगेंगे। मुझे यह पूरा विश्वास है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होगा और जैसे-जैसे हमारे ग्रामीण कार्यकर्ता अनुभव संग्रह करते जाएँगे, वैसे-वैसे वे हमारे ग्रामीण भाइयों की अधिकाधिक सफलता के साथ सेवा करने के लिए समर्थ होते जाएँगे। इस प्रकार हमारे ग्राम्य प्रदेशों में चुपचाप एक शान्त क्रान्ति हो रही है और मुझे आशा है कि पूरी होने तक यह हमारे लोगों के जीवन में इतना वरदायी परिवर्तन कर चुकी होगी जितना कि संसार के किसी भी अन्य भाग में किसी युग में किसी अन्य क्रान्ति ने किया है और यह सफलता ऐसी योजनाओं को देश भर में फैलाने के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी।

यातायात, उद्योग और सिंचाई सम्बन्धी हमारी व्यवस्था के विस्तार और सुधार में पिछले वर्ष में मूक किन्तु निरन्तर प्रगति होती रही है। कच्छ के समान दुर्गम प्रदेशों को भी हमारे देश की मुख्य रेल-व्यवस्था से जोड़ दिया गया है। विदेशों से आयात करने तथा स्वयं यहाँ अपने देश में रेल के इंजिनों और डिब्बों के बनने से इंजिनों और डिब्बों सम्बन्धी स्थिति में भी लगातार सुधार होता रहा है। कम हैसियत वाले यात्रियों के लिए भी रेलों में अधिक सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया है। इसी प्रकार हमारा औद्योगिक उत्पादन भी बढ़ता रहा है। चीनी, कपड़ा, सीमेण्ट और इस्पात के उत्पादनों में वृद्धि हुई है और उपयोग के लिए लोगों को इन्हें अधिक मात्रा में देने में भी हम सफल हुए हैं। पटसन और रूई के उत्पादन में भी आत्मनिर्भर होने के सम्बन्ध में हमने पर्याप्त प्रगति कर ली है।

हम पर प्रकृति की कोपदृष्टि रही है और हमारे देश के महत्वपूर्ण भागों में कई वर्ष से सूखा पड़ता रहा है और पानी की कमी के कारण वहाँ खेती सूख गयी है। इन भागों में वर्षा न होने के कारण पाताल-जल की सतह भी नीची हो गयी है और वहाँ लोगों को पीने के पानी के मिलने में भी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों में बाढ़ और झंझा से भी फसलों और सम्पत्ति को भारी हानि हुई है। इन सब प्राकृतिक विपदाओं के कारण हमें ऐसे दामों पर विदेशों से अन्न मँगाना पड़ा है जो सर्वथा हमारे मनोनुकूल न थे। किन्तु सब बातों को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते हैं कि विचाराधीन पिछले वर्ष में इस सम्बन्ध में स्थिति बहुत कुछ सुधर गयी और हम अनेक स्थानों में कुछ अन्न-नियन्त्रण हटाने में भी समर्थ हो सके। इससे सर्वसाधारण को बड़ा सन्तोष हुआ है। हमें यह भी आशा है कि इस वर्ष अन्न का आयात पिछले वर्ष से कहीं कम मात्रा में होगा।

शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या को सुलझाने में भी हमने पर्याप्त प्रगति की है। पश्चिम पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के सम्पत्ति-सम्बन्धी दावों की जाँच लगभग अब समाप्त हो रही है तथा निष्क्रान्त सम्पत्ति की समस्या को सुलझाने के लिए हम पाकिस्तान से बातचीत करते रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस दिशा में हमारे सब प्रयास अब तक असफल रहे हैं। पूर्व पाकिस्तान से आये शरणार्थियों की समस्या को सुलझाने के बारे में हम इतनी मात्रा में प्रगति का दावा नहीं कर सकते। पाकिस्तान के हठ पर पाकिस्तान और भारत के बीच पारपत्र प्रणाली आरम्भ किये जाने की आशंका से पूर्व पाकिस्तान से आने वाले विस्थापितों की संख्या बढ़ गयी और इस कारण यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। किन्तु हमने इस बात का दृढ़ निश्चय कर रखा है कि हम उनकी सहायता और पुनर्वास के लिए कोई बात उठा न रखेंगे।

अपने हितों और अपनी परम्पराओं के अनुकूल ही हमने पिछले वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए अपने प्रयास जारी रखे। कोरिया के प्रश्न को सुलझाने के लिए हमने बीच का रास्ता निकालने का प्रयास किया किन्तु दुर्भाग्यवश अब तक हमारा यह प्रयास सफल नहीं हो पाया है। हमारा यह विश्वास है कि संसार अपने आर्थिक और सांस्कृतिक विश्वास की ऐसी मंजिल पर पहुँच गया है जहाँ राष्ट्रों के पारस्परिक मतभेद शान्तिपूर्ण बातचीत के द्वारा सुलझाये जा सकते हैं और सुलझाये जाने चाहिएँ। युद्ध सबके लिए घातक सिद्ध होगा, इसलिए इस दिशा में हमारे विनम्र प्रयास अब भी जारी हैं। शान्ति तथा अन्य जातियों के प्रति सद्भावना बनाये रखने के लिए अपनी आस्था के कारण हमने किसी राष्ट्र अथवा राष्ट्रपुंज से किसी प्रकार का सैनिक गठबन्धन नहीं किया है। सम्भवतः ऐसे किसी कदम को हम पसन्द नहीं कर सकते जिसका प्रभाव यह हो कि युद्ध का भय इस उपमहाद्वीप के और निकट आ जाये।

वास्तव में हमारे लिए यह खेद की बात है कि पाकिस्तान से हमारे मतभेद अभी तक तय नहीं हो पाये हैं और कश्मीर का मामला अभी भी खटाई में पड़ा हुआ है।

इस प्रकार जो वर्ष अभी व्यतीत हुआ है, उसमें हमने अपने राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों में निरन्तर प्रगति की है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि बँटवारे के बाद आरम्भ होने वाला युग पिछले वर्ष समाप्त हो गया है और हम आज राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण और पुनर्जीवन के नये युग की देहरी पर खड़े हुए हैं। उस भविष्य का प्रतीक हमारी पंचवर्षीय योजना है जिसे आयोग ने अन्तिम रूप दे दिया है और जिसे हमारी संसद् ने स्वीकार कर लिया है। निकट भूत से हमारे जीवन में जो आर्थिक कमी हमें विरासत में मिली है उसको दूर करने के लिए हमारे प्राकृतिक और मानवीय शक्ति-साधनों के सर्वोत्तम प्रयोग का यह एक साहसपूर्ण प्रयास है। मुझे विश्वास है कि आप में से हरेक इस बात की सर्वोपरि आवश्यकता अनुभव करता है कि हमारी राष्ट्रीय आय में अविलम्ब वृद्धि हो। यदि हम अपने सिद्धान्त और प्रदेशजन्य मतभेदों को भुलाकर पूरे मन से और पूरे उत्साह से इस महान् कार्य में लग जायें तो यह बात पूरी की जा सकती है। इसको पूरा करने में हमें अपने सब साधन और शक्ति लगा देनी पड़ेगी और हमारे एक क्षण का समय भी बेकार

नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह सम्भव है कि आप में कुछ ऐसे लोग हैं जिन्हें योजना द्वारा निर्धारित उत्पादन की मात्रा से सन्तोष न हो अथवा जिनका प्रस्तावित तरीकों से आन्तरिक मतभेद हो। किसी नीति अथवा योजना के दृष्टिकोण तथा उद्देश्यों के सम्बन्ध में ऐसे मतभेद लोकतन्त्रात्मक समाज में तो सर्वदा होंगे ही, किन्तु इन मतभेदों का न तो यह अर्थ है और न होना ही चाहिए कि हम में से कोई उस नीति अथवा योजना को कार्यान्वित करने में अपना सहयोग प्रदान न करे जिसे जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बड़े भारी बहुमत ने स्वीकार कर लिया है। हमारा भविष्य और भाग्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कहाँ तक कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करते हैं। हमें उस आवाहन को पूरा करना है जो हमसे आज किया जा रहा है। भारत तथा मानव जाति की सेवा के लिए तन-मन-धन लगा देने का व्रत लेकर हम यह कर सकते हैं और हमें इसे करना चाहिए। मुझे यह आशा है कि इस महान् कार्य को पूरा करने के लिए आप अपने को पुनः समर्पित करेंगे और इस प्रकार अपने जीवन और भाग्य को सार्थक कर लेंगे। परमात्मा आप सबको सुखी करे।

राष्ट्र-निर्माण में जनता का सहयोग

हमारा गणराज्य आज पाँचवें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। गत चार वर्षों से आज के दिन को हम हँसी-खुशी मनाते हैं, सार्वजनिक सभाएँ करते हैं और अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार देश सेवा का व्रत ग्रहण करते हैं। मेरे विचार में गणराज्य दिवस जैसा समारोह इस बात के लिए भी उपयुक्त अवसर है कि हम अतीत पर दृष्टिपात करें और यह समझने का यत्न करें कि इस काल में हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कितनी सफलता मिली है और जन-साधारण के जीवन को स्वाधीनता रूपी वरदान ने कहाँ तक आलोकित किया है। इस प्रकार का लेखा-जोखा किसी की आलोचना करने की भावना से नहीं बल्कि निजी स्थिति को ठीक-ठीक समझने के लिए होना चाहिए क्योंकि भविष्य में जो भी हमारा लक्ष्य या ध्येय होगा, उसका इस वस्तुस्थिति के ज्ञान से गहरा सम्बन्ध है।

सबसे पहले हम खाद्य स्थिति पर विचार करते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि देश की खाद्य स्थिति में इस वर्ष बहुत सुधार हुआ है। अधिक अन्न उपजाने के लिए देश के प्रत्येक भाग में जिन योजनाओं पर वर्षों से काम हो रहा है और प्रायः प्रत्येक राज्य

गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में सन्देश, २५ जनवरी, १९५४

में नयी भूमि जोतने की ओर पुरानी खेती से अधिक पैदा करने के जो प्रयास हो रहे हैं, उनका अब फल मिलने लगा है। सभी खाद्य अनाजों के उत्पादन में वृद्धि हो रही है, जिसके कारण विदेशों से मँगाये जाने वाले अनाजों में कमी की जा सकी है। खाद्य की स्थिति में जो सुधार हुआ है उसका सबसे बड़ा प्रमाण मोटे अनाजों से नियन्त्रण हटाया जाना है। इस सम्बन्ध में कुछ ही दिन हुए सरकार ने आदेश जारी किया है। सम्भव है कि नियन्त्रण हटा लिये जाने के कारण शुरू में मोटे अनाज के भावों में कुछ उतार-चढ़ाव हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि इन सभी अनाजों की दरें शीघ्र ही ठीक स्तर पर आ जाएँगी जिसके कारण गल्ले का बाजार स्थिर हो सकेगा।

देश की चहुँमुखी उन्नति के लिए जो पंचवर्षीय योजना ढाई वर्ष हुए लागू की गयी थी, उसके सम्बन्ध में सभी जगह ज़ोरों से काम चल रहा है। इस योजना के अन्तर्गत महान् और भीमकाय नदी घाटी योजनाओं पर काम जारी है। इस शृंखला की एक बड़ी योजना सौराष्ट्र में काकरापार बाँध के बनने से कुछ महीने हुए समाप्त हुई है। इस बाँध के द्वारा साढ़े छः लाख एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई होने की आशा है। इसी प्रकार तुंगभद्रा बाँध के सम्बन्ध में भी यथोचित उन्नति हुई है और बाँध बन कर तैयार हो गया है। मयूराक्षी योजना प० बंगाल, दामोदर घाटी योजना बिहार-प० बंगाल, भाखड़ा-नंगल योजना पंजाब-पेप्सू इत्यादि में और हीराकुड उड़ीसा में प्रगति कर रही है और मयूराक्षी योजना का तो पूरा काम भी आरम्भ हो चुका है। पंचवर्षीय योजना में पहले से सम्मिलित योजनाओं के अतिरिक्त सरकार का एक-दो और महत्वपूर्ण योजनाओं को भी हाथ में लेने का विचार है। इनमें कोसी योजना सर्वप्रथम है।

आलोच्य वर्ष में हमें दैवी विपत्ति के रूप में भयंकर बाढ़ का सामना करना पड़ा है। असम, आन्ध्र और विशेषकर बिहार राज्यों में बाढ़ के कारण व्यापक हानि हुई है। संकटग्रस्त क्षेत्रों के लोगों को पूर्ण सहायता पहुँचाने के अतिरिक्त सरकार इस आवर्तक समस्या का स्थायी हल ढूँढ़ने का यत्न कर रही है। जिन नदियों में बाढ़ आती है, उनके पानी को बांध कर अथवा किसी न किसी प्रकार नियन्त्रण में लाकर ही इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में योजनाएँ बनायी जा रही हैं और आशा है जब ये चालू हो जाएँगी तो न केवल संकट टल जाएगा बल्कि संचित जल से सिंचाई का काम भी लिया जा सकेगा।

इन महान् योजनाओं के सम्बन्ध में जो कुछ अभी तक हो सका है उसको देखकर बहुत आशा बंधती है। पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वित किये जाने से देश का उत्पादन बहुत बढ़ जाएगा। सिंचाई के साथ-साथ उपयोगी विद्युत् शक्ति भी बहुत उपलब्ध हो सकेगी जिससे न केवल देहातों का नीरस वातावरण चमक उठेगा बल्कि औद्योगीकरण को भी पर्याप्त सहायता मिलेगी। अर्बों रुपयों के व्यय से जहाँ सरकार इस योजना को चला रही है, वहाँ प्रत्येक भारतीय का भी यह कर्तव्य है कि जिस स्थिति में वह हो, वह इस पुण्य कार्य में पूर्ण योगदान दे।

इस सम्बन्ध में देहातों में चल रही सामुदायिक योजनाओं का भी उल्लेख करना

उचित होगा। यह योजना अक्तूबर, १९५२ में ५५ चुने हुए देहाती केन्द्रों में आरम्भ की गयी थी। सौभाग्य से गत मार्च-अप्रैल के महीनों में मुझे कई एक केन्द्रों को देखने का भी मौका मिला। इस योजना से देहातों के लोगों में जो उत्साह पैदा हो रहा है, उसको देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। उत्साह के अतिरिक्त ठोस काम भी काफी किया गया है। छोटी-मोटी सड़कें बनाना, पीने के पानी के लिए कुँएँ खोदना, तालाबों को साफ करना, मछली का उत्पादन बढ़ाना, सुधरे हुए बीज बो कर और अन्य साधारण उपायों द्वारा खाद्य का उत्पादन बढ़ाना, ग्रामीणों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अस्पताल खोलना ये सभी काम सामुदायिक योजना केन्द्रों में किये जा रहे हैं। इन योजनाओं में व्यय और श्रम का फल भी तत्काल ही मिल जाता है। इसलिए इनमें ग्रामीण लोगों ने काफी रुचि दिखायी है और अपने जीवन-स्तर को उन्नत करने के साथ-साथ देहातों के वातावरण को भी अधिक साफ-सुथरा और उज्ज्वल बनाने की चेष्टा की है। इस रचनात्मक कार्य को अधिक व्यापक बनाने की दृष्टि से हाल ही में सरकार ने सामुदायिक योजना के ५५ और केन्द्र खोलने का निश्चय किया है।

भारत सरकार ने कुटीर उद्योगों को और विशेषकर खादी को प्रोत्साहन देने के लिए एक संस्था बना दी है, जिसमें वही लोग रखे गये हैं जिन्हें इसमें रुचि है और जिनको इसका ज्ञान और अनुभव प्राप्त है। इस काम के लिए आवश्यकतानुसार रुपये देने की भी व्यवस्था कर दी गयी है। आशा है इससे उद्योगों को प्रोत्साहन और सहायता मिलेगी।

श्री विनोबा भावे द्वारा चलाये गये भूमिदान आन्दोलन का भी मैं यहाँ उल्लेख करना चाहूँगा। इस आन्दोलन से सरकार का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इसके द्वारा भूमि के वितरण में और जन-साधारण की मनोवृत्ति में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखायी दे रहे हैं, वे निश्चय ही सबकी रुचि के हैं। सभी खेतिहरों में भूमि के वितरण की समस्या के लिए यह एक अनूठा सुझाव है, जो इस देश की परम्पराओं और हमारे राष्ट्रपिता की शिक्षा के अनुरूप है।

गत वर्ष की घटनाओं का सिंहावलोकन करते समय हम आन्ध्र राज्य की स्थापना को नहीं भूल सकते। हमारे आन्ध्र भाइयों की वर्षों से यह माँग थी कि उनका एक पृथक् राज्य स्थापित किया जाये। अब इस माँग की पूर्ति हो गयी है। हम आशा करते हैं कि आन्ध्र देश के लोग पूर्ण ऐक्य के साथ जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होंगे। राज्यों के पुनर्निर्माण की माँग देश के कई भागों से प्रायः सुनने में आती रही है। उसकी जाँच के लिए भी सरकार ने गत मास एक अधिकारसम्पन्न आयोग स्थापित करने की घोषणा की है। मैं आशा करता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप सभी विवादग्रस्त प्रश्नों का शान्तिपूर्ण और समुचित हल निकल सकेगा और उससे देश की एकता तथा संगठन की भावना को बल मिलेगा।

गत वर्ष सरकार ने एक और आयोग स्थापित किया था जिसको पिछड़े हुए वर्गों की सूची बनाने और उन्नत करने के उपाय सुझाने का महत्वपूर्ण काम सौंपा गया था। यह आयोग कई महीनों से काम कर रहा है। इसकी जाँच के परिणामस्वरूप हमारे पिछड़े

हुए देशवासियों का निश्चय ही कल्याण होगा। राष्ट्र का हित इसी में है कि इसके सभी नागरिक सम्पन्न हों और सभी का समान रूप से विकास हो। हमारा संविधान ही नहीं, बल्कि हमारी परम्परागत विचारधारा का भी यह तकाज़ा है कि हमारी उन्नति की योजनाएं यथासम्भव इतनी व्यापक हों कि राष्ट्र का कोई भी नागरिक उनसे अछूता न रह पाये।

यह प्रसन्नता की बात है कि पाकिस्तान से आये हुए विस्थापित भाइयों को पाकिस्तान में छोड़ी हुई सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति के रूप में सरकार द्वारा रुपये, मकान आदि मिलने आरम्भ हो गये हैं। यह काम काफी बड़ा है, परन्तु फिर भी सरकार ने यथाशक्ति क्षतिपूर्ति का दायित्व अपने ऊपर लिया है।

पहले की भाँति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमारे देश ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। संसार में शान्ति-स्थापना के हमारे प्रयत्न भारत की राष्ट्रीय परम्परा के अनुकूल ही रहे हैं और सौभाग्य से उनमें हमें सफलता भी मिली है। कोरिया में युद्ध को समाप्त करने के लिए भारत की ओर से जो शान्तिपूर्ण प्रयास होते रहे हैं, उनका बहुतेरे राष्ट्रों ने स्वागत किया है और कोरिया युद्ध के समाप्त होने के बाद युद्ध-बन्दियों के बँटवारे का महत्वपूर्ण दायित्व का भारत को सौंपा जाना हमारी स्थिति के अनुकूल ही है। युद्धबन्दी रक्षा सेना दल जो भारत की ओर से कोरिया में कई महीनों से काम कर रहा है अपनी निष्पक्षता और पटुता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय जगत में ख्याति प्राप्त कर चुका है। इतिहास में यह पहला अवसर है कि किसी भी देश की सेना को शान्ति-स्थापना के हित में इतना महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है। उधर संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के अध्यक्ष पद के लिए श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित का चुना जाना भी हमारे देश और महिला जगत के लिए गौरव का विषय है।

यह सब होते हुए भी हम इस स्थिति में नहीं कि सन्तोष करके बैठे रहें। देश की जनता के कल्याण के लिए अभी बहुत कुछ करना शेष है। भारत में कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का हमारा पूर्ण संकल्प है, जो भारतीय गणराज्य के संविधान का एक अंग है। जन-साधारण के रहन-सहन के स्तर को उन्नत करना और लोगों की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करना सरकार का कर्तव्य है। यह काम सरल नहीं है और न ऐसा ही है जो थोड़े से ही समय में किया जा सके। आजकल बेकारी की समस्या के बारे में बहुत कुछ सुनने में आता है, विशेषकर शिक्षित वर्ग में बेकारी बढ़ रही है। सरकार इस समस्या के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है और इसके समाधान के लिए कार्यवाही पर विचार कर रही है। हमारा देश इतना बड़ा है कि सबको काम से लगाने के लिए कोई भी सरकार, चाहे वह कितना ही प्रयत्न करे, जब तक उसे जनता का पूर्ण सहयोग और समर्थन प्राप्त नहीं होगा, इस दिशा में अधिक उन्नति नहीं कर सकती।

क्या विदेशों में और क्या देश में भारत की नेकनामी, आपकी नेकनामी है। राष्ट्र का बल उसके नागरिक होते हैं। कठिनाईयों को पार करने और समस्याओं को सुलझाने की क्षमता राष्ट्र अपने नागरिकों के मनोबल और चरित्र से प्राप्त कर सकता है। इसलिए आप लोग ही राष्ट्र के निर्माता हैं। आपके परिश्रम, अध्यवसाय और सहयोग की भावना पर ही बहुत हद

तक यह निर्भर करता है कि देश का भावी स्वरूप क्या हो। मैं आशा करता हूँ कि भारत को एक सम्पन्न और सच्चा कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए आप बराबर प्रयत्नशील रहेंगे।

चौथे गणराज्य दिवस के शुभ अवसर पर मैं सब देशवासियों को अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ और सबके कल्याण की कामना करता हूँ।

हम अपनी त्रुटियाँ दूर करें

पांचवें गणराज्य दिवस के अवसर पर, जिसे हम कल मनाने जा रहे हैं, मैं सब भारतवासियों का अभिनन्दन करता हूँ और उनके लिए अपनी शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ। यह दिन हमारे लिए एक पवित्र अवसर है। आज के दिन हमें अतीत पर दृष्टि डालनी चाहिए और अपनी सफलताओं को विनम्रता की भावना से तथा त्रुटियों को सहिष्णुता और दृढ़ संकल्प की भावना से देखना चाहिए। इस वर्ष आज के दिन का विशेष महत्व है। ठीक २५ वर्ष हुए, आज के दिन हमने स्वतन्त्रता का व्रत लिया था और भारत के ग्रामों तथा शहरों में स्वाधीनता दिवस मनाने का पहली बार आयोजन किया था। सौभाग्य से हमने राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त कर ली है और अपना संविधान भी तैयार करके कार्यान्वित कर लिया है। यही नहीं, हम सर्वाधिकार-सम्पन्न गणराज्य की स्थापना भी कर सके हैं। इसलिए इस अवसर पर आनन्द मनाने के साथ-साथ हमें निस्संकोच कुछ आत्म-विवेचन भी करना चाहिए।

आइये, आज हम अपने विचारों को उस दिन तक ले जायें जब हमने गणराज्य की घोषणा की थी। अपनी विकास की योजनाओं के सम्बन्ध में हमने वास्तव में काफी प्रगति की है। परन्तु, क्या हम भारत के सब नागरिकों को दरिद्रता, अभाव तथा कष्ट से मुक्त करा पाये हैं? प्रकृति की शक्तियों को अपने अधीन करने और जनता के कल्याण के लिए उन्हें नियन्त्रण में लाने की दिशा में भी हम आगे बढ़े हैं। किन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि कुछ महीने ही हुए, हमें भारत के उत्तर-पूर्वी प्रदेशों में भयानक बाढ़ का सामना करना पड़ा था, जिसके कारण यातायात के साधन छिन्न-भिन्न हो गये और वहाँ की जनता को भारी हानि उठानी पड़ी। निस्सन्देह साक्षरता-प्रसार और रोगों के निराकरण के महत्वपूर्ण उपाय भी हमने सोचे हैं, यद्यपि अभी भी देश के बहुत से भागों में निरक्षरता और बीमारी पर्याप्त मात्रा में दिखायी देती है। जनकल्याण की योजनाओं को हम बराबर आगे बढ़ाते

गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में सन्देश, २५ जनवरी, १९५५

रहेंगे, यह हमारा दृढ़ संकल्प है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। इन योजनाओं के पूरे होने के सम्बन्ध में जो प्रयास अब तक किया गया है, उससे भी हमें असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। फिर भी, जो कुछ अब तक किया जा सका है, यदि वह बहुत चमत्कारी नहीं दीखता तो उसका कारण यह है कि अभी निर्माण-कार्य जारी है और समाप्त नहीं हुआ है। राष्ट्र के निर्माण में समय की आवश्यकता होती है। यह हमारा पाँचवाँ गणराज्य दिवस है और भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र के इतिहास में पाँच वर्ष की अवधि एक स्वल्प काल है।

आइये, अब हम विगत वर्ष की घटनाओं पर नजर डालें और यह देखें कि विकास के कार्यों और निर्माण-योजनाओं की दिशा में हम कहाँ तक आगे बढ़ सके हैं।

यदि मुझसे यह कहा जाये कि बीते वर्ष की घटनाओं का वर्णन मैं एक वाक्य में करूँ, तो मैं कहना चाहूँगा कि संविधान में दिये गये निर्देशों के अनुसार हमने समस्त राष्ट्र के साधनों को ऐसे ढंग से जुटाना आरम्भ कर दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना का श्रीगणेश हो चुका है। पिछले वर्षों में हमने जो संकल्प और दावे किये थे, अब वे मूर्तिमान होने लगे हैं। इसलिए अब यह समझना कठिन नहीं है कि राष्ट्र किधर जा रहा है और आगामी दस या पन्द्रह वर्षों में हम किस स्थिति में होंगे।

महान् नदी-घाटी योजनाओं पर कार्य बराबर जारी है। इनमें से एक योजना, भाखड़ा-नंगल योजना से बहुमूल्य पानी और बिजली, पंजाब, पेप्सू तथा राजस्थान के कुछ भागों को मिलने भी लग गयी है। दामोदर घाटी योजना से कुछ समय हुआ बिजली प्राप्त होने लगी थी और हीराकुड, चम्बल तथा दूसरी महान् योजनाओं की भाँति यह योजना भी यथेष्ट रूप से आगे बढ़ रही है। भाखड़ा-नंगल योजना का प्रथम चरण समाप्त होने से अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि पूर्ण होने पर इन महान् योजनाओं के द्वारा देश में कितने महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाएँगे। एक-दो योजनाओं की आंशिक पूर्ति से ही हमें यह पता लग गया है कि इन योजनाओं से देश के साधन किस सीमा तक विकसित हो जाएँगे और देहातों का आर्थिक ढाँचा कहाँ तक बदल जाएगा।

कोसी नदी, जिसे शोक और दुख का सूचक माना जाता है, इस वर्ष फिर अपने प्रकोप से महान् हानि का कारण बनी। अब इस नदी पर काबू पाने और इसकी उपद्रवी लीला समाप्त करने के लिए भी योजना तैयार हो गयी है। इस योजना की रूपरेखा तैयार हो चुकी है और निर्माण का काम हाथ में लिया जा चुका है। आशा है इस योजना के निर्माण में बड़े पैमाने पर जन-साधारण की सेवाएँ उपलब्ध होंगी। जब यह नया परीक्षण सफल होगा, तो महान् योजनाओं के निर्माण में और भारत की महान् जन-शक्ति के उपयोग के सम्बन्ध में हमारी जानकारी और अनुभव में महत्वपूर्ण वृद्धि होगी।

औद्योगीकरण के क्षेत्र में उन्नति, उत्पादन में और अधिक वृद्धि और भारत की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि—विचाराधीन वर्ष की कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं। औद्योगीकरण के साथ ही रोजगार के क्षेत्र को विस्तृत करने के प्रयत्न भी बराबर जारी हैं। कुटीर उद्योगों और घरेलू धन्धों को प्रोत्साहन देकर औद्योगीकरण और रोजगार में समुचित सन्तुलन स्थापित

करने का प्रयास किया जा रहा है। यह अब सभी स्वीकार करते हैं कि यदि भारत के जन-साधारण को उदासीनता और हार मानने की भावना से मुक्त करना है, तो बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने का उपाय करना होगा। इस दिशा में घरेलू उद्योग-धन्धे, बहुत से लोगों को आंशिक या पूर्ण उपयोगी काम देकर इस समस्या का बहुत कुछ समाधान कर सकते हैं। इसीलिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पुराने घरेलू उद्योगों को पुनर्जीवित करने और चालू कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था की जा रही है।

विदेशी मामलों के क्षेत्र में हमारी सफलता और भी अधिक है। हमारी नीति, जिसे मैं सक्रिय और सोद्देश्य तटस्थता की नीति कहना चाहूँगा, वास्तविक व्यवहार में किसी भी देश अथवा वहाँ के लोगों को अपना शत्रु न समझने की नीति है। इस नीति के फलस्वरूप हमें विश्वशान्ति के पक्ष की कुछ सेवा करने का अवसर मिला है। हम प्रसन्न और आभारी हैं कि संसार के राष्ट्रों में भारत का स्थान इतना ऊँचा है। 'इण्डोचीन निरीक्षण और नियन्त्रण अन्तर्राष्ट्रीय आयोग' की अध्यक्षता हमने स्वेच्छा से स्वीकार की है और हमारे नागरिक यथासाध्य उस देश में शान्तिपूर्ण निर्वाचन सम्बन्धी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। हम सभी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का निबटारा शान्तिपूर्ण ढंग से चाहते हैं। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि भारत में फ्रांसीसी बस्तियों की समस्या शान्ति और सद्भावना के वातावरण में सुलझ सकी है। शान्तिपूर्ण प्रणाली की सफलता का यह एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। दुर्भाग्य से भारत में पुर्तगाली बस्तियों की ऐसी ही समस्या को सुलझाने की दिशा में प्रगति नहीं की जा सकी। मैं आशा करता हूँ कि पुर्तगाल इन बस्तियों में रहने वाले लोगों के स्वाधीनता के अधिकार को स्वीकार करेगा और फ्रांस और ब्रिटेन की सरकारों का अनुसरण करेगा।

जैसे ही यह वर्ष समाप्त हो रहा है, हम अपने सबसे निकट के पड़ोसी पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों में अपने सुखद परिवर्तन देखते हैं। पाकिस्तान के लिए हमारे हृदय में पूर्ण सद्भावना और शुभकामनाएँ हैं। हमारे बीच आज पाकिस्तान के अध्यक्ष की उपस्थिति इस सुखद परिवर्तन का प्रमाण है। व्यक्तिगत असुविधा के बावजूद उन्होंने गणराज्य दिवस समारोह देखने के लिए हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया और वे यहाँ पधारे हैं।

विदेशों के साथ महत्वपूर्ण सम्पर्क की दिशा में यह वर्ष चिरस्मरणीय रहेगा। इस वर्ष बाहर से कई एक सम्मान्य महानुभाव हमारे देश में आये। उनमें यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो, चीनी लोकराज्य के प्रधान मन्त्री, श्रीलंका के प्रधान मन्त्री और इण्डोनीशिया के प्रधान मन्त्री का मैं विशेष उल्लेख करना चाहूँगा। इन महान् नेताओं का स्वागत करना हमारा सौभाग्य था। रूस, चीन तथा अफगानिस्तान के सांस्कृतिक शिष्ट मण्डल भी इस वर्ष हमारे देश में आये। इन शिष्ट मण्डलों को भारत में बहुत लोकप्रियता मिली। ऐसे आगमनों और राष्ट्रों में सांस्कृतिक शिष्ट मण्डलों के आदान-प्रदान की उपादेयता निश्चय ही बहुत अधिक है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों में हमारी आस्था यथापूर्ण स्थिर है। फिर भी, मेरे

विचार से विभिन्न भूखण्डों के राष्ट्रों द्वारा सामान्य समस्याओं पर विचार करने के लिए पारस्परिक विचार-विमर्श, उस महान् विश्व संगठन के उद्देश्यों अथवा आदर्शों के प्रतिकूल नहीं। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्र इण्डोनीशिया में अपना एक सम्मेलन कर रहे हैं, जिसमें वे निजी समस्याओं पर विचार करेंगे। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि बोगोर सम्मेलन और प्रस्तावित जकार्ता सम्मेलन का आयोजन करने में भारत कुछ सहायता कर सका है।

यह सब कार्य निश्चय ही बहुत बड़े हैं, इनसे हमें आगे बढ़ने के लिए दृढ़ संकल्प और आत्मविश्वासी बने रहने की प्रेरणा मिलती है। यह उस नये युग का आरम्भमात्र है जिसे भू पर उतारने की हम प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

जो महान् कार्य हमने अपने ऊपर लिये हैं, उन्हें सम्पन्न करने के लिए भारत को अपने प्रत्येक नागरिक की सद्भावना, सहयोग तथा सहायता की अपेक्षा है। यह अब प्रत्यक्ष होता जा रहा है कि लोगों में आशा तथा आत्मविश्वास की कमी नहीं और भारत के भविष्य में उन्हें पूर्ण विश्वास है। ये शुभ लक्षण हैं।

अपने पिछड़े हुए और दलित भाइयों से दो शब्द कह कर मैं इस सन्देश को समाप्त करता हूँ। अपनी प्रतिज्ञाओं से मार्गदर्शन पा और उन उच्च आदर्शों से उत्प्रेरित हो, जिनका सदियों से भारत ने आदर किया है और जिनका फिर से स्मरण कराने के लिए महात्मा गान्धी ने इतना गम्भीर प्रयत्न किया, हम भारत में सच्चा कल्याणकारी राज्य स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हैं—ऐसा कल्याणकारी राज्य जिसमें प्रत्येक नागरिक को न केवल समान अधिकार और समान अवसर मिलेगा, बल्कि वह अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य का भी स्वेच्छा से पालन करेगा। मेरी आज यह प्रार्थना है कि हमारा यह आदर्श ध्रुव तारे के समान हमारे पथप्रदर्शन के लिए हमें प्रेरणा देने के लिए सदा हमारे सामने रहे।

एक बार फिर, मैं आप सबके लिए निजी शुभ कामना प्रकट करता हूँ और यह आशा करता हूँ कि आगामी वर्ष देश के लिए अधिक सुख तथा सम्पन्नता का वर्ष होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा

भारतीय गणराज्य की छठी वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर मैं सभी देशवासियों का अभिनन्दन करता हूँ और उनके लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ। हम सबके लिए यह दिन एक राष्ट्रीय पर्व है। इस दिन हम अपनी राष्ट्र पर दृष्टि डालते हुए ऐसा अनुभव करते हैं मानों हम उसे आगे बढ़ते हुए और उन्नति करते हुए देख रहे हैं। छः वर्ष की यह अवधि छोटी पर हमारे लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन वर्षों में हमने परिश्रम किया है और संविधान में दिये गये आदेशों का पालन करते हुए हमने अपने देश को समुन्नत करने का प्रयत्न किया है।

मैं जानता हूँ कि हमारा गणराज्य नवजात है, यद्यपि भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। अन्य राष्ट्र प्रायः हमारी सफलता का श्रेय हमारी राष्ट्रीय परिपक्वता और सदियों से होने वाले विकास को देते हैं। स्वभावतः हमें यह जान कर प्रसन्नता होती है और इसके लिए हम भगवान के प्रति आभारी हैं। गौरवमय अतीत किसी भी देश के लिए परम सौभाग्य, किन्तु भारी उत्तरदायित्व का विषय होता है। इसलिए जहाँ एक ओर हम अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से पथ-प्रदर्शन की याचना करते हैं, वहाँ दूसरी ओर हम अपने वर्तमान और भविष्य को आधुनिक विज्ञान-युग की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करते हैं। हम भारतवासी एक महान् अतीत के भागी हैं, परन्तु इसके साथ ही हम उतने ही महान् भविष्य का निर्माण करने के लिए भी उत्सुक और यत्नशील हैं। इसलिए आज के दिन प्रत्येक भारतवासी को यह समझकर कि इन वर्षों में प्राप्त की गयी सफलताओं में उसका भी भाग है, केवल प्रसन्न ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे एक बार फिर यह संकल्प करना चाहिए कि वह सुखी और सम्पन्न भारत की स्थापना के लिए हर सम्भव यत्न करेगा।

जब हम विगत वर्षों की घटनाओं पर विहंगम दृष्टिपात करते हैं तो हमें सन्तोष होता है, यद्यपि हम यह भी अनुभव करते हैं कि अभी हमने निर्माण-कार्य का आरम्भ ही किया है और दरिद्रता, निरक्षरता और बीमारी पर विजय पाने के लिए हमें बहुत कुछ करना है।

गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में सन्देश, २५ जनवरी, १९५६

प्रकृति नटी ने अपने क्रोध और अदृष्ट कार्य-विधि का फिर परिचय दिया है भारत का शायद ही कोई भूभाग ऐसा रहा हो जो गत वर्ष बाढ़ से प्रभावित न हुआ हो। उन्हीं नदियों में, जो हमारे आयोजकों और इंजीनियरों के विचार का विषय रही हैं, भयंकर बाढ़ आयी जिसके कारण विस्तृत भूभाग जलमग्न हो गया। पूर्व में असम और पश्चिम बंगाल में, दक्षिण में आन्ध्र और मद्रास में और उत्तर में बिहार, उत्तर-प्रदेश, पंजाब और पेप्सू में हमने जल की विनाशकारी लीला देखी जिसके कारण हरे-भरे खेत, गाँव और बस्तियाँ और नगरों की गलियाँ झील समान बन गयीं। भारतीय गणराज्य की राजधानी दिल्ली भी बाढ़ के प्रकोप से अछूती नहीं रही। कई दिनों तक यमुना का पानी बराबर बढ़ता गया और भयभीत नागरिक पानी के उतार-चढ़ाव को सशंक देखते रहे। मुझे प्रसन्नता है कि केन्द्रीय सरकार तथा सम्बद्ध राज्यों की सरकारों ने विपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता करने में कुछ भी न उठा रखा। बाढ़ के कारण उखड़े हुए लोगों को फिर से बसाने का प्रयत्न अभी भी जारी है। ऐसी दुर्घटनाओं को स्थायी रूप से रोकने का प्रश्न दीर्घकालीन योजना का विषय है। योजना आयोग स्थिति से पूरी तरह परिचित है और हम यह विश्वास कर सकते हैं कि सभी नदी-घाटी योजनाओं का आयोजन तथा निर्माण करते समय आयोग बाढ़-नियन्त्रण सम्बन्धी आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान देगा।

योजना आयोग के उल्लेख के साथ ही यह बताना भी उचित होगा कि हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप लगभग तैयार है और उसे अन्तिम रूप देने के सम्बन्ध में राज्यों की सरकारों और दूसरे हितचिन्तकों के साथ बातचीत चल रही है। दूसरी योजना का विकास सम्बन्धी कार्यक्रम निश्चय ही प्रभावोत्पादक है। इस बारे में पहली पंचवर्षीय योजना ने सभी दिशाओं में जो सफलता प्राप्त की है, उससे हमें प्रेरणा मिली है और हमारा विश्वास बढ़ा है। दूसरी योजना में सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए काफी धन के व्यय की व्यवस्था की गयी है जिससे इन क्षेत्रों में विस्तार और सुधार हो सके।

अपने देशवासियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अब हम काफी अनाज पैदा करने लगे हैं और उसमें से कुछ बचाकर भी रख सकते हैं। जो बड़ी-बड़ी योजनाएँ अभी तक चालू की जा सकी हैं, उनसे हजारों ग्रामों को बिजली दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं के फलस्वरूप ८० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगी है। हमारे देहातों में विकास का काम बराबर आगे बढ़ रहा है। इसका श्रेय सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विकास सेवा को है। प्रायः एक लाख ग्रामों में हजारों प्रशिक्षणप्राप्त कर्मचारी देहात-सुधार, शिक्षा, स्वास्थ्य और यातायात सम्बन्धी समस्याओं से जूझ रहे हैं। इधर सौभाग्य से राष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय में भी लगभग तीन प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि हम जो कुछ करना चाहते हैं, वह कर चुके हैं और दरिद्रता तथा बेरोजगारी की समस्याओं को सुलझा सके हैं। मैं जानता हूँ कि बेरोजगारी की समस्या को सफलतापूर्वक सुलझाने के लिए हमें व्यापक और राष्ट्रव्यापी प्रयास की आवश्यकता है। योजना आयोग ने इस समस्या का विस्तृत विवेचन किया है

और इस सम्बन्ध में राज्यों की सरकारों के अतिरिक्त सभी वर्गों के लोगों से विचार-विनिमय किया है।

औद्योगीकरण के क्षेत्र में पिछले वर्षों में हमने जो उन्नति की, इस वर्ष भी हम उसे बनाये रख सके हैं। उत्पादन में वृद्धि ही नहीं हुई, बल्कि नये कारखाने खोलने की भी व्यवस्था की गयी है, जिनमें लोहे और इस्पात के कारखाने विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ महीने हुए अखबारी कागज के उत्पादन के लिए सर्वप्रथम भारतीय कारखाने में काम आरम्भ हुआ है। हाल ही में हमारे प्रधान मन्त्री ने पेराम्बूर में रेलगाड़ियों के डिब्बे बनाने के कारखाने का उद्घाटन किया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं का लक्ष्य छोटे और कुटीर उद्योगों की भी उन्नति करना है। आशा की जाती है कि इस प्रकार देश की पुरानी दस्तकारियों को प्रोत्साहन मिलेगा और बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। एक ओर जहाँ हमने उन सभी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास किया है जिनका सम्बन्ध एक आधुनिक राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या से है, दूसरी ओर हमने ललित कलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए भी विशेष अकादेमियों की स्थापना की है। इन संस्थाओं द्वारा थोड़े समय में ही बहुमूल्य कार्य किया जा चुका है। इन्होंने कला और कलाकारों को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया है और कला के द्वारा जीवन को अधिक सुखमय ही नहीं बल्कि अधिक आदर्शमयी बनाने का भी यत्न किया है।

पहले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी बहुतेरे देशों ने हमारी विदेश नीति को विश्व-शान्ति का एक आवश्यक अंग माना है। तटस्थता और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की हमारी नीति का, जिसका प्रतिपादन हमारे प्रधान मन्त्री विशेष योग्यतापूर्वक कर रहे हैं, अनुसरण करने वाले देशों में एशिया तथा यूरोप के कुछ नये देश भी सम्मिलित हो गये हैं। इस बात से सभी को हर्ष होना चाहिए कि शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और पंचशील के सिद्धान्त संसार में अधिक से अधिक व्यापक और मान्य होते जा रहे हैं।

रूस में श्री जवाहरलाल नेहरू के दौरे के बाद वहाँ के प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्रीगण पिछले दिनों हमारे देश में आये। मुझे हर्ष है कि सऊदी अरब के महाराजाधिराज भी हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करके यहाँ आ सके। अरब राज्यों के वे पहले नरेश हैं, जो भारत आये। हमारी परराष्ट्र-नीति और विदेशों में स्थित हमारे प्रतिनिधियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का मान बहुत ऊँचा है। इसको उसी स्तर पर बनाये रखना भारत के सभी नागरिकों का उत्तरदायित्व है। हमें ऐसा प्रयास करना है कि भारत शान्ति का स्तम्भ और सभी राष्ट्रों का मित्र बना रहे।

अपने सभी देशवासियों के साथ मुझे भी इस बात का दुख है कि गोआ की समस्या के शान्तिपूर्ण निबटारे के लिए हमने जो सुझाव पेश किये, उनका अभी तक पुर्तगाल की सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और वहाँ के अधिकारियों ने बलप्रयोग द्वारा गोआ के लोगों की स्वाभाविक महत्वाकांक्षाओं अर्थात् स्वाधीन होने की उत्कट इच्छा का दमन किया है। मैं आशा करता हूँ कि पुर्तगाल यथाशीघ्र गोआ को भारत के साथ विलय होने

देगा, क्योंकि भूगोल, इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से गोआ भारत का अविभाज्य अंग है।

आइये, हम सब फिर इस देश में कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का संकल्प करें और विश्व में शान्ति-स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहें।

प्रवासी भारतीयों का देश के प्रति कर्तव्य

भारतीय गणराज्य की छठी वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर आज मैं प्रवासी भारतीयों का अभिनन्दन करता हूँ और उन्हें अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ। आज का दिन हमारे लिए एक राष्ट्रीय पर्व है और ऐसे अवसर पर हम उन भाइयों को, जो हमारे साथ नहीं बल्कि विदेशों में रह रहे हैं, नहीं भूल सकते। मैं यह मानता हूँ कि शायद हमारी अपेक्षा वे ही हमें अधिक याद करते होंगे। परन्तु मैं उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि हमारे हृदय में उनके लिए स्थान है और उनके कल्याण तथा सम्पन्नता में भारत के लोगों तथा सरकार को बहुत रुचि है। वे संसार के चाहे किसी भी भाग में रहते हों, हम उनकी सफलता की कामना करते हैं।

हमारे प्रवासी भाइयों में सम्भवतः बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने स्वाधीनता के बाद के भारत को नहीं देखा होगा, यद्यपि मैं समझता हूँ उन्हें यह पता है कि इन वर्षों में हमने भौतिक दृष्टि से कितनी उन्नति की है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का नाम कितना उज्ज्वल हुआ है। फिर भी, मैं उन्हें बताना चाहूँगा कि हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना अब समाप्त होने जा रही है और दूसरी योजना का प्रारूप लगभग तैयार है और दो-चार महीने में ही इस पर अमल होने वाला है। प्रथम योजना बहुत सफल रही है और उसके अन्तर्गत हमने राष्ट्र-निर्माण के क्षेत्र में जो लक्ष्य निर्धारित किये थे वे प्रायः सभी प्राप्त कर लिये गये हैं। यद्यपि हम औद्योगीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं तथापि हमने छोटे और घरेलू उद्योगों की अवहेलना नहीं की है, क्योंकि इन उद्योगों द्वारा विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में असंख्य लोगों को रोजगार मिलता है। सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के फलस्वरूप हमारे देहातों का रूप बदलता जा रहा है। इन योजनाओं के अन्तर्गत कार्य करने वाले हजारों प्रशिक्षण-प्राप्त नवयुवक देश के ग्रामों में फैले हुए हैं और उन्नति के कामों में संलग्न हैं। खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और यातायात की दृष्टि से हमारे गाँव बराबर आगे बढ़ रहे हैं।

गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में प्रवासी भारतीयों के लिए सन्देश, २५ जनवरी, १९५६

संयुक्त राष्ट्र संघ में और उसके क्षेत्र के बाहर भारत ने अहिंसा और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को लेकर अभी तक जो कार्य किया है, उसके सम्बन्ध में आप हमसे अधिक ही जानते हैं। इसका कारण यह है कि आप विदेशों में और विदेशी लोगों के सम्पर्क में रहते हैं। हम लोगों की अपेक्षा आप विदेशों में भारत की स्थिति और मान के सम्बन्ध में अधिक जान सकते हैं। किसी भी देश के मान का आधार अधिकतर उसकी परराष्ट्र-नीति, विदेशों से उसके सम्बन्ध और उसके आन्तरिक कार्यक्रम की सफलता ही होती है; परन्तु मैं समझता हूँ कि किसी भी देश के मान का सम्बन्ध किसी हद तक उस देश के प्रवासी नागरिकों के व्यवहार पर भी निर्भर करता है। विदेशियों से व्यक्तिगत सम्पर्क एक-दूसरे को जानने व समझने का उत्तम माध्यम है। यह सम्भव है कि अधिकांश विदेशी लोग भारतीय प्रवासियों के व्यक्तिगत आचार-व्यवहार द्वारा ही भारत को आँकते हों, क्योंकि इस सम्बन्ध में अधिक जानने की उन्हें न तो उत्सुकता होती है और न सुविधाएँ ही उपलब्ध हैं। इसलिए प्रत्येक भारतीय प्रवासी को अपने को विदेशों में अपने देश की मान-मर्यादा का संरक्षक समझना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि आप इस बात का सदा ध्यान रखेंगे और उसके अनुसार आचरण करेंगे।

एक बार फिर मैं सभी प्रवासी भाइयों को अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ और यह कामना करता हूँ कि नव वर्ष में वे अधिक सुख तथा समृद्धि प्राप्त करें।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

मैं आज बहुत हर्ष के साथ यूगोस्लाविया के संघीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति महामहिम मार्शल टीटो का, जो इस समय हमारे बीच विराजमान हैं, स्वागत करता हूँ। हम उनका यूरोप के एक ऐसे राज्य के प्रधान के रूप में स्वागत करते हैं, जिसने विगत युद्ध में और युद्ध के उपरान्त संसार की गतिविधियों में महत्वपूर्ण भाग लिया है। हम उनका मानव समाज के एक महान् नेता के रूप में भी स्वागत करते हैं। वह एक ऐसे मानव समाज के नेता हैं जिसके युद्धकालीन वीरतापूर्ण कारनामों की व्यापक रूप से सराहना हुई है।

यद्यपि भारत आने का आपका यह पहला अवसर है, तथापि इस देश के लोग आपके नाम से सुपरिचित हैं क्योंकि आपके नेतृत्व में यूगोस्लाविया के लोगों ने जो साहस और दृढ़ता दिखलायी है, हम लोग उसके प्रशंसक रहे हैं। हम भारतवासियों को भिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए हमें सालों-साल कारावास की यातना सहनी पड़ी है और कष्ट भोगने पड़े हैं। हमारे दोनों देश, जिन्होंने अनेक कष्टों के बाद स्वाधीनता प्राप्त की है, इसे सुरक्षित रखने और इसमें अभिवृद्धि करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं।

एक दूसरे से दूर स्थित, भारत और यूगोस्लाविया के बीच अतीत में बहुत सम्पर्क नहीं रहा है, किन्तु हाल के वर्षों में और इस समय हमारा पारस्परिक सम्पर्क बढ़ गया है क्योंकि हमारे लक्ष्यों और आदर्शों में समानता है। हम दोनों अपने-अपने देशवासियों की सुख-समृद्धि और प्रगति के लिए निजी राष्ट्रों को उन्नत करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। इस रचनात्मक कार्य के लिए संसार के किसी भी अन्य देश की भाँति हमारे दोनों देशों को विश्व में शान्ति बने रहने की सबसे अधिक आवश्यकता है। इसलिए हम पूर्ण रूप से शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के पक्ष में हैं और हमने राष्ट्रों के बीच तनाव को कम करने और मैत्री तथा सद्भावना को प्रोत्साहित करने के यथाशक्ति प्रयत्न किये हैं। आपका भी यही लक्ष्य रहा है, इसलिए आपके और हमारे कार्य तथा दृष्टिकोण में शान्ति-स्थापना का प्रयास एक सामान्य कार्यक्रम है।

मार्शल टीटो के सम्मान में आयोजित राजकीय भोज के अवसर पर भाषण, १८ दिसम्बर, १९५४

विभिन्न देशों में चाहे कितनी ही समानता क्यों न हो, प्रत्येक राष्ट्र का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। प्रत्येक राष्ट्र के विकास का आधार उसका अपना इतिहास तथा परिस्थितियाँ होती हैं। इसलिए यद्यपि विभिन्न देशों के बीच अन्तर तथा भेद होते हैं, किन्तु दृष्टिकोण और व्यक्तिगत, राजनीतिक तथा सामाजिक रूपरेखा पर आश्रित इन भेदों के कारण पारस्परिक सहयोग के मार्ग में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। पारस्परिक सहयोग यदि न हुआ तो उसके स्थान पर केवल संघर्ष हो सकता है और आज के संसार में संघर्ष की कल्पनामात्र भयावह है। इसीलिए आज की परिस्थितियों में समझदार लोगों ने अपने कार्यक्रम में संघर्ष अथवा युद्ध के विचार को कोई स्थान नहीं दिया है। यदि युद्ध का बहिष्कार करना है तो युद्ध के कारणों को भी दूर करना होगा, और जिसे प्रायः शीत युद्ध कहा जाता है उसे भी प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। हम जानते हैं कि बहुत से देशों के लोग भय, सन्देह और क्षोभ की भावना से त्रस्त हैं, उनका निवारण सरल काम नहीं है। फिर भी यदि इस संसार को जीवित रहना है तो हमें राष्ट्रों के बीच शान्ति तथा सद्भावना स्थापित करने का और भय तथा सन्देह दूर करने का सतत प्रयत्न करना है। इस महान् कार्य में हम जानते हैं कि आप और आपके राष्ट्र की उतनी ही रुचि है जितनी हमारी। मैं समझता हूँ, सच तो यह है कि मानवता के लिए प्रत्येक संवेदनशील तथा विचारशील व्यक्ति की इस अत्यावश्यक कार्य में निश्चय ही रुचि होनी चाहिए, चाहे वह किसी भी राष्ट्र का हो।

हम दोनों देशों के बीच अधिक से अधिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं और भारत में आपका आगमन निस्सन्देह दोनों देशों के बीच मैत्री की भावना को सुदृढ़ करने में सहायक होगा, जिससे दोनों देशों का लाभ होगा और राष्ट्रों के मध्य शान्ति तथा सद्भावना को प्रोत्साहन मिलेगा।

मैं आशा करता हूँ कि आपका और आपके मान्य सहयोगियों का भारत प्रवास आनन्दपूर्ण होगा और आप इस प्राचीन देश के ऐतिहासिक स्मारकों के साथ-साथ यह भी देखेंगे कि हम इस समय क्या कर रहे हैं। हमारा ध्यान रचनात्मक प्रयत्नों पर केन्द्रित है क्योंकि हम अपने देश के निर्माण और यहाँ की जनता के लिए सुख, सम्पन्नता और सबके लिए समान अवसर उपलब्ध करने का संकल्प कर चुके हैं।

मैं एक बार फिर आपका और आपके साथियों का भारत के लोगों और सरकार की ओर से स्वागत करता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि वापसी पर आप हमारी शुभकामनाएँ और सद्भावनाएँ और हमारी आशा कि हम सदा मित्र रहेंगे और हमारे सम्मुख जो महत्वपूर्ण कार्य हैं उनमें पारस्परिक सहयोग बनाये रखेंगे, यूगोस्लाविया के लोगों तक पहुँचा दें।

भारत तथा यूगोस्लाविया

आपने भारत और भारत के लोगों के सम्बन्ध में रचनात्मक कार्य के क्षेत्र में तथा संसार में शान्ति तथा सद्भावना स्थापित करने में हमारे प्रयासों के विषय में जो सौहार्दपूर्ण शब्द कहे हैं, उनके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं। आपके शब्दों के पीछे मैत्रीपूर्ण भावना और शुभकामना है, इसलिए हम इनका हृदय से स्वागत करते हैं।

आपने हमारी नदी-घाटी योजनाओं और कृषि सम्बन्धी उन्नति के बारे में कुछ कहने की कृपा की है। सदियों से हमारा प्रधान व्यवसाय कृषि रहा है। आज भी भारत की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या इसी से अपना निर्वाह करती है। देश का शासन-सूत्र संभालने के बाद हमें सबसे पहले देश के प्राकृतिक साधनों को उन्नत करने की चिन्ता हुई, जिससे यहां का उत्पादन बढ़ सके और लोगों के रहन-सहन का स्तर उन्नत किया जा सके। इसी कारण हमें आर्थिक क्षेत्र में आयोजन का सहारा लेना पड़ा। इस दिशा में भारत की प्रगति के सम्बन्ध में आपने जो कहा है, उससे हमें उत्साह मिलता है।

पिछड़े हुए देशों की सहायता और उन्हें दूसरे देशों के बराबर लाने की आवश्यकता के सम्बन्ध में आपने जो कहा है, मैं उसका स्वागत करता हूं। मैं आपसे सहमत हूं कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि विश्व का प्रत्येक देश दूसरे देशों के विकास और उन्नति में तत्काल ही निजी उन्नति के समान दिलचस्पी ले। अविकसित देशों और पिछड़े हुए लोगों की उन्नति के लिए आकांक्षा आधुनिक युग की प्रगति का एक अनिवार्य परिणाम है। इस प्रगति के कारण दूरी लुप्तप्राय हो चुकी है और एक प्रकार से विभिन्न देशों की सीमाएं मद्धिम पड़ गयी हैं। इसलिए यह समस्त संसार के और इसमें स्थित प्रत्येक देश के हित में है कि यहां का प्रत्येक देश विकास के एक न्यूनतम स्तर तक पहुंच जाये और उसमें रहने वाले लोग जीवन-यापन के न्यूनतम स्तर को प्राप्त कर लें। जिस संसार में हम शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व चाहते हैं, उसमें अनेक देश हैं जिनके भिन्न-भिन्न आदर्श हैं, भिन्न-भिन्न शासन-प्रणालियां हैं और जो भिन्न-भिन्न सामाजिक ढांचों में ढले हैं। अतः पिछड़े हुए देशों की

भारतीय नेताओं के सम्मान में दिये गये भोज के अवसर पर मार्शल टीटो के भाषण के उत्तर में भाषण, २० दिसम्बर, १९५४

जनता के रहन-सहन की परिस्थितियों में सुधार करना सह-अस्तित्व की स्थिति का एक आवश्यक पहलू है।

हमें बहुत प्रसन्नता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में होने वाले कार्य के सम्बन्ध में आपके सम्मुख जो आदर्श हैं वे काफी ऊँचे हैं। आपके आदर्श और दृष्टिकोण का हम पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं और यह आशा करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ में पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ेगी। आपके द्वारा की गयी संयुक्त राष्ट्र संघ की यह व्याख्या ठीक ही है कि यह एक ऐसा कार्यक्षेत्र है जिसमें पारस्परिक सहयोग द्वारा लाभप्रद कार्य किया जा सकता है। मैं एक बार फिर दोहराना चाहूँगा कि हमारे दोनों देशों के आदर्शों, महत्वाकांक्षाओं और नीतियों में पर्याप्त समानता है। आर्थिक निर्माण के क्षेत्र में हम रचनात्मक कार्यों द्वारा अपने जनसाधारण की सम्पन्नता तथा कल्याण चाहते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दूसरे देशों के साथ सहयोग द्वारा संसार में शान्ति-स्थापना की आकांक्षा करते हैं। हमारी समस्याओं तथा हमारे आदर्शों में यह समानता इस बात का विश्वास दिलाती है कि यूगोस्लाविया और भारत के बीच और भी अधिक सहयोग, सद्भावना तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होंगे।

इस अवसर पर आपने हमारे प्रधानमन्त्री, भारत के लोगों तथा मेरे लिए जो शुभ-कामनाएँ और सौहार्दपूर्ण भाव प्रकट किये हैं, उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं सहर्ष आप सबके प्रति अपनी सद्भावना और शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ कि यूगोस्लाविया और भारत के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन अधिक से अधिक दृढ़ होते जाएँगे।

भारत तथा पाकिस्तान

अपने पड़ोसी देश के गवर्नर-जनरल का स्वागत करते हुए आज मुझे बहुत खुशी हो रही है। आप हिन्दुस्तान की राजधानी के लिए अजनबी नहीं हैं। आपकी दोस्ती और सहृदयता हममें से बहुत से लोगों को अभी भी याद है। आपकी उदारता, कर्तव्य-परायणता और ऊँची देशभक्ति को इस देश के बहुत से लोग अभी भी सराहना के साथ याद करते हैं। हमें इस बात की खास तौर से खुशी है कि अपनी अनेक मसरूफियतों के बावजूद और सेहत का खयाल न करते हुए आपने हमारे गणराज्य दिवस के उत्सव में शामिल होने की कृपा की है।

पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल महामहिम श्री गुलाम मुहम्मद के सम्मान में राजकीय भोज के अवसर पर भाषण, २५ जनवरी, १९५५

हिन्दुस्तान को गणराज्य बने कल पाँच बरस हो जाएँगे। हममें से बहुत से लोग छोटी उम्र में ही इस दिन के स्वप्न देखा करते थे और बहुतों ने इस इन्कलाब के लिए भारी कुरबानियाँ भी की हैं। इसलिए कल का दिन हिन्दुस्तान के लोगों के लिए खास महत्व का दिन है। यह एक ऐसा मौका है जिस पर भाषा, धर्म और रहन-सहन के तरीके अलग-अलग होने पर भी लाखों करोड़ों आदमी एकता का प्रदर्शन करते हैं। यह सिर्फ खुशी मनाने का ही मौका नहीं, इससे आने वाले समय के लिए जोश और प्रेरणा भी मिलती है। इसमें शक नहीं कि हम कठिनाइयों से हासिल की हुई आज़ादी पर खुशियाँ मनाते हैं। इसके साथ ही हमें इस बात का बराबर खयाल है कि उन करोड़ों लोगों की बेहतरी और खुशी के बिना जिन्हें सदियों से कम से कम ज़रूरी खुराक और कपड़ा नसीब नहीं हुआ, यह आज़ादी सार्थक नहीं होगी। हिन्दुस्तान के नेताओं ने इस काम को करने का बीड़ा उठाया है। मैं जानता हूँ कि पाकिस्तान के नेता भी इस मकसद को हासिल करने का पक्का इरादा कर चुके हैं और उस देश के लोगों में किसी पर इतनी भारी ज़िम्मेदारी नहीं जितनी जनाब पर है। आपके महान् देश और हिन्दुस्तान में दोस्ती और आपसी समझदारी के बहुत से सम्बन्ध हैं और हम लोग पूरी दिलचस्पी के साथ आपकी आगे बढ़ने की कोशिशों को देखते रहे हैं। हमारे दोनों मुल्कों की बहुत सी समस्याएँ एक जैसी हैं और मुझे यकीन है कि एक मुल्क दूसरे के अनुभव और कोशिश से अपनी समस्याओं को सुलझाने में लाभ उठा सकता है। इस बड़े काम को पूरा करने में, जो आपके सामने है, हम दिल से आपकी कामयाबी चाहते हैं।

मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि हमारे दोनों देशों के लाखों आदमियों ने अपनी ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा एक-साथ मिल-जुल कर बिताया है। यद्यपि हम दोनों अपनी इच्छा से अलग हुए हैं, बरसों का हमारा नज़दीकी सम्बन्ध और हमारा मिलाजुला अनुभव हमारे बीच स्थायी मित्रता और दोस्ताना ताल्लुकात की बुनियाद की शक्ल में मौजूद है, और फिर हमारे दोनों देशों की भाषा बहुत कुछ मिलीजुली है और हम एक-दूसरे की बोली समझते हैं। इसलिए हमारे देशों के दरमियान कोई ऐसा मसला नहीं होना चाहिए जो मित्रता की भावना और दोस्ताना सूझबूझ से सुलझ न सकता हो। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि हमारी हुकूमत आपकी हुकूमत से सच्चे सहयोग के साथ ऐसे सभी मसलों को सुलझाने के लिए हर मुमकिन तरीका अपनाने को उत्सुक है।

हिन्दुस्तान की सरकार और यहाँ के लोगों की तरफ से मैं एक बार फिर आपका स्वागत करता हूँ। हमें इस बात का अफसोस है कि आपका कयाम यहाँ थोड़े अर्से के लिए ही रहेगा, पर हम जानते हैं कि आपके ऊपर भारी ज़िम्मेदारियाँ हैं। इसलिए हम आपके और भी आभारी हैं कि आपने हमारे निमन्त्रण पर हमारे इस राष्ट्रीय उत्सव में शरीक होने की मेहरबानी की। क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि फिर कभी जब आपको समय मिले आप अधिक दिनों के लिए यहाँ पधारेंगे, जिससे कि नये हिन्दुस्तान में हम जो कुछ कर रहे हैं वह आपको दिखाने का हमें मौका मिल सके। हमारी शुभकामनाएँ आपके और आपके देश के लोगों के साथ हैं।

न्याय और शान्ति का समर्थक—संयुक्त राष्ट्र संघ

मुझे प्रसन्नता है कि पहले के वर्षों की भाँति आज फिर संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस के अवसर पर मैं यह भाषण प्रसारित कर रहा हूँ। प्रति वर्ष इस दिन को मनाने का एक विशेष महत्व है। यह उत्सव सबके लिए उपयोगी हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम इसके ध्येय तथा अभिप्राय को ठीक-ठीक समझें। विगत वर्ष का लेखा-जोखा आँकना तो लाभदायक है, किन्तु इसके साथ ही हमें उन आदर्शों का मनन करना चाहिए जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ को जन्म दिया और जिन्हें प्रोत्साहन देना इसका पहला कर्त्तव्य है।

अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों और मतभेद को शान्तिपूर्वक तय करना और सहिष्णुता, अहिंसा तथा पड़ोस की भावना को और इस प्रकार सह-अस्तित्व की भावना को प्रोत्साहन देना, संयुक्त राष्ट्र संघ का सर्वोत्तम उद्देश्य है। शान्तिपूर्ण बातचीत द्वारा पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने का जहाँ तक प्रयत्न किया गया है, उस हद तक संयुक्त राष्ट्र संघ, इसके संयोजक तथा इसमें सम्मिलित सभी राष्ट्र सन्तोष का अनुभव कर सकते हैं। यदि कुछ मामलों में सफलता, जन-साधारण की आशाओं और संघ द्वारा किये गये प्रयत्नों के अनुरूप नहीं मिल सकी, तो हमें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि समस्त संसार में यह विश्वास पैदा करना कि आपसी मतभेद दूर करमे का सबसे अच्छा तरीका शान्तिपूर्ण बातचीत ही है, कोई सरल काम नहीं है। इसके लिए केवल यही आवश्यक नहीं कि हम अपनी कार्य-प्रणाली बदल डालें बल्कि हृदय और विचारधारा का परिवर्तन भी आवश्यक है। निश्चय ही यह काम धीरे-धीरे ही किया जा सकता है।

जो वर्ष कल समाप्त हुआ, उसकी अवधि में संयुक्त राष्ट्र संघ उस काम को आगे बढ़ाने में व्यस्त रहा है जो कोरिया में युद्धबन्दी के कारण उसे हाथ में लेना पड़ा। सौभाग्य से हाल ही में अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस के अध्यक्षों का जो सम्मेलन जेनेवा में हुआ था उसके परिणामस्वरूप विश्व के वातावरण में काफी सुधार हुआ और तनाव में कमी हुई है। यह स्थिति संसार के लिए शुभ है और इसका हम स्वागत करते हैं। हम भारतवासी इन गतिविधियों का विशेष रूप से स्वागत करते हैं क्योंकि ये अहिंसा और सह-अस्तित्व के हमारे आदर्शों के अनुकूल हैं, और यही आदर्श पंचशील के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस के अवसर पर सन्देश, २४ अक्तूबर, १९५५

इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयत्न तो बहुत मूल्यवान हैं ही, परन्तु विश्व स्वास्थ्य संघ, खाद्य और कृषि संगठन तथा यूनेस्को आदि संघ की अनेक शाखाएँ जो कार्य कर रही हैं, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं। ये संस्थाएँ केवल अस्वास्थ्य और अज्ञानता के निराकरण का ही कार्य नहीं कर रहीं, बल्कि ये संसार के राष्ट्रों को एक-दूसरे के निकट लाकर संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों को भी लोकप्रिय बना रही हैं। मैं आशा करता हूँ कि ये सभी कार्य प्रतिवर्ष आगे बढ़ते जाएँगे जिससे न्याय, शान्ति और सम्पन्नता, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्श हैं, अधिक लोकप्रिय और व्यापक हो सकें।

भारत तथा ईरान

ईरान के महामहिम शहनशाह तथा महिष्मति सम्राज्ञी के भारत में शुभागमन के अवसर पर मैं आज भारत के लोगों की, भारत सरकार की और अपनी ओर से उनका हृदय से स्वागत करता हूँ।

यह सर्वविदित है कि ईरान और भारत के सम्बन्ध सदियों पुराने हैं। ईरान की चर्चा मात्र से एक भारतवासी के हृदय में प्राचीन बन्धुत्व और ऐतिहासिक एकता के उद्गार जाग उठते हैं। प्राचीन काल में, जिसे हम इतिहास का उषाकाल कह सकते हैं, हमारे और ईरान के लोगों के पूर्वज प्रायः एक ही कबीले अर्थात् आर्य जाति के लोग थे।

ईरान की उस समय की भाषा वैदिक और संस्कृत में बहुत सादृश्य था। उस समय से ही ईरान और भारत के बीच साहित्य, कला तथा संस्कृति का बराबर विनिमय होता रहा है। बादशाह दारा महान् के समय से भारत में मुग़ल साम्राज्य के अन्त तक इस आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप ईरान और भारत का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ता रहा। फारसी भाषा के बहुत से शब्द आज भी इस देश की भाषाओं में घुलमिल कर उनके ही अंग बन गये हैं। मुसलमान बादशाहों के जमाने में राजकीय कारबार के लिए फारसी का ही उपयोग होता था और हाल तक फारसी का अध्ययन-अध्यापन बहुत प्रचलित था। बहुतेरे भारतीय घरों में फारसी में ही सब काम हुआ करता था और उन दिनों के प्रतिष्ठित शिक्षित समाज में सर्वत्र फारसी का ही उपयोग होता था। इसी कारण हमारी देशी भाषाओं में फारसी के बहुत से शब्द आ गये हैं जो आज भी प्रचलित हैं। इस देश की संस्कृति पर ईरानी

ईरान के शहनशाह के सम्मान में आयोजित राजकीय भोज के अवसर पर भाषण, १७ फरवरी, १९५६

संस्कृति का भी काफी प्रभाव पड़ा है और मुस्लिम शासन के समय में ईरान के साथ भारतवर्ष का जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ, वह अधिकतर फारसी भाषा द्वारा ही हुआ था।

विचारों के क्षेत्र में भी इस आदान-प्रदान का प्रभाव कम नहीं पड़ा। धार्मिक विश्वास और दर्शन के क्षेत्र में ईरान और भारत में काफी समानता रही है। एक देश से दूसरे देश में अग्नि तथा सूर्य की पूजा पहुँची और प्रायः एक ही आधार को लेकर कालान्तर में भारत में वेदान्त तथा ईरान में सूफी मत का उदय हुआ।

जहाँ भारत के लोग ईरान के साथ इन ऐतिहासिक सम्बन्धों पर गर्व करते हैं, वहाँ हमें यह देख कर भी प्रसन्नता होती है कि आधुनिक काल में हमारे आपसी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण और सद्भावना से ओतप्रोत हैं। मानव प्रयास के विभिन्न क्षेत्रों में सदियों से चली आने वाली समानता तथा पारस्परिक आदान-प्रदान और आधुनिक काल के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के कारण भारतवासी स्वभाविक रूप से ईरान के लोगों को अपने सच्चे मित्र और शुभ-चिन्तक समझते हैं। यदा-कदा हममें किसी बात पर मतभेद भी हो सकता है, किन्तु हमारी मैत्री का आधार—पारस्परिक सद्भावना तथा समादर—इतना पक्का है कि वह मतभेद का भार सह सकता है और हम पारस्परिक बातचीत द्वारा किसी भी सामान्य समस्या के निबटारे के लिए सदा उस पर निर्भर रह सकते हैं।

मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि भारत सरकार और इस देश के लोगों की यह उत्कट इच्छा है कि हमारे दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध यथापूर्व मैत्रीपूर्ण बने रहें। इस देश में आपके शुभागमन द्वारा वे सम्बन्ध निश्चय ही और भी सुदृढ़ हो जाएंगे।

इस देश के लोगों की, भारत सरकार की और अपनी ओर से मैं महामहिम शहन-शाह तथा महिष्मती सम्राज्ञी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर उन्होंने भारत आने की कृपा की। मेरी यह कामना है कि इस देश में महा-महिम तथा महिष्मती सम्राज्ञी का प्रवास सुखद हो।

नेपाल को भारत की शुभकामनाएँ

आज मैं आपके बीच उपस्थित होकर प्रसन्न हूँ। पिछले वर्ष हमें भारत में आपके प्रख्यात नरेश महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रमशाह देव और महिष्मती महारानी का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी भारत-यात्रा से जो उमंगें उठीं, उनकी स्मृतियाँ अभी तक लोगों के हृदयों में हैं। उस यात्रा का ऐतिहासिक महत्व था। इससे हमारे प्रेम और मैत्री के बहुत से पुरातन सम्बन्ध फिर से नये और दृढ़ हो गये। मैं महामहिम राजदम्पत्ति एवं नेपाल सरकार का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस महान् देश में आने का निमन्त्रण दिया और इस प्रकार मुझे आपके इस सुन्दर नगर को देखने तथा आपसे मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैं आप सबको भारत सरकार तथा भारतवासियों की सद्भावनाएँ तथा शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ।

प्राचीन समय से, नेपाल बहुत सी संस्कृतियों के संगम का देश रहा है। आपकी शान्ति और सहिष्णुता की परम्परा बड़ी प्राचीन है। आज के संकटापन्न समय में, ये गुण केवल नेपाल की समृद्धि और कल्याण के लिए ही नहीं बल्कि समस्त संसार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। गत शताब्दियों से हमारे दोनों देशवासियों के बीच जो अटूट मैत्री चली आ रही है, उस पर जोर देना मुझे अनावश्यक प्रतीत होता है। भारतवासियों की भाँति नेपाल की जनता भी आजकल दरिद्रता, अशिक्षा, रोग एवं अनेक अभावों को दूर करने में संलग्न है जिससे अतीत में उनकी वृद्धि एवं उन्नति अवरुद्ध रही है। हम भारतवासी यह जानकर विशेष प्रसन्न हैं कि आपने आर्थिक विकास के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू कर दी है। भारत में हम अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना में सफल रहे हैं और अब हमने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निहित विकास के बड़े कार्यक्रम का श्रीगणेश कर दिया है। इस महान् देश के पुनर्निर्माण के साहसिक कार्य में हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। आपके शुभ कार्य को समुन्नत करने के लिए जो भी सहायता सम्भव होगी, उसे आपको देने के लिए हम सदैव उद्यत रहेंगे।

शान्ति की भाँति समृद्धि भी अविभाज्य है। पड़ोसी देशों में ऐसा विशेष रूप से होता ही है। मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि हम आपकी उन्नति एवं विकास

काटमाण्डू नगरपालिका के मानपत्र के उत्तर में भाषण, २१ अक्तूबर, १९५६

में उतनी ही अधिक रुचि रखते हैं जितनी अपनी उन्नति और विकास में। इन प्राचीन सम्बन्धों में, जिनसे हमारे दोनों देश बंधे हैं, अब शान्ति की कामना और बढ़ गयी है। समस्त देशों के लिए शान्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण है परन्तु एशिया और अफ्रीका के अविकसित देशों के लिए यह विशेष महत्व की है। हमारे देशों की प्रगति सदियों से अवरुद्ध रही है, इसलिए हमें सदियों की इस कमी को पूरा करने के लिए अनवरत शान्ति की नितान्त आवश्यकता है।

भारत सरकार और भारत के निवासियों की यह कामना है कि नव-नेपाल ने निर्माण का जो साहसपूर्ण कार्य आरम्भ किया है उसमें वह तेजी से आगे बढ़े। आपने शुभारम्भ कर दिया है और हमें विश्वास है कि जैसे-जैसे आपकी योजनाएँ अग्रसर होती जाएँगी, वैसे-वैसे आप प्रगति करते जाएँगे। नेपाल की जनता के सुख एवं समृद्धि के लिए मैं भी अपनी शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ।

एक बार फिर, मैं अपनी और अपनी पत्नी की ओर से महामहिम महाराजाधिराज तथा महिष्मती महारानी के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ कि उन्होंने हमें नेपाल आने का अवसर प्रदान किया। मुझे आशा है और मेरी प्रार्थना है कि महामहिम के सुखद एवं प्रगतिशील शासन में नेपाल उत्तरोत्तर फलता-फूलता रहेगा।

भारत तथा नेपाल

नेपाल के हमारे अल्पकाल के प्रवास में जो स्नेह आपने तथा आपकी जनता ने हमें दिया है, उसके लिए मैं अपनी, भारत सरकार की तथा भारतीय जनता की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ।

मैं आपको, आपकी सरकार और आपकी जनता को भारत सरकार और भारत की जनता की बन्धुत्वपूर्ण सद्‌भावनाएँ एवं शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ। मुझे जो सहृदयता और मैत्री यहाँ मिली है, मैं अपने साथ उसकी बड़ी सुखद स्मृतियाँ ले जाऊँगा। यह स्वाभाविक है कि हमारे दोनों देशों के निवासी एक-दूसरे के प्रति स्नेह, समादर एवं मैत्री के निकट सम्बन्धों का अनुभव करें, क्योंकि हमारे युगयुगीन सम्बन्ध संस्कृति, धर्म, भाषा और अन्य समान हितों पर आधारित हैं। हमारे दोनों देश एक ही उप-महाद्वीप के दो ऐसे भाग हैं जो सदा बन्धुत्व और मैत्री की भावना से ओतप्रोत रहे हैं। आपके महान् देश की शान्ति और समृद्धि में भारतवासियों की बड़ी रुचि है और मुझे विश्वास है कि

काठमाण्डू में राजकीय भोज के अवसर पर भाषण, २२ अक्तूबर, १९५६

हमारी शान्ति और समृद्धि में आपकी भी समान रुचि है। आज भारत में जो हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया नेपाल पर होनी अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार नेपाल में जो होता है, उसकी प्रतिक्रिया भारत पर होती है। हमारे सामने समान समस्याएँ हैं और हम समान आदर्श के पुजारी हैं। हम दोनों ही अल्पविकसित देश हैं और हम इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि हमारी साधारण जनता का जीवन-स्तर समुन्नत हो। हमने भारत में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना अभी पूरी की है और दूसरी का श्रीगणेश कर दिया है। आपने भी अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्त करके दूसरी आरम्भ कर दी है। हमारा अनुभव आपके सामने है और हम यथाशक्ति आपके देश की प्रगति और विकास में सहायता के लिए उद्यत रहेंगे।

पिछले कुछ वर्षों में एशिया के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत और नेपाल दोनों ने इन परिवर्तनों का अनुभव किया है। सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के दिन सदा के लिए लद चुके हैं। हमें विश्वास है कि युद्ध की विभीषकाएँ भी समाप्त हो चुकी हैं और अब पृथ्वी पर शान्ति और सद्भावना का साम्राज्य होगा। इस समान लक्ष्य की ओर हमारे दोनों देशों को एक-साथ कदम बढ़ाना है, क्योंकि शान्ति केवल हम दोनों के लिए ही नहीं, बल्कि एशिया और संसार के लिए भी परमावश्यक है।

भारत और नेपाल अतीतकाल से अटूट और सुदृढ़ बन्धनों में एक दूसरे से बंधे हुए हैं। इन बन्धनों ने हमें विगत शताब्दियों में साथ रखा है, और मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी ये हमें साथ रखेंगे। आपका और हमारा देश सबके प्रति शान्ति और मैत्री की नीति का अनुसरण करता है। इस कारण जो आपके मित्र हैं, वे हमारे भी मित्र हैं और जो हमारे मित्र हैं वे आपके भी मित्र हैं। यदि नेपाल की शान्ति और सुरक्षा पर किसी प्रकार का संकट आता है, तो उससे भारत की शान्ति और सुरक्षा भी संकट में पड़ जाती है। हम सैनिक समझौतों अथवा गठबन्धनों में विश्वास नहीं रखते। हमारा विश्वास है कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े शान्तिपूर्ण बातचीत से ही तय किये जा सकते हैं। हम किसी भी देश की प्रभुसत्ता तथा अखण्डता को संकट में देखना नहीं चाहते और न हो किसी भी देश को हमसे लेशमात्र भी भय हो सकता है। हमारा विश्वास है कि इन आदर्शों और आकांक्षाओं में नेपाल हमारे साथ है और हम नेपाल के साथ हैं।

पिछले वर्षों में हमारे सम-दृष्टिकोण, सम-हित और हमारे पारस्परिक बन्धन विशेष रूप से सुदृढ़ हुए हैं और हम आशा करते हैं कि भविष्य में हम उन्हें और सुदृढ़ बना सकेंगे।

हमारी सांस्कृतिक विरासत के बहुत से स्वरूपों को नेपाल ने भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि भारतवर्ष के बहुत से लोगों के हृदय में नेपाल के लिए एक विशिष्ट स्थान है। हाल की घटनाओं ने हमें एक-दूसरे के समीप ला खड़ा किया है और हम आशा करते हैं कि पारस्परिक सहयोग और विश्वास तथा पारस्परिक मैत्री एवं समादर के द्वारा हम लोग साथ-साथ बढ़ते हुए, अपने समान लक्ष्य

और आदर्शों को प्राप्त करने में सफल होंगे। हमारे दोनों देशों की घनिष्ट मैत्री और सम्बन्ध एशिया के अन्य देशों और संसार के लिए उदाहरण हैं, और इनसे शान्ति को सुरक्षित बनाये रखने में बड़ा बल मिला है।

भारत-नेपाल मैत्री अमर रहे

मैं आपका बहुत ऋणी हूँ कि आपने मुझे यह सुअवसर प्रदान किया कि मैं आप से मिल सकूँ और आप जिस मैत्री संघ के निर्माता हैं, उस संघ के साथ मैं भी अपना नाता जोड़ सकूँ।

भारत और नेपाल के बीच अनन्त काल से एक ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है, जिसका न तो कोई पर्याप्त वर्णन किया जा सकता है और न जिसको कोई ऊपर से समझना चाहे तो समझ सकता है, क्योंकि वह केवल ऊपर की चीज़ नहीं, वह हृदयों में बिल्कुल व्याप्त है।

आपने ठीक ही कहा है कि कुछ अलौकिक पुरुष जिन पर भारत गर्व करता है, इसी देश में पैदा हुए जहाँ आप हैं। आज यदि संसार और विशेषकर भारत राजा जनक के दर्शन और उपनिषद् को पढ़कर आह्लादित और उत्तेजित होता है, तो वह दान आपके यहाँ से ही हमको मिला है। आज हम राजा जनक के सिद्धान्तों को केवल उपनिषद् तथा ग्रन्थों को पढ़कर ही नहीं जानते, बल्कि उनका उदाहरण हमारी रग-रग में, हमारी रग के बूंद-बूंद में, हमारी भूमि के कण-कण में भरा हुआ है और इतना ही नहीं, आपने हमें माता सीता भी दी जो आज हमारी महिलाओं में सबसे बड़ी, सबसे ऊँची, सबसे अधिक पवित्र तथा सबसे अधिक पूज्या मानी जाती हैं। हम तो उनको अवतार का रूप देते हैं और उनको देवी समझ कर पूजते हैं। बुद्ध देव ने सारे संसार को चकित किया और आज भी जहाँ तक मैं समझता हूँ, संसार में जितने धर्म हैं उनमें एक धर्म के मानने वाले सबसे अधिक कोई हैं तो शायद वे बौद्ध ही होंगे। यह भी आपकी ही देन है। इतना जब आपने किया, तो हमने उस सबको ग्रहण ही नहीं किया, बल्कि अपना बना लिया और आज हम उसको आपका न समझकर अपना ही समझने लग गये हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

आज भारत में किसी से पूछा जाये तो वह यह नहीं कहेगा कि बुद्ध किसी विदेश के

काठमाण्डू में नेपाल-भारत मैत्री संघ द्वारा दिये गये मानपत्र के उत्तर में भाषण, २४ अक्तूबर, १९५६

थे अथवा सीता कहीं विदेश से आयी थीं अथवा राजा जनक के पास हम दर्शन सीखने गये थे तो किसी विदेशी के पास गये थे। राजनीतिक चक्र और दूसरी प्रकार की घटनाओं के कारण चाहे हमारे शासन अलग-अलग रहे हों और आज भी हैं, और जब तक हम कायम हैं, रहेंगे परन्तु हमारा जो पारस्परिक सम्बन्ध है वह अधिक गम्भीर और मेरी समझ में अधिक मूल्यवान है। वह सम्बन्ध अटूट है और सदा से रहा है और सदा रहेगा। वह अटूट इसलिए है कि उसको बांधने के लिए लोहे की जंजीर की जरूरत नहीं, सोने की जंजीर की भी जरूरत नहीं बल्कि वह हृदय के तन्तुओं से मजबूत बंधा है जो कभी टूट नहीं सकता। इस तरह का हमारा और आपका सम्बन्ध आज से नहीं, न मालूम कितने दिनों से है और यदि हम यह कहें कि उसका कभी आरम्भ हुआ ही नहीं, वह सदा से रहा है तो भी उसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

इसलिए हमें इस बात का खेद रहा करता था और मैं सदा सोचा करता था कि हम इतने निकट होते हुए भी एक-दूसरे से इतने अलग क्यों हैं? व्यक्तिगत रूप से तो मैं आपके बहुत निकट का रहने वाला हूँ, आपके इतने निकट का रहने वाला हूँ कि आपके पहाड़ों की हजारों चोटियों को मैं अपने घर से भी देख सकता हूँ। तो मेरे लिए यह एक अत्यन्त दुखद स्थिति थी कि मैं आज से पहले यहाँ न आ सका और आपसे सदेह परिचय नहीं कर पाया था। ऐसा सुअवसर महाराजाधिराज ने जब मुझे दिया तो मैंने धन्यवादपूर्वक तुरन्त उसे स्वीकार किया और उसी दिन से इस दिन की प्रतीक्षा करने लगा कि मैं यहाँ कब पहुँच सकूँगा। वह दिन आया है। जबसे मैं यहाँ आया हूँ, जो भावनाएँ अपनी कल्पना में संजोयी हुई थीं, वे सब यहाँ मुझे मूर्तस्वरूप देखने में आयीं। मैं समझता हूँ कि करोड़ों की संख्या में जनता ने स्नेह, प्रेम तथा उत्साह का जो प्रदर्शन किया है, उसे मैं भूलने का नहीं। मैं मानता हूँ कि आपका और हमारा सम्बन्ध सदा के लिए अटूट है और रहेगा।

आपने ऐसी संस्था कायम करके जो हमको उस बात की याद दिलाती रहे, अच्छा ही किया। इस प्रकार की मैत्री को हमेशा जागृत रखने के लिए भारत में भी एक संस्था बनी है और मैं समझता हूँ कि आपकी इस संस्था का उसके साथ सम्पर्क होगा। यह तो सामूहिक जीवन का एक स्वाभाविक अंग है कि जब दो चीजें इकट्ठी होती हैं तो चाहे उनका सम्बन्ध कितना भी घनिष्ट क्यों न हो, कभी-कभी आपस में टक्कर हो ही जाती है, कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जिनको हम अच्छी तरह से समझ नहीं पाते। परन्तु ये सब चीजें ऐसी हैं जो आती हैं और जाती हैं पर अन्दर से जो दृढ़ सम्बन्ध बना रहता है, वह सदा बना रहता है, टूटता नहीं। हमारे और आपके देश में सौभाग्य से आज इस प्रकार की कोई बात है भी नहीं और मैं आशा करूँगा कि इस प्रकार की बात कभी नहीं होने पाएगी। तो भी दूरदर्शिता के विचार से मैं कह देना चाहता हूँ कि हम सबको सदा स्मरण रखना चाहिए कि हमारा सम्बन्ध अटूट है।

आपने हिमालय का उल्लेख किया। हिमालय को हम तपोभूमि मानते हैं। हमारा सारा साहित्य, हमारी सारी संस्कृति और हमारा सारा दर्शन प्राचीन काल में इन पहाड़ों में,

इनकी गुफाओं में पैदा हुए और यदि मैं यह कहूँ कि आज भी वे ऐसे स्थानों में ही जीवित हैं तो ऐसा कहना गलत न होगा। तो आपकी देन केवल पुरानी ही देन नहीं है। आपकी देन आज भी है और हम चाहते हैं कि यह सदा बनी रहे।

इसके अतिरिक्त आज संसार में नयी प्रथाएँ चल रही हैं और विज्ञान की प्रगति इतनी तेज़ी के साथ होती जाती है कि उससे न तो हम अपने को अलग रख सकते हैं और न आप। कोई भी अपने को उससे अलग नहीं रख सकता। यदि अलग रखने का प्रयत्न किया जाये तो वह केवल असफल ही नहीं होगा, बल्कि हमारे लिए हानिकर भी होगा। अतः हमें अपने को इस योग्य बनाना है कि हमें उसमें स्थान मिल जाये और जो भी स्थान मिलेगा उसमें आपका भी उतना ही काम है जितना कि हमारा। इसलिए उसी मार्ग पर हम दोनों को तेज़ी के साथ चलना है और एक-दूसरे की सहायता और सहयोग से जो कुछ भी लाभ हमको मिल सकता है, उसे हमको लेना है। मैं भारत की ओर से इतना ही कह सकता हूँ कि आपके इस उद्देश्य में जितने भी कार्यक्रम होंगे, उनमें हमसे जो कुछ भी आपकी सेवा हो सकती है, हम सदा करने के लिए तैयार हैं। आपके यहाँ जो समस्याएँ हैं, वे ही समस्याएँ हमारे सामने भी हैं। यदि उनमें कोई अन्तर है तो यही कि हम उनको दूर करने में कुछ आगे कदम उठा सके हैं और आप अब उठा रहे हैं। थोड़ा-बहुत हमको अनुभव हुआ है और आपको वह अनुभव करना है। हमने जो सफलता पायी है, उससे आप लाभ उठा सकते हैं, हमने जो गलतियाँ की हैं उनसे आप चेतावनी ले सकते हैं और आगे जो होगा उससे भी आप पूरा लाभ उठा सकते हैं।

मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप निशंक और निर्भीक रहें। भारत यदि अपने को सम्हाल सके, अपनी उन्नति कर सके तो उतने से ही वह अपने को बड़ा भाग्यवान समझेगा और यदि उसके साथ-साथ वह आपको भी उन्नति करने में कुछ सहायता कर सके तो वह उसके लिए और भी बड़ा सौभाग्य होगा। भारत ने हज़ारों वर्ष लम्बे अपने इतिहास में अपनी ओर से किसी देश पर न तो आक्रमण ही किया और न किसी देश पर आधिपत्य जमाने का कभी प्रयास किया। भारत को बहुतेरे विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा. बहुतेरों के सामने उसे झुकना भी पड़ा। विदेशी साम्राज्य से जो कुछ भी अपमान हो सकता है, उसको भी भारत ने बहुत दिनों तक झेला। यद्यपि अब हम उन सबसे अपने को मुक्त कर चुके हैं तो भी उनसे कितना कष्ट होता है, यह हम नहीं भूले हैं। इसलिए हमारे हृदय में किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है। आज भारत में एक भी आदमी ऐसा नहीं होगा जो यह सोचता हो कि हमारा किसी विदेश पर आधिपत्य हो और हम अपने लाभ के लिए वहाँ जाकर कोई संस्था स्थापित करें। यदि हम कहीं जाएँगे तो बुलाने पर ही जाएँगे। यही हमारी नीति है।

हम बार-बार इस बात की घोषणा कर चुके हैं कि हम सारे संसार में शान्ति चाहते हैं। वह शान्ति हम एक प्रकार से स्वार्थ बुद्धि से चाहते हैं क्योंकि यदि संसार में शान्ति नहीं रही तो हम भी अपनी शान्ति नहीं रख सकेंगे और अशान्ति का फल हमारे लिए औरों की अपेक्षा अधिक बुरा होगा, क्योंकि हम अभी ऐसी स्थिति में हैं कि हमारे यहाँ

रचनात्मक काम की बड़ी आवश्यकता है और हम अपनी त्रुटियों को दूर करना चाहते ह। उसके लिए शान्ति आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। हमारी यह नीति सारे संसार के लिए तो है ही, आपके लिए विशेष रूप से है क्योंकि आपका और हमारा सम्बन्ध अन्य किसी देश की अपेक्षा कहीं अधिक घनिष्ट है। ईश्वर तथा प्रकृति ने हम दोनों को इस प्रकार से इकट्ठा बांध दिया है कि नदियों से, पहाड़ों से, संस्कृति से तथा रहन-सहन से हमारा एक-दूसरे के साथ काफी सम्बन्ध है और हम दोनों सारे संसार में शान्ति बनाये रखने के सबसे अधिक इच्छुक हैं।

मैं आशा करता हूँ कि आपकी संस्था इस काम में सदा प्रयास करती रहेगी और इस काम में उसे सफलता भी मिलेगी। इसी प्रकार की संस्था भारत में भी प्रयास करती रहेगी। आपकी और हमारी सरकारों के बीच सम्पर्क और सद्भावना बनी रहेगी। मैं आशा करता हूँ कि जब केवल सरकार ही नहीं बल्कि दोनों देशों की जनता भी यही चाहती है, तो हम अवश्य ही आगे बढ़े बिना नहीं रह सकते। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमको सद्बुद्धि दे कि हम मिलजुलकर आगे बढ़ने का प्रयास करें।

भारत तथा यूनेस्को

एशिया में प्रथम बार होने वाले इस महासम्मेलन में भाग लेने के लिए विभिन्न देशों से आये हुए आप सब प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मुझे आशा है कि इस देश में आपका प्रवास सुखद और लाभप्रद होगा और अपने-अपने देश को लौटने से पहले आपको भारत के सम्बन्ध में कुछ देखने और जानने का समय मिल सकेगा।

यह खेद का विषय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग के महासम्मेलन का उद्घाटन आज ऐसे समय हो रहा है जब मध्यपूर्व में कुछ दिन से सशस्त्र मुठभेड़ हो रही है, जिसके कारण विश्व के सभी शान्तिप्रिय लोगों और राष्ट्रों को बहुत क्लेश है। यह बड़ी दुखद घटना है कि ऐसे अवसर पर जब कि एक प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन है और उसे सुलझाने के लिए संघ के कई सदस्य-राष्ट्र सद्भावनापूर्ण प्रयत्न करते रहे हैं और अब भी कर रहे हैं, उसी प्रश्न को लेकर उसका निपटारा करने के उद्देश्य से हिंसा का आश्रय लिया गया है। हमें इस बात का भी दुख है कि पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने के लिए स्थापित की गयी एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की अवहेलना की गयी

यूनेस्को महासम्मेलन में भाषण, ५ नवम्बर, १९५६

है, किन्तु इसके साथ ही इस बात से कुछ सन्तोष भी होता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को, जो इस प्रकार के पशुबल के प्रयोग का विरोध कर रहा है, समस्त संसार का समर्थन प्राप्त है। तीन दिन पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में प्रबल बहुमत से पास हुए उस प्रस्ताव से, जिसमें युद्ध-बन्दी और मिस्र की सीमा से विदेशी सेनाएँ तत्काल हटाने का आदेश है, यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार का जनमत बल-प्रयोग का विरोधी है। हमें आशा है कि शान्ति और सद्भावना के समर्थक तत्व और जोर पकड़ेंगे, जिससे किसी भी राष्ट्र द्वारा हिंसा का प्रयोग किया जाना बिलकुल असम्भव और निरर्थक हो जाएगा।

हंगरी की स्थिति भी बहुत गम्भीर है और सभी शान्ति तथा स्वाधीनता प्रेमी राष्ट्रों के लिए वह चिन्ता का विषय बनी हुई है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जितने भी विशिष्ट विभाग खोले हैं, उनमें मेरे विचार से शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति संगठन जो 'यूनेस्को' के नाम से प्रसिद्ध है, सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि हम मानव के मन का विश्लेषण करें और विगत इतिहास के घटनाचक्र पर विचार करें, तो हम देखेंगे कि एक दूसरे के प्रति सन्देह तथा अविश्वास का मूल कारण एक-दूसरे के रहन-सहन और जीवन-यापन के ढंगों को न जानना है। ये सन्देह और अविश्वास ही पारस्परिक मतभेदों के आधार हैं, जिनके कारण राष्ट्रों में युद्ध होते हैं। युद्ध का तात्कालिक कारण भले ही राजनीतिक हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संघर्ष के कारण आर्थिक, साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक भी होते हैं। यदि हम स्थायी शान्ति चाहते हैं तो हमें उन सभी कारणों को समझ लेना चाहिए जिनसे संघर्ष की उत्पत्ति होती है और हमें उन सबको दूर करने का उपाय करना चाहिए। यूनेस्को का सम्बन्ध संघर्ष के एक आधारभूत कारण अर्थात् सांस्कृतिक मामलों से है। इसलिए विभिन्न राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट लाने और विश्व के सब देशों के भावात्मक संगठन के प्रयास पर इस संगठन के कार्यक्रम और उसकी सफलता का सीधा प्रभाव पड़ेगा।

यूनेस्को के कार्यक्षेत्र में ऐसे मौलिक विषय सम्मिलित हैं जो राष्ट्रों में बौद्धिक सहयोग का मार्ग प्रशस्त करते हैं और संसार में स्थायी शान्ति की नींव डालते हैं। इसलिए यूनेस्को के उद्देश्य और उसके कार्यक्रमों का अत्यधिक महत्व है।

यह सभी स्वीकार करेंगे कि शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति ऐसे मानवीय प्रश्न हैं जो सार्वभौम हैं और जिनका महत्व सब राष्ट्रों के लिए, चाहे वे उन्नत हों या पिछड़े हुए, पश्चिमी भूभाग में हों अथवा पूर्व में, एक जैसा है। एक लाभ की बात यह भी है कि ये तीनों प्रश्न किसी भी प्रकार के विवाद से परे हैं। इसलिए यूनेस्को के उद्देश्य और कार्यक्रम के बारे में दो मत नहीं हो सकते। मेरी यह धारणा है कि मानव में मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय प्रतिष्ठा पुनर्संस्थापित करने और उसमें उचित ढंग से नैतिक तथा सामाजिक गुणों का विकास करने में यूनेस्को को एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य करना है। शिक्षा तथा विज्ञान के प्रसार द्वारा मानवीय संस्कृति की आधारभूत एकता को प्रमाणित करके, यह संस्था मानव-हृदय के उन विचारों को दूर कर सकती है जिनसे संघर्ष का जन्म होता है। ऐसे

विचारों का सुधार, जो विजेता तथा पराजित दोनों के लिए हानिकारक होने के बावजूद पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने के लिए युद्ध को अनिवार्य नहीं तो वैकल्पिक उपाय के रूप में अवश्य स्वीकार करते हैं विश्व-शान्ति के लिए आवश्यक है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि जहाँ सुरक्षा परिषद् सरीखी संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य परिषदें तात्कालिक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करती हैं, यूनेस्को का कार्य इन समस्याओं के स्रोत की देखभाल कर उसे ठीक करना है। स्रोत को ही ठीक कर लेने से सारी गतिविधि मानव के हित के अनुकूल बदल सकती है। यह कार्यक्रम ठीक उसी प्रकार वैज्ञानिक और प्राकृतिक है जैसे नदी के जल पर नियन्त्रण करने के लिए उसके उद्गम स्थान पर बाँध बनाना होता है न कि उसके प्रवाह मार्ग पर, जहाँ बढ़ा हुआ पानी विध्वंसक बाढ़ का रूप ले लेता है।

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि यूनेस्को के कार्यक्रम के बारे में लोगों की जानकारी इतनी व्यापक है। शिक्षा, सांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग सम्बन्धी मामलों में भी इसके प्रयत्न सफल होने लगे हैं। हम सबके लिए यह एक शुभ लक्षण है कि राजनीतिक तड़क-भड़क से दूर इस रचनात्मक कार्यक्रम को विश्व-व्यापी मान्यता मिलने लगी है। कला और साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न देशों की सफलताएँ प्रकाशस्तम्भ के समान हैं जो गहन अन्धकार में मानव जाति का पथ आलोकित करते हैं। कलाकृतियों में सार्वभौमिकता की झलक है और वे राजनीतिक, जातीय और राष्ट्रीय सीमाओं से परे हैं। मानवीय एकता और उद्देश्य तथा महत्वाकांक्षा की समानता का यही स्रोत है। मानव, मानव को पहचान सके और इस प्रकार अपने-आपको जान सके, इसलिए यह आवश्यक है कि जीवन के इस पक्ष पर ज़ोर दिया जाये। यह एक ऐसा कार्य है जिसे प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि चिरकाल से संसार में पारस्परिक मतभेद और वैमनस्य का बोल-बाला रहा है।

यूनेस्को के दीर्घकालीन कार्यक्रम में मानव जाति की इस आवश्यकता को पूरा करने की क्षमता है। आवश्यक जानकारी और ज्ञान के आदान-प्रदान द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में मानवीय सत्प्रयास और सफलताओं का सामान्य भण्डार तैयार हो सकता है जिससे सभी राष्ट्र लाभ उठा सकते हैं और एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। ऐसे कार्यक्रम का सभी स्वागत करेंगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगोष्ठी, सम्मेलन, पुस्तकालय, संग्रहालय, साक्षरता-आन्दोलन आदि जिन माध्यमों को आप अपनाते हैं, मेरे विचार में वे सफलता के बहुमूल्य साधन हैं।

मैं आशा करता हूँ कि इस महासम्मेलन की कार्यवाही के फलस्वरूप इन आधारभूत तथ्यों को अधिक मान्यता मिलेगी, और यह महासम्मेलन शिक्षा तथा ज्ञान के प्रसार द्वारा विश्व के राष्ट्रों में स्थायी शान्ति स्थापित करने के हेतु सब देशों को बौद्धिक तथा भावात्मक एकीकरण के सूत्र में बांधने में सफल होगा। मैं आपके महासम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ और मेरी यह प्रार्थना है कि इसमें होने वाले विचार-विमर्श और विवेचनों के परिणामस्वरूप संसार में बौद्धिक सद्भावना तथा शान्ति का उदय हो।

भारत तथा इथियोपिया

भारत में इथियोपिया के महामहिम सम्राट तथा महामान्यवर राजकुमारियों और राजकुमार के शुभागमन के अवसर पर मैं अपनी, भारत सरकार तथा भारत के लोगों की ओर से उनका हार्दिक स्वागत करता हूँ। हमें बहुत प्रसन्नता है कि हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर महामहिम ने इस देश में आने की कृपा की है।

मुझे यह कहते हुए हर्ष हो रहा है कि इथियोपिया और भारत के सम्बन्ध बहुत मैत्रीपूर्ण हैं और हमें आशा है कि ये सम्बन्ध समय के साथ-साथ और भी अधिक सौहार्द-पूर्ण हो जाएँगे। भारत की भाँति इथियोपिया ने भी विदेशी शासन के कष्ट सहे हैं, किन्तु सौभाग्य से ठीक हमारी ही भाँति आज उन कठिनाइयों को पार कर वह भी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र देश है। सुख-दुख का हमारा समान अनुभव हमारे दोनों देशों के लोगों के लिए समान आदर्शों और महत्वाकांक्षाओं की ओर निर्देश करता है। हम अपनी स्वाधीनता को मूल्यवान वरदान मानते हैं, किन्तु इसके साथ ही दूसरे देशों की स्वतन्त्रता भी हमें उतनी ही प्रिय है। इसलिए यदि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में और विदेश नीति से सम्बन्धित बहुत-सी बातों में हम दोनों का समान दृष्टिकोण है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

हमें यह बात भलीभाँति स्मरण है कि आपकी सरकार ने भी बाण्डुंग में होने वाले एशिया-अफ्रीका महासम्मेलन में भाग लिया और उसके उद्देश्यों को स्वेच्छा से स्वीकार किया। इन्हीं दिनों इस देश में दिये गये अपने वक्तव्यों में महामहिम ने पंचशील के सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने की कृपा की है। इन सिद्धान्तों का आधार शान्ति, उन्नति और सह-अस्तित्व है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इन सिद्धान्तों पर चलने से प्रबुद्ध एशिया और अफ्रीका का ही कल्याण नहीं होगा, बल्कि समस्त संसार का भला होगा।

इन परिस्थितियों में मध्यपूर्व में घटने वाली हाल की घटनाओं से और वहाँ हुए सशस्त्र बल के प्रयोग से दूसरे शान्तिप्रिय देशों की भाँति हमें दुःख हुआ है। यह खेद की बात है कि यह सब ऐसे अवसर पर हुआ जब मध्यपूर्व का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचारा-

इथियोपिया के सम्राट के सम्मान में आयोजित राजकीय भोज के अवसर पर भाषण, ७ नवम्बर, १९५६

धीन था। अब वहाँ युद्धबन्दी की घोषणा हो गयी है। हमें आशा है कि अब सभी मामलों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझा लिया जाएगा और इस प्रकार न्याय के आधार पर शान्ति स्थापित की जाएगी। मेरा यह विचार है कि सभी शान्तिप्रिय देशों के सम्मिलित प्रयास, जिनमें इथियोपिया और भारत भी सम्मिलित हैं, सफल होंगे।

इस प्राचीन देश में आपका स्वागत करते हुए हम सबको बड़ा हर्ष हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इस देश में आपका प्रवास शुभ और सुखद होगा और आपके शुभागमन के फलस्वरूप हमारे दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाएँगे। एक बार फिर मैं इथियोपिया के महामहिम सम्राट के प्रति उनके यहाँ पधारने पर अपनी, भारत सरकार तथा भारत के लोगों की ओर से आभार प्रकट करता हूँ।

संघे शक्तिः कलौयुगे

आपने जिस उत्साह के साथ मेरा स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ। आपने ठीक ही कहा है कि मेरा यहाँ आना पहली बार नहीं है। मुझे जहाँ तक स्मरण है, यह पाँचवाँ समय है जब मैं आपके इस सुन्दर प्रदेश में आया हूँ। पहले-पहल जब १९२२ में मैं यहाँ आया था वह एक समय था और आज एक दूसरा ही समय है। उस समय मुझे यहाँ इसलिए आना पड़ा था कि देश के सारे बड़े-बड़े नेता जेल में बन्द थे। महात्मा गान्धी जी भी जेल में थे और प्रायः यहाँ के भी नेता जेल में थे। दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश किसी प्रकार मैं बाहर रह गया था और जब मुझे यह समाचार मिला कि इस प्रदेश में विशेषकर सरकार की ओर से बड़ी सख्ती हो रही है तो मैंने सोचा कि यहाँ आना आवश्यक है। पूज्य मालवीय जी से मैंने इसका जिक्र किया तो वह भी बड़ी प्रसन्नता के साथ यहाँ आने के लिए तैयार हो गये, यद्यपि उनकी अवस्था उस समय अधिक थी। मैं तो उस समय नवयुवक था। हम दोनों यहाँ आये, यह आज से ३२ वर्ष पहले की बात है और आपके इस सुन्दर प्रदेश का मुझे पहले-पहल परिचय मिला। कल जब मैं यहाँ आ रहा था तो मार्ग में मुझे वह जगह दिखलायी गयी जहाँ मैं बहुत कठिनता से रात भर बैलगाड़ी पर चल कर किसी प्रकार पहुँचा था। अब तो यहाँ पर कुछ-कुछ अच्छी सड़कें भी बन गयी हैं और कल मैं यहाँ कई मील दूर से मोटर गाड़ी पर चलकर पहुँचा। पर उन दिनों यहाँ पहुँचने का साधन केवल बैलगाड़ी थी और मुझे बैलगाड़ी से घनघोर जंगलों में यहाँ के तीन-चार स्वयंसेवकों के साथ जाना पड़ा था। जब मैं उन दिनों की तुलना आज से करता हूँ तो मालूम होता है कि इन ३२ वर्षों में कितना अन्तर पड़ गया है।

जो काम महात्मा गान्धी जी ने स्वराज्य का, देश को स्वतन्त्र करने का आरम्भ किया था वह काम देश के सौभाग्य, महात्मा गान्धी जी की तपस्या और सब लोगों के परिश्रम तथा त्याग से सफल हुआ। ५-६ वर्ष बीत चुके जब से हम स्वतन्त्र होकर पूरे दायित्व के साथ अपने देश का शासन चला रहे हैं। आज भारतवर्ष में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ के लोग अपना शासन स्वयं न चला रहे हों और हमारा जो संविधान तैयार हुआ है, उसमें भी इस बात का प्रयास किया गया है कि देश में लोकतन्त्र पूरी तरह से लागू किया

गोहाटी नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन पत्र के उत्तर में भाषण, २१ फरवरी, १९५४

जाये। समस्त संसार के लोगों को अब तक जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है, उसमें से जो भारत के लिए उपयुक्त मालूम हुआ उसको हमने स्वीकार किया है और अपने संविधान में स्थान दिया है। हमारे संविधान ने भारतवर्ष को जहाँ न मालूम कितने प्रकार के धर्म वाले लोग बसते हैं, कितनी ही भाषा बोलते हैं, जहाँ एक छोर से दूसरे छोर तक रहन-सहन, तौर-तरीके, खान-पान, सूरत-शकल सब कुछ भिन्न-भिन्न हैं, एक सूत्र में बांध कर एक लोकतन्त्र स्थापित किया है। यद्यपि यह बात सच है कि हमारे देश के, जिसको ईश्वर ने एक बनाया है, दो भाग कटकर अलग-अलग हो गये हैं तो भी आज भारतवर्ष का जितना क्षेत्रफल है और जिसका एकसूत्र राज्य एक संविधान के अधीन चल रहा है, उतने बड़े भारतवर्ष पर आज तक इतिहास के किसी भी समय में किसी राजा ने राज्य नहीं किया।

आप इसको गान्धी जी की तपस्या का फल समझें या आज संसार का जैसा वातावरण है उसका परिणाम समझें। परन्तु आज इतने बड़े देश के शासन का भार लोगों ने लिया है। वे लोग कौन हैं? प्रत्येक व्यक्ति पर, जो इस देश का निवासी है तथा जिसकी आयु २१ वर्ष की हो गयी है, इस शासन का दायित्व है। प्रत्येक मनुष्य ने, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अथवा किसी भी धर्म का मानने वाला हो, समान रूप से वोट देकर अपने प्रतिनिधि चुने और उन पर शासन का भार डाल दिया है। यदि हम दूसरे देशों का इतिहास देखें तो मालूम होता है कि इस स्थिति तक पहुँचने में उन्हें कितना समय लगा। संसार में अभी ऐसे देश भी हैं जहाँ २१ वर्ष की आयु के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को मतदान-अधिकार प्राप्त नहीं है। परन्तु हमने सबको पछाड़ दिया है और देश के प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को यह अधिकार दे दिया है कि वह अपना प्रतिनिधि चुने। पिछले वर्ष देश में जो चुनाव हुआ, वह ऐसा ही चुनाव था जिसका समकक्ष चुनाव संसार के इतिहास में आज तक और कहीं नहीं हुआ।

आप जानते हैं कि इस देश की जनसंख्या ३६ करोड़ है और इनमें से १७-१८ करोड़ ऐसे लोग हैं जो २१ वर्ष के हैं। इनको अपने प्रतिनिधि चुनने थे। प्रतिनिधियों की संख्या भी कुछ थोड़ी नहीं थी। सभी राज्यों और केन्द्र के प्रतिनिधियों को मिलाकर प्रायः ४,००० प्रतिनिधि चुने जाने थे। इसका संगठन करना एक बड़ा भारी काम था। हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि हमारे देश के लोगों और सरकारी कर्मचारियों ने मिलजुल कर इस कार्य को इतनी कुशलता से निभाया कि केवल चुनावों में ही सफलता नहीं मिली बल्कि उसका दूसरे देशों पर भी इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि आज सारे संसार में यह चुनाव एक नमूने के रूप में माना जाने लगा है। और इसीलिए एक अन्य देश में जब चुनाव के सम्बन्ध में इसी प्रकार की समस्या आयी तो हमारे सबसे बड़े चुनाव अधिकारी को वहाँ जाना पड़ा। वह वहाँ गये और उन्होंने वहाँ के चुनावों का इस कुशलता के साथ प्रबन्ध किया कि उससे इस देश का नाम और भी ऊँचा हो गया।

मैं इन बातों को इसलिए कह रहा हूँ कि यद्यपि हमें स्वतन्त्र हुए अभी ६ वर्ष ही हुए हैं, परन्तु इन ६ वर्षों में हमने बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना किया और उनसे बच

पाये हैं। हमने रचनात्मक काम पूरा किया। इसके अतिरिक्त आप जानते ही हैं कि स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश का बँटवारा हुआ और उसके कारण कई प्रकार की विपत्तियाँ हमारे सिर पर आयीं। उनमें से एक बड़ा भारी प्रश्न विस्थापित लोगों को फिर से बसाने का था। इस काम को हमारे यहाँ की केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने बड़ी कुशलता से बहुत परिश्रम और व्यय करके आज तक निबाहा है, और यद्यपि आज हम यह नहीं कह सकते कि वह काम पूरा हो गया है परन्तु इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि जहाँ तक हुआ है, अच्छा हुआ है और लोगों को इससे सन्तोष मिला है। हमने अकेले एक इतने बड़े प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया है और इसमें हमको काफी सफलता भी मिल चुकी है। अब हमें शेष प्रश्नों को हल करना है।

महात्मा गान्धी केवल राजनीतिक स्वराज्य नहीं चाहते थे। वह केवल यही नहीं चाहते थे कि सफेद रंग के अंग्रेजों के स्थान पर हमारे देश के साँवले रंग के हिन्दुस्तानी राज करने लग जायें। वह यह भी नहीं चाहते थे कि यहाँ कोई राजा हो तथा शेष प्रजा हों। सच बात तो यह कि हमने यहाँ न कोई राजा रखा है और न कोई प्रजा। यदि कहा जाये तो सभी राजा हैं या सभी प्रजा। सबके सब बराबर हैं। यह बात किसी एक ही राज्य या वर्ग के बारे में नहीं है, बल्कि सभी लोगों के बारे में है।

आपके राज्य के सामने बहुत से प्रश्न हैं और उसका कारण यह है कि यहाँ विभिन्न प्रकार के लोग बसते हैं। बहुत से आदिमजाति के लोग हैं जो बहुत तो पहाड़ों में हैं और कुछ मैदानों में आ गये हैं। दूसरे जो अपने को असमिया कहते हैं, वे लोग भी हैं। उनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के लोग हैं जो इस देश से मोहित होकर यहाँ बस गये हैं। यह एक सारे भारतवर्ष का नमूना है जहाँ विभिन्न प्रकार के लोग बसते हैं। भाषा तथा धर्म भी उनके भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ हिन्दू हैं, मुसलमान हैं और काफी संख्या में ईसाई भी हैं। आदिमजाति के लोग भी हैं जिनके रहन-सहन का ढंग अपना अलग है। इस प्रकार जब इस राज्य में विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं, तो इसका शासन भी वैसा ही होना चाहिए जिसमें सबको सन्तोष हो और सब सुखी रहें। संविधान में इस बात का प्रयत्न किया गया है और हम चाहते हैं कि यहाँ के सभी भाई-बहन, चाहे वे हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों या और किसी धर्म के मानने वाले हों, चाहे वह आदिमजाति के हों, पहाड़ पर रहने वाले हों, या मैदान में रहने वाले हों, सभी यह समझें कि वे असम के निवासी हैं और यह राज्य सारे भारतवर्ष का एक भाग है।

जैसे मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंग होते हैं, उसी प्रकार भारत के भी विभिन्न अंग हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि उनमें से कौन बड़ा है और कौन छोटा क्योंकि सब एक तरह से बराबर हैं। किसी अंग को सारे शरीर से अलग करना केवल उस अंग के लिए ही नहीं बल्कि सारे शरीर के लिए कष्टकर होता है। हम चाहते हैं कि असम के सभी लोग यह समझें कि सारे देश में उनका स्थान है और सारा देश उनको उसी प्रकार चाहता है और उनके प्रति वैसा ही प्रेम भाव रखता है जैसा किसी भी दूसरे भाग के साथ है। जब

शरीर के किसी अंग में कोई रोग हो आता है तो उसका दुःख सारे शरीर को भुगतना पड़ता है और जब सभी अंग सुखी रहते हैं तो सारा शरीर सुखी रहता है और उन्नति कर सकता है। हम चाहते हैं कि हमारे अंग भी वैसे ही सुखी और हर प्रकार से स्वस्थ रहें।

मैं तो चाहूंगा कि आदिमजाति के लोगों के साथ, जो पहाड़ों पर रहते हैं या जो मैदानों में आकर बस गये हैं, यहां के अन्य निवासियों का व्यवहार शुद्ध, सच्चा और प्रेमपूर्ण होना चाहिए। प्रत्येक का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह दूसरे को प्रसन्न रखे और उस को उन्नत करे क्योंकि सबकी उन्नति में ही हरेक की उन्नति है और यदि सबकी उन्नति नहीं हुई तो किसी की भी उन्नति नहीं हुई। हम जब इस भावना के साथ काम करेंगे तो देश उन्नति करेगा। छोटी-मोटी बातों में यदि कहीं मतभेद हो भी तो उसका बहुत महत्व नहीं होता। यों तो एक माता-पिता के दो पुत्रों में भी मतभेद हो जाता है। परन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि आपस के प्रेम में कमी हो या एक दूसरे की सहायता करने की भावना में कमी हो। आज प्रत्येक भारतवासी को सोचना है कि भारतवर्ष बहुत दिनों के बाद स्वतन्त्र होकर इस योग्य बन गया है कि वह अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करे। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि हरेक व्यक्ति अपने दायित्व को समझे। यदि कोई यह चाहे कि वह इस देश से अलग होकर आगे बढ़े तो उसके लिए यह सम्भव नहीं है और इसी प्रकार यदि देश किसी एक भाग को छोड़ कर आगे बढ़ना चाहे तो उसके लिए भी यह सम्भव नहीं हो सकता। मुझे याद है, जब मैं छोटा था और स्कूल में पढ़ा करता था तब एक बार लड़कों के खेल में दो-दो लड़कों के एक-एक पैर को आपस में बांधकर उन्हें दौड़ाया गया। उसे अंग्रेजी में 'थ्री लेगेड रेस' कहते हैं। आप लोगों ने भी यहां देखा होगा। जिसका पैर मेरे पैर के साथ बांधा गया, वह और मैं दोनों बराबर थे। दूसरे लोगों ने जो आयु में बड़े थे, सोचा कि छोटे बच्चे के पैरों से पैर बांधकर उनको टांग कर वे शीघ्र दौड़ सकेंगे। और वे अपने घमण्ड में छोटे बच्चों के पैर से पैर बांधकर दौड़े। फल यह हुआ है कि जब हम दौड़ने लगे, तो जिनकी जोड़ी ठीक थी वे आगे बढ़ गये और जो बेजोड़ थे वे गिर गये। इसी प्रकार हरेक यह समझे कि सबसे मिलजुल कर चलेंगे तभी दौड़ में जीत सकेंगे नहीं तो कहीं न कहीं गिर जाएंगे। पीछे तो अवश्य ही रह जाएंगे। मैं चाहता हूं कि इस राज्य के लोग इस बात को ध्यान में रखें। जब मैं यह कहता हूं तो आप यह न समझें कि मैं किसी व्यक्ति-विशेष के बारे में कह रहा हूं। मैं तो समस्त राज्य के लोगों और सारे देश के बारे में कहता हूं।

यहां की स्थिति एक प्रकार से और भी अधिक महत्व की है। मुसलमानों के समय में या जब से हिन्दुस्तान में हिन्दू लोग राज्य करने लगे तब से हिन्दुस्तान पर जितने आक्रमण हुए, वे पश्चिमोत्तर सीमा से हुए। इसलिए मुग़लों के राज्य से पहले जो सुलतान दिल्ली में राज्य करते थे, उन्होंने भी पश्चिमोत्तर सीमा से होने वाले आक्रमणों को रोकने का प्रबन्ध किया। जब तक अंग्रेज यहां से नहीं गये थे और देश का बंटवारा नहीं हुआ था, तब तक सरकार पश्चिमोत्तर सीमा पर ही अधिक ध्यान रखती थी क्योंकि हमारे देश पर आक्रमण भी इसी ओर से हुए। पूर्वोत्तर सीमा पर, जहां आज असम है, ध्यान नहीं दिया गया

क्योंकि इस ओर से किसी ने हम पर आक्रमण नहीं किया। भारतवर्ष के इतिहास की यह गौरवपूर्ण बात है कि भारतवर्ष ने आज तक कभी भी अपनी सेना किसी दूसरे देश को दबाने के लिए नहीं भेजी। हमारे ५-६ हजार सैनिक जो बाहर गये थे और अब लौट रहे हैं, किसी को जीतने के लिए नहीं बल्कि शान्ति-स्थापना के लिए ही गये थे। यद्यपि आज कोई ऐसी स्थिति नहीं है कि हमें इधर से कुछ भय हो, परन्तु फिर भी यह देखना आवश्यक है कि हमारी सीमा पर कौन है। पूर्वोत्तर सीमा पर हम कई ओर से अन्य देशों से घिरे हुए हैं। हमारे उत्तर में तिब्बत है। हमारे पूर्व, पूर्वोत्तर और दक्षिण की ओर बर्मा है और एक ओर पाकिस्तान है। ये सबके सब स्वतन्त्र देश हैं। इस कारण यह स्थान और भी अधिक महत्व का है। मैं यह चाहता हूँ कि आप लोग जो यहाँ के रहने वाले हैं, इस बात को हमेशा ध्यान में रखें। इसको किस प्रकार बचाकर रख सकेंगे, इसकी रक्षा का क्या प्रबन्ध होना चाहिए, यह सब भारत सरकार और राज्य सरकार सदा ध्यान में रखती हैं और उनको रखना भी चाहिए। आजकल कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो उस समय तक देश की रक्षा नहीं कर सकती जब तक उस देश की सारी की सारी जनता उस सरकार के पीछे न हो। अब युद्ध का रूप इतना बदल गया है कि अब युद्ध का निर्णय केवल सैनिक युद्ध द्वारा नहीं होता। अब तो एक प्रकार से सारा का सारा देश ही युद्ध में आ जाता है। इसलिए अब समय आ गया है कि सारे देश की रक्षा के लिए उसमें रहने वाले प्रत्येक पुरुष और स्त्री को तैयार रहना चाहिए।

इसके लिए सबसे अच्छा तथा सबसे सुन्दर मार्ग महात्मा गान्धी जी बतला गये हैं। अपने हृदय में स्फूर्ति रखना, निर्भय रहना तथा त्याग के लिए तैयार रहना सबसे अच्छा आदर्श है। ऐसे राष्ट्र को कोई भी नहीं जीत सकता। जिस प्रकार आत्मा को न हथियार काट सकता है, न अग्नि जला सकती है और न पानी गला सकता है, उसी प्रकार यदि हमारा हृदय मजबूत रहेगा, तो चाहे कितनी भी विपत्तियाँ क्यों न आयें हमको वे हिला नहीं सकतीं। विशेषकर सीमान्त राज्य के लोगों को काफी साहस रखना चाहिए और मैं समझता हूँ कि यहाँ के लोग साहसी हैं भी। साहस के साथ-साथ हममें देश के प्रति प्रेम भी होना चाहिए। हमें केवल अपने अधिकार की ही बात नहीं करनी चाहिए। साहस तथा देश-प्रेम दोनों एक वस्तु हैं, पर उनके रूप दो हैं। यदि आप इतना साहस रखेंगे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि दूसरा कोई आपकी ओर आँख नहीं उठा सकता। मैं आशा करता हूँ कि ईश्वर ने जैसे आपके इस प्रदेश को सुन्दर बनाया है और जिस प्रकार यहाँ की हरी-भरी भूमि सारे देश के लिए ठण्डक पहुँचाने वाली है, उसी प्रकार आपका साहस और देश-प्रेम सारे देश की रक्षा के लिए एक जमानत-स्वरूप है।

जब मैं यह कहता हूँ तो इसमें सभी लोग सम्मिलित हैं। यदि किसी को किसी चीज से असन्तोष है, तो वह ठीक है। हम आपस में बैठकर सब तय कर सकते हैं। ऐसी कोई बात नहीं है जिसे हम तय नहीं कर सकते। जिस समय हमने संविधान बनाना प्रारम्भ किया, कौन कह सकता था कि हम इतना जटिल प्रश्न भी हल कर सकते हैं। परन्तु हमने जटिल से जटिल प्रश्नों को हल किया। इससे बढ़कर और जटिल प्रश्न क्या हो सकता था कि

इस देश में लगभग ६०० छोटी-मोटी रियासतें थीं जिनके अलग-अलग राजा और नवाब थे। ये राजे तथा नवाब अपने-अपने क्षेत्रों के शासन के लिए स्वतन्त्र थे। उन्होंने भी अपने अधिकार और सुविधाएँ छोड़ दीं। यह काम स्वराज्य मिलने के बाद दो-तीन वर्षों के समय में हुआ। हमारा संविधान पूरा होने के समय यह काम पूरा हो चुका था। जब इतना कठिन काम हल कर लिया जा सके, तो इससे अधिक कठिन ऐसा कौन सा प्रश्न हो सकता है जिसे हम हल नहीं कर सकते। मुझे पूरा विश्वास है कि जब हम बैठेंगे और सोचेंगे तो कोई न कोई हल अवश्य निकल कर रहेगा।

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि यदि कोई यह सोचता हो कि हम भारत के कोने में हैं और स्वतन्त्र हो जाने पर अलग होकर रहेंगे, तो उनसे मैं विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि अन्त में इससे उन्हें लाभ नहीं बल्कि हानि ही होगी। जिस प्रकार यदि कोई एक व्यक्ति एक बड़े परिवार से अलग हो जाता है तो उससे उस परिवार को उतनी हानि नहीं हाती जितनी कि उस व्यक्ति को होती है, उसी प्रकार यदि कुछ लोग यह समझें कि वे भारतवर्ष से अलग होकर अपने को सुखी बना सकेंगे तो उनसे मैं कहूँगा कि वे इस तरह का स्वप्न न देखें, क्योंकि यह उनके लिए ही हानिकारक है। अन्त में उनको ही पछताना पड़ेगा। हमने किसी दूसरे पर अपनी सभ्यता बलपूर्वक लादने का प्रयास नहीं किया है और न किसी पर किसी प्रकार का दबाव ही डाला है। भारत का संविधान सबकी स्वीकृति से लागू हुआ है। उसमें सबको समान अवसर दिया गया है। यदि इसपर भी किसी को सन्तोष न हो तो मैं यही कहूँगा कि उसको समझना चाहिए कि उसकी हमसे भी अधिक हानि होगी क्योंकि आज के संसार में स्वतन्त्र राज्य के रूप में रहना कोई सरल काम नहीं है। दूर-दूर के लोग सहायता कर सकते हैं और शायद करें भी। परन्तु वह सहायता कब तक के लिए होगी? इसलिए मैं चाहता हूँ कि सब लोग इस बात को समझें और भारत के साथ ऐसा सम्बन्ध बनाये रखें जिससे सब भारतवासियों को यह विश्वास हो जाये कि वे उनके हैं और इस प्रकार किसी को बाद में पछताना न पड़े। हमें पूरी आशा है कि जहाँ हमारी बातें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ भी वे पहुँचायी जाएँगी। जो समझदार लोग होंगे वे शीघ्र ही समझ जाएँगे और वे भी इसी निर्णय पर पहुँचेंगे जिस पर मैं अथवा भारत के और लोग पहुँचे हैं, अर्थात् हम सबका कल्याण एक साथ रहने में ही है। मुझे आशा है कि आप, जो सीमा पर रहने वाले हैं, सबके साथ मैत्री और प्रेम भाव रखेंगे जिससे यदि किसी के हृदय में सन्देह हो भी तो वह दूर हो जाये और वे समझने लग जायें कि आप उनके मित्र हैं तथा आप और वे सब एक कुटुम्ब के व्यक्ति हैं।

आपका इतना समय लेने के बाद मैं समझता हूँ कि और अधिक न कहकर मैं आप सब बहनों और भाइयों को उस प्रेम के लिए धन्यवाद दूँ जो आज ही नहीं बल्कि पिछले ३२-३३ वर्षों से, जबसे मैं यहाँ आता रहा हूँ, मुझे मिला है और आशा है कि जब कभी भी मैं यहाँ आऊँगा, तो वह मुझे मिलेगा। आज सबेरे बात हो रही थी तो मेरे एक मित्र ने मुझे एक और स्थान दिखलाने का विचार प्रकट किया। इस पर हमारे भाई राज्य-

पाल ने कहा कि सभी कुछ इसी बार नहीं दिखलाना है। इससे उनका अभिप्राय यह है कि दिखलाने को कुछ शेष भी रखा जाये जिससे मैं यहाँ बार-बार आऊँ। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मुझे भी आपके यहाँ आने की बड़ी इच्छा रहती है और मैं बार-बार यहाँ आना चाहता हूँ। आपके इस प्रदेश में ऐसी चीजें हैं जिनको देखने और जानने से कभी भी जी नहीं भरेगा।

मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि केन्द्रीय सरकार आपको यथाशक्ति सहायता देने के लिए तैयार है। इस सम्बन्ध में आप जिसको भी भेजें या सूचना दें, उस पर पूरी तरह से ध्यान दिया जाएगा और हम आपकी सेवा के लिए सदा प्रस्तुत रहेंगे। मैं आप सब बहनों और भाइयों को धन्यवाद देता हूँ।

विभिन्नता में एकरूपता

मैं आपके इस सुन्दर प्रदेश में कई दिनों से भ्रमण कर रहा हूँ और अब वह समय आ गया है जब मुझे आपके यहाँ से विदा लेकर दूसरी ओर जाना है। आपका प्रदेश इतना सुन्दर तथा सुहावना है कि यहाँ आकर कोई शीघ्र वापस जाना पसन्द नहीं करता परन्तु काम के भार के कारण इस सुन्दर स्थान को छोड़कर जाना ही पड़ता है। इसी कारण इसके पहले भी जब मैं चाहता था, नहीं आ सका था और अब जब आया हूँ तो यहाँ से जाना पड़ रहा है।

जब से मैं आया हूँ न मालूम कितने लोगों से बड़ी-बड़ी सभाओं में, मार्ग में तथा अन्य स्थानों में मेरी भेंट हुई है और सभी स्थानों पर सब लोगों ने प्रेम प्रदर्शित किया है। और उन्होंने भाँति-भाँति की वस्तुएँ, जो विशेष कर उनके यहाँ बनती और काम में आती हैं, भेंट भी की हैं। मैं उन सबके लिए आप सबको हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ। वह धन्यवाद केवल मेरी ओर से व्यक्तिगत रूप में नहीं है। मैं मानता हूँ कि आपने जो प्रेम प्रदर्शित किया है या जो कुछ भेंट किया है, वह किसी व्यक्ति के लिए नहीं सारे भारत देश के लिए है।

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है और आपका यह राज्य उसके पूर्वोत्तर कोने में स्थित है। इतने बड़े देश में इस समय प्रायः ३६ करोड़ लोग निवास करते हैं और वे भिन्न-भिन्न धर्म के मानने वाले, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले, भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज और रहन-सहन वाले लोग हैं। इस प्रकार यदि देखा जाये तो भारतवर्ष एक देश

डिब्रूगढ़ नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्र के उत्तर में भाषण, २४ फरवरी, १९५४

नहीं, कई देशों का एक समूह कहा जा सकता है। पर हमारे पूर्वजों ने कुछ ऐसा काम किया है जिससे सब विभिन्नताओं के होते हुए भी सारा देश एक है और सारा देश एक प्रेम-सूत्र, एक सभ्यता और संस्कृति से ऐसा गुंथा हुआ है कि ऊपर से भिन्न होते हुए भी सब के सब एक हैं और हमें इस एकता को, जो प्रकृति ने हमें दी है, सुरक्षित बनाये रखना है। प्रकृति ने उत्तर में हिमालय जैसा महान् पर्वत और शेष तीन ओर समुद्र रखकर एक प्रकार से भारतवर्ष को और देशों से अलग कर रखा है। हमारे देश का इतिहास इतना सुन्दर और महत्वपूर्ण है कि चीन के अतिरिक्त और किसी भी देश का इतिहास उतना सुन्दर और उतना अच्छा नहीं रहा है। यह बात सच है कि हमारे देश पर विदेशियों ने कई बार आक्रमण किये, अपना आधिपत्य स्थापित किया और यहाँ का राज-काज अपने हाथों में लिया। यह क्रम कम से कम पिछले हज़ारों वर्षों से चला आता था। अब हम एक बार फिर स्वतन्त्र हो गये हैं। हमारे देश का इतिहास सदा गौरवपूर्ण रहा है। अंग्रेज़ों को छोड़कर वे लोग जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया और अपना आधिपत्य जमाया प्रायः सबके सब लुप्त हो गए हैं। आज कोई उनका नाम लेने वाला नहीं रहा है और आज उनमें से कोई भी यह नहीं कह सकता कि भारतवर्ष अमुक देश के लोगों के शासन के फलस्वरूप ही आज उन्नति पर है।

हमारी विशेषता यह है कि आज तक हमने किसी भी दूसरे देश पर आक्रमण नहीं किया। मैं मानता हूँ कि यह ऐतिहासिक तथ्य इतना महत्वपूर्ण है कि संसार जैसे-जैसे बर्बरता से उठकर आगे बढ़ता जाएगा, उसके महत्व को पहचानता जाएगा। हमने दूसरे देशों पर दूसरे प्रकार से विजय पायी है। हमने अपने यहाँ से धर्म संस्थापकों को, धर्म भिक्षुकों को, धर्म प्रचारकों को दूसरे देशों में भेजा है और उन लोगों ने वहाँ जाकर धर्म का जो साम्राज्य स्थापित किया, वह आज तक जीवित है और यदि मैं यह कहूँ कि आज भी संसार के अधिकांश लोग भारत के शिष्य हैं अथवा भारत के ही गौरव और स्वतन्त्र विचार के मानने वाले हैं तो यह बिलकुल सत्य होगा। इसीलिए हम इन आक्रमणों के बावजूद भाँति-भाँति की विपत्तियाँ झेलते हुए भी आज तक कायम रहे। आज हम मस्तक ऊँचा उठाकर संसार के सामने कह सकते हैं कि हम किसी से पीछे नहीं हैं और पीछे नहीं रहेंगे। इसी कारण जब महात्मा गान्धी ने देश को ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतन्त्र करने का निश्चय किया तो उन्होंने हमको वही मार्ग बताया जो हमने प्राचीन काल से अपनी परम्परा के अनुसार सदा अपनाया है। सत्य और अहिंसा का प्रचार आज तक हमारे देश के ब्रह्मचारी, भिक्षु तथा धर्म प्रचारक सभी ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सभी ओर सभी स्थानों पर किया। भारत के प्रचारक पूर्व में चीन, इण्डोचीन, जापान तक और कुछ लोग तो यह भी मानते हैं कि प्रशान्त महासागर में स्थित टापुओं तथा यहाँ तक कि दक्षिण अमेरिका तक पहुँचे थे और उन्होंने सभी स्थानों पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार किया जिसके चिन्ह आज तक विद्यमान हैं। हमारे प्रचारक उत्तर में तिब्बत और उसके आगे चीन तक और पश्चिम में भी बहुत दूर तक गये थे। हम किसी भी अन्य देश पर राज्य करना नहीं चाहते थे, इसलिए हमने किसी पर भी सेना के बल पर अपना अधिपत्य नहीं जमाया। उनको हम

केवल धर्म के सुनहले धागे से बांधकर रखना चाहते थे। हमारी विजय स्थायी हुई और सदा बनी रहेगी। जो विजय हिंसा से सेना के बल पर की जाती है, वह क्षणिक होती है। मानव के इतिहास में १००-२०० और ५०० वर्ष कोई बड़ी चीज़ नहीं और आज तक जितने भी साम्राज्य हुए हैं वे २००, ३००, ५०० वर्ष से अधिक नहीं टिके हैं। परन्तु धर्म का साम्राज्य अनन्त काल से चला आता है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। इसीलिए हम अपने इतिहास को गौरवपूर्ण मानते हैं।

आप एक ऐसे स्थान पर बसे हुए हैं जहाँ पर कई देशों की सीमाएँ आपके देश की सीमा को छूती हैं। इसलिए यहाँ सब देशों का कुछ न कुछ प्रभाव देखने में आता है। यहाँ के लोगों के जीवन पर भारतीय संस्कृति का तो प्रभाव है ही, उसके अतिरिक्त उस पर आस-पास के दूसरे देशों के जीवन का भी प्रभाव पड़ा है और आपने भारतीय संस्कृति को दूसरे देशों में पहुँचाकर उन पर भी अपना प्रभाव डाला है। आजकल जब हम संसार की स्थिति पर विचार करते हैं तो मालूम होता है कि संसार में इस समय सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि मानव मात्र के सामने सत्य और अहिंसा का मार्ग फिर से प्रस्तुत किया जाये, क्योंकि यदि संसार उसे नहीं अपनाएगा तो इस बात का भय है कि बहुत परिश्रम के बाद आज जिन प्राकृतिक शक्तियों पर अधिकार प्राप्त किया जा चुका है, वे शक्तियाँ हमको नष्ट कर देंगी।

हमारे पुराणों में भस्मासुर की कथा है। वह एक असुर था, जिसने बड़ी तपस्या की थी। उसने शिव जी की बड़ी पूजा की। शिव जी तो आशुतोष हैं। वे तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं। वे प्रसन्न हो गये और उन्होंने भस्मासुर से कहा कि वर माँगो। उसने वर माँगा कि उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाये कि वह जिसके सिर पर हाथ रख दे, वह जलकर भस्म हो जाये। महादेव ने कहा, "अच्छा वह वर तुमको मिला।" अब उसने देखा कि महादेव के साथ सुन्दरी पार्वती है तो क्यों न उस पर अपना अधिकार किया जाये। उसने सोचा कि यदि वह महादेव के सिर पर हाथ रख दे तो वे जल जाएँगे और पार्वती उसे मिल जाएगी। उसने महादेव जी का पीछा किया और महादेव जी भागे। भागते-भागते ऐसा समय आ गया कि महादेव जी स्वयं अपनी रक्षा न कर सके। उन्होंने एक ओर वर दे दिया था जो झूठा नहीं हो सकता था, दूसरी ओर इस असुर ने शक्ति पा ली थी और वह चरित्रहीन तथा अधर्मी असुर महादेव जी को ही समाप्त करना चाहता था। विष्णु भगवान ने शिव को इस संकट से बचाने का निश्चय किया। वह सुन्दरी पार्वती का रूप धारण करके भस्मासुर के सामने खड़े हो गये और उससे बोले, "तुम महादेव का पीछा इसलिए कर रहे हो न जिससे तुम मुझे पा जाओ।" उसने कहा, "हाँ।" पार्वती स्वरूप भगवान विष्णु ने कहा, "महादेव जी को जला दोगे तो भी तुम मुझे नहीं पा सकोगे। यदि तुम चाहो तो मुझे प्रसन्न कर दो और तब मैं तुम्हारी हो जाऊँगी।" उसने पूछा, "किस प्रकार प्रसन्न करूँ।" उन्होंने कहा, "जैसे-जैसे मैं नृत्य करती हूँ, उसी प्रकार तुम अनुसरण करो।" यह कह कर भगवान विष्णु नाचने लगे। नाचते-नाचते उन्होंने अपना हाथ अपने सिर पर रखा। भस्मासुर ने भी अपना हाथ उठाकर जैसे ही अपने सिर पर रखा, वह

स्वयं जलकर भस्म हो गया। इसका अभिप्राय यह है कि पापी का पाप ही उसे नष्ट कर देता है।

इस समय विज्ञान ने उसी प्रकार इतनी बड़ी शक्ति प्राप्त कर ली है कि यदि उसका ठीक रूप से उपयोग न किया गया तो वह संसार को नष्ट किये बिना न रहेगी। इसलिए इस समय संसार को आवश्यकता इस बात की है कि जो शक्ति विज्ञान ने लोगों के हाथों में दी है, उस शक्ति को मानव और संसार मात्र के कल्याण के लिए उपयुक्त रूप से उपयोग में लाया जाये न कि एक दूसरे को नष्ट करने के लिए। आजकल यदि कोई एक अणुब्रम गिराये तो न मालूम कितने गाँव और शहर विनष्ट हो जाते हैं और वहाँ एक भी प्राणी नहीं बचता। आज वह शक्ति प्राप्त हो चुकी है और उस पर नियन्त्रण रखना मानव जीवन के लिए आवश्यक है। अपनी प्राचीन सभ्यता, पुरानी संस्कृति और महात्मा गान्धी की आधुनिक प्रेरणा से आज भारतवर्ष सब प्रकार से सम्पन्न है और इसलिए मैं मानता हूँ कि संसार के प्रति हमारा बहुत बड़ा कर्त्तव्य है, और वह कर्त्तव्य यही है कि हम उस शक्ति का उपयोग उपयुक्त रूप से करने में मार्गदर्शन करें।

आपको तो जो इस प्रदेश में रहते हैं, विशेषरूप से सदा यह स्मरण रखना है। आपके प्रदेश में विभिन्नता अधिक मात्रा में है क्योंकि यहाँ आदिमजाति के लोग हैं। उनके अतिरिक्त जो दूसरे लोग बसे हैं वे भी आपस में भिन्न-भिन्न हैं। उनमें हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं, ईसाई भी हैं तथा बौद्ध धर्म के मानने वाले भी हैं। इस प्रकार यहाँ बहुत प्रकार के लोगों को इस तरह से इकट्ठे रहना है जिससे कोई ऐसा न समझे कि उन पर कोई चीज बलपूर्वक लादी जा रही है अथवा उनसे कुछ बलपूर्वक कराने का प्रयास किया जा रहा है। प्रेमपूर्वक बहुत कुछ कराया जा सकता है और जो काम प्रेम से होता है, वह एक प्रकार से दूसरा ही महत्व रखता है। बलपूर्वक कराया गया काम स्थायी नहीं हो सकता। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि जो प्रश्न सारे भारतवर्ष के सामने है, वही प्रश्न आपके सामने आज छोटे रूप में उपस्थित है और आप अपने इस बड़े उत्तरदायित्व को समझें। देश की रक्षा के साथ-साथ इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि सब लोग एक दूसरे पर विश्वास रखें और एक दूसरे की सहायता के लिए सदा तैयार रहें।

मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे संविधान में जहाँ आवश्यक समझा गया है, भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न नियम भी बनाये गये हैं। उसका अर्थ यह नहीं है कि सब लोग अलग-अलग हैं और उनका एक-दूसरे से मेल नहीं है। अभी आपके सामने मुझे कई उपहार दिये गये। उनमें सुन्दर-सुन्दर कपड़े हैं जिनमें १०-१५ रंग के धागे लगे हुए हैं। सब रंग मिलकर उसकी सुन्दरता बढ़ाते हैं और सबको मिलाकर कपड़ा तैयार होता है। उसी प्रकार सब लोगों का मिलाकर एक भारत देश है और उसमें जो विभिन्नताएँ हैं, वे उसकी सुन्दरता को और भी बढ़ाती हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इन विभिन्नताओं के बीच हमें सदा एकसूत्रता बनाये रखनी चाहिए और सदा उसको स्थायी रूप देने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारे संविधान में यह भी बता दिया गया है कि जो लोग शिक्षा के

सम्बन्ध में अथवा अन्य किसी विषय में अपेक्षाकृत बहुत पीछे हैं, उनकी विशेष रूप से सहायता की जाये। इस कार्य में भारत सरकार और आपके इस प्रदेश की सरकार दोनों ही भाग लेती हैं। मैं समझता हूँ कि आपके इस प्रदेश में शिक्षा पर काफी व्यय किया जा रहा है। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि हमारा काम पूरा हो गया है, पर साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमने कुछ किया ही नहीं है। हम आगे बढ़ रहे हैं और दिन प्रति दिन आगे बढ़ते जाएँगे। मैं आपको इतना ही विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि चाहे आदिमजाति के लोग हों, मैदानों के रहनेवाले हों, पहाड़ों के रहनेवाले हों, असम के लोग हों या दूसरे लोग हों, भारत सरकार आपके इस प्रदेश के सम्बन्ध में विशेष ध्यान रखती है और सदा रखेगी, क्योंकि यह एक सीमान्त प्रदेश है और सीमान्त प्रदेश के सम्बन्ध में किसी भी सरकार के लिए ध्यान रखना आवश्यक होता है। हमें आशा है कि आपको जिस किसी भी वस्तु की आवश्यकता है, उसकी जानकारी यहाँ के मन्त्रिमण्डल अथवा राज्यपाल को अवश्य होगी। वे इसकी सूचना भारत सरकार को देते रहते हैं और वहाँ से, जहाँ तक हो सकता है, सहायता दी जाती है।

देश बहुत बड़ा है और स्वराज्य मिले अभी ७ वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। इतने दिनों में जितना काम हो सका है, उससे हमको प्रसन्न होना चाहिए और विशेषकर इसलिए कि आगे का हमारा काम और तेजी से बढ़ेगा क्योंकि जो कठिनाइयाँ हैं, उनको हम समझते जा रहे हैं और जो काम का तरीका है, उसमें भी सुधार करते जा रहे हैं। इसीलिए पाँच वर्ष की एक योजना बनायी गयी है। अब उस योजना को और भी बढ़ाने के लिए सोचा जा रहा है और धीरे-धीरे जैसे-जैसे हमारी शक्ति बढ़ती जाएगी, हम तेजी से और भी आगे बढ़ते जाएँगे। यहाँ जो लोग न मालूम कितने वर्षों से पिछड़े हुए रहे हैं, उनका दो-चार वर्षों में एकदम आगे बढ़ जाना सरल काम नहीं है। इसलिए अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य का ध्यान रखकर हमें यह सोचना पड़ता है कि कहाँ पर कितना और क्या-क्या हो सकता है। पैसे और काम करने वालों, दोनों को ध्यान में रखकर जितनी तेजी से हम बढ़ सकते हैं, हम बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसीलिए आप इसका सदा विश्वास रखें कि भारत सरकार अथवा राज्य सरकार की ओर से किसी बात में जानबूझ कर त्रुटि नहीं होगी। एक कुटुम्ब में यदि दस सदस्य हों तो माता-पिता का काम दसों को लिखाने-पढ़ाने तथा पहनाने का होता है। उसी प्रकार इस देश में बहुत से राज्य हैं और केन्द्रीय सरकार को सब राज्यों के सम्बन्ध में सोचना पड़ता है कि कहाँ पर किस प्रकार की सहायता दी जा सकती है। जहाँ बहुत आवश्यक है वहाँ अधिक सहायता दी जाती है और जहाँ पर लोग कुछ आगे हैं तथा अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं, वहाँ उनको प्रोत्साहन दिया जाता है कि वे अपने पैरों पर खड़े हों। हम इसी नीति से चल रहे हैं। मुझे तो पूरा विश्वास है कि हमको इस सबका फल शीघ्र ही देखने को मिलेगा।

आपने मानपत्र में एक नयी रेलवे लाइन बनाने का और जो रेल की लाइनें विद्यमान हैं उनको अधिक मजबूत करने का उल्लेख किया है। आपने स्कूलों की संख्या बढ़ाने का भी उल्लेख किया है तथा आपके यहाँ जो कुछ कमी है, उसको दूर करने

का मार्ग बताया है। आप विश्वास रखें कि इन सब पर पूरा ध्यान दिया जा रहा है और दिया जाता रहेगा। भारत सरकार और राज्य सरकार इस काम में कोई कसर न उठा रखेंगी। चाहे रुपये के रूप में हो और चाहे काम करनेवालों के रूप में, आपको सहायता मिलती रहेगी। मैं यहाँ से विदा होते समय आप सब बहनों और भाइयों को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ, विशेषकर उन बहनों और भाइयों को जिन्होंने दूर-दूर से आकर सुन्दर उपहार दिये हैं और उन लोगों को जिन्होंने परिश्रम करके हमारी इस यात्रा को सफल बनाया है। मैं आपसे यह भी कहना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं यहाँ से जा रहा हूँ, मेरी अभी भी यही इच्छा है कि यहाँ और भी रहूँ। मैं इस इच्छा को साथ लिये जाता हूँ, जिससे फिर जब कभी समय मिले, तो मैं आप सब बहनों और भाइयों से आकर मिलूँ।

त्याग में ही भोग समझें

आप लोग बहुत कष्ट उठाकर कड़ी धूप में बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे आने में शायद कुछ देर हुई, इसके लिए मैं आप सबसे क्षमा चाहता हूँ। जिस उत्साह के साथ आपने मेरा स्वागत किया उसके लिए मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। धन्यवाद देने की कोई बात भी नहीं है क्योंकि मेरा स्वागत किसी व्यक्ति-विशेष का स्वागत नहीं बल्कि सारे देश का स्वागत है। इस समय जिस पद पर मैं देश के लोगों की ओर से बैठा दिया गया हूँ, उस पद का स्वागत और सम्मान देश का स्वागत होता है। इस पद पर आप में से हरेक को उतना ही अधिकार है जितना कि मेरा। इसलिए यदि मैं यह कहूँ कि आप लोगों ने जो स्वागत किया उसके लिए मुझे आपको धन्यवाद नहीं देना है तो उसको आप इसी अर्थ में लीजिएगा, किसी दूसरे अर्थ में नहीं।

देश बहुत दिनों के बाद स्वतन्त्र हुआ है और स्वतन्त्र होकर उसने अपने भाग्य को बनाने या बिगाड़ने का भार स्वयं सम्हाल लिया है। आपके चुने हुए बहुतेरे प्रतिनिधि विधानमण्डलों या संसद् में काम कर रहे हैं। उनमें से कुछ तो मन्त्री हैं और दूसरे अन्य किसी न किसी काम में लगे हैं पर सबका उद्देश्य और कर्तव्य एक ही है। वह है देश को उन्नत बनाना, उसमें रहनेवालों को समृद्ध बनाना, इस देश से गरीबी दूर करना, बीमारी दूर करना, शिक्षा का अभाव दूर करना और जो चीजें इन सब कमियों को दूर कर सकती हैं उनको इस देश के लिए प्राप्त करना। यह काम बहुत बड़ा काम है और इसलिए इसमें सबकी सक्रिय सहायता आवश्यक है।

नीमच नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन पत्र के उत्तर में भाषण, ३ मार्च, १९५५

मैं कल से आपके इस क्षेत्र में, जहाँ एक बड़ी योजना पर काम किया जा रहा है, घूम रहा हूँ और जो कुछ मैंने देखा उससे केवल यही नहीं मालूम हुआ कि इंजीनियरों के कारण यहाँ एक बड़ी चीज़ बन जाएगी बल्कि उसमें मैं यहाँ के लोगों की सुख-समृद्धि निहित पाता हूँ। मुझे आशा है कि यह योजना शीघ्र ही पूरी तरह से तैयार होकर अपना फल देने लग जाएगी तो इस क्षेत्र के सभी लोग जिनको इससे लाभ पहुँच सकता है, इससे लाभ उठाएँगे। इस प्रकार का जितना काम अंग्रेज़ों के समय में हुआ, उस समय के काम में और आज के काम में अन्तर है। अंग्रेज़ इस देश पर शासन करना चाहते थे। इसलिए वे जनता को प्रसन्न रखना चाहते थे जिससे कहीं कोई विप्लव न हो जाये। उनमें बहुतेरे ऐसे लोग भी थे जो सच्चे हृदय से मानव-सेवा की भावना से काम करते थे। उन महानुभावों के लिए जो कुछ कहा जाये, कम है। कुछ महीने पहले जब मैं हरिद्वार गया था, उस समय वहाँ गंगा नहर की शताब्दी मनायी जा रही थी जो आज से १०० वर्ष पहले एक अंग्रेज इंजीनियर ने निकाली थी और जिससे आज दूर-दूर तक के लोगों को जल मिल रहा है। यह एक ऐसा अंग्रेज था जिसके हृदय में अंग्रेज़ी राज्य को सुदृढ़ बनाने की भावना की अपेक्षा मानव सेवा-धर्म का भाव अधिक था। उसने उसी इच्छा और सद्भावना से यह काम किया। परन्तु आज इस प्रकार के जितने काम हो रहे हैं, उनका उद्देश्य जनता की सेवा के अतिरिक्त न दूसरा कुछ है और न हो सकता है क्योंकि मुझे अब किसी में अपना राज्य स्थापित करने का न तो कोई विचार दिखायी पड़ता है और न ऐसी दुर्भावना के पूरे होने का कोई चिन्ह। आज एक ही भावना है और वह है सेवा की भावना। मैं चाहूँगा कि आप में से हरेक उसी भावना से सहायता करे।

मैं जानता हूँ कि जिस समय इस योजना के विषय में विचार हो रहा था और रुपये-पैसे की कमी के कारण कुछ लोगों को इस बात का सन्देह था कि इसको किया जाये या नहीं, उस समय राजस्थान और मध्यभारत ने करोड़ों रुपये जमा करके अपना उत्साह प्रदर्शित किया। इससे लोगों में केवल उत्साह को ही प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ बल्कि उनमें सहयोग की भावना का भी विकास हुआ क्योंकि इतना बड़ा काम यदि ऐसी भावना पर नहीं तो और किस भरोसे पर हाथ में लिया जा सकता था। मैं चाहता हूँ कि आप में से हरेक इस काम को अपना काम समझे और इसमें यथाशक्ति सहायता करे और इसको पूरा करा दे।

कल मैंने सुना और मुझे यह देखकर प्रसन्नता भी हुई कि आप लोगों ने यहाँ पर किसी एक ही स्थान से नहीं बल्कि सारे भारतवर्ष से आदमियों को बुलाया है और वे आकर काम कर रहे हैं। बहुधा ऐसा होता है कि ऊँचे-ऊँचे पदों पर बड़े-बड़े अधिकारी दूर-दूर से आते हैं पर जो काम कठिन समझा जाता है उसको स्थानीय लोग ही करते हैं। इसके विपरीत मैंने यहाँ यह भी देखा कि केवल ऊँचे पदों पर ही नहीं बल्कि पत्थर तोड़ने तथा पत्थर काटने जैसा ठेठ मजदूरी का काम, जो कठिन काम होता है, मद्रास से लोग आकर कर रहे हैं। यह हर्ष की बात है। वे तो मजदूरी के लिए ही आये हैं। परन्तु इतनी दूर से आने-जाने में उनको सारे देश का ज्ञान हो जाएगा और जितने दिन वे यहाँ रहेंगे, उनका यहाँ

के लोगों से प्रेम और सम्पर्क पैदा हो जाएगा जो सारे देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह देश इतना बड़ा है और इसके निवासी इतने अधिक हैं कि जब तक सब राज्यों के लोगों का परस्पर थोड़ा-बहुत परिचय कराने का विशेष प्रयत्न नहीं किया जाएगा तब तक सबका सहयोग नहीं मिल सकता। हमारे पूर्वजों ने इस सारे देश को सदा ही एक माना और इसीलिए जब शंकराचार्य जी ने दिग्विजय की तो उन्होंने हिन्दुस्तान के चारों कोनों में चार मठ स्थापित किये—उत्तर में हिमालय में बदरीनाथ के निकट ज्योतिर्मठ, पूर्व में जगन्नाथपुरी में गोवर्धन मठ, पश्चिम में समुद्र के किनारे द्वारिका में एक मठ और चौथा मठ शृंगेरी में। प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए चारों मठों का दर्शन करने का माहात्म्य बताकर उन्होंने सब लोगों के हृदय में सारे देश में घूमने और सारे देश को जानने की एक अभिलाषा पैदा कर दी। जो कोई भी ये चारों धाम कर लेता है, वह समझता है कि उसको जन्म से त्राण मिला। लोग अब भी ऐसा ही सोचते हैं। उनके लिए फिर संसार में कोई चीज़ नहीं रह जाती। आज के समय में हवाई जहाज़ से इन चारों धामों की यात्रा तीन-चार दिनों में की जा सकती है जहाँ पहले तीन-चार वर्ष लग जाते थे। यात्रा के लिए साधन सुलभ हो जाने के कारण सारे देश का परिचय आज सुलभ हो गया है, परन्तु साथ ही वह परिचय अधूरा ही रह जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सारे देश को एक समझें और जो स्वतन्त्रता हमको बहुत परिश्रम के बाद मिली है, उसको बनाये रखने के लिए हम आवश्यकता पड़ने पर सभी प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहें।

परन्तु केवल इतने से ही काम नहीं चलता। देश की स्वतन्त्रता सबकी सम्पत्ति है और यह भी समझना चाहिए कि हममें से हरेक देश की सम्पत्ति है। हममें से हरेक के पास जो कुछ भी है जिसको हम अपनी चीज़ समझते हैं वह सब देश की चीज़ है। यदि हम इस भावना से काम करेंगे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह देश थोड़े ही दिनों में बहुत उन्नत हो जाएगा।

मुझे इस बात की और भी प्रसन्नता है कि यद्यपि मैं पिछले २५ वर्षों से देश में घूमता ही रहा हूँ और मैंने देश के कोने-कोने का चक्कर लगा लिया है किन्तु आपके शहर में आने का यह पहला ही अवसर है। इससे हमारा परिचय तो बढ़ा ही है। मैं समझता हूँ कि आप लोगों को भी यह देख कर कि भारतवर्ष एक हो गया है और उसके प्रतीक राष्ट्रपति के रूप में मुझे देखकर प्रसन्नता हुई है। मैं देख रहा हूँ कि यहाँ उपस्थित बहनों की संख्या भी काफी है। उनसे मेरी यही विनती है कि वे सदा केवल घर में होनेवाली बातों में ही न लगी रहकर बाहर की भी खबर रखें। अभी बाहर का अर्थ देश से बाहर का नहीं है, बल्कि एक राज्य से बाहर दूसरे राज्य का है। मैं यह नहीं कहता कि वे घर का कारबार छोड़ दें। वे अपना काम करती जायें परन्तु देश की ओर भी ध्यान रखें। किसी इंजिन की बात ले लीजिये या किसी मोटरकार को देखिये। उसमें न मालूम कितने हज़ार पुर्ज़े हैं और उन सबको इकट्ठा करके रखा गया है। उनमें से हरेक पुर्ज़ा अपना-अपना काम करता है। एक के बिना भी गाड़ी का चलना रुक सकता है और यदि उनमें से हरेक अपना-अपना स्थान छोड़कर दूसरे के स्थान पर जाने का प्रयत्न करे तब तो गाड़ी किसी भी काम की

नहीं रह जाती। वही बात समाज के लिए भी लागू है। उसमें हरेक के लिए योग्य स्थान है, हरेक के लिए निर्धारित कर्तव्य है, सबके लिए निर्धारित सम्पत्ति है और सब अपने-अपने स्थान से कर्तव्य करते हुए अपनी सम्पत्ति का भोग करें और दूसरों को उसी प्रकार सहयोग देते रहें। उपनिषद् में भी लिखा है कि हम लोग इस चलते हुए जीवन में जो कुछ करना चाहें, उसका भोग करें परन्तु त्याग करके भोग करें अर्थात् त्याग में ही भोग समझें। इसी प्रकार का भोग सच्चा भोग होता है। यही सभी धार्मिक ग्रन्थों का निचोड़ है और संसार के लिए एकमात्र उपाय है। आज संसार में उपरोक्त भावना के अभाव के कारण ही लड़ाइयाँ हो रही हैं और पुनः भयंकर लड़ाइयाँ होंगी जिनमें न हारने वाले बचेंगे और न जीतने वाले ही। पहले लड़ाइयों में एक जीतने वाला पक्ष होता था और दूसरा हारने वाला। अब तो ऐसे भयंकर अस्त्र-शस्त्र बन गये हैं कि अब कोई बचने वाला नहीं है। ऐसी भयंकर स्थिति में संसार के उद्धार के लिए उपनिषद् का बतलाया हुआ मार्ग ही रह गया है जिसका प्रतिपादन हमारे ऋषियों ने किया और महात्मा गान्धी जी ने अपने जीवन में बरत कर दिखलाया। हमारा भी उद्देश्य और कर्तव्य यह है कि हम उसी को मानें और उसी पर चलें।

भारत को समृद्ध बनाइये

आज इस समारोह में सम्मिलित होकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। जब से मैं आपके नगर में पहुँचा हूँ, आपने जिस प्रेम और उत्साह के साथ मेरा स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ कि यह स्वागत किसी व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं बल्कि यह देश के प्रति आपके प्रेम का प्रमाण है।

भारतवर्ष जब से स्वतन्त्र हुआ है, उसके सामने बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ रही हैं। परन्तु ईश्वर की दया से हम एक-एक कठिनाई को हल करते गये हैं और आज कहा जा सकता है कि अब हमें प्रगति के लिए प्रशस्त मार्ग मिल गया है। यदि हम चाहें और देश के लिए आपस में मिलजुल कर साहस तथा उत्साह के साथ काम करें तो संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जो इस देश के लिए दुर्लभ हो। इसलिए एक ऐसे दिन का मनाना, जिस दिन देश की उन्नति के लिए एक बहुत बड़ा कदम उठाया गया था, स्वाभाविक ही है। अंग्रेजों के साथ जिस समय स्वराज्य के लिए समझौता हुआ उस समय उन्होंने और सब चीजों के साथ-साथ एक काम और किया, जिसका परिणाम कुछ भयंकर हो सकता था। जहाँ एक ओर अंग्रेजी राज्य सीधे तौर पर चलता था, वहाँ दूसरी ओर देशी

राजस्थान दिवस के उपलक्ष्य में जयपुर में भाषण, ३० मार्च, १९५५

नरेशों के अधीन ६०० से अधिक रियासतें भी थीं। ब्रिटिश सरकार ने जाते समय यह घोषणा कर दी कि ये सभी रियासतें अपने को उन सभी शर्तों और बन्धनों से मुक्त समझें जो उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ किये थे और प्रत्येक को अधिकार है कि वह चाहे तो हिन्दुस्तान के साथ अथवा पाकिस्तान के साथ मिल जाये या अपने को स्वतन्त्र रखे। एक नीति के रूप में यह बात बिल्कुल ठीक थी। परन्तु यदि हमारे देशी नरेशों के हृदय में भी वह देश-प्रेम नहीं होता जो उन्होंने दिखलाया, तो सम्भव था कि एक भारतवर्ष के बदले आज भारतवर्ष के कई टुकड़े हुए होते। यह समस्या देश के एक भाग में अब तक तय नहीं हो पायी है और वह भाग कश्मीर का है। उसके लिए हम अभी भी चिन्तित हैं। देशी नरेशों के देश-प्रेम, उनकी दूरदर्शिता और समय को पहचान कर उसके अनुसार अपने को ढाल लेने की उनकी शक्ति के फलस्वरूप ही भारत के दो टुकड़े हो जाने पर भी जो भारतवर्ष आज रह गया है, वह उस भारतवर्ष से कहीं अधिक बड़ा है जो कभी किसी भी ऐतिहासिक काल में या उसके पहले किसी एकछत्र शासन के अधीन रहा हो। अब उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक चप्पा-चप्पा जमीन का एक-एक इंच एक शासन तथा एक तन्त्र के अधीन है। यह एक इतना ऐतिहासिक काम हुआ जिसका उदाहरण सारे संसार के इतिहास में शायद ही कहीं मिले।

मैं अपने बारे में कहता हूँ। जब मैं छोटा था और कालेज में पढ़ रहा था तब रूस और जापान के बीच युद्ध छिड़ा। उस समय समाचारपत्रों में जापान के सम्बन्ध में बहुत सी बातें छपा करती थीं। उनमें एक बात यह भी थी कि जापान में समूरिया जाति के लोगों ने अपने सब अधिकार यहाँ के राजा को दे दिये थे। उसके बाद जापान बड़ी उन्नति कर सका। हम लोग यह पढ़कर आश्चर्य और सराहना करते थे। उससे बढ़कर हमारे यहाँ के लोगों ने स्वराज्य स्थापित होने के बाद एक-दो वर्ष में एक उदाहरण उपस्थित करके दिखाया। हम भी अपने हजारों वर्षों के इतिहास को नहीं भूलेंगे। जो रियासतें अलग-अलग स्थापित हो गयी थीं और एक प्रकार से भारत कई टुकड़ों में बँटा हुआ था, वे सब टुकड़े एक हो गये। आज ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें मिलकर एक हो गयी हैं।

उसके बाद हमारे सामने यह प्रश्न आया कि भारत के लोग केवल स्वराज्य से ही सुखी नहीं हो सकते। उनको किसी न किसी प्रकार सुखी बनाना है। इस सम्बन्ध में सरकार ने अपनी ओर से प्रायः सभी राज्यों में जमीन्दारी और जागीरदारी-उन्मूलन के कानून उपस्थित किये और वे कानून पास हुए। प्रसन्नता की बात तो यह है कि बहुत से स्थानों में वे कानून उन लोगों की स्वीकृति से तथा उन लोगों की सलाह से पास किये गये जिनकी जमीन्दारी और जागीरदारी समाप्त हो जानी थी। यह भी देश-प्रेम का उदाहरण है। उन लोगों ने अपनी सम्पत्ति का त्याग इसलिए किया कि उससे सारे देश को लाभ पहुँचे। वह काम भी लगभग पूरा हो गया और पूरा होता जा रहा है। हमारे सामने मार्ग प्रशस्त है और अब हमें इस पर चलने की शक्ति चाहिए।

हममें परस्पर कभी-कभी इस प्रकार की संकुचित धार्मिक अथवा सामाजिक भावना देखने में आती है जिसके कारण कभी-कभी झगड़े-फसाद हो जाते हैं। हम इस चीज को भी दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे संविधान में साफ-साफ बता दिया गया है कि कोई चाहे किसी भी धर्म का क्यों न हो, किसी भी जाति का क्यों न हो, इस देश में सबको समान अधिकार हैं। गरीब से गरीब आदमी को भी वही एक वोट देने का अधिकार है जो श्रीमन्त महाराज साहब को है या मुझे। हमारे संविधान में धर्म के नाम पर किसी भी प्रकार का भेद-भाव न तो किया गया है और न किया जा सकता है। कुछ पुरानी घटनाओं के कारण अभी तक हमारे हृदय में जब-तब खलबली उठ आया करती है, परन्तु आशा की जाती है और सभी यह चाहते हैं कि यह भेद-भाव सदा के लिए दूर हो जाये। सब लोग यह समझ कर कि यह देश उनका है, मिलजुल कर इसकी सेवा में लगें और इसकी उन्नति करें। इसकी उन्नति का जो परिणाम होगा उसका फल हम में से प्रत्येक को मिलेगा।

देश से गरीबी, बीमारी, अशिक्षा और अन्य दूसरे कष्ट दूर हो जाने चाहिएँ तो कोई कारण नहीं कि सब लोग मिलजुल कर इस काम में योगदान क्यों न दें और जब सब योगदान देंगे तो कोई कारण नहीं कि हम इस प्रयत्न में सफल न हों। इसलिए यद्यपि आज हम स्वराज्य पा चुके हैं और सभी स्थानों पर आपके द्वारा नियुक्त आपके सेवक देश का कारबार सम्हाल रहे हैं, तथापि हम यह नहीं भूल सकते कि यह सब राष्ट्र-निर्माण का काम है। अंग्रेजी साम्राज्य से लड़ने का काम एक प्रकार का था और अब देश को बढ़ाने और ऊंचा उठाने का काम दूसरे प्रकार का है। ईश्वर की दया से हमारे देश में लोगों की कमी नहीं है और हमको योग्य काम करने वाले मिलते जा रहे हैं। धीरे-धीरे ऐसे लोगों की संख्या और बढ़ती जाएगी जो देश सेवा का व्रत लेकर इस काम को करेंगे।

कभी-कभी मुझे ऐसा अनुभव होता है कि अब राष्ट्र-निर्माण के इस काम में पहले से अधिक त्याग की आवश्यकता है। जिस लगन, जिस तपस्या और जिस त्याग की आवश्यकता हम स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अनुभव करते थे, अब उससे भी अधिक तपस्या तथा लगन की आवश्यकता है। उस समय एक ऐसी चीज थी जो हम सबको इकट्ठा बांधकर रखती थी। वह था स्वराज्य का लक्ष्य, विदेशी सरकार से अपना अधिकार प्राप्त करना। अब वह लक्ष्य तो प्राप्त हो चुका है। ऐसे अवसर पर निजी स्वार्थ और उन्नति को एक ओर रखकर सारे देश की उन्नति और हित के लिए काम में लगना सचमुच त्याग की बात है क्योंकि इस समय कुछ ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रिटिश सरकार से लड़ते समय पाना कुछ नहीं था। यदि कुछ पाना था तो जेलखाना पाना था, घर के माल-ताल को लुटवाना अथवा नीलाम करवाना था। कुछ भाई-बहिनों को गोली भी मिली। अब आप व्यापार करके पैसे कमा सकते हैं अथवा अन्य उपायों से सम्पत्ति प्राप्त करके अपने को सम्पत्तिवान बना सकते हैं। मैं तो आशा करता हूँ कि जब कुछ मिलने वाला नहीं था, उस समय हमारे इतने बहिनों-भाइयों ने त्याग किया, तो क्या

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद देश को उन्नत देखने के लिए वे आगे न आएँगे ? वे अवश्य आगे आएँगे। आज कई रियासतों के बदले में राजस्थान का एक राज्य स्थापित हो गया है। यह सब पाने के बाद भारत के लोगों को अब यह समझ लेना है कि सबसे बड़ी सम्पत्ति तो त्याग ही है। सम्पत्ति पाना कोई इतनी बड़ी सम्पत्ति नहीं है। सम्पत्ति के त्याग में जितनी सम्पत्ति है, उतनी आज किसी चीज़ में नहीं है। मैं यह आशा करूँगा कि राजस्थान के लोग, जो इस सम्बन्ध में बहुत दक्ष हैं और जो केवल राजस्थान में ही नहीं बल्कि दूर-दूर जाकर भारतवर्ष के दूसरे भागों में स्वयं अपने को तथा दूसरों को भी धनवान बना देते हैं, अपनी बुद्धि, अपना कौशल और अपना अनुभव सारे देश को उन्नति तथा समृद्धिशाली बनाने में लगाएँगे।

एक दूसरे को समझना आवश्यक

यह दूसरा मौका है जब मैं आपके बीच आ सका हूँ और आपने मुझे मेरी पहली यात्रा का स्मरण दिलाकर और भी खुश कर दिया है। उस वक्त मैं यहाँ सिर्फ दो या तीन दिनों तक ही ठहर सका था और यहाँ जो देखने और जानने लायक बातें हैं, उनको मैं न देख सका था। इसलिए पिछले वर्ष जब मैंने यह तय किया कि मुझे कम से कम ४-५ हफ्ते हर साल दक्षिण के किसी भाग में ठहरना चाहिए और इसी सिलसिले में मैं करीब ३ हफ्ते मैसूर में ठहरा तो इस वर्ष मैंने दो-तीन हफ्ते हैदराबाद में बिताने का फैसला किया और उसी के मुताबिक मैं यहाँ हाजिर हुआ हूँ।

आपने यह सच कहा है कि इन ७-८ बरसों में, जब से हम आजाद हुए हैं और अपने कारबार संभालने का अख्तियार हमारे हाथों में पूरी तरह से आया है, इस देश ने काफी तरक्की की है और आज तक हम जो कुछ कर पाये हैं हम सिर्फ उससे बहुत ज्यादा करने की ही उम्मीद नहीं रखते बल्कि उसके लिए कदम भी उठा चुके हैं। काम रोज़-ब-रोज़ आगे बढ़ता जा रहा है।

१५ अगस्त, १९४७ को जिस वक्त हम आजाद हुए थे, उस वक्त एक ओर तो हम दिल्ली में बैठकर खुशियाँ मना रहे थे और दूसरी ओर हिन्दुस्तान के पश्चिमी हिस्से में इतने जोर से खूनखराबी, मार-काट और लूट-पाट चल रही थी कि जब हमको उसकी खबर मिली तो हम सबके रोंगटे खड़े हुए। उसका नतीजा यह हुआ कि सारे मुल्क में और खासकर उन हिस्सों में जहाँ इस तरह के वाकयात हुए हैं, लोगों को बड़ी मुसीबतों का

हैदराबाद और सिकन्दराबाद निगम के मानपत्र के उत्तर में भाषण, १९ जून, १९५५

संसद भवन को जाते हुए राष्ट्रपति की राजकीय सवारी।

भारत के राष्ट्रपति पद का शपथ लेने के पश्चात् संसद के समक्ष अभिभाषण करते हुए
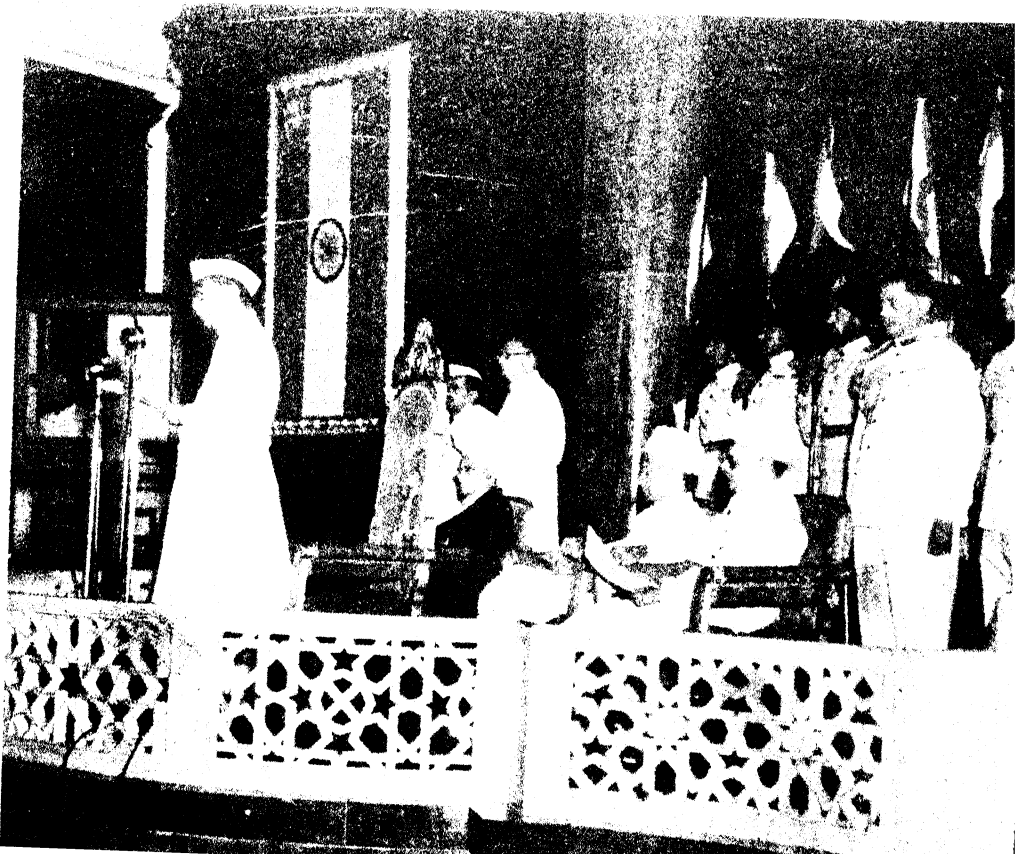
गणराज्य दिवस के उपलक्ष्य में राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हुए

ट्रपति भवन में आयोजित राजकीय भोज के अवसर पर मार्शल टीटो की स्वास्थ्य कामना करते हुए

नयी दिल्ली के राष्ट्रीय क्रीड़ांगण में आयोजित समारोह में
यूनेस्को के प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए

नयी दिल्ली में छठे तमिल समारोह का उद्घाटन करते हुए
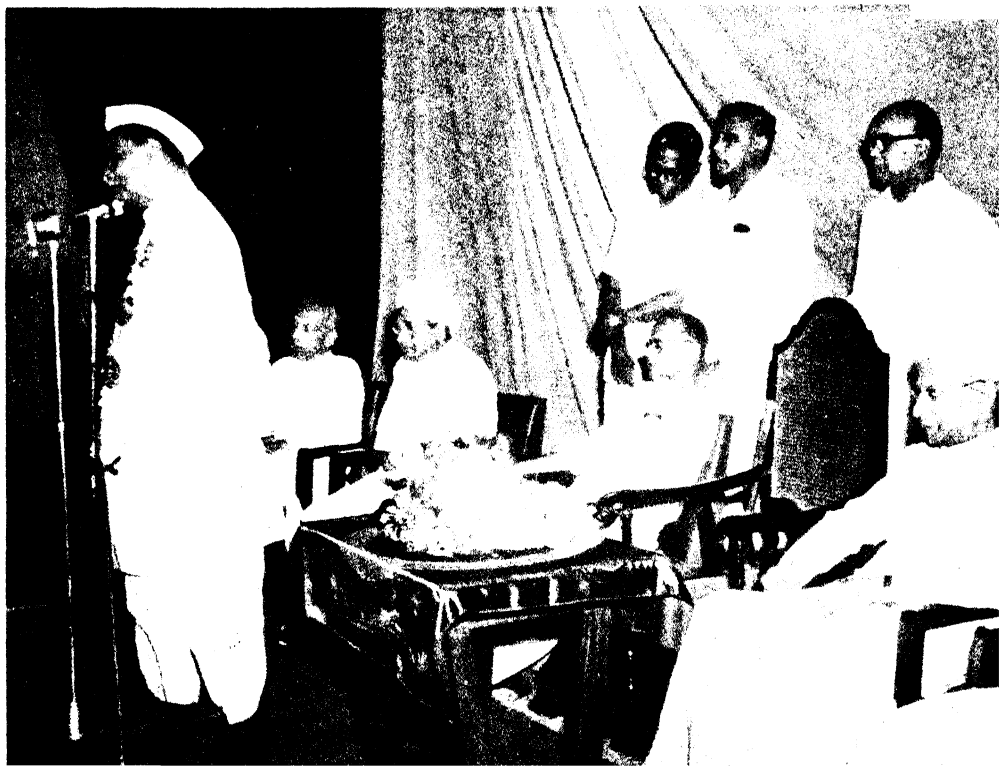
नई दिल्ली स्थित आइफैक्स हाल में आकाश-
वाणी की संगीत प्रतियोगिता के विजेताओं
को पारितोषिक वितरण करते हुए

भारतीय चलचित्रों के पुरस्कार वितरण समारोह में पुरस्कार प्रदान करते हुए

मुकाबला करना पड़ा। यह हमारी खुशकिस्मती थी कि जो हवा वहाँ बही, वह बहुत थोड़ी ही दूर तक जाकर रुक गयी और हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा हिस्सा उससे बिलकुल महफूज रह गया। यही वजह है कि बावजूद इतनी लूट-पाट और खूनखराबी के हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में एक तरह से बराबर अमन और शान्ति बनी रही। सिर्फ हमारी सरकार का ही नहीं, हमारे लोगों का भी कारबार ठीक तरह से चलता रहा। मगर लोग लाखों की तादाद में पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब को मजबूर होकर अपने कन्धों, बैलगाड़ियों, ऊँटों तथा घोड़ों पर जो कुछ लाद कर ला सकते थे लाये, पर अपने कारबार, अपने अजीज और प्यारे बच्चों, औरतों को जिन्दा या मुर्दा छोड़कर आये। उनको बसाना, उनको जिन्दा रखना कोई कम सवाल नहीं था और उस वक्त हमारी सरकार को इस काम में पूरी ताकत लगानी पड़ी जिससे उन लोगों को किसी न किसी तरह से पहले जिन्दा रखा जाये और उसके बाद उनको बसाया जाये। वह एक ऐसा वक्त था जिस वक्त सरकार को लोगों को कैम्पों में रखने में रोजाना १०-१५ लाख रुपया खर्च करना पड़ता था। वह दौर खत्म हुआ पर लोगों को किस तरह से बसाया जाये यह काम तो एक तरह से पश्चिम में शुरू हुआ।

मेरा खयाल है कि करीब ८० लाख लोग ऐसे आये जिनका न तो अपना घर था और न कुछ अपने साथ वहाँ से ला सकते थे। जो एक वक्त धनी समझे जाते थे वे बिलकुल दर-दर भीख माँगने लायक हो गये। खुशी की बात है कि ये सब भिखमंगे नहीं हुए। उन्होंने बड़ी हिम्मत दिखलायी और वह दिन जब याद आता है तो इस बात की खुशी होती है कि लोगों ने इतनी मुसीबतों का सामना इतनी बहादुरी से किया। दिल्ली के नजदीक में जहाँ तक देख सकता था एक आदमी भी ऐसा नहीं दिखायी पड़ा जो भीख माँगता फिरे। जो आये सबके-सब यही कहते थे कि उनको काम दो जिससे वे कुछ पैदा कर सकें और उन्होंने अपने लायक छोटे-मोटे काम चुन लिये। तब लोगों को बसाने का काम शुरू किया गया। पूरब और पश्चिम में लाखों की तादाद में लोगों को बसाया जा चुका है। यह काम जहाँ तक पंजाब और दिल्ली वगैरह के इलाके का ताल्लुक है, एक तरह से करीब-करीब पूरा हो चुका है। हम यह दावा नहीं कर सकते कि जो लोग पहले जिस हालत में थे, हम उनको फिर से उसी हालत में बसा सके हैं। वह तो गैर-मुमकिन था क्योंकि वहाँ एक-एक आदमी के पास हजारों एकड़ जमीन, बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें, लाखों रुपये का कारबार और बड़ी-बड़ी संस्थाएँ थीं जो लोगों के चन्दे से वहाँ कायम की गयी थीं। वे इन सब चीजों को छोड़कर आये, हम उन सबको ये चीजें नहीं दे सके। मगर इतना हमने जरूर किया कि पश्चिम के लोगों को कुछ थोड़ी-बहुत जमीन, कुछ थोड़ा-बहुत धन और रहने के लिए छोटा-सा ही सही एक मकान दिया। बंगाल में यह काम पूरा नहीं हुआ। मगर यह खुशी की बात है कि वहाँ भी यह काम तेजी से चल रहा है और थोड़े दिनों में हम उसको भी उसी तरह से हल कर सकेंगे जिस तरह से पश्चिम से आये हुए लोगों का हल हुआ है। अब तक सरकार ने इस काम में सवा दो सौ करोड़ रुपये खर्च किये और अभी भी हम नहीं कह सकते इसमें और कितना खर्च होगा। उनका भार हमारे ऊपर है। हमारा फर्ज है कि हम

उनकी जितनी मदद हो सके, करें और उन्हें फिर से आराम से बसा दें जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह खुद कर सकें।

एक तरफ तो यह बात थी और दूसरी तरफ लड़ाई की वजह से जो मुसीबतें हम पर आयीं, उन्हें हमने एक-एक करके हल करने की कोशिश की और बहुत हद तक हम इसमें कामयाब भी हुए। १९४६-४७ में जब मैं खाद्य तथा कृषि मन्त्री था लोगों को अन्न पहुँचाने का काम मेरे जिम्मे था। उस वक्त यह हालत थी कि दूसरे मुल्कों से अनाज मँगाना पड़ता था और इस चीज़ की चिन्ता लगी रहती थी कि किस ओर से किस जहाज से किस तारीख को कितना गल्ला रवाना होगा और किस तारीख को वह किस बन्दरगाह में पहुँचेगा और वहाँ से हम किस जगह को कब पहुँचा सकेंगे। यद्यपि परिस्थिति इतनी नाज़ुक थी, फिर भी ईश्वर की कृपा से इतना सब होते हुए भी एक आदमी भी उस ज़माने में भूख की वजह से नहीं मरा। आहिस्ता-आहिस्ता स्थिति सुधरती गयी और हमने इस मामले में बहुत तरक्की की। उस वक्त मैंने जब हिसाब लगाकर देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि यदि हम पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा पैदा कर सकें, याने १० मन के बदले ११ मन पैदा कर सकें तो अन्न की कमी दूर हो सकती है और स्थिति बहुत हद तक सुधर सकेगी। जब हम इस नतीजे पर पहुँच गये तो मैंने यह बात लोगों को समझायी। यह खुशी की बात है कि सब लोगों ने मिलकर इसे अपना काम समझ कर किया। हमारे देश में कहीं एक जगह एक आदमी सब गल्ला पैदा नहीं करता। अनेक छोटे-छोटे किसान हैं और उनकी अपनी-अपनी काश्तकारियाँ हैं। इसलिए उन सबको यह बात समझाना कि अधिक अन्न पैदा करो, आसान काम नहीं था। मगर धीरे-धीरे सब लोगों ने इस बात को समझ लिया और इसमें पूरा सहयोग दिया और जितनी ज़रूरत थी, उतना उस वक्त पैदा कर लिया और हम कह सकते हैं कि इस मामले में हम आज उससे भी कुछ अधिक सफल हो गये हैं।

कपड़े के सम्बन्ध में भी यही हालत थी। पहले लड़ाई के ज़माने में कुछ तंगी थी। इसका कारण यह था कि लड़ाई के जमाने में कपड़े के कारखानों में कुछ इस तरह की चीज़ें तैयार करायी गयीं जो आम लोगों के काम में नहीं आती थीं। मगर अब वह ज़माना बदल गया और अब हम देखते हैं कि इसमें भी हम अपनी ज़रूरत की चीज़ें पैदा कर लेते हैं और इतना ही नहीं ज़रूरत से ज्यादा पैदा कर रहे हैं, और कुछ दूसरे मुल्कों को भी भेजने की बात सोच रहे हैं और भेज रहे हैं। रेल के डिब्बों और इंजिनों के बारे में भी यही हालत है। लड़ाई के ज़माने में इन सब चीज़ों की बड़ी तंगी थी लेकिन अब हालत सुधर गयी है। हमने ५-७ नयी लाइनें बनवाने का फैसला किया है और बहुत सी लाइनें जो लड़ाई के ज़माने में बन्द कर दी गयी थीं, उन्हें फिर चालू कर दिया गया है। लड़ाई के पहले इस देश में रेलों में १,२०० करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई थी और इन ६-७ बरसों के अन्दर १,२०० करोड़ रुपयों का इसमें नफा हो गया है। पहले की पूंजी और इस पूंजी के मुकाबले यह खयाल करना चाहिए कि पहले के रुपये की कीमत आज के रुपये की कीमत से बहुत ज्यादा थी। तो हम कह सकते हैं कि उस वक्त के १,२०० करोड़ रुपये इस वक्त के ४,५०० करोड़ रुपये के बराबर हैं। नयी लाइनों में गाड़ी भी चालू हो गयी हैं। इस तरह

इंजिन भी हमारे देश में तैयार हो रहे हैं, जो पहले नहीं होते थे और हम विदेशों से मँगाते थे। चित्तरंजन में इसका कारखाना है और आज तक करीब १७५ नये इंजिन तैयार हो चुके हैं और हम समझते हैं कि उनकी तादाद बढ़ती जा रही है। वह भी किस्म-किस्म के इंजिन तैयार हो रहे हैं और मेरा खयाल है कि साल-दो साल के बाद यहाँ हम इतने इंजिन पैदा कर सकेंगे कि हमें विदेशों से इंजिन मँगाने की जरूरत नहीं होगी, बल्कि हम कुछ इंजिन विदेशों को भी भेज सकेंगे।

इस तरह रेल के डिब्बे बनाने का काम भी बड़ी तेजी से चल रहा है। इसमें भी हम आगे बढ़ रहे हैं और हम समझते हैं कि कुछ दिनों में हम जरूरत को पूरा कर लेंगे। मोटर के कारखाने भी खोल दिये गये हैं और हमारे देश में मोटर और हवाई जहाज भी हमारे अपने कारखानों में ही तैयार होने लगे हैं। जब हमने ऐसी बड़ी-बड़ी चीजों को तैयार करने का काम शुरू किया है जिनमें लोहा लगता है तो हमें जितना लोहा चाहिए उतना हम पैदा नहीं कर पा रहे हैं। हालाँकि इस मुल्क में ईश्वर ने वे सब सुविधाएँ दी हैं और अगर हम इन सुविधाओं को काम में लायें तो कोई कारण नहीं कि जितना सस्ता और अच्छा लोहा हम पैदा कर सकेंगे उतना शायद और ही कहीं हो सके। लोहा बनाने के लिए जो मुख्य चीजें चाहिएँ उनमें कोयला एक है और वह भी हमारे मुल्क में बेशुमार मात्रा में है। अब तक जो कारखाने हैं, उनमें एक टाटा का है, दूसरा मैसूर में और तीसरा बंगाल में है। इन सबमें कुल मिलाकर प्रायः १० लाख टन लोहा तैयार होता है। अब जो दो कारखाने बनेंगे उनमें १०-१० लाख टन लोहा तैयार होगा। उम्मीद है कि अगले तीन बरस के अन्दर ये कारखाने चलने लग जाएँगे। एक तीसरे कारखाने के बारे में भी बातचीत चल रही है और करीब-करीब फैसला हो गया है। वह भी अब कुछ दिनों में शुरू हो जाएगा। तो इस तरह पहले जहाँ १० लाख टन लोहा तैयार होता था वहाँ उम्मीद की जाती है कि इन तीन-चार बरस के अन्दर हम कम से कम ४० लाख टन लोहा पैदा कर सकेंगे। रूस और अमेरिका के मुकाबले यह कम है मगर और मुल्कों के मुकाबले कम नहीं है। हम समझते हैं कि अगर इसी तरीके से और इसी तेजी के साथ हम इस काम में आगे बढ़ते गये तो लोहे में हम किसी से पीछे नहीं रहेंगे, और लोहे की पैदाइश के जरिये हमारा और कारबार भी बढ़ सकता है।

आपने सिन्दरी का जिक्र किया है। उसके बारे में भी यह हालत है कि पहले हमें इस बात का डर था कि हम जरूरत के मुताबिक पैदा कर सकेंगे कि नहीं, लेकिन अब वह दूर हो गया है। लोगों ने भी इसके फायदे को समझ लिया और अब इसकी इतनी माँग बढ़ गयी है कि इस कारखाने के बावजूद हम जितना पहले विदेश से मँगाते थे आज भी मँगाने की जरूरत पड़ रही है। इसलिए एक दूसरा कारखाना बनाने की बात सोची जा रही है। एक तरफ रेल वगैरह के बड़े-बड़े कारखाने बन गये हैं तो दूसरी तरफ इस तरह के कारखाने, जिनके जरिये हम गाँव में लोगों को खाद पहुँचा सकते हैं। यह सब काम तेजी के साथ हो रहा है और होगा। स्कूलों, कालेजों की तादाद बढ़ी है। यूनिवर्सिटियों की तादाद बढ़ी है और उनमें विद्यार्थियों की तादाद भी बढ़ी है। इसके अलावा हमने यह भी देखा

कि जहाँ पर अस्पताल नहीं थे वहाँ अस्पताल खुलने लगे हैं और लोगों के लिए दवा का इन्तजाम करने का काम चल रहा है। इस तरह की जरूरत की जितनी भी चीजें हैं उनको मुहय्या करने के काम में कुछ सरकार और कुछ कारखाने वाले लोग मिलजुल कर आगे बढ़ रहे हैं। इस वक्त हम कह सकते हैं कि बहुत सी चीजों के मामले में हम किसी के मुहताज नहीं रहे हैं और बहुत सी चीजें हम बाहर भी भेजने लग गये हैं।

मुल्क के अन्दर जब से हम आजाद हुए, एक सवाल यह भी था कि हमारा विधान कैसा होगा याने हम अपने लिए किस तरह के कायदे-कानून बनाएँगे, और अख्तियार किसके हाथ में रहेगा।

हमने अपने आपस के झगड़ों को जो न मालूम कितने दिनों से चले आते थे एक साथ बैठकर तय कर लिया और अब हम एक संविधान के नीचे करीब साढ़े पाँच बरस से काम कर रहे हैं। ये सब काम हमने जो किये और जिनमें हम कामयाब हुए किसी एक आदमी के कारण नहीं हुए और न कोई एक आदमी कर ही सकता है। ये काम तभी हो सकते हैं जब कि सारे मुल्क के लोग इस बात को महसूस करने लगें कि अब इस मुल्क को बनाना और बिगाड़ना हमारे अपने हाथ की बात है। और अगर हम इसको बनायें तो उसकी जितनी तरक्की होगी उसका लाभ हमीं को मिलेगा, अगर बिगाड़ेंगे तो उसकी शिकायत ही नहीं बल्कि उसकी वजह से जो मुसीबतें आएँगी वे भी हमीं को बर्दाश्त करनी होंगी। यही समझ कर लोगों ने एक संविधान ऐसा बनाया है जिसमें सब लोगों की खुशी है और जिसको सबकी रजामन्दी मिली। मुल्क में कई मजहब के मानने वाले लोग बसते हैं और मुख्तलिफ़ भाषाएँ बोलते हैं। यह मुल्क इतना फैला हुआ है कि दूर-दूर के पिछड़े हुए इलाकों में हर बात में इतना फर्क है कि अगर कोई बाहर का आदमी आये तो वह शायद यह कहे कि यह एक मुल्क नहीं है। मगर इतने तफरकात के बावजूद इसके अन्दर एक एकता हमेशा से रही है जो आज की चीज नहीं। इसको हमारे पूर्वजों ने न मालूम कितने दिनों से कायम किया। आज हम यह कह सकते हैं कि इस मुल्क के अन्दर इतने किस्म के लोगों और इतने तफरकात के बावजूद सबको बराबर के हक हैं और सबको बराबर का मौका है। जब मेरे जैसा एक आदमी सारे मुल्क का राष्ट्रपति हो सकता है, तब कौन ऐसा है जिसके लिए यह मौका नहीं है। हरेक हिन्दुस्तानी को इसका मौका है। वह ऊँचे से ऊँचे ओहदे को प्राप्त कर सकता है। उसमें काम करने की ताकत हो तो वह ऊँचे से ऊँचे काम को अपने हाथ में ले सकेगा। हमने अपने मुल्क के अन्दर और मुल्क के बाहर जो कुछ किया है, वह सब फौजी ताकत से नहीं। आज हमारे मुल्क में जो फौज है वह अपने काम में लगी हुई है। जब मौका आया, उसने बहादुरी भी दिखलायी और उसने किसी मुल्क की फौज के मुकाबले अपने को नीचा नहीं दिखाया। आजकल दिन ब दिन नये किस्म के बम और नये किस्म के हथियार तैयार हो रहे हैं और ये सब हमारी फौज के पास नहीं हैं।

आज अगर अमेरिका, रूस और इंग्लैण्ड हमारे मुल्क की बात सुनना चाहते हैं तो इसलिए नहीं कि हमारे पास इतनी फौज है जिससे हम उनको दबा कर अपनी बात मनवा सकें, बल्कि इसलिए कि जो बात हम कर रहे हैं वह बात सच्ची और ठीक है। इसके लिए

कभी-कभी हमें गलतफहमी का भी शिकार बनना पड़ा है, मगर इस सबकी परवाह न करके जिस चीज़ को हम ठीक और सच्चा मानते हैं हम उसको खुलकर कहते हैं। कोई मुल्क ऐसा नहीं जो शान्ति नहीं चाहता। हाल में जो बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हो चुकी हैं, जिनका नतीजा लोगों ने अपनी आँखों से देखा है और जिनकी वजह से जो मुसीबतें हमारे सामने हैं उनको हम कैसे भूल सकते हैं ? न मालूम कितने गरीबों ने अपने बच्चों और रोज़गार पैदा करने वालों को खोया। इसलिए आज कोई नहीं चाहता कि लड़ाई हो। अब अगर कोई लड़ाई होगी तो पिछली लड़ाइयों से कहीं भयंकर होगी। उसमें ऐसे हथियार कहीं ज्यादा इस्तेमाल होंगे जिसका एक बार नमूने के तौर पर जापान के हिरोशिमा में इस्तेमाल हुआ था। उसकी वजह से जापान में भयंकर नुकसान हुआ। ऐसी हालत में हरेक आदमी यही सोच सकता है कि लड़ाई न हो। यदि हम एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें और इस बात को मान लें कि हम सबको कायम रहना है तभी हम एक दूसरे से नहीं लड़ेंगे। एक दूसरे के प्रति आदरभाव रखने पर ही यह दुनिया कायम रह सकती है।

इसके लिए रास्ता दिखाने वाले महात्मा गान्धी ही थे। यद्यपि आज यह शिकायत है कि हम उनके रास्ते पर पूरी तौर से नहीं चल रहे हैं तो भी उसका और उसकी सच्चाई का असर सारी दुनिया पर पड़ता है। गान्धी जी फौज रखने के लिए तैयार नहीं थे। मुल्क में, हमको आज जो कुछ कामयाबी मिली वह फौज की वजह से नहीं बल्कि गान्धी जी के सिद्धान्तों की वजह से मिली है। अगर हम उन सिद्धान्तों के मुताबिक पूरी तौर से चलें तो फौज रखने की जरूरत नहीं है। सारी दुनिया के अन्दर हम शान्ति चाहते हैं। इसके लिए कुछ मुश्किलें भी हमें बर्दाश्त करनी होंगी। हो सकता है, जो अनुभव हमें मिला है और इस सिद्धान्त पर चलने का जो नतीजा हमने देखा है उस नतीजे से हम भी इस बात के लिए तैयार हो जायें कि फौज की जरूरत दुनिया को नहीं है। दुनिया में आज हमारे देश की इज्जत हो रही है। हमारे प्रधान मन्त्री आज दुनिया के बड़े से बड़े लोगों में समझे जा रहे हैं और सब जगहों में खासकर उन-उन जगहों में जहाँ मुश्किलें आती हैं, उन मुश्किलों को आसान करने के लिए वह एक ज़रिया समझे जाने लगे हैं।

हम अभी भी एक छोटे बच्चे के जैसे हैं। अभी ८ साल भी पूरे नहीं हुए जबकि हम आज़ाद हुए। हमारे पैर जितना बर्दाश्त कर सकते हैं हम उससे ऊपर उठने की कोशिश करते हैं। इसलिए जो कुछ हम कर रहे हैं, संभल-संभल कर कर रहे हैं और अपनी ताकत का अन्दाज लगाकर कर रहे हैं। हम इस बात की भी कोशिश कर रहे हैं कि हम इसमें कामयाब हों। आहिस्ते-आहिस्ते चल कर हम देखेंगे कि आखिर में हम काफी तेज़ चले। इसलिए आज मुल्क के अन्दर ऐसा मौका है। जब लोग सरकार की बात सोचते हैं तो हमेशा शिकायत से पेश आते हैं। कहने लगते हैं—यह बात नहीं हुई, वह बात नहीं हुई। मैं जानता हूँ यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है। जो कुछ हम करना चाहते थे वह सब हम नहीं कर पाये। मगर जो नहीं कर पाये हैं उसकी ओर देखकर, जो अब तक कर चुके हैं उसको भूल जाना कहाँ तक उचित है ? मैं चाहता हूँ कि जो हुआ है उस पर हम जरूर विचार करें, इसलिए नहीं कि हम काफी कर चुके हैं और अब हमको कुछ नहीं करना है, बल्कि इसलिए कि लोगों

में उत्साह बढ़े और जो बाकी है उसे भी हम पूरा करें।

मैं उम्मीद करता हूँ कि आप इस चीज को समझते हैं, इसलिए आपने अपने मानपत्र में इन सब बातों का जिक्र किया है। मुझे आपने मौका दिया कि मैं यह साफ-साफ कह सकूँ। मैं इस बात का बहुत शुक्रगुजार हूँ। जब से मैं आया हूँ और जहाँ-जहाँ मैं गया हूँ लोगों ने मेरे प्रति बहुत प्रेम दिखलाया है। मैं आशा करता हूँ कि हम जो नया हिन्दुस्तान बना रहे हैं, उसका लाभ आपको भी मिलेगा।

हमारी प्रेरणा के स्रोत—गान्धी जी

यह पहला अवसर है जब मैं आपके इस नगर में आया हूँ और आप लोगों के प्रेम और उत्साह को देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आज सवेरे मैं यहाँ से गुजरा और यहाँ से थोड़ी दूरी पर सरदारशहर में जो कुछ काम गान्धी मन्दिर की ओर से किया जा रहा है तथा स्थानीय नेताओं के प्रयत्न से चल रहा है, उस सबको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

आपने अपने मानपत्र में इस बात का उल्लेख किया है कि स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रयत्न से हमारे देश के रजवाड़ों का भारत के साथ एकीकरण हो सका और आज हम सारे भारतवर्ष को एकछत्र राज्य के अधीन देखते और उससे लाभान्वित हो रहे हैं। यह बात सच है। स्वर्गीय वल्लभ भाई पटेल की चतुराई ने तथा उसके साथ ही साथ नरेशों के देश-प्रेम और देश के प्रति कर्तव्य की भावना ने उनको यह स्वीकार करने के लिए बाध्य किया कि उनका हित भारत के साथ मिलने में ही है और उन्होंने अपना भाग्य सारे देश के लोगों के भाग्य के साथ जोड़ दिया। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि जहाँ एक ओर ऐसा भय था कि देश बहुत भागों में विभक्त हो सकता था और दूसरी ओर एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या, एक-दूसरे के प्रति सद्भावना का अभाव हमें हर प्रकार से नीचे गिरा सकता था और हम संसार के सामने सिर उठाने योग्य नहीं रह सकते थे, वहाँ आज संसार में हमारे देश की प्रतिष्ठा हो रही है। संसार के अनेक देशों को भारत से बहुत कुछ आशा भी है। यह तो प्रसन्नता की बात है, परन्तु साथ ही साथ इसमें हमारा उत्तरदायित्व बढ़ जाता है और हमारे कर्तव्यों का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। इसलिए हमको यह भी देखना है कि हम अपने देश में क्या कर रहे हैं क्योंकि एक छोटी सी बात का भी दूसरे देशों पर प्रभाव पड़ता है। उसी के फल-स्वरूप दूसरे लोग हमारे प्रति भलाई या बुराई का भाव रखने के लिए प्रेरित होते हैं। हमको सब बातों में सोच-समझ कर चलना है जिससे हम संसार के सामने कह सकें कि हमारा देश

रतनगढ़ की सार्वजनिक सभा में भाषण, २८ अगस्त, १९५५

एक प्राचीन देश है तथा उसकी अपनी संस्कृति है। इस सबके लिए हमें एकता की अग्नि प्रज्वलित करनी है जिससे संसार के लोग लाभ उठा सकें।

हमारे लिए यह भी सौभाग्य की बात है कि देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हमने जो कुछ किया, वह विलक्षण है। महात्मा गान्धी के नेतृत्व में हमने अहिंसा और सत्य के मार्ग का अवलम्बन करके संसार के सामने एक नयी चीज़ रखी और उस मार्ग पर चलकर हम देश को स्वतन्त्र कर सके। अब हमको सिद्ध करके दिखलाना है कि सत्य और अहिंसा से हम देश को स्वतन्त्र ही नहीं कर सके बल्कि उससे स्वतन्त्रता की रक्षा भी कर सकते हैं और उसके द्वारा हम देश को समृद्ध भी बना सकते हैं।

जहाँ तक राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति का काम था, वह तो हमने महात्मा गान्धी के काल में कर लिया। उसके बाद यद्यपि प्रायः दो वर्ष हमने अपना संविधान तैयार करने में लगाये, परन्तु वह काम एक प्रकार से पूरा हो चुका था। फिर भी हम पूर्ण रूप से उन्नति नहीं कर पाये हैं। नहीं कर पाने के भी कारण हैं और वे ऐसे कारण हैं जिनको हम किसी प्रकार आँखों से ओझल नहीं कर सकते। हम मजबूर थे और हम नहीं कर सके। इसके साथ ही हमें यह भी मानना होगा कि ऐसे कारणों के अतिरिक्त हममें कमजोरी भी थी जिसके कारण हम अपना काम पूरा नहीं कर सके। हम आपको यह शुभ सन्देश देना चाहते हैं कि अब हम गान्धी जी के विचारों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। गान्धी जी की आत्मा हमें प्रेरणा दे रही है और आशा है कि धीरे-धीरे एक न एक दिन हम उनके बताये मार्ग पर चलेंगे और तभी हम संसार के सामने अपने को इस योग्य सिद्ध कर सकेंगे कि हम गान्धी जी के सच्चे उत्तराधिकारी हैं।

बात तो यह है कि यदि हमने यहाँ केवल पश्चिमी संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन और हिंसात्मक वातावरण की हूबहू नकल की तो हम न तो संसार के सामने कोई आदर्श रख सकेंगे और न हम यह कह सकेंगे कि गान्धी जी हमको कोई मार्ग बता गये हैं जो दूसरों को मालूम नहीं है। अगर हम अमेरिका की नकल करें, इंग्लैण्ड की नकल करें तो हमारी नकल, नकल ही रहेगी, हम भारत को अमेरिका या इंग्लैण्ड नहीं बना सकेंगे। किन्तु साथ ही आज तक जो हमारी परम्परा रही है, अन्धे की भाँति उसका अनुकरण करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। कोई भी जीवित संस्था, देश अथवा जाति सभी चीज़ों को लेती है और उनको अपने ढाँचे में ढालकर उनसे अपनी आवश्यकताएँ पूरी करती है। वह उनका दास होकर नहीं बल्कि उनका स्वामी बनकर रहती है। हमको भी यही करना है, दूसरों की नकल नहीं करनी। इसलिए हमें गान्धी जी द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए। इस देश को जितना महात्मा गान्धी जानते थे उतना शायद ही कोई दूसरा जानता हो। इस देश का जितना भ्रमण उन्होंने किया, किसी दूसरे भारतवासी ने शायद ही उतना भ्रमण किया हो। उनका भ्रमण कुछ मामूली भ्रमण नहीं हुआ करता था। वह जहाँ जाते थे, उनकी आँखें और उनका मस्तिष्क खुला रहता था। इसलिए जो कुछ वह देखते थे उसका प्रभाव उनके हृदय पर पड़ता था और उसमें कहीं कोई कमी या त्रुटि होती तो उसको वह भली प्रकार से पहचान लेते थे।

वह कमजोरियों को दूर करने के लिए कहने में हिचकते नहीं थे। वह कमजोरियों को बताते थे और बताकर दूर करना चाहते थे। वह जानते थे कि हमारी कमजोरियाँ दूर हो जाएँगी तो स्वयं हममें इतनी बड़ी जागृति आ जाएगी कि हम सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे। हमें यह स्मरण रखना है।

अभी मैं बहुत घूमता हूँ। कहीं-कहीं ऐसा सुनने में आता है कि अमुक ने गलती की, तथा अमुक ने चोरी की इत्यादि। हमारी आँखें अपने दोषों को देखकर दूसरे के दोषों को ही देखना चाहती हैं। यही हमारी कमजोरी है। इसलिए मैं चाहूँगा कि सरकार का काम चाहे कोई भी दल सम्हाले, उसको मध्यम मार्ग चुनना और उस पर चलना चाहिए जिसमें सभी का सहयोग प्राप्त हो और देश की उन्नति हो। यदि दूसरों से कुछ लेना हो तो लें पर उसको अपना बनाकर रखें और जो कुछ छोड़ना हो उसको छोड़ दें। यदि हममें इतना विवेक आ जाएगा तो हमारी शक्ति और भी बढ़ेगी।

आप जानते हैं कि भारतवर्ष इतना बड़ा देश है पर संसार के और बड़े-बड़े देशों की सैनिक शक्ति के सामने उसकी शक्ति बहुत कम है। इंग्लैण्ड, अमेरिका और रूस की सैनिक शक्ति के सामने हमारी शक्ति बहुत कम है। ऐसी स्थिति में हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या हम किसी के सामने झुक जायें, किसी के साथ मिल जायें या अपने को तटस्थ और स्वतन्त्र रखें। किसी के साथ मिल जाने का अर्थ यह हो सकता है कि हमें उसके प्रभाव या उसकी शक्ति का लाभ मिले परन्तु उसका परिणाम भयंकर हो सकता है। यदि उन पर कभी संकट आया तो हम पर भी आएगा। यदि हम अलग रहते हैं तो हम अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी शक्ति से बहुत कुछ कर सकते हैं। हमारे प्रधान मन्त्री ने इसी नीति को अपनाया है और यद्यपि आरम्भ में हमारे अपने देश में ही बहुत से लोगों ने इसको नहीं समझा या पसन्द नहीं किया, परन्तु आज हम देख रहे हैं कि उसका परिणाम क्या हो रहा है। हमारे प्रधान मन्त्री ने इस बात की घोषणा कर दी कि हम किसी भी दूसरे देश के साथ गठबन्धन नहीं चाहते और हम स्वतन्त्र रह कर अपना कामकाज अलग चलाएँगे। हमारे बहुतेरे लोगों ने यह समझा कि यदि हम किसी बलशाली देश से मिलें तो और कुछ नहीं तो कम से कम आर्थिक सहायता तो मिलेगी। जो देश यह चाहते थे कि हम उनके साथ मिलें, उन्होंने तो बुरा माना ही। उन्होंने यह नहीं समझा कि हम अपने को अलग रख रहे हैं न कि उनके विरोधियों के साथ मिल रहे हैं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, धीरे-धीरे उन्होंने भी हमारी विदेशी नीति को समझा। आज संसार के लोग मानने लग गये हैं कि भारतवर्ष अपने दृष्टिकोण पर स्थिर है।

इतना ही नहीं बल्कि एक नये देश को जिसे स्वतन्त्र हुए अभी ७-८ वर्ष ही हुए हैं जो स्थान मिल सकता है, उससे कहीं ऊँचा स्थान हमको मिल गया है और हमारा उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। मैं मानता हूँ कि इसी प्रकार यदि हम महात्मा गान्धी के दूसरे सिद्धान्तों को भी साहस के साथ अपनायें और उनके अनुसार आचरण करें तो उसका संसार पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। आज बहुतेरे देश इस फिक्र में हैं और जानना चाहते हैं कि गान्धी जी का भारत उनके सिद्धान्तों पर क्यों नहीं चल रहा। हमको बाध्य

होकर कहना पड़ता है कि अपनी कमजोरियों के कारण हम वैसा नहीं करते। गान्धी जी में तो इतना साहस था कि वह जो कुछ करते थे, उसी को कहते थे और जो वह स्वयं नहीं कर सकते थे दूसरों से करने के लिए भी नहीं कहते थे। उस समय जो युद्ध चल रहा था, उस सम्बन्ध में उन्होंने जर्मनों और अंग्रेजों, दोनों से कहा था कि अस्त्र-शस्त्रों से मत लड़ो। उन्होंने उनकी बात नहीं सुनी। दुःख की बात है कि हम भी उनके बताये मार्ग पर नहीं चलते। हमारे पास जल, वायु और स्थल सेना है और वह हर प्रकार से उन्नति भी कर रही है। गान्धी जी रहते तो वह क्या कहते मालूम नहीं, पर हममें यह कहने का साहस नहीं कि हम अपने देश की रक्षा अहिंसा के बल पर कर लेंगे। वैसा साहस न तो सरकार में है और न देश के किसी नेता में। यह होते हुए भी हम इस बात को मानते हैं कि धीरे-धीरे देश उस ओर जाएगा और सारे संसार को भी उसी ओर जाना पड़ेगा। सारा संसार शान्ति की खोज में है। जब सभी शान्ति के लिए उत्सुक हो जाएँगे तब बहुतेरे देश हमारा साथ देने के लिए तैयार होंगे। गान्धी जी को अहिंसा में अटूट विश्वास था और इसीलिए उन्होंने इस सिद्धान्त को संसार के सामने रखा। अब उनके बाद संसार के सामने उस सिद्धान्त को हमें रखना है और उसके लिए अपने को तैयार करना है। उसके लिए हमारे गाँवों, शहरों और देश के प्रत्येक नर-नारी का संगठन आवश्यक है और तभी हम उस मार्ग पर चलकर साहस के साथ देश की रक्षा कर सकते हैं और उसको शक्तिशाली बना सकते हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें बल दे जिससे हम उस मार्ग पर चल सकें और केवल अपने देश के लिए ही नहीं बल्कि संसार के लिए उस सन्देश का प्रचार कर सकें।

एक हो कर रहें

आप लोगों ने जिस प्रेम और उत्साह के साथ मेरा स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ। मुझे इस बात का दुख है कि जो सभा कल होने वाली थी, वह नहीं हो सकी और आप में से बहुतेरों को कल कष्ट उठाना पड़ा और शायद कुछ ऐसे भी व्यक्ति हों जो कल आये हों पर आज न आ सके हों। कुछ कारणों से विवश होकर ही ऐसा करना पड़ा। मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

इस समय भारतवर्ष के सामने बहुत प्रकार की जटिल समस्याएँ हैं और यह ऐसा समय है जब सबसे यह अपेक्षा की जाती है कि आप सदा भारत की सुरक्षा और उसकी उन्नति के लिए कटिबद्ध होंगे। आपको मालूम ही है कि जब से यह प्रश्न हमारे सामने आया

औरंगाबाद नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्र के उत्तर में भाषण, ४ जुलाई, १९५६

है कि भाषा के आधार पर देश के विभिन्न भागों का पुनर्गठन किया जाये, तब से देश में बहुत प्रकार के आन्दोलन उठ खड़े हुए हैं। सरकार ने जनता की इच्छा और माँग को देखते हुए उसके लिए एक विशेष आयोग नियुक्त किया और यह आशा की जाती थी कि उसकी जो कुछ भी सिफारिशें होंगी, वे सबको मान्य होंगी और आपस के मतभेद के लिए कोई स्थान न होगा। इस सम्बन्ध में सरकार ने जो भी निर्णय किये उनमें से अधिकांश निर्णय सर्व-सम्मति से ही हुए हैं। परन्तु दुख की बात है कि एक-दो स्थानों पर मतभेदों ने एक ऐसा रूप ले लिया जो देश के लिए वांछनीय नहीं हो सकता। दुर्भाग्यवश आपका यह क्षेत्र भी उन क्षेत्रों में से एक है। मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि आपने भारत सरकार के साथ सदा सहयोग करने और हर प्रकार से उसके निर्णय को मानकर देश के सुगठित प्रशासन में हाथ बँटाने का विश्वास दिलाया है।

जब किसी देश के सामने बड़े-बड़े प्रश्न उपस्थित होते हैं तो उनमें से कुछ बातों पर मतभेद हो जाना स्वाभाविक ही है। इस युग में जब हम सब काम जनता की सम्मति से करना चाहते हैं और हमारी सरकार भी जनता की बनायी हुई है, तब यदि कहीं मतभेद हो जाये तो उसमें उतावलापन करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती क्योंकि विरोध प्रदर्शन करने के लिए आपके पास पर्याप्त समय है। परन्तु एक चीज जो हम सबको भली-भाँति जान लेनी चाहिए और जिसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के मतभेद की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए, वह यह है कि चाहे हमारे मतभेद कितने ही अधिक क्यों न हों, उनको सुलझाने का एक ही उपाय है। और वह उपाय यह है कि इस सम्बन्ध में निर्णय आपस में बातचीत करके तथा एक-दूसरे को समझा-बुझा कर किये जायें, डण्डों और पत्थरों से नहीं। हमने अंग्रेजों के विरुद्ध भी, जिन्होंने इस देश को २०० वर्षों तक अपने अधीन रखा, डण्डे और पत्थर उठाना गलत समझा और नहीं उठाया। तो क्या आपस के छोटे-मोटे झगड़ों के लिए हम डण्डे और पत्थरों का उपयोग करेंगे और एक-दूसरे की नेकनीयती, उनकी प्रसन्नता और उनके विचारों का ध्यान नहीं रखेंगे ? यदि हम यह समझें कि हम कुछ काम बलप्रयोग द्वारा कर लेंगे तो मैं समझता हूँ कि देश के समझदार लोगों में शायद ही कोई ऐसा हो जो यह समझता हो कि इस प्रकार के मामले सचमुच लड़ाई से तय किये जा सकते हैं।

आपके सामने रास्ता खुला है और आपको यह बता भी दिया गया है कि अगर आप चाहेंगे तो कुछ दिनों के बाद आपकी और उस क्षेत्र के लोगों की इच्छा के अनुसार ही जिससे आप मिलना चाहते हैं, निर्णय किया जाएगा तो फिर झगड़ा करने की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए। मैं यह जानता हूँ कि शायद आपका यह क्षेत्र इस मामले में उन लोगों के साथ नहीं है जो इस प्रकार के झगड़े की बात कर रहे हैं। आपको और महाराष्ट्र प्रदेश में बसने वालों को इस बात की प्रसन्नता होनी चाहिए कि जिस प्रकार सभी तेलुगु-भाषियों तथा कन्नड़-भाषियों को इससे सन्तोष है कि वे सबके सब अपने-अपने भाषा-भाषी-राज्यों में इकट्ठे होने जा रहे हैं और एक साथ मिल कर अपना कारबार चलाएँगे, उसी प्रकार सब मराठी-भाषी तथा सब गुजराती-भाषी लोग भी इकट्ठे किये जा रहे हैं। जब आप लोग अपनी इच्छानुसार इतनी बड़ी चीज प्राप्त कर रहे हैं, तब एक छोटे से टुकड़े के न मिलने को

इतना महत्त्व देना और उसके कारण सारी चीज़ के लिए गड़बड़ मचा देना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। इसलिए मैं तो आशा करता हूँ कि महाराष्ट्र के लोग, जो बहुत ही समझदार तथा त्यागी हैं, जिनकी राजनीतिक मामलों में सदा से काफी रुचि रहती आयी है और जिन्होंने अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने से पूर्व देश के भाग पर अपना प्रभुत्व जमाये रखा था, इस चीज़ को समझ कर समझदारी से काम लेंगे क्योंकि हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हम देश की एकता को नष्ट होने से किस प्रकार बचायें। पिछले हज़ार वर्षों का इतिहास और सम्भवतः उससे भी पहले का इतिहास हमको इस बात की चेतावनी देता है कि हमारे देश में सब कुछ रहते हुए भी हममें एकता की भावना का अभाव रहा है।

आज की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है क्योंकि आज एक कानून जो आपके प्रतिनिधि दिल्ली में बैठकर बना देते हैं, वह कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक और पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक सभी स्थानों में समान रूप से मान्य होता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आज हम लोगों ने एक बड़ी चीज़ प्राप्त की है। आज हमें देश में एकता बनाये रखनी है क्योंकि इसी के अभाव के कारण भारत में कभी भी एकछत्र राज्य स्थापित नहीं हो सका। राजा-महाराजाओं तथा बादशाहों आदि के समय में जहाँ-जहाँ उनके सूबेदार नियुक्त हुए, वहाँ-वहाँ उन्होंने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। मुगलों के समय में बादशाहों के बेटे जब सूबेदार नियुक्त हुए तो वे बाप को हटाने में तनिक भी नहीं हिचके। यही हमारा इतिहास रहा है। हमें उस इतिहास को भूलना नहीं है, याद रखना है और वह इसलिए कि फिर से इस देश में उसकी पुनरावृत्ति न होने पाये। वास्तविक एकता लोगों के हृदयों की एकता तथा संस्कृति की एकता होती है। हमारे देश में विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता रही है, और आज भी है। उसको राजनीति का जामा पहना दिया गया है पर जब संस्कृति और राजनीति दोनों एक साथ चलेंगी तभी सारा देश एक होकर रहेगा।

आपको मालूम ही है कि पिछले ८-९ वर्षों में, जब से हम स्वतन्त्र हुए हैं, देश की प्रतिष्ठा सारे संसार में कितनी ऊँची हो गयी है। जब तक हम दूसरे के अधीन थे, हमारी कोई हैसियत नहीं थी। तब हमको कोई पूछनेवाला नहीं था। परन्तु जिस दिन हम स्वतन्त्र हुए, उस दिन से भारत संसार के मानचित्र में अपना स्थान पा सका है। अब बड़े से बड़े देश न केवल हमारी बातों को सुनते हैं, बल्कि हमारा आदर भी करने लगे हैं। उसका कारण यही है कि अब सारा देश एक छत्र के अधीन हो गया है। हम अपने देश में जो कुछ करते हैं, उसका विदेशों पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम छोटी-मोटी बातों को लेकर आपस में लड़ेंगे तो विदेशों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। वहाँ के लोग कहेंगे कि हम दूसरों को तो शान्ति से रहने को कहते हैं, पर स्वयं अपने देश में छोटी-मोटी बातों को लेकर इतने बड़े दंगे-फसाद करते हैं। हमारे पास इसका कोई उत्तर नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि इसका अच्छा उत्तर दिया जाये। यह उत्तर एक आदमी नहीं दे सकता। इसका उत्तर सब लोग अपने इस विचार को पक्का करके दे सकते हैं कि हम अपने देश की मान-प्रतिष्ठा बढ़ाएँगे। जिस प्रकार भी हो हम अपने देश की मर्यादा तथा देश की स्वाधीनता कायम रखेंगे और आपस के मतभेद

बातचीत करके परस्पर तय कर लेंगे। केवल पक्के विचार और दूरदर्शिता की आवश्यकता है।

आज हम जिस स्थान पर बैठे हैं, उसका अपना गौरवपूर्ण इतिहास है। यह वह स्थान है जिसने सन्त वाणी दी, सारे देश को जागृत किया और सदा के लिए मनुष्य को ऊँचा स्थान प्राप्त करने का मार्ग बताया। मैं तो यह जानता हूँ कि यह स्थान केवल सन्तों का ही नहीं, देशभक्तों का भी स्थान है। यहाँ राजनीति का भी महत्त्व कम नहीं रहा है। आपका इतिहास जब इतना महत्त्वपूर्ण है तो उसके अनुसार आपकी प्रतिष्ठा भी होनी चाहिए।

आपने कहा है कि यह राज्य दूसरे नये राज्य में सम्मिलित हो जाएगा। शायद आप ऐसा ही चाहते हैं और इसीलिए ऐसा हो रहा है। सरकार की नीति में कुछ समय तो लगता ही है। पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह सब बिना किसी कष्ट के हो जाएगा।

आशा है कि सारे देश के लिए जो योजनाएँ बन रही हैं, उनसे सारे देश का जीवन-स्तर उन्नत होगा जिसके फलस्वरूप इस देश से बीमारी तथा अशिक्षा दूर की जा सकेगी। आपके क्षेत्र को भी इन सब योजनाओं का पूरा-पूरा लाभ मिलना चाहिए और मिलेगा। यह दूसरी बात है कि जब भोजन परोसा जाने लगता है, परोसने वाला एक होता है और वह एक ओर से ही आरम्भ कर सकता है। वह एक ओर से आरम्भ करके फिर दूसरी ओर जाता है और एक चीज के बाद दूसरी चीज की बारी आती है। सब लोगों को सब चीज एक साथ नहीं मिल सकती। आप यह समझें कि आप लोगों के लिए भी भोजन तैयार है। थाली भी सबके सामने है। धीरे-धीरे आपकी भी बारी आएगी, सब चीजें आपको मिलेंगी। यदि किसी चीज़ के मिलने में देरी हो तो उसके लिए चिन्ता न करें। जल्दी करने से हाथ में से थाली गिर जाये तो उससे मामला और भी बिगड़ जाएगा। मुझे तो पूरी आशा है कि हम जो प्रकाश फैलाने का प्रयास कर रहे हैं, वह प्रकाश देश के हर कोने तक पहुँचेगा और हर स्थान के लोग उससे लाभ उठा सकेंगे तथा आपकी भी बारी आएगी।

भारत का स्वर्णिम अतीत

मेरी बहुत दिनों से यह लालसा थी कि मैं आपके इस पुण्य स्थान में आऊँ, इसके दर्शन करूँ और इसकी रजकण अपने सिर पर लगाऊँ। बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद यह समय आया और मैं यहाँ आ सका। ईश्वर की कृपा से केवल यहाँ पहुँचा ही नहीं

चित्तौड़गढ़ नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्र के उत्तर में भाषण, ८ अक्तूबर, १९५६

बलिक जब चारों ओर घूमकर देखने का अवसर आया तो उस समय इन्द्र ने भी कृपा की और ऐसा अवसर दिया कि मैं चारों ओर अच्छी तरह घूम और देख सकूं।

यह कहने की बात नहीं कि आपका इतिहास एक गौरवपूर्ण इतिहास है और वह भी ऐसा जिसने हमारे देश की पीढ़ियों को, एक-दो पीढ़ियों को ही नहीं, बलिक न मालूम कितनी पीढ़ियों को जागृत किया है। उन पीढ़ियों ने समय-समय पर, जब-जब अवसर आया अपने तरीकों से इस देश की सेवा करने का प्रयास किया। न मालूम कितने स्त्री-पुरुषों ने आपके इस स्थान में बलिदान करके हमारे देश के और संसार के सामने वह उदाहरण रखा, जिसका स्मरण करके आज भी हम रोमांचित हो उठते हैं और हम अपने को धन्य मानते हैं।

मेरे लिए यह कहना अनुचित न होगा, या मैं यों कहूँ कि आपके उत्साह से अनुप्राणित हो कर मेरे जैसे अनेकों ने अपनी युवावस्था में यह ठान लिया था कि हम देश को एक बार फिर स्वतन्त्र करने की चेष्टा करेंगे। ईश्वर की कृपा हुई और जनता का पूरा सहयोग मिला। इसका फल यह हुआ कि हम आज स्वतन्त्र हो सके हैं और मैं आपके इस नगर में एक स्वतन्त्र देश के राष्ट्रपति के रूप में पहुँचा हूँ और आपसे कुछ कह सकता हूँ।

पहले की बात कुछ और थी और आज की बात कुछ और है। समय-समय पर नयी-नयी बातें सामने आती हैं और काम के तरीके बदलते हैं। संसार की यह रीति सदा से चली आयी है। हमको अपने देश को उन्नत करना है। जब जैसा समय होता है, अपने को उसके अनुसार ढालना पड़ता है। उसी के अनुसार काम करके अपने को संसार के और देशों की तुलना में रखकर हमें काम करने की योग्यता प्राप्त करनी होती है। स्वतन्त्रता पाने के पश्चात् पिछले करीब दस वर्षों से हम इसी धुन में लगे हुए हैं कि इस देश को किस तरह से ऐसा बना दिया जाये जिससे इसकी भी गणना संसार के उन्नत देशों में हो। क्योंकि यह तो जानी और मानी हुई बात है कि यह देश सदा एक ऐसा देश रहा है जिसकी गिनती संसार के महान् देशों में होती रही है। हमारे देश के गुण, सम्पत्ति और समृद्धि ही इसके दुर्भाग्य के कारण रहे हैं क्योंकि जितने विदेशी यहाँ आये, जितनों ने आक्रमण किया, जितनों ने इस देश पर आधिपत्य जमाया, जितनी लड़ाइयाँ यहाँ हुईं, वह सब कुछ इस देश की सम्पत्ति और समृद्धि से प्रलोभित होकर ही हुआ। यह बात बहुत पुराने समय की नहीं है। अंग्रेजों के समय तक भी यही बात रही। यह भी सच है कि इस देश पर जितने आक्रमण हुए, उन सबमें विदेशियों को हमारे पारस्परिक झगड़ों और आपस की फूट से इस देश को पराधीन करने में सहायता मिली। और जब हममें एकता की भावना जागी तो हम फिर स्वतन्त्र हो गये। इसलिए सबसे बड़ी चीज जिसको हमें बनाये रखना है, वह है एकता की भावना जिसके द्वारा हमने स्वराज्य प्राप्त किया और जिसके बल पर हम इस देश को स्वतन्त्र रख सकते हैं।

मैं जब छोटा था और कालेज में पढ़ रहा था, उस समय हम लोगों के सामने अक्सर दो-तीन चित्र आया करते थे और उनसे उन दिनों के युवक बहुत अनुप्राणित हुआ करते थे। एक तो आपका इतिहास है और दूसरी चीज उन दिनों में जापान की लड़ाई की

थी। जापान ही एशिया का ऐसा पहला भूभाग था जो यूरोप के मुकाबले खड़ा हुआ और लड़ कर रूस जैसे महान् देश को हरा सका। इसका हम पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। हम यह सोचा करते थे कि यह कैसे सम्भव हुआ कि जापान जैसा छोटा देश रूस जैसे बड़े देश को हरा सका। वहाँ पर एक वर्ग था जो समूरिया कहलाता था और जापान का एक बहुत बड़ा भूभाग समूरिया लोगों के अधिकार में था। जिस तरह से हमारे यहाँ राजा, महाराजा तथा नवाब आदि होते हैं, उसी तरह से जापान में समूरिया लोग थे। जापान की समृद्धि का एक कारण यह हुआ कि जब वहाँ के लोगों में जागृति आयी तो उन्होंने मिल-जुल कर अपने सब अधिकार तथा अपनी सारी सम्पत्ति देश के लिए वहाँ के चक्रवर्ती सम्राट को सौंप दी। उसी के फलस्वरूप सारे देश में एक नयी जागृति पैदा हुई और उस नयी जागृति से वह इतना बढ़ा कि थोड़े ही दिनों के बाद उसकी गिनती संसार की बड़ी शक्तियों में होने लगी। उसके पास हर प्रकार के साधन थे, विशेषकर युद्ध के ऐसे साधन, जो उस समय संसार के अन्य सब देशों के पास थे। हमारे ही पास कुछ नहीं था। ऐसी अवस्था में महात्मा गान्धी जी ने इस देश को स्वतन्त्र कराने का निश्चय किया। धार्मिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त उनके सामने दूसरा कोई मार्ग नहीं था। इसलिए वह कहते थे हम देश को हथियार के बिना स्वतन्त्र कर सकते हैं और इस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का एक ही उपाय है। वह यह है कि हम सब एकमत हो जायें। उनका कहना था कि हम अंग्रेज़ों को सहायता देना बन्द कर दें क्योंकि इस देश में अंग्रेज़ी राज्य हमारी सहायता से ही चलता था।

जिस प्रकार यह शामियाना, जिसके नीचे हम बैठे हुए हैं, चारों ओर के खम्भों पर खड़ा हुआ है और अगर हम इन खम्भों को हटा दें तो किसी को गिराने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यह स्वयं गिर पड़ेगा, उसी प्रकार महात्मा जी ने कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य का छत्र जो हमारे ऊपर है, उसके स्तम्भ हम ही हैं और उसको खड़ा करने में हमने ही सहायता दी है और यदि हम उनकी सहायता न करें तो उनका राज्य स्वयं ही नष्ट हो जाएगा। अंग्रेज़ों ने यह बात समझ ली और वे स्वयं हट गये जिससे न किसी को हटाने की आवश्यकता हुई और न किसी चीज़ को गिरने-गिराने की। हमने इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की। जब देश में एकता स्थापित करने का प्रश्न सामने आया, जिससे हमारे पुराने इतिहास की पुनरावृत्ति न हो, तो उस समय हमारे देश के सामन्तों ने भी वही किया। उन्होंने अपने सब अधिकार हमारे देश के शासकों को, जिनको इस देश की जनता ने चुन कर भेजा था, सौंप दिये और स्वयं हट गये। हट गये का अर्थ यह नहीं कि वे हटाये गये बल्कि यह कि जो कुछ सहायता उनसे हो सकती थी, वह सहायता देने को तैयार हो गये।

इसका फल यह हुआ कि स्वतन्त्रता के बाद इन ८-९ वर्षों में इस देश में एक बार फिर ऐसी शान्ति स्थापित हुई जिसके परिणामस्वरूप हम उन्नति के पथ पर आगे बढ़ रहे हैं। यदि ऐसा न हुआ होता, तो हमारे सामने न मालूम और कितने प्रकार की विपत्तियाँ आतीं, जिनको सुलझाने में कई साल लग जाते। हम उनको सुलझा तो लेते, परन्तु जो समय लगता वह तो नष्ट ही जाता। इन सबसे बचकर हमने एक ऐसी शक्ति प्राप्त की जिसके

बल पर आज हम सारे संसार के सामने अपना सिर ऊँचा उठाने के योग्य हो सके हैं। आज संसार के बड़े से बड़े देशों के मुकाबले हमारी पूछ होती है। वह इसलिए नहीं कि हमारे पास कोई बहुत बड़ी सेना है, जो उनकी सेना से मुकाबला कर सके। हमारी सेना बहुत कमज़ोर भी नहीं है, अच्छी है। उसने भी बहुत काम किये और वीरता दिखायी है परन्तु तो भी सेना के वे साधन जो उन सब के पास हैं, हमारे पास नहीं हैं। फिर भी आज हमारी पूछ इसलिए होती है कि हम एक नये ढंग से चलते हैं। जिस ढंग से हमने स्वराज्य प्राप्त किया, उसी ढंग से हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी काम कर रहे हैं।

इस नये युग में आपका क्या कर्त्तव्य है। यह नया युग आपसे यह आशा करता है कि आप इस देश की स्वतन्त्रता तथा एकता को अक्षुण्ण रखें जिससे इस देश की स्वतन्त्रता पर फिर से किसी प्रकार की आँच न आने पाये। इस देश का सदा यही दृष्टिकोण रहा है। यहाँ बहुत प्रकार के धर्मों के मानने वाले, भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वाले, भिन्न-भिन्न तौर-तरीकों से रहने वाले लोग हैं जैसे इस सभा में रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए लोग बैठे हैं। इतने रंग शायद ही और कहीं मिलते हों। परन्तु इसके बावजूद सबका हृदय एक है। इस विभिन्नता में भी एकता है जिसने भारतवर्ष को ऐसे सूत्र में बांध रखा है जिसको न तो कोई भंग कर सकता है और न कोई उसे तोड़ सकता है। उसको जीवित रखना हम सब लोगों का, प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है। इसके साथ ही साथ हमें यह भी करना है कि देश के लोग मिल-जुलकर एक-दूसरे की ऐसी सहायता करें जिससे इस देश की सम्पत्ति, देश का धन तथा देश का गौरव और भी बढ़े। हमारी सरकार इस प्रकार की योजनाएँ बना रही है और इन योजनाओं के द्वारा काम करने का विचार किया गया है। परन्तु हमारा यह विचार सफल तभी हो सकता है जब सारे देश के लोग मिल कर इसमें सहायता करें और इसको सफल बनाने में जुट जायें। मैं आशा करूँगा कि आप इसी प्रकार इसमें लगेंगे और देश के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन में पूर्ण रूप से भागी बनेंगे।

आपने जिस प्रेम और उत्साह से मेरा स्वागत किया है और यहाँ की नगरपालिका की ओर से मेरा जो सम्मान किया गया है, इन सब के लिए मैं आप सबको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

निस्स्वार्थ और त्यागमय सेवा

यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस अवसर पर आप मेरे हाथों से दो बड़ी-बड़ी संस्थाओं का शिलान्यास करवा रहे हैं और मैं यहां से यह आशा लेकर वापस जाऊँगा कि इन संस्थाओं द्वारा केवल आपकी ही नहीं, सारे देश की बड़ी सेवा हो सकेगी।

आपने अभी जो मानपत्र दिया, उसमें बहुत-सी बातों का उल्लेख किया। यह सच है कि भारत एक संकट की स्थिति से गुजरा है और यदि मैं यह कहूँ कि अभी भी वह संकट से पूरी तरह से निकल नहीं पाया है तो वह भी गलत नहीं होगा, क्योंकि यद्यपि हम राजनीतिक स्वराज्य पा चुके हैं पर उसके साथ ही साथ जो अन्य प्रकार की उन्नति हम चाहते हैं वह अभी हम नहीं कर पाये हैं। मैं यह मानता हूँ कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिए जितने परिश्रम, अध्यवसाय और त्याग की आवश्यकता थी, आज की स्थिति में भी देश को उन्नत करने के लिए उससे कम की आवश्यकता नहीं है। इन गुण की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कभी अन्य किसी भी अवस्था में हो सकती थी। इसलिए जहां कहीं मुझे अवसर मिलता है, मैं यह बताना चाहता हूँ कि हम यह न समझें कि राजनीतिक स्वराज्य प्राप्त करके हमने अपना सारा काम पूरा कर लिया है और अब भोग का समय आ गया है। मैं मानता हूँ कि जो व्यक्ति काम करने वाले हैं उनके लिए तो सदा त्याग का ही समय रहता है और त्याग ही उनके लिए भोग है। इसलिए आज हम जिस नये भारत का निर्माण करने में लगे हुए हैं, उससे हर प्रकार की दरिद्रता, बीमारी तथा निरक्षरता दूर हो जाएगी। हम ऐसे भारत के निर्माण में लगे हैं जिसमें किसी को खाने की कमी नहीं रहेगी, कपड़े की कमी नहीं रहेगी, बीमारी पड़ने पर दवा की कमी नहीं रहेगी और जिसमें धर्म, भाषा अथवा जाति के आधार पर परस्पर झगड़े नहीं होने पाएँगे, जिसमें सब एक-दूसरे की सहायता करना तथा एक-दूसरे को सुखी बनाना अपना कर्त्तव्य और सौभाग्य मानेंगे। ऐसे भारत के निर्माण में बलिदान तथा लगन के साथ काम करने की आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि भारत के नागरिक इस प्रकार तैयार किये जायें कि वे इन गुणों से विभूषित हों और वे सेवा में ही भोग समझें।

जबसे हम स्वतन्त्र हुए हैं हमने बहुत कुछ किया है, यद्यपि अभी जो करने को बाकी

ग्वालियर की एक सार्वजनिक सभा में भाषण, २८ अक्तूबर, १९५६

है, उसके मुकाबले हमने बहुत ही कम किया है। हमारे सामने कठिनाइयाँ भी बहुत रही हैं और इसीलिए मैंने उसको संकट का समय बताया। स्वराज्य प्राप्त होने के दिन से ही हमारे सामने ऐसी कठिनाइयाँ आयीं कि यदि सारा देश उस समय पूरी तरह से सहायता नहीं करता, तो हो सकता था कि यह देश टुकड़े-टुकड़े हो जाता और हमारी स्वतन्त्रता रात के एक स्वप्न के समान बन जाती। जिस समय अंग्रेज गये, इस देश का दो-तिहाई भाग वे हम लोगों के लिए छोड़ गये और शेष एक तिहाई भाग को पाकिस्तान के नाम से एक अलग स्वतन्त्र देश बना गये। भारत में भी दो भाग तो ऐसे थे जिनमें अंग्रेजों का सीधा शासन था और एक भाग ऐसा था जिस पर हमारे देश के राजा-महाराजा और नवाब राज्य किया करते थे। यदि उस समय हमारे राजा तथा नवाब देश के प्रति अपना प्रेम नहीं दर्शाते और अपने को अलग-अलग टुकड़ों में रखकर स्वतन्त्र मानने लगते अथवा पाकिस्तान की ओर चले गये होते तो हमारे सामने न मालूम कितनी समस्याएँ होतीं और न मालूम हम उन्हें हल कर पाते अथवा नहीं। सम्भव है कि हम उनको हल कर लेते परन्तु काफी कठिनाई होती। इन सब कठिनाइयों को हमने उनकी सहायता से, उनकी दूरदर्शिता से तथा उनकी त्याग भावना से बात की बात में तय कर लिया। पहले सांस्कृतिक दृष्टि से सारा भारत एक था और हमेशा एक रहा और आज भी है, पर राजनीतिक दृष्टि से एकछत्र राज्य सारे भारत में न तो सम्राट अशोक के समय में हुआ, न गुप्त सम्राटों के समय में और न सुलतानों, मुगल बादशाहों और न अंग्रेजी राज्य के समय में। आज सारे भारत के लिए एक संविधान है अथवा अब दो दिनों के बाद पहली नवम्बर से इस संविधान में ऐसे और भी परिवर्तन हो जाएँगे जिनसे अब तक जो कुछ भेद-भाव दिखायी पड़ता था, वह भी नहीं रहेगा। संविधान में जो कुछ विशेषताएँ अब तक रखी गयी थीं, वे भी हट जाएँगी। यह काम इतना बड़ा और इतने महत्त्व का है कि यदि यह इतनी सरलता से न होता तो हम इसको और भी अधिक महत्त्व दे सकते थे। पर क्योंकि सब लोगों की सहायता से और विशेषकर रजवाड़ों और वहाँ की जनता की सहायता से सब काम सरलता से हो गया, इसलिए आज हम उसको उतना महत्त्व भी नहीं दे रहे जितना हमें देना चाहिए था।

आप जानते हैं कि यह युग मशीनों और कलों का है। यदि आप किसी एक मशीन को ले लें और उसमें देखें कि कितने पुर्जे हैं तो आपको आश्चर्य होगा कि उस छोटी-सी चीज में इतने पुर्जे होते हैं। आप शहरों में मोटर कार देखते हैं। जिस सरलता से लोग उसको चलाना सीख लेते हैं, उससे हम समझते हैं कि वह एक बहुत ही मामूली चीज है। परन्तु उसमें जितने पुर्जे लगे हुए हैं, यदि उनको हम अलग-अलग गिनना चाहें तो हजारों पुर्जे होंगे। मेरा अपना विचार है कि एक कार में लगभग चार हज़ार छोटे-मोटे पुर्जे होते हैं। आज का हमारा समाज दिनोंदिन उसी मोटर का रूप धारण करता जा रहा है जिसमें हजारों, लाखों और करोड़ों आदमी मिलजुल कर काम करते हैं, और जो काम वे करते हैं वह इतना बड़ा होता है कि यदि कुछ लोग अकेले करना चाहें तो शायद वह नहीं हो सकता। परन्तु संघ शक्ति से सब काम हो जाते हैं। समाज में आज यही हो रहा है। हम सब चीजों का भार सरकार पर डालते हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि हम सामूहिक शक्ति द्वारा ही काम

लेना चाहते हैं और व्यक्ति की शक्ति का उपयोग जहाँ तक हो, कम ही किया चाहते हैं। फल यह होता है कि व्यक्ति की शक्ति कम होती जा रही है और संघ की शक्ति बढ़ती जा रही है। हमारे पूर्वजों ने भी इस बात को समझा था और उन्होंने भी कहा था कि कलियुग में संघ की शक्ति होगी जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम दिन प्रति दिन अपनी आँखों से देख रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम भारत को समुन्नत करना चाहते हैं तो हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम एक ओर तो व्यक्ति की शक्ति को सुरक्षित रखें और दूसरी ओर संघ की शक्ति का भी निर्माण करें जिससे हम बड़े-बड़े काम कर सकें। आज सारे संसार के सामने प्रश्न यह है कि व्यक्ति और समाज के बीच क्या सम्बन्ध होना चाहिए। मेरा अपना विश्वास है कि भारत इन दो विरोधी शक्तियों में, अर्थात् व्यक्ति और समूह की शक्तियों में समन्वय स्थापित कर सकेगा और यह उसका कर्त्तव्य भी है कि वह ऐसा करके संसार के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करे। यह समन्वय अहिंसा से हो सकता है और इसीलिए महात्मा जी ने हमको अहिंसा का पाठ पढ़ाया था।

आपके नगर के इतिहास में जहाँ एक ओर सुन्दर संगीत की झंकार सुनने में आती थी वहाँ दूसरी ओर चमचमाती तलवार की झंकार भी सुनाई पड़ती थी। आपके इस ऐतिहासिक नगर ने बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं को देखा है और बड़े-बड़े कवियों को आश्रय दिया है। आपका नगर इस प्रकार का समन्वय स्थापित कर सकता है। मैं आशा करता हूँ और ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वह आपको शक्ति दे जिससे आप ऐसा समन्वय करके उसके द्वारा केवल भारत की ही नहीं बल्कि मानव जाति की सेवा कर सकें।

आपका प्रदेश प्राचीन काल से ही प्रमुख रहा है। इसलिए आपका उत्तरदायित्व भी अधिक है। मैं चाहूँगा कि आपने जिस प्रकार आज तक अपने निजी स्वार्थों का त्याग कर भारतवर्ष को उन्नत और समृद्ध करने का काम किया है, आप उस परम्परा को उसी प्रकार बनाये रखेंगे और यह विश्वास रखेंगे कि कोई भी त्याग तथा कोई भी सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। मनुष्य का काम तो कार्य करना है, फल देने वाला तो सदा ईश्वर है। आप जो त्याग करेंगे, उसके द्वारा आप में ऐसी शक्ति का संचार होगा जो आपको अधिक उन्नत बना सकेगी और इस क्षेत्र को अधिक समृद्ध कर सकेगी। मेरी यही भावना है और यही मेरा आशीर्वाद है।

कला और राजकीय संरक्षण

जब मैं राष्ट्रपति बना उसी समय मैंने यह निश्चय कर लिया कि हमारे देश में जितनी कलाएँ—काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला या इस प्रकार की और दूसरी कलाएँ—हैं, सबको किसी न किसी प्रकार प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अब तक उनको रियासतों और दूसरे धनी-मानी लोगों से आश्रय मिला करता था, लेकिन वह द्वार अब बन्द हो चुका है। इसलिए अब सरकार का द्वार, जो अब तक बहुत-कुछ बन्द था, खुलना चाहिए।

मुझे जब-जब अवसर मिला मैंने इस बात का प्रयास किया कि इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ किया जाये। इसी सिलसिले में मैं आप लोगों से आज मिलने यहाँ आया हूँ। आप सब भाइयों से मेरा यह निवेदन है कि जब कभी भी आपको निमन्त्रण मिले, आप सब कृपा करके यहाँ आयें, इसलिए नहीं कि यहाँ आने से आपको तुरन्त कुछ सहायता मिल जाएगी, परन्तु एक सिलसिला जारी होने से दूसरों को मालूम होता है कि यहाँ भी ऐसी चीज़ों में कुछ थोड़ी-बहुत रुचि ली जाती है और शायद कुछ लोगों पर उसका प्रभाव भी पड़े। इसी विचार से मैं चाहता हूँ कि जितने कलाकार हैं—चाहे वे शायर हों, चित्रकार हों, मूर्तिकार हो या संगीतज्ञ हों—वे सब यहाँ आने में कभी हिचकें नहीं। यहाँ का द्वार उनके लिए सदा खुला रहेगा। मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि यदि सहायता करने में कुछ कमी हुई तो वह न चाहने के कारण नहीं बल्कि और किसी कारण से होगी।

मैं चाहूँगा कि सरकार की ओर से एक ऐसा सिलसिला जारी किया जाये जिसके अनुसार सब कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जा सके तथा उन्हें कुछ सहायता दी जा सके। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि हमारे प्रधान मन्त्री तथा और दूसरे मन्त्रीगण भी इसका महत्त्व और इसकी आवश्यकता समझते हैं। अब जबकि वे इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं, तो कोई न कोई ऐसा मार्ग अवश्य निकलेगा जिससे सब कलाओं को प्रोत्साहन और सहायता मिल सके।

जितने शायरों और कवियों ने यहाँ आने का कष्ट करके अपने सुन्दर-सुन्दर कलाम और कविताएँ सुनायी हैं, उन सबको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हमें बहुधा इस तरह के अवसर मिला करेंगे।

राष्ट्रपति भवन में कवि सम्मेलन और मुशायरे के अवसर पर भाषण, २४ मई, १९५२

संगीत के बिना शिक्षा अपूर्ण

मुझे इस बात की अत्यन्त प्रसन्नता है कि मैं आज के आनन्दप्रद आयोजन में भाग ले रहा हूँ। यद्यपि मैं न तो संगीत-शास्त्री हूँ और न संगीतज्ञ, तथापि अन्य सब मानवों के समान ही मैं संगीत-पिपासु अवश्य हूँ। संसार भर में कदाचित ही कोई ऐसा मानव हो जो मधुर संगीत से आनन्द-विभोर न हो जाता हो। औरों की भाँति मेरा भी यह सौभाग्य रहा कि संगीत से मेरा सम्पर्क जीवन के प्रभात में ही हो गया था। बाल्यावस्था में ही प्रभात के झुटपुटे में सूर और तुलसी की अमर वाणी गाते सुना करता था। घर के बाहर भी चारों ओर संगीत का साम्राज्य था। ग्रामवासियों को लगभग प्रतिदिन ही खेत और चौपाल में गाते सुनता था। अतः बालकपन से ही संगीतामृत से कुछ ऐसा प्रेम हो गया कि मैं चाहूँ तो भी इसके पान करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। किन्तु आजकल तो मेरा जीवन कुछ ऐसा है कि न तो मुझे संगीत सुनने का अवसर मिलता है और न समय ही। फिर भी जब मुझे ऐसा कोई अवसर मिलता है कि मैं समय निकाल कर संगीत सुन सकूँ, तो मेरा यही प्रयास होता है कि मैं उस अवसर को हाथ से न जाने दूँ। किन्तु आज के आयोजन में भाग लेने के निमन्त्रण को मैंने केवल इसलिए ही स्वीकार नहीं किया है कि यहाँ मुझे कुछ क्षण ऐसा अवसर मिल सकेगा वरन् इसलिए भी कि मैं आपके समक्ष आधुनिक युग के भारतीय समाज में संगीत के स्थान के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार रख सकूँ।

इतिहास से विरासत में आपको भारतीय संगीत जैसी अमूल्य निधि मिली है। अन्य देशों के संगीतों की अपेक्षा इसमें जो विशिष्टता है, वह उन मान्यताओं के कारण है जो संगीत के सम्बन्ध में हमारे पूर्वजों की थी। भारत में संगीत क्षणिक आमोद-प्रमोद या अतृप्त तृष्णा की वस्तु न होकर, समस्त ब्रह्माण्ड अथवा व्यक्त जगत् से ऐक्य का आभास है, चिरानन्द प्रदान करने वाली आध्यात्मिक साधना है और सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्रदान करने और मानव को ब्रह्म तक ले जाने वाला मार्ग है। संगीत के इस स्वभाव और ध्येय को हमारे देश के लोगों ने हमारी सभ्यता के प्रभात में ही पहचान लिया था और संगीत का विकास इन्हीं आदर्शों के अनुकूल किया था। उन्होंने संगीत और जीवन में किसी प्रकार की खाई न

भातखण्डे कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक (लखनऊ) की रजत जयन्ती के अवसर पर भाषण, ८ नवम्बर, १९५२

खोदी और किसी प्रकार की दीवार न खड़ी की। यह कहना अनुचित न होगा कि उन्होंने संगीत को हमारे जीवन में इस प्रकार बुन दिया कि सहस्राब्दियों के पश्चात् भी वह उसका अविच्छिन्न अंग बना हुआ है। संसार में सम्भवतः ऐसा अन्य कोई देश नहीं है जहाँ संगीत इतने पुराने युग से जन-जीवन में इतना व्याप्त हो जितना कि भारत में है। संसार की सब जातियों की अपेक्षा भारतवासियों के अधिक संगीत प्रेमी होने की बात का उल्लेख मैगस्थनीज़ भी कर गया है। दूसरी शताब्दी ई० पू० में लिखे गये इण्डिका नामक अपने ग्रन्थ में आर्यन ने मैगस्थनीज़ का यह कथन उद्धृत किया है कि "सब जातियों की अपेक्षा भारतीय लोग संगीत के कहीं अधिक प्रेमी हैं।" सहस्रों वर्षों से हमारे घरेलू और सांसारिक जीवन में लगभग सभी काम किसी न किसी प्रकार के संगीत से आरम्भ होते रहे हैं। मैंने एक अन्य अवसर पर कहा था "कि जन्म से लेकर मृत्यु तक यह संगीत हमारे साथ बना रहता है। जिस दिन बालक संसार में अपनी आँखें खोलता है, उस दिन से ही संगीत से भी उसका कुछ परिचय हो जाता है। नामकरण, कर्णछेदन, विवाह इत्यादि में तो संगीत होता ही है। ऐसा कोई तीज-त्यौहार नहीं होता, ऐसा कोई पर्व और संस्कार नहीं होता जिसमें संगीत न हो। घर में ही क्यों? हमारे यहाँ खेत में और चौपाल में, चक्की चलाने और धान कूटने के समय भी संगीत चलता ही रहता है।"

यह हमारे जन-जीवन के उल्लास को प्रकट करने का तो प्रभावी साधन है ही, साथ ही यह उसको गतिमान बनाने का भी प्रबल अस्त्र है। संगीत उनको रचनात्मक कार्यों में अग्रसर होने की सामूहिक स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करता है और उनको वह सामूहिक शक्ति देता है जो उन्हें उन कामों के करने के योग्य बना देती है जो वे अकेले या समूह में संगीत की प्रेरणा के बिना न कर पा सकते। इतना ही क्यों? भारत में संगीत ने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में वह काम किया है जो सम्भवतः और कोई शक्ति शताब्दियों के परिश्रम के पश्चात् भी न कर पाती। यद्यपि भारत का साधारण जन वर्णमाला से सर्वथा अपरिचित ही है किन्तु फिर भी वह आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य नहीं है। देश के किसी भी दूर से दूर के ग्राम में आप चले जाइये, आपको वहाँ का साधारण कृषक भी अनेक आध्यात्मिक तथ्यों से पूर्णतया परिचित मिलेगा। श्री कज़िन्स न अपने ऐसे ही एक अनुभव का उल्लेख कुछ दिन पूर्व हरिजन पत्रिका में किया था। उन्होंने लिखा था कि एक ग्राम में वह एक सज्जन से कई घण्टे गूढ़ दार्शनिक तत्वों की बातचीत करते रहे। उस सज्जन के ज्ञान से अत्यन्त प्रभावित होकर चलते समय उन्होंने उक्त सज्जन से कहा कि वह अपना पता लिख कर उनको दे दें। किन्तु उनके आश्चर्य की उस समय कोई सीमा न रही जब उक्त सज्जन ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की क्योंकि वह वर्णमाला से सर्वथा अपरिचित था। मेरा विचार है कि वर्णमाला से अपरिचित होने पर यदि हमारा साधारण जन इस प्रकार का ज्ञान रखता है तो उसका एक प्रमुख कारण यही है कि संगीतमय गाथाओं और कथाओं ने उसके हृदय में उस ज्ञान को पैठा दिया है। मैं कभी-कभी सोचा करता हूँ कि क्या कारण है कि भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें तुलसी या कबीर जैसे कवियों की कृतियों से अनपढ़ लोग भी करोड़ों की संख्या में परिचित हैं। पर मैं समझता

हूँ कि इस रहस्य का हल यही है कि हमारे जीवन में संगीत इतना बुना हुआ है कि सहज में ही इन कवियों के मधुर पद घर-घर और ग्राम-ग्राम की सम्पत्ति बन गये। आज भी ऐसे अनेक लोग मिल जाएँगे जो सर्वथा अनपढ़ होते हुए भी तुलसी के रामचरितमानस के अनेक पद गाकर सुना सकते हैं और कबीर के पदों का तो कहना ही क्या है। अतः भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास में संगीत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्वभावतः हमारे देश के प्राचीन युग में संगीत-शास्त्रियों और संगीतज्ञों का भी ऊँचा दर्जा होता था जैसा कि संगीत-शास्त्रियों की मुनि और ऋषि की उपाधियों से पूर्णतया स्पष्ट है। इन संगीत-शास्त्रियों का देश के मानसिक निर्माण में इसलिए भी पर्याप्त भाग होता था कि प्राचीन युग में संगीतशास्त्र का अध्ययन शब्दशास्त्र के अध्ययन के साथ वैदिक शिक्षाव्यवस्था का अनिवार्य अंग था।

जब यहाँ मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ तो संगीत ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने में, दोनों के वैर-विरोध हटाने में बड़ा काम किया और इसने एक ऐसा क्षेत्र उपस्थित किया जिसमें दोनों मिलजुल कर काम करते रहे और एक-दूसरे के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा। कुछ बुराइयाँ भी आयीं जिनके कारण संगीत का वह स्थान हमारे समाज में, विशेषकर उत्तर भारत के समाज में न रहा जो उससे पूर्व था और संगीतज्ञों का वह मान न रहा जो भारत के प्राचीन युगों में था। यह ठीक है कि उनमें से अनेक राजदरबार में पोषण पाते रहे किन्तु शासकों के मन में उनके प्रति सम्मान और आदर की कुछ ऊँची भावना न रही। अंग्रेजी राज्यकाल में तो वह बात भी न रही और भारतीय संगीतज्ञों का राज्य और शिक्षा-व्यवस्था दोनों से ही नाता टूट गया। कुछ देशी रियासतों में उनका राज्य से सम्बन्ध रहा किन्तु भारत के बहुत बड़े भाग में राज्य उनको किसी प्रकार का परिश्रय या प्रोत्साहन प्रदान न करता था। यदि फिर भी भारत में संगीत बना रहा, संगीतज्ञ बने रहे तो उसका कारण यही था कि हमारे सामाजिक गठन के कारण उनको लगभग हर स्थान पर ही समाज का परिश्रय अवश्य मिलता रहता था। इन दुर्दिनों में हमारे संगीत का ह्रास हुआ और वह बहुधा ऐसे कार्यों के काम आने लगा जिनसे उसका मूलभूत विरोध ही था।

अतः जब हम स्वतन्त्र हैं, हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इस अपूर्व भारतीय संगीत को पुनः अपने उचित स्थान पर बिठायें। जैसा मैं कह चुका हूँ भारतीय संगीत कल्याण-साधना का एक मार्ग है और सामूहिक शिक्षा का एक ढंग है। अतः यह आवश्यक है कि अपने संगीत को पुनः अनुप्राणित करने के लिए हम इसका सम्बन्ध इन दोनों पक्षों से फिर जोड़ दें। मुझे शंका है कि इस बारे में उतना विचार नहीं किया गया है जितना होना चाहिए। आज का भारतीय संगीत जन-जीवन की गंगा से कुछ दूर ही है। वह तो कुछ नगरों की सम्पत्ति-सी बन गया है। मैं यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ कि उस संगीत की अच्छाई-बुराई को नागर ही परख सकते हैं। हमारे यहाँ तो संगीत की कसौटी यही है कि जड़ दीप भी उससे जल उठें। तब फिर भला यह कैसे कहा जा सकता है कि ग्रामवासी का हृदय उससे प्रफुल्ल न हो जाएगा? यदि तुलसी और कबीर ने अपने संगीत

से उत्तरी भारत के ग्राम्य जीवन को आध्यात्मिकता से प्लावित कर दिया और अपढ़ों को पण्डित बना दिया तो कोई कारण नहीं कि आज का संगीतज्ञ वैसा क्यों नहीं कर सकता। इस लोकतन्त्र के युग में यह आवश्यक है कि हमारे संगीतज्ञ जनता से पुनः अपना वैसा ही सम्बन्ध स्थापित करें जैसा कि पिछले युगों में था और जो अंग्रेजी युग की नगरप्रधान प्रवृत्तियों के कारण टूट गया। यह इसलिए भी आवश्यक है कि आज हमारे संगीतज्ञों को वैसा अवकाश-पूर्ण जीवन व्यतीत करने की सुविधा और आर्थिक साधन प्राप्त नहीं है जो इन्हें सामन्तों और राजाओं के युग में प्राप्त थीं। मैं यह मानता हूँ कि स्वतन्त्र भारत की सरकार को भारतीय संगीत को हर प्रकार का प्रोत्साहन देना चाहिए और इस दिशा में कुछ कदम उठाये भी गये हैं। किन्तु मैं यह समझता हूँ कि आज राज्य संगीतज्ञों को उस प्रकार का आर्थिक परिश्रय नहीं दे सकता जैसा कि सामन्तशाही युग में सम्भव था। अतः मेरा यह आग्रह है कि हमारे संगीतज्ञ मीरा और तुलसी की परम्परा को पुनर्जीवित करें। आज भी मीरा और तुलसी के पदों के लिए जनता के हृदय में आदर है, श्रद्धा है और उनके लिए गरीब-अमीर सभी व्यय करने को भी तैयार होते हैं। अतः मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हमारे संगीत का जन-जीवन की गंगा से सम्बन्ध हो गया, तो वह नवजीवन प्राप्त कर लेगा और अपने को सार्थक और सफल बना लेगा।

किन्तु जन-जीवन के सम्पर्क का यह अर्थ कदापि नहीं कि संगीत के स्वरूप को विकृत कर दिया जाये। यदि ऐसा हुआ तो वह अपना उद्देश्य कदापि पूरा नहीं कर सकेगा। हमारे संगीत का स्वरूप अपने स्वभावगत उद्देश्य के अनुकूल ही बना है। उदाहरणार्थ हमारे संगीत में रागों का स्थान प्रधान है। यदि राग नहीं तो हमारा संगीत भी नहीं। किन्तु रागों का यह महत्व अन्य बातों के अतिरिक्त इसलिए भी तो है कि हमारे संगीत का ध्येय मन में एक और केवल एक रस का उद्रेक करना है। मानसिक शिक्षा और संयम का यह बड़ा प्रभावी तरीका है। अतः स्पष्ट है कि हमारे संगीत का जो ऐतिहासिक स्वरूप है उसको विकृत करके हम उसे जीवन के लिए वैसा कल्याणकारी बना नहीं रख सकते जैसा कि वह है और होना चाहिए। मुझे इस बात का दुःख और खेद है कि हमारे देश की प्रचलित परिपाटियाँ संगीत की परम्परा को विकृत कर रही हैं और इस प्रकार हमारी भारी हानि कर रही हैं। मैं तो यही आशा करता हूँ कि इस प्रश्न पर संजीदगी से विचार किया जाएगा और देश और जाति के लिए संगीत को मानसिक और चारित्रिक उन्नति का एक साधन और शक्तिशाली साधन बनाने का प्रयत्न किया जाएगा न कि केवल मनबहलाव और विलास का एक साधन।

मैं यह समझता हूँ कि इस बात का भी समय आ गया है कि संगीत का हमारी शिक्षा-व्यवस्था से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जाये। उसका यह अर्थ नहीं कि यह विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं के लिए एक विषय मात्र हो जाये। इसका अर्थ यह है कि हमारे विद्यार्थियों की सामाजिक या सामूहिक चेतना के निर्माण में संगीत का भी अंश हो। हमारे यहाँ तो भगवान भी मुरली या डमरू के बिना पूरे नहीं समझे गये हैं। मानव का तो प्रश्न ही क्या? यह अकारण ही नहीं है कि विद्या की अधिदेवी सरस्वती के हाथ में पुस्तक के

साथ-साथ वीणा भी बतायी जाती है। उसका यही अर्थ है किसी भी व्यक्ति की शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही नहीं पूरी होती वरन् उसके लिए यह भी आवश्यक है कि उसकी मानसिक वृत्तियों का भी ऐसा परिमार्जन हो जाये कि उसे बेराग की कोई भी बात अच्छी न लगे और उसके हृदय तन्त्री के तार सर्वदा ही मधुर राग से गूंजते रहें। आज हमारी शिक्षा ऐसी नहीं है और इसीलिए आज हमारे यहाँ मस्तिष्क और हृदय का ताल-मेल ठीक नहीं दिखायी देता। प्लेटो ने भी इस बात पर जोर दिया था कि संगीत के बिना मानव की शिक्षा पूरी नहीं मानी जा सकती। अतः हमारे संगीत-शास्त्रियों और शिक्षा-शास्त्रियों, दोनों को ही यह विचार करना है कि यह सम्बन्ध कैसा हो और किस प्रकार स्थापित किया जाये। अनेक युग बीते, तब भारतीय संगीत का उद्भव भगवान् शिव से हुआ था। तब से समय के प्रांगण में अनेक राजा-महाराजा, सेनानी और विजेता आये और विलुप्त हो गये, अनेक साम्राज्य बने और बिगड़े, अनेक दुर्दिन आये और दुःख के पहाड़ टूटे, किन्तु भारत बना रहा और भारतीय संगीत बना रहा। इस मृत्युशील संसार में हमारे इतने दीर्घ जीवन का यही रहस्य है कि हमने आध्यात्मिकता का सहारा नहीं छोड़ा—ऐसी आध्यात्मिकता का जो दार्शनिक की शुष्कता से कहीं दूर भगवान् की गीता में और भक्तों के गान में है। मुझे विश्वास है कि भगवान् शिव का यह वरदान, यह भारतीय संगीत, हमारे जातीय जीवन को सर्वदा गंगामृत के समान अमर बनाने वाला बना रहेगा।

हिन्दी-भाषी उदारता से काम लें

आपने जिस प्रकार से मेरा आदर किया और मान बढ़ाया है, वह मेरे लिए और विशेषकर हिन्दी साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली संस्था के लिए कोई नयी बात नहीं है क्योंकि हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कृपा मेरे ऊपर बनी रही है और उन्होंने बराबर मेरा मान बढ़ाया है। इसलिए यदि मैं कहूँ कि आपको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ तो वह काफी नहीं होगा क्योंकि मैं जानता हूँ कि जितना आदर आपने मुझे दिया है, उससे मैं कभी भी उऋण नहीं हो सकता।

आपने अभी जो मानपत्र पढ़ा, उसमें इस बात की ओर संकेत किया गया है कि कुछ लोगों के प्रयत्न से हिन्दी राष्ट्र भाषा मान ली गयी है। मैं यह कहता हूँ कि यदि हिन्दी को सदा से यह स्थान प्राप्त नहीं होता तो इसको किसी के प्रयत्न से संविधान सभा में, जिसमें

उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) द्वारा दिये गये मानपत्र के उत्तर में भाषण, ११ नवम्बर, १९५२

देश के प्रत्येक भाग के प्रतिनिधि थे और जिनको अपनी-अपनी भाषा पर गर्व था, यह स्थान कभी नहीं मिलता। हिन्दी के लिए यह गौरव की बात है कि यह निर्णय केवल बहुमत से अथवा हिन्दी-भाषियों की सम्मति से ही नहीं किया गया, बल्कि और प्रदेशों के लोगों ने भी जो न तो हिन्दी बोलते थे और न समझते थे, उसे हृदय से स्वीकार किया। आज यह कहा जा सकता है कि अगले १२-१३ वर्षों में हिन्दी उस स्थान पर पहुँच जाएगी जो हमारे संविधान ने उसके लिए निर्धारित किया है। जब कभी भी मुझे अवसर मिलता है तो मैं हिन्दी प्रेमियों से यही निवेदन किया करता हूँ कि हमारी ओर से कोई ऐसी बात न हो जिसका अहिन्दी-भाषी लोगों पर दूसरा ही प्रभाव पड़े। हिन्दी भाषियों ने हिन्दी भाषा को स्वीकार किया, वह कोई बड़ी बात नहीं। यदि अहिन्दी-भाषी लोग राजकाज चलाने के लिए हिन्दी को स्वीकार कर लें और वे इसमें उसी उत्साह से काम करने लग जायें जिस उत्साह के साथ हिन्दी-भाषी अपनाते हैं, तब समझना चाहिए कि संविधान सभा का निर्णय पूरी तरह से कार्यान्वित हो चुका है। उसके लिए जो कुछ भी हमसे बन पड़े, हमें पूरा योग देना चाहिए। हमें उन्हें ऐसा अवसर देना चाहिए जिससे वे यह समझें कि हिन्दी भाषा उनकी अपनी भाषा है तथा उस पर उनका वैसा ही अधिकार है जैसा अभी हिन्दी-भाषियों का है।

मैं चाहता हूँ कि जहाँ-जहाँ हिन्दी का प्रचार हो, उस प्रदेश के लोगों को अधिकार दिया जाये कि वे हिन्दी-भाषी प्रदेशों से इस प्रकार के सम्बन्ध जोड़ें जिससे वे हममें घुलमिल जायें और हम उनमें घुलमिल जायें। मैंने अहिन्दी-भाषियों को हिन्दी लिखते देखा है। उनमें से जो लोग बहुत दिनों से हिन्दी-भाषी प्रदेशों में रहते आये हैं, वे तो हिन्दी अच्छी तरह से जान गये हैं और जिन्होंने पहले से हिन्दी का अध्ययन किया है वे भी हिन्दी जानते ही हैं। मैं उनकी बात नहीं करता। मैं तो ऐसे लोगों की बात करता हूँ जो पहले से हिन्दी नहीं जानते और जिन्होंने यह समझकर कि हिन्दी अब राष्ट्र भाषा बन चुकी है, उसका अध्ययन आरम्भ किया है। उनके लेखों कुछ ऐसे मुहावरे मिलते हैं जो उनकी भाषाओं में तो प्रचलित हैं पर हिन्दी भाषा में प्रचलित नहीं हैं और वे हिन्दी-भाषियों को कभी-कभी कटु भी मालूम होंगे। किन्तु धीरे-धीरे वे भी प्रचलित हो जाएँगे। मैं देखता हूँ कि बहुतेरे शब्द ऐसे हैं जो दूसरी अहिन्दी भाषाओं में तो प्रचलित हैं पर हिन्दी में नहीं हैं। कहीं-कहीं उन शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। जो केवल हिन्दी जानते हैं, उनको वह भद्दा मालूम पड़ता है। पर भाषा इसी प्रकार बनती और उन्नति करती है। यही उसका तरीका है कि दूसरी भाषाओं से कुछ ले और अपनी शब्दावली बढ़ाये।

आज क्योंकि हिन्दी साहित्य के विद्वानों के सामने बोल रहा हूँ, इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप इस विषय में अपना हृदय उदार रखें और दूसरी भाषाओं के शब्द उदारतापूर्वक अपनायें। हो सकता है कि कहीं-कहीं भद्दा भी मालूम हो परन्तु यदि सारा देश उनको स्वीकार करता है तो वे ही सुन्दर हो सकते हैं। मैं आपको एक छोटा-सा उदाहरण देना चाहता हूँ। जिस समय संविधान बन रहा था, मैंने एक समिति नियुक्त की थी और उसके सामने मैंने यह प्रश्न रखा था कि संविधान में जितने पारिभाषिक शब्द आये हैं उनके लिए सारे देश के लिए एक-से ही शब्द होने चाहिएँ। हिन्दी, मराठी, गुजराती, दक्षिण की

भाषाओं आदि सभी के लिए एक ही शब्द होने चाहिएँ। उन्होंने प्रयत्न किया और इस प्रकार की शब्दावली तैयार की जिसमें हिन्दी तथा दूसरी भाषाओं के विद्वानों ने सहयोग दिया। एक दिन मैं समिति के कार्यालय में चला गया। वहाँ एक शब्द के सम्बन्ध में बहस हो रही थी। वह शब्द था अंग्रेज़ी का 'बेल' जिसको केवल उत्तर प्रदेश में ही नहीं सारे उत्तर भारत में 'जमानत' कहते हैं। लेकिन दक्षिण भारत में उसको 'जामिन' कहते हैं। इस पर बहुत देर तक बहस होती रही कि व्याकरण की दृष्टि से जामिन शब्द का अर्थ जमानत देने वाला है, न कि जमानत। अन्त में उन्होंने यह निर्णय किया कि किसी एक शब्द के ले लिये जाने से जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध न भी हो, यदि दक्षिण भारत सन्तुष्ट होता है तो उसे ले लेना ही उचित है और इस प्रकार उसका निबटारा हो गया। आपको भी उसी भाँति थोड़ी उदारता दिखलानी पड़ेगी। व्याकरण में भी कुछ हेर-फेर करने पड़ेंगे।

जब तक अहिन्दी-भाषी हिन्दी को हृदय से स्वीकार नहीं करते, तब तक वह राष्ट्र भाषा का स्थान नहीं पा सकती। और यह तभी हो सकता है जब वे यह समझें कि इसमें उनका भी योगदान है और उन्होंने इससे केवल लिया ही नहीं है बल्कि इसे कुछ दिया भी है और उन पर कोई दूसरी भाषा लादी नहीं गयी है बल्कि यह उनकी ही भाषा है। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं कि आप उनकी ही व्याकरण अपना लें। इसका अर्थ यही है कि आप उदारतापूर्वक जितना ले सकते हैं, ले लें। भाषा इसी प्रकार बन सकती है। यह भी आवश्यक नहीं है कि उसको स्वीकार करने पर आप वही लिखना आरम्भ कर दें। परन्तु जो वे लिखें, उसको आप गलत न समझें। आज किसी भी भाषा का रूप वही नहीं है जो उसके प्रारम्भिक काल में था। उसमें हेर-फेर होता रहता है। हिन्दी के इतिहास में भी आपको यही बात मिलेगी। मैं हिन्दी का कोई विद्वान नहीं हूँ पर मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि उसमें भी पिछले पाँच-छः सौ वर्षों में बहुत अन्तर पड़ा है तथा पहले की और आज की हिन्दी में काफी अन्तर है। इसलिए नवयुग में जब वह देश भर की भाषा बनने जा रही है तो उसमें थोड़ा अन्तर करना भी पड़े तो वह स्वीकार कर लेना चाहिए जिससे उसका अन्य प्रदेशों के लोगों के साथ मेल बैठ जाये। कई अहिन्दी-भाषी लोगों ने भी हिन्दी की काफी सेवा की है। आपके राज्यपाल महोदय अहिन्दीभाषी हैं और इन्होंने अपनी भाषा की बड़ी सेवा की है। यह भी हिन्दी के पक्ष में थे और इन्होंने बड़ा योग दिया जिसके कारण हम संविधान सभा में सफल हो सके। इनका भी यही विचार है जो मेरा है। मैं चाहता हूँ कि इनको भी हिन्दी की सेवा करने का अवसर दिया जाना चाहिए। उसका फल हिन्दी के लिए और देश के लिए अच्छा ही होगा।

मानपत्र में आपने संस्कृत के सम्बन्ध में कहा है। मैं मानता हूँ कि हमारे देश में संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि देश की सभी भाषाओं का स्रोत वही भाषा है। संस्कृत से हमारा सम्बन्ध अटूट है। इसकी पढ़ाई-लिखाई कम हो गयी है, यह हमारे लिए दुःख की बात है। मैं आशा करता हूँ कि इसकी उन्नति होगी। और इस काम में केवल सरकार से ही नहीं बल्कि लोगों से भी सहायता मिलेगी।

एक बात और है जिसे मैं आवश्यक समझता हूँ। आपने देवनागरी लिपि में और

भाषाओं के ग्रन्थ लिखने का उल्लेख किया है। मुझे याद है, आज से प्रायः ४० वर्ष पहले जब मैं कलकत्ते में पढ़ता था, वहाँ एक 'देवनागर' नामक पत्र निकालता था जिसमें सभी भाषाओं के लेख देवनागरी लिपि में छपते थे। उसका फल यह होता था कि देवनागरी लिपि जानने वालों को दूसरी भाषाओं के शब्दों और मुहावरों का परिचय प्राप्त हो जाता था। यह प्रयत्न कुछ दिनों तक चलता गया पर पीछे वह समाप्त हो गया। मैंने संसदीय हिन्दी परिषद् से निवेदन किया था कि वह 'देवनागर' जैसा कोई पत्र अपनी संस्था की ओर से प्रकाशित करे और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उन्होंने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। और शायद थोड़े ही दिनों में वे ऐसा पत्र निकालने भी लगेंगे जिसमें सभी भाषाओं के लेख तथा कविताएँ आदि छपा करेंगी। इस प्रकार के प्रयत्न कई स्थानों में हो रहे हैं।

हमारे प्रधान मन्त्री का भी ध्यान इस ओर गया है और यह एक बड़ी बात है। मैं आशा करता हूँ कि इससे हिन्दी और दूसरी भाषाओं के बीच की खाई कम होती जाएगी और हिन्दी वाले दूसरे भाषा-भाषियों को और दूसरे भाषा-भाषी हिन्दी वालों को अच्छी तरह से समझ सकेंगे। उनके साथ-साथ हिन्दी का भी प्रचार होता रहेगा तो यह काम और भी सरल हो जाएगा। उन्होंने जैसा प्रयत्न आरम्भ किया है, उसी प्रकार का प्रयत्न और स्थानों में भी होना चाहिए। देश के उत्तर और दक्षिण में जो आदिमजातियाँ बसती हैं, उनको भी पढ़ाने-लिखाने का काम आरम्भ करना है और कहीं-कहीं आज उनकी भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी लिपि में छापी जाती हैं। यदि ऐसा ही उत्साह बना रहा और हमने थोड़ी उदारता के साथ काम किया तो यह काम शीघ्र सम्पन्न हो सकेगा।

संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व

संस्कृत के अध्ययन के महत्त्व के सम्बन्ध में काफी चर्चा हो चुकी है। मैं भी आज से पूर्व कई बार इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। अतः मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि इस सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ कहूँ। वास्तव में यह अत्यन्त खेद और लज्जा की बात है कि हमारे देश में इस विषय में लेशमात्र भी सन्देह या शंका हो कि क्या संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है? सांस्कृतिक दृष्टि से संस्कृत के अध्ययन के महत्व के सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों और शासकों तक ने भी किसी प्रकार की शंका नहीं की। जिस प्रकार आज अनेकों देशों के विद्यार्थी शिक्षा के लिए यूरोप या अमेरिका जाते हैं, उसी प्रकार

संस्कृत विश्व परिषद् के द्वितीय अधिवेशन (वाराणसी) में भाषण, २२ नवम्बर, १९५२

संस्कृत और उसका वाङ्मय पढ़ने के लिए अन्य देशों से विद्या-जिज्ञासु हमारे देश में सहस्राब्दियों तक आते रहे। इनमें चीनी थे, यूनानी थे, पारसी थे, अरबी थे, और स्वर्ण-दीपमाला के वासी थे। उस युग में संस्कृत, सभ्यता के रहस्यों को पाने की एक कुंजी मानी जाती थी और इसलिए भारत के विद्वानों को विदेशों में आमन्त्रित किया जाता था जिससे वे वहाँ के लोगों को संस्कृत में संचित ज्ञान का उनकी भाषा में ज्ञान करायें। जब हमारा राजनीतिक पराभव हुआ और जब हमारे शैक्षिक केन्द्र बर्बर आक्रान्ताओं ने विनष्ट कर दिये या आर्थिक साधन न होने के कारण मिट गये, उन दुर्दिनों में भी विदेशों में संस्कृत का महत्त्व कम न हुआ। आजकल भी यूरोप, जापान और अमेरिका में संस्कृत के अध्ययन के लिए विशेष प्रबन्ध है और उसकी शिक्षा पर वहाँ पर्याप्त धन व्यय किया जाता है। यह सब इसलिए कि संस्कृत-अध्ययन से मानव जाति के भूतकाल के बहुत धुंधले पृष्ठों को ठीक-ठीक समझने में भारी सहायता मिलती है और उसके साहित्य और दर्शन से मनुष्य को गहरा आनन्द और सूक्ष्म विचार-शक्ति प्राप्त होती है। पर हमें इसकी आवश्यकता विदेशियों से कहीं अधिक अनुभव करनी चाहिए। हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य, हमारी प्रादेशिक भाषाएँ, हमारी कलाएँ, हमारे मत-मतान्तर, हमारा इतिहास अर्थात् हमारा सम्पूर्ण जीवन संस्कृत-ज्ञान के बिना हमारे लिए अनबूझी और अनजानी पहेली ही बना रहेगा। दूसरे शब्दों में हम अपने को तब तक पहचान ही नहीं सकते और राष्ट्रीय अथवा जातीय व्यक्तित्व के रहस्यों को समझ ही नहीं सकते जब तक हमारे विद्वान् और विचारक, जननायक और शिक्षा-शास्त्री संस्कृत भाषा से सर्वथा अपरिचित हैं।

मेरा यह विचार केवल इसलिए ही नहीं है कि मुझे भारत के अतीत से प्रेम है और मैं उसकी ऐतिहासिक ज्ञानविधि और जातीय अनुभूति को मिट्टी की ठीकरी या कूड़ा समझकर फेंक नहीं देना चाहता। मुझे अतीत के प्रति आदर अवश्य है किन्तु मैं बंधा नहीं हूँ। यदि मेरा यह आग्रह है कि संस्कृत का अध्ययन देश में फैले और जनप्रिय हो तो उसका कारण यही है कि मैं चाहता हूँ कि हम जनता का हृदय पहचान कर अपना कार्यक्रम बनायें और ऐसी स्थिति पैदा न होने दें कि जातीय चेतना को न समझने के कारण हमें अपने आगे के किसी काम को सफलता से करने के लिए जनता का हार्दिक सहयोग और समर्थन प्राप्त न हो। मेरा विश्वास है कि कोई भी विचारशील व्यक्ति यह बात अस्वीकार नहीं करेगा कि कोई जाति या राष्ट्र तब तक सफलता से आगे नहीं बढ़ सकता जब तक उसे अपनी ऐतिहासिक चेतना का, अपनी मानसिक प्रवृत्तियों, शक्ति और साधनों का यथाविद् ज्ञान न हो क्योंकि ऐसी जाति के व्यक्तियों में किसी भी कार्यक्रम के लिए वह मतैक्य और उत्साह नहीं हो सकता जो तब होता है जब जातीय चेतना के मनोनुकूल ही कोई कार्यक्रम हाथ में लिया जाता है। जातीय चेतना से सर्वथा अनभिज्ञ जननायक जनशक्ति को प्रगति के लिए प्रयोग में लाने में वैसे ही असमर्थ होगा जैसे कि जलशास्त्र से सर्वथा अपरिचित व्यक्ति नदी को बांध कर उसे रचनात्मक कार्यों के लिए प्रयोग करने में असमर्थ होता है। महात्मा गान्धी ने इस सत्य को खूब पहचाना था और उन्होंने भारत में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का जो कार्यक्रम बनाया वह

हमारी ऐतिहासिक जातीय चेतना के ज्ञान पर ही आश्रित था और इसी हेतु उस कार्यक्रम को यहाँ की साधारण जनता का सहज में ही उत्साहप्रद समर्थन और सहयोग मिल गया। अतः मेरा यह आग्रह है कि भारत के सुन्दर भविष्य के लिए, उसकी आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए, यह नितान्त आवश्यक है कि हम अपनी जातीय चेतना को पहचानने का यथोचित प्रबन्ध करें। इस प्रबन्ध का एक प्रमुख अंग संस्कृत-अध्ययन का प्रबन्ध करना है क्योंकि वह सामग्री अधिकतर संस्कृत में ही तो है जिसके आधार पर हम अपने जातीय स्वरूप को यथाविद् पहचान और जान सकते हैं।

मुझे इस बात का खेद है कि इस दिशा में जैसी व्यवस्था होनी चाहिए, जितना धन, समय और शक्ति लगनी चाहिए, वैसी न तो व्यवस्था है और न उतना धन, समय और शक्ति हम लगा रहे हैं। एक समय था जब राज्य और समाज, दोनों ही संस्कृत के अध्ययन का पोषण करते थे। राजदरबार में संस्कृत के पण्डितों और कवियों का बड़ा आदर-सम्मान होता था और राजा तथा सामन्तगण उन्हें प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए पर्याप्त धेनु, धन और धान्य देते थे। समाज के कार्य से भी संस्कृत का इतना घनिष्ट सम्बन्ध था कि वह उसकी सहायता के बिना कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठा ही न सकता था। अतः दान की नदी समाज-स्रोत से निकलकर सर्वदा ही संस्कृत पण्डितों और आचार्यों का आर्थिक जीवन उर्वर बनाती रहती थी। उस युग में संस्कृत-विद्वानों ने जीवन के हर क्षेत्र में निर्वचनीय कार्य किया। उन्होंने अपने परिश्रम और प्रज्ञा से विज्ञान, कला, साहित्य इन सबका ही भण्डार भरा। यह कहना अनुचित न होगा कि इन संस्कृत-विद्वानों ने भारत को वह ज्ञान और शीलनिधि प्रदान की जो आज भी संसार के लोगों को आश्चर्यचकित कर रही है; किन्तु युग बदला और संस्कृत के विद्वानों को राज्य का प्रश्रय न रहा। फिर भी यदि संस्कृत-अध्ययन जारी रहा और संस्कृत के पण्डित भारतीय साहित्य, दर्शन और कला के कोष को समृद्ध करते रहे तो वह केवल इसी बल पर कि समाज से आने वाली दान-सरिता तब पर्याप्त चौड़ी और गहरी थी और उसके धन-जल से इन पण्डितों का जीवन सिंचता रहता था। किन्तु लगभग दो शताब्दियों से समाज की यह दान-सरिता भी कुछ सूखने-सी लगी है।

अंग्रेजी राज्यकाल में शिक्षा की कुछ ऐसी व्यवस्था हुई कि हमारे देश में यह भावना घर करने लगी कि हमारी अपनी ऐतिहासिक परम्पराएँ, संस्कार, रीति-रिवाज सब व्यर्थ और हानिकर हैं और इसलिए उनको छोड़कर विदेशी सभ्यता को अपनाने में ही हमारा कल्याण है। अतः शनैः शनैः संस्कृत-विद्वानों और आचार्यों के आर्थिक साधन कम होते गये और वे दरिद्रता के भँवर में डूबते गये। वे जिस निधि के संरक्षक और पोषक थे, जब लोगों के मन में उसी के प्रति उपेक्षा होने लगी तो भला यह कैसे हो सकता था कि उन विद्वानों और आचार्यों के प्रति लोगों की आदर-भावना बनी रहे। अतः जो लोग समाज के शिरमौर माने जाते थे और जिन्हें सब लोग पूज्य समझते थे, वे समाज में सबसे उपेक्षणीय और परिहास के पात्र समझे जाने लगे। समाज में अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी संस्कृति के पण्डितों ने उन आचार्यों का स्थान ले लिया और इंग्लैण्ड भारत का प्रकाशस्तम्भ और सूर्य बन गया। इस परिवर्तन का ज्वलन्त उदाहरण यही है कि इस युग में देश की

आँखें वाराणसी की ओर न रह कर कलकत्ते की ओर लग गयीं। किन्तु इस उपेक्षा और उपहास के युग में भी संस्कृत के विद्वान बने रहे। यह सम्भव इसलिए हुआ कि संस्कृत और संस्कृत के विद्वानों ने कभी लक्ष्मी की दासता स्वीकार न की थी। सहस्राब्दियों पूर्व उनके गुरुओं ने यह परम्परा चला दी थी कि सरस्वती के उपासक को धन-धान्य और सम्मान-आदर का मोह न करना चाहिए। उनका तो यह आग्रह था कि चाहे नीति-चतुर प्रशंसा करें अथवा निन्दा, चाहे धन मिले या जाये, चाहे आज ही मृत्यु सिर दबा ले अथवा युग भर की आयु हो, धीर लोग धर्म-पथ से विचलित नहीं होते। अतः हर प्रकार की उपेक्षा, हर प्रकार की आर्थिक विपत्तियाँ सहकर भी हमारे पण्डितों ने संस्कृत को जीवित रखा और उसके भण्डार को भरते रहे।

अपने धर्म-निर्वहन के साथ-साथ उनके मन में यह विश्वास भी था कि कभी न कभी समय करवट बदलेगा और इस देश के, इसकी जनता के, इसके पण्डितों और आचार्यों के भाग्य फिर जागेंगे। मैं नहीं कह सकता कि स्वतन्त्र भारत में उन्होंने अपने इस विश्वास, इस स्वप्न, इन आशाओं की पूर्ति की झलक देखी है या नहीं। किन्तु मुझे कभी-कभी यह भय होने लगता है कि सम्भवतः स्वतन्त्र भारत में संस्कृत-अध्ययन की परम्परा कहीं समाप्त न हो जाये। आज संस्कृत-विद्वानों की जो अवस्था है, वह वास्तव में शोचनीय है। अभी राज्य ने संस्कृत-अध्ययन को प्रश्रय देने का भार अपने सिर पर नहीं लिया है। यह ठीक है कि विद्यालयों में संस्कृत-अध्ययन के लिए कुछ प्रबन्ध है, किन्तु वह नगण्य है। संस्कृत की जो पाठशालाएँ और विद्यालय आज तक चल रहे हैं और जिनके द्वारा ही संस्कृत-अध्ययन की परम्परा अब तक बनी रही है, उनकी अवस्था आजकल शोचनीय होती जा रही है। वहाँ से निकले विद्यार्थियों का हमारे आधुनिक जीवन में लगभग नहीं के बराबर स्थान है और फल यह है कि आज संस्कृत के आचार्य नौकरी करने को तैयार रहते हैं और फिर भी नौकरी नहीं मिलती। पाठशालाओं के शिक्षकों का आश्रय बहुत कुछ सदाव्रत पर निर्भर था। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ से दाल-चावल और आटा आचार्य को एकादशी-पूर्णिमा जैसे पर्वों पर मिल जाया करता था और इसी प्रकार नवीन वस्त्र इत्यादि की भी व्यवस्था हो जाती थी थे। वाराणसी जैसे स्थानों में विद्यार्थियों को धनी-मानी लोगों द्वारा स्थापित छेत्रों में भोजन मिल जाया करता था।

नयी रोशनी के लोगों को तो यह सब ढकोसला और पाखण्ड-सा लगता है। इसके अतिरिक्त देश में अन्न-वस्त्र पर लगे नियन्त्रण के कारण यह सुविधा भी नहीं रही कि पाठशाला के पण्डितों और विद्यार्थियों को गृहस्थों से इस प्रकार की सहायता मिलती रहे। इसके अतिरिक्त मूल्य बढ़ने के कारण अब गृहस्थों की भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि इस प्रकार दान दे सकें। बड़ी-बड़ी रियासतें और जमीन्दारियाँ जो इस काम में बहुत व्यय किया करती थीं, अब नहीं रहीं और उनके स्थान पर अभी तक कोई नया प्रबन्ध नहीं हो पाया है। फल यह हो रहा है कि संस्कृत के शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों की ही दुर्दशा हो रही है। दूसरे शब्दों में आज समाज से आने वाली दान-सरिता लगभग सूख गयी है। अतः इन परिस्थितियों में यदि संस्कृत-अध्ययन की परम्परा समाप्त हो गयी तो वह

स्वतन्त्र भारत के लिए लज्जा की बात होगी। विदेशों में संस्कृत-अध्ययन का विकास हो और स्वयं भारत में वह समाप्त हो जाये, यद्यपि यह घटना अकल्पनीय अवश्य है, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि हम उसके और निकट पहुँचते जा रहे हैं। संस्कृत-विद्या तथा संस्कृत पठन-पाठन के प्रति हमारी उदासीनता तज्जनित आर्थिक कठिनाइयों का, और उन लोगों में भी जो आज तक हजार कष्ट सह कर और हमारे प्राचीन उदात्त आदर्शों से प्रभावित होकर संस्कृत अध्ययन-अध्यापन में पीढ़ियों से लगे हुए थे, उसके प्रति अश्रद्धा का दूसरा क्या प्रमाण हो सकता है कि वाराणसी जैसे एक पीठ स्थान में भी कितने ही आचार्यों के वंशज आज उस पैतृक विद्या का आश्रय छोड़कर आधुनिक शिक्षा ग्रहण करके ऊँचे वेतन वाली नौकरियाँ ले रहे हैं। इसलिए हमें जहाँ एक ओर संस्कृत को जीविकोपयोगी विद्या बनाना है वहाँ यह भूलना नहीं है कि उसको आज तक जीवित रखने वाले धन्य पुरुष वही हैं जो इसे केवल अर्थोपार्जन का साधन नहीं मानते थे। समाज को भी अपनी ऐसी भूमिका बनानी है जिसमें मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा-सत्कार सभी लक्ष्मी के ही अनुगामी न बनकर सरस्वती के लिए सुरक्षित रहें।

अतः हम सबको इस बात पर बड़े धैर्य से विचार करना है कि हम ऐसे क्या उपाय करें जिससे संस्कृत-अध्ययन घटने की अपेक्षा देश में और अधिक फैले। अतीत में संस्कृत पाठशालाओं को दानशील रियासतों, जमीन्दारों और सेठ-साहूकारों से आवश्यक वित्तीय सहायता मिल जाया करती थी। कुछ तो उनके लिए दान की गयी जमीन्दारियों की आय के सहारे चल रही थीं, किन्तु अब तो हमने जमीन्दारी व्यवस्था के उन्मूलन का निर्णय कर लिया है। अतः इन पाठशालाओं का वह वित्तीय स्रोत तो शीघ्र ही सूख जाएगा। सेठ-साहूकारों से मिलने वाली सहायता का भी कुछ अधिक भरोसा नहीं है। अब धनिक-वर्ग के नवयुवकों में दानशीलता के स्थान में दारूशीलता का फैशन बढ़ता जा रहा है और धन कुछ नगरों में ही केन्द्रित होता जा रहा है। मध्यमवर्गीय कृषकों और श्रमिकों से जो अन्न की सहायता मिलती थी, वह तो अब समाप्त ही समझनी चाहिए। अतः यह प्रत्यक्ष है कि आज के समाज से कुछ अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह चालू पाठशालाओं का भार संभाले। नयी पाठशालाओं के खोलने और चलाने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। सच तो यह है कि आज राज्य ने सामाजिक सूत्र इतनी अधिक मात्रा में अपने हाथ में ले लिये हैं कि यदि राज्य ने संस्कृत-अध्ययन के वित्त-भार को अपने कन्धे पर न लिया तो वह सम्भवतः आगे न चल सकेगा। मैं समझता हूँ कि इस दिशा में राज्य सरकारें पहल कर सकती हैं। अब समय आ गया है कि वे संस्कृत-अध्ययन के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता का प्रबन्ध करें। जब समाज के सब सम्पत्ति-साधनों को वे अपने हाथों में ले रही हैं तो कोई कारण नहीं कि वे समाज के उत्तरदायित्वों को भी क्यों न वहन करें। भारतीय समाज का ढाँचा एक विशिष्ट प्रकार की सहकारिता पर निर्भर करता था। विद्वान् का भार गृहस्थ पर और गृहस्थ के मार्ग-दर्शन का भार विद्वान् पर था। भारतीय समाज के हर क्षेत्र में इस प्रकार की परम्परागत सहकारिता थी। जब हमने परम्परागत सहकारिता से हट कर जीवन का नियन्त्रण अधिकाधिक राज्य के हाथ में देना आरम्भ किया है तब राज्य का ही यह धर्म है कि वह इन

उत्तरदायित्वों को भी अपने हाथ में ले। मेरा विचार है कि भारत की राज्य सरकारों का अब यह धर्म है कि वे अपने कोष से संस्कृत-प्रध्ययन के लिए पर्याप्त सहायता देना आरम्भ करें।

साथ ही उद्योगपतियों को भी यह अपना धर्म मानना चाहिए कि अपने दान का एक अंश विश्वविद्यालयों में संस्कृत-अध्ययन के हेतु विशिष्ट पीठियों की स्थापना के लिए लगायें। इंगलेण्ड और अमेरिका में वहाँ की भाषाओं के प्रमुख कलाकारों और साहित्यिकों की कृतियों और जीवन के अध्ययन के लिए वहाँ के धनिकों ने वहाँ के विश्वविद्यालयों में विशिष्ट पीठियों की स्थापना के लिए पर्याप्त दान दिया है। मैं समझता हूँ कि हमारे यहाँ के धनिक वर्ग को भी ऐसा ही करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त संस्कृत-ज्ञाता के लिए आर्थिक क्षेत्र में भी स्थान बनाने का प्रबन्ध करना चाहिए। मेरा विचार है कि आज संस्कृत-अध्ययन की जो परिपाटी और व्यवस्था है उसके कारण संस्कृत पढ़ने वालों को आर्थिक क्षेत्र में कोई स्थान नहीं मिलता। यह आवश्यक है कि संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत के अभ्यास के साथ आर्थिक दृष्टि से उपयोगी और आधुनिक जगत् से परिचय कराने वाले विषयों का भी अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाये। किसी कारण से ही क्यों न हो, आज संस्कृत-अध्ययन का सम्बन्ध केवल हिन्दू मत से रह गया है। मैं यह नहीं मानता कि अतीत में संस्कृत केवल पन्थ विशेष की चेरी थी। वह धार्मिक संस्कारों की भाषा अवश्य थी किन्तु साथ ही वह विज्ञान, कला, साहित्य इत्यादि की भी भाषा थी। किन्तु आज संस्कृत न तो राजकर्म की ही भाषा है, न कला विज्ञान, वाणिज्य और उद्योग की। आजकल तो यह स्थान अंग्रेजी ने ले रखा है, किन्तु अंग्रेजी के हट जाने पर भी इन क्षेत्रों में उस आसन पर सम्भवतः संस्कृत न बैठ सकेगी। अतः मुझे ऐसा लगता है कि भविष्य में संस्कृत भाषा का दैनिक जीवन के आर्थिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रश्नों से नाममात्र का ही सम्बन्ध रहेगा। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत पढ़ने का कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो है और सर्वदा रहेगा। सभ्यता के संरक्षण के लिए, स्वयं मानवजाति के अस्तित्व के लिए इस बात की आवश्यकता है कि आध्यात्मिक और शिल्पिक शिक्षा में समन्वय हो। मेरा विचार है कि इस समन्वय के लिए संस्कृत के अध्ययन के समान और कोई प्रभावी साधन नहीं हो सकता।

मैं यह बात इसलिए कहता हूँ कि मेरे विचार में सहस्राब्दियों से संस्कृत का आधारतल और पृष्ठभूमि वह आध्यात्मवाद रहा है जो मानवता को भारत की देन है। सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो गयीं जब भारत में प्रथम बार इस विश्वास का जन्म हुआ कि इस जगत् की सब प्रकार की विपत्तियों, बाधाओं, कमियों और कठिनाइयों से मानव तब तक मुक्ति नहीं पा सकता जब तक कि उसका जीवन सत्य की उपासना, सेवा का अटल व्रत और न्याय की अविचल निष्ठा नहीं बन जाता। अपने इस आदर्श को उन्होंने कृष्णार्पण का नाम दिया अर्थात् व्यक्ति जो कुछ भी करे वह इस श्रद्धा और इस इच्छा से करे कि वह इस समस्त विश्व और उससे भी परे विश्वात्मा की प्रसन्नता के लिए कर रहा है, केवल अपनी इन्द्रियों के सन्तोष के लिए नहीं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि व्यक्ति अपने सांसारिक कर्तव्य

का परित्याग करके किसी जंगल में जा बैठे। इसका अर्थ केवल यही था कि वह अपना कोई भी सांसारिक काम अपनी स्वार्थ बुद्धि से न करे वरन् इस विचार से करे कि यही विश्वात्मा की इच्छा के अनुकूल है और वैसा करके वह अपने अहं के बन्धन से छूट कर अपने सच्चे विश्वस्वरूप को पहचान सकता है। इसी आदर्श को हमारे कवियों ने अपने काव्यों में चित्रित किया है और हमारे साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में दर्शाया है। पुराण इसी का गुणगान करते हैं और दर्शन भी इसी से प्रभावित हैं। वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि यह आदर्श हमारी जातीय अनुभूति के ताने-बाने में बुना हुआ है। सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय की प्राण-प्रेरणा यही आदर्श है। संस्कृत नाटक, संस्कृत आख्यान और कथाएँ, संस्कृत महाकाव्य, संस्कृत शास्त्र, संस्कृत विज्ञान सर्वत्र ही इसका साम्राज्य है। अतः यह स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य का विद्यार्थी इस आदर्श से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

मेरा विचार है कि हम जगत् को जो सबसे बड़ी देन दे सकते हैं, वह यही आदर्श है और यह देन हम तब ही दे पाएँगे जब न केवल हमारी भूमि और हमारे औद्योगिक यन्त्र विशाल धन-धान्य की सरिता के स्रोत बन गये होंगे वरन् उनमें कार्य करने वाले श्रमिक और कृषक भी इसी आदर्श से प्रेरित होंगे। उस स्वर्णिम युग की स्थापना के लिए हमें अनथक परिश्रम करना है और अनेक प्रकार के आयोजन करने हैं। किन्तु इन सब प्रयासों और आयोजनों की महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि शिल्पिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा की खाई पट जाये। संस्कृत वह सेतु है जो इस खाई को पाटता है और इसी दृष्टि से आपको आधुनिक जगत् में उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना है।

यह हर्ष की बात है कि इस दिशा में पहला पग कृष्ण की लीलाभूमि सौराष्ट्र में उठाया गया था और इसका अगला कदम भगवान् शिव की इस पुनीत और ऐतिहासिक नगरी में उठाया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि इन दो विभूतियों की ऐतिहासिक छाया में आरम्भ होने वाला यह कार्य अवश्य फले-फलेगा।

अहिन्दी-भाषी हिन्दी सीखें

आपकी इस सभा में सम्मिलित होकर मुझे बड़ी प्रसनन्ता इसलिए हो रही है कि आज मैं एक और दूसरे सम्बन्ध को लेकर यहाँ आया हूँ। आपकी इस सभा के साथ मेरा सम्बन्ध प्रायः प्रारम्भ से ही रहा है। इस सभा ने आज तक हिन्दी के प्रचार का

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) में भाषण, २२ फरवरी, १९५३

काम जितनी तत्परता और कार्यकुशलता के साथ किया है, उसकी हम उत्तर भारत में भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते हैं।

मुझे इस बात का विश्वास है कि आप अब तक जिस तरीके से काम करते आये हैं, उसी तरीके से काम करने का अब अधिक मौका है। यद्यपि आज आप इस बात से कुछ क्षुब्ध-से हैं कि हिन्दी के प्रचार का कार्य उतनी तत्परता और शीघ्रता के साथ नहीं किया जा रहा है जितनी तत्परता और शीघ्रता के साथ आप चाहते हैं, तो भी यह बात सर्वमान्य है कि हमारे संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है। इसके लिए १५ वर्ष की जो अवधि रखी गयी है, उसके तीन वर्ष तो बीत चुके हैं। अभी १२ वर्ष और शेष हैं। इसी बीच हम काफी प्रगति कर लेंगे जिससे हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले सके। मद्रास जैसे शहर में जहाँ दक्षिण की सभी भाषाएँ बोलने वाले बड़ी संख्या में विद्यमान हैं, मैं इस बात को साफ कर देना चाहता हूँ कि हिन्दी किसी भी अन्य देशीय भाषा के साथ होड़ नहीं कर रही है। हम चाहते हैं कि हमारे देश की जितनी भाषाएँ हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगला—सब की सब अपनी उन्नति करें और सबका साहित्य भण्डार भरपूर बन जाये। हम यह चाहते हैं कि वहाँ के लोग अपनी-अपनी भाषाओं की ओर स्वयं ध्यान दें और अपनी भाषा की उन्नति को अपना ध्येय मान लें।

हिन्दी की होड़ यदि है तो वह अंग्रेजी से है। हम हिन्दी को किसी देशी-भाषा के स्थान पर नहीं रखना चाहते। हम तो हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान दिलाना चाहते हैं अर्थात् केन्द्र और सभी राज्यों में जो काम आज तक अंग्रेजी में होता था, उसको सब तक पहुँचाने के लिए उसके स्थान पर हिन्दी को रखना चाहते हैं। इसलिए यदि कोई यह समझे कि हम किसी भी प्रादेशिक भाषा को दबाकर उसके स्थान पर हिन्दी लाना चाहते हैं तो यह एक भारी भूल होगी। ऐसी बात किसी के मस्तिष्क में भी नहीं है। जिन लोगों ने संविधान बनाया है, उनके मस्तिष्क में तो यह बात बिल्कुल ही नहीं थी। इसीलिए हमारे संविधान में प्रत्येक राज्य को काम-काज के लिए उसकी प्रादेशिक भाषा के प्रयोग का अधिकार और अवसर दिया गया है। दक्षिण में कुछ गलतफहमी पैदा हुई हो अथवा कुछ लोग भूल से यह समझते हों कि हम यहाँ पर हिन्दी का आधिपत्य जमाना चाहते हैं, तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हिन्दी कभी भी किसी प्रादेशिक भाषा का स्थान नहीं लेना चाहती। हम हिन्दी का प्रयोग केवल सार्वदेशिक कामों के लिए करना चाहते हैं। संयोग की बात है कि संविधान में हिन्दी को मान लिया गया है क्योंकि भारतवर्ष की सभी भाषाओं में से हिन्दी ही एक ऐसी भाषा निकली जो किसी न किसी रूप में सबसे अधिक लोगों में प्रचलित है और जिसे बहुत बड़ी संख्या में लोग समझते, बोलते या पढ़ते-लिखते हैं। यदि कोई दूसरी भाषा वैसी ही होती जिसका उतना ही प्रचार होता तो मैं अपनी ओर से उसी भाषा को यह सार्वदेशिक स्थान देने पर जोर देता और मेरा यह विश्वास है कि सारे देश के लोग उस प्रस्ताव को मान लेते और वही भाषा सार्वदेशिक भाषा समझी जाती। हिन्दी का प्रचार चूंकि पहले से ही इतना बढ़ा हुआ है और उत्तर तथा दक्षिण को मिलाकर काफी लोग उसको समझते हैं, इसलिए संविधान

में हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया और उसका उतना ही काम है। जो लोग सार्वदेशिक काम करना चाहें तथा जो अपने विचार केवल अपने ही राज्य तक नहीं बल्कि उससे भी आगे बढ़कर सारे देश में पहुँचाना चाहते हों, उनके लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे अंग्रेजी को छोड़ कर हिन्दी सीखें।

मैं जब इस सभा की कार्यवाही देखता हूँ और पिछले ३०-३५ वर्षों में प्राप्त इसके अनुभव पर विचार करता हूँ, तो मैं समझता हूँ कि यह काम कुछ उतना कठिन नहीं जितना कि कुछ लोग समझते हैं। जब अंग्रेजी को, जो विदेशी भाषा है, जिसका हमारी किसी भी भाषा से कैसा भी सम्बन्ध नहीं है और जिसका एक भी शब्द हमारे देश की किसी भी भाषा का नहीं है, हमारे लोगों ने थोड़े ही दिनों में इस प्रकार सीख लिया है कि वे अंग्रेजों के मुकाबले लिखने, बोलने और सारा काम करने लग गये हैं, तो हिन्दी सीखना जिसमें बहुतेरे ऐसे शब्द हैं जो देश की सभी भाषाओं में पाये जाते हैं कोई बहुत कठिन काम नहीं है। मैं तो हिन्दी वालों से यही कहता हूँ कि वे अपनी ओर से इस सम्बन्ध में कोई जल्दी या उतावलापन न दिखलायें। इसके प्रचार का काम उन लोगों पर छोड़ दिया जाना चाहिए जिनकी भाषा हिन्दी नहीं है। वे जितनी सहायता चाहते हैं, उतनी सहायता हम अवश्य दें। जो सेवा हम कर सकते हैं, वह सेवा करने के लिए हम सदा तैयार रहें परन्तु प्रचार का काम अहिन्दी-भाषियों पर हो और वे उसका पूरी तरह से प्रचार करें। आरम्भ में दक्षिण भारत में उत्तर के कई कार्यकर्ता आये और उन्होंने कार्य आरम्भ किया, परन्तु आज मुझे यह देख कर प्रसन्नता है कि जहाँ आपके चार हजार कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, उनमें उत्तर के केवल तीन ही हैं और वह भी वे लोग हैं जो आज से नहीं बल्कि प्रारम्भ से ही इस काम में आकर जुट गये थे। आपने इस काम को अपने ऊपर ले लिया है और उसके लिए जो व्यय होता है, उसकी व्यवस्था भी आप लोग ही करते हैं। तो इसका अर्थ यह है कि आप इस काम के महत्त्व को तथा उसकी आवश्यकता को पूरी तरह से समझ गये हैं।

उन प्रदेशों में जहाँ दक्षिण की भाषाएँ बोली जाती हैं, हिन्दी के प्रचार में बहुत अधिक कठिनाई नहीं आनी चाहिए। मेरे जैसे लोगों के लिए जिनकी आयु बहुत हो गयी है आज नयी भाषा सीखना कठिन अवश्य है। परन्तु मैं समझता हूँ कि नये लोग दूसरी भाषाओं को बहुत आसानी से सीख सकते हैं। कुछ दिन हुए मेरे पास एक चार साल का बच्चा लाया गया था। वह अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी और हिन्दी में (चार भाषाओं में) बातें कर सकता था। चार वर्ष का बच्चा बातें ही कितनी कर सकता है ? परन्तु वह जो दो-चार बातें कर सकता था, चारों भाषाओं में करता था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ : उसके माता-पिता साथ थे। मैंने उनसे पूछा कि उसने चारों भाषाएँ किस प्रकार सीखीं ? उन्होंने कहा जिस प्रकार बच्चा मातृभाषा सीखता है, उसी प्रकार उसको चारों भाषाएँ सिखलायी गयी हैं। माता जब उससे बोलती है तो वह केवल अंग्रेजी में बोलती है। पिता जब बोलते हैं तो केवल हिन्दी में बोलते हैं। वे लोग स्वयं मराठी बोलने वाले थे और उनके पड़ोसी मराठी जानने वाले थे। इससे वह उनसे मराठी में बोला करता था।

मेरा विश्वास है कि आप बहुत जल्दी इसमें उन्नति करेंगे। इसमें यहाँ के लोगों के

लिए डरने की कोई बात नहीं है। आप ऐसा न समझें कि आप पर कोई चीज लादी जा रही है। आप हिन्दी को राष्ट्रीय काम तथा देश की सेवा समझकर ही ग्रहण कीजिये और लोगों में प्रचार कीजिये।

दक्षिण की भाषाएँ और हिन्दी

आज मैं अपना भाषण दोष-प्रकाशन और क्षमायाचना के साथ आरम्भ करना चाहता हूँ। दोष-प्रकाशन इसलिए कि मैं तमिल भाषा से एकदम अनभिज्ञ हूँ और क्षमा-याचना इसलिए कि मैं इसको सीख नहीं पाया हूँ। यह क्षमा-याचना मैं केवल अपनी ओर से ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत के सब निवासियों की ओर से करता हूँ। हम एक सामान्य भाषा के सम्बन्ध में सोचते रहे हैं जिसका राष्ट्रीय कामों में उपयोग किया जा सके। हम आशा करते हैं कि दक्षिण के हमारे भाई-बहन उस भाषा को सीख सकेंगे। दुर्भाग्य से उत्तर के लोगों में दक्षिण की कोई भाषा सीखने का उत्साह देखने में नहीं आया। मैं आशा करता हूँ कि उत्तर के लोग शीघ्र ही अनुभव करेंगे कि दक्षिण की समृद्ध भाषाओं और उनके साहित्य के ज्ञान से वंचित रहने से हानि उन्हीं की है।

कभी-कभी सुनने में आता है कि दक्षिण के लोगों पर हिन्दी बलात् लादी जा रही है। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कोई व्यक्ति अथवा संस्था ऐसा प्रयास नहीं कर सकती। हम केवल यही चाहते हैं कि समस्त राष्ट्र के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता को देखते हुए हमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेना चाहिए, और आप लोग इसे स्वेच्छा से सीखें। किसी की भी ऐसी इच्छा नहीं है और न हो सकती है कि भारत की अन्य भाषाओं को दबाया जाये। इसके विपरीत हम चाहते हैं कि वे भाषाएँ फलें-फूलें, समृद्ध हों और देश की संस्कृति का वैभव बढ़ायें। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अतीत की भाँति आज भी एक सामान्य भाषा ही हमें एकता के सूत्र में बांध सकती है। अतीत में यातायात सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां थीं किन्तु आजकल हमारे पास प्रचार के अनेक साधन हैं। इसलिए उत्तर के रहनेवालों के लिए दक्षिण की और दक्षिण के रहने वालों के लिए उत्तर की भाषा सीखना कठिन नहीं होना चाहिए। यदि इस भावना से कार्य किया जाये तो निस्सन्देह दक्षिण के लोग शीघ्र ही उत्तर के लोगों को हरा देंगे। यह मैं अपने निजी अनुभव से कह रहा हूँ। मैंने देखा है कि दक्षिण के कुछ लोग जो हिन्दी सीखते रहे हैं, वे इस भाषा को ऐसी वाक्पटुता और व्याकरणगत शुद्धता से बोलते हैं और इसके

छठे तमिल समारोह (नयी दिल्ली) के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, २६ अगस्त, १९५३

अतिरिक्त उनका उच्चारण भी इतना शुद्ध होता है कि मैं स्वयं भी उतने शुद्ध उच्चारण के साथ हिन्दी नहीं बोल सकता। यह बात असन्दिग्ध है कि यदि आप हिन्दी पर थोड़ा-सा भी ध्यान देंगे, तो आप इस क्षेत्र में उत्तर-वासियों का केवल मुकाबला ही नहीं कर सकेंगे बल्कि उनसे आगे भी निकल जाएँगे।

मैंने यह भी सुना है कि एक और प्रकार की भाषा का, जिसे राष्ट्रीय हिन्दी कहा जाएगा और जो साधारण हिन्दी से कुछ भिन्न होगी, विकास करने का प्रयास किया जाएगा। मैं नहीं जानता कि वास्तव में इस प्रकार का कोई प्रयत्न किया जा रहा है। हम जानते हैं कि यूरोप में एक सामान्य कृत्रिम भाषा बनाने का प्रयत्न असफल रहा है। मैं नहीं कह सकता कि इस देश में इस प्रकार की भाषा बनाने का प्रयत्न अधिक सफल होगा।

हम आशा करते हैं कि दक्षिण के सभी निवासी जो अहिन्दी-भाषी हैं, हिन्दी सीख सकेंगे और उसको बहुत कुछ दे भी सकेंगे। भविष्य की हिन्दी वह भाषा होगी जो केवल उत्तर के ही लोगों की भाषा नहीं, बल्कि जिसके पालन-पोषण और विकास में देश के सभी भागों के लोगों का सहयोग होगा। हम चाहते हैं कि आपकी शब्दावली, आपके वाक्य-विन्यास और आपके मुहावरों द्वारा हिन्दी समृद्ध हो। यद्यपि किसी भाषा में आमूल परिवर्तन तो नहीं हो सकता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दूसरी भाषाओं के सम्पर्क और सहायता द्वारा हिन्दी बहुत अधिक सम्पन्न हो सकेगी।

जब मुझे इस समारोह का उद्घाटन करने का निमन्त्रण मिला तो मैंने सोचा कि इससे अच्छा और कौन-सा अवसर होगा जब मैं आपसे नम्रतापूर्वक यह कह सकूँ कि आप इस प्रश्न को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखें। अतीत में जिस प्रकार दक्षिण ने संस्कृत साहित्य को बहुत ऊँचा किया था, उसी प्रकार आप लोग अपनी कृतियों द्वारा राष्ट्रीय भाषा को समृद्ध करेंगे और इस देश का वैभव बढ़ाएँगे।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी

हिन्दी और हिन्दुस्तानी की बात पिछले २०-२५ वर्षों से चलती आ रही है और अभी तक यह कहना कठिन है कि हम लोग किसी एक सर्वसम्मत निष्कर्ष पर पहुँच सके हैं। पिछले १८-२० वर्षों में मैं हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बारे में एक बार नहीं, अपने विचार

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा (बम्बई) के पारितोषिक वितरण के अवसर पर भाषण, ११ अक्तूबर, १९५३

कई बार व्यक्त कर चुका हूँ। मेरी समझ में हिन्दी और हिन्दुस्तानी का झगड़ा उठाना बेकार और गलत चीज है।

मैं मानता हूँ कि यदि हम चाहें कि किसी भी भाषा को अपनी इच्छा के अनुकूल वना लें तो यह सम्भव नहीं हो सकता। किसी भी देश में जितने लोग बसते हैं, उन लोगों के हृदय में जो भावनाएँ पैदा होती हैं, उनमें जो विचार उठते हैं, उन्हीं से भाषा निकलती है। हिन्दी कहिये या हिन्दुस्तानी, दोनों ही हिन्दुस्तान में पैदा हुई और आज भी चल रही हैं। इसलिए मैं सदा से यह बात कहता आया हूँ कि किसी विदेशी शब्द को अपनी भाषा में न घुसने देने का विचार बिलकुल गलत है। यदि कोई भी जीती-जागती भाषा आगे बढ़ रही है, उन्नति कर रही है तो उसमें बाहर के शब्द आये बिना रह नहीं सकते। यदि आप अंग्रेजी भाषा के किसी भी शब्दकोष को खोलकर देखें तो उसके अन्त में २०-२५ पृष्ठ परिशिष्ट के जोड़े जाते हैं। उन पृष्ठों में अंग्रेजी भाषा में जो नये-नये शब्द आते हैं, वे ही दिये जाते हैं। कुछ दिन हुए मुझे चैम्बर्स का एक पुराना शब्दकोष मिल गया। मैंने देखा कि आज का चैम्बर्स शब्दकोष पुराने शब्दकोष से दुगुना मोटा था। पिछले ६० वर्षों में जितने नये शब्द लिये गये वे सब नये शब्दकोष में थे। विदेशी भाषा के जो शब्द प्रचलित हैं, यदि उन्हें निकाल देने का प्रयास किया गया तो भाषा का रूप ही दूसरा होगा।

हिन्दी वालों का यह प्रयास कि अरबी तथा अंग्रेजी भाषा के शब्द हिन्दी में नहीं आने देने चाहिएँ, उतना ही हानिकारक है, जितना उर्दू वालों का यह प्रयास कि उर्दू में केवल अरबी और उर्दू भाषा के ही शब्द रखे जायें, संस्कृत के नहीं। उसके साथ-साथ हमको यह भी मानना होगा कि हिन्दुस्तान में जो बहुत सी भाषाएँ हैं, वे अलग-अलग प्रदेशों की अलग-अलग भाषाएँ हैं जैसे उत्तर भारत में मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला, उड़िया तथा असमिया और दक्षिण में तामिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़। इन सब भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुत हैं। हिन्दी को छोड़कर और किसी भी भाषा में उर्दू के शब्द नहीं मिलेंगे। देश में हिन्दी को इस योग्य बनाना है कि लोग उसे सरलता से सीख सकें। इसलिए उसमें संस्कृत के शब्द लेने ही पड़ेंगे, उससे बचा नहीं जा सकता। हमारे संविधान में हिन्दी की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है कि हम उसी भाषा को हिन्दी मानते है जिसके मूल में संस्कृत है। यह कोई नयी बात नहीं है। इसे सभी लोग मानते और समझते हैं।

आज लोग कुछ ऐसी हिन्दी लिखने लगे हैं, जिसमें संस्कृत के बड़े-बड़े शब्द अधिक आते हैं जो मेरे जैसे आदमी की जिसने संस्कृत नहीं पढ़ी है, समझ में ही नहीं आते। जो व्यक्ति संस्कृत या अरबी भाषाओं में से किसी को भी अधिक नहीं जानते परन्तु अच्छी हिन्दी या हिन्दुस्तानी लिख सकते हैं, उनको इतना समय नहीं कि वे संस्कृत और अरबी के बड़े-बड़े शब्द ढूंढ़ कर निकालें। वे तो छोटे-छोटे शब्दों से ही अपना काम निकाल लेते हैं। विज्ञान के लिए बड़े-बड़े शब्द लेने हो तो वह दूसरी चीज है। परन्तु बोल-चाल की तथा अखबारों में प्रयुक्त होने वाली भाषा जितनी सरल हो, उतना ही अच्छा है और उसको समझने में हिन्दी और उर्दू बोलने वालों, दोनों को ही कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। वही भाषा ठीक चलेगी। मैं उत्तर भारत के लोगों से जहाँ हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी बोली जाती है, यही कहना

चाहता हूँ कि यदि वे चाहते हैं कि हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी सारे भारतवर्ष में चले तो उनको अहिन्दी-भाषियों को अपने साथ लेने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि वे जिस भाषा को नहीं अपनाते वह सारे देश की भाषा नहीं हो सकती। कभी-कभी अहिन्दी-भाषी भी हिन्दी में लिखने का प्रयास करते हैं। यदि उनकी हिन्दी, हिन्दी के व्याकरण की दृष्टि से जाँची जाये तो हिन्दी भाषी उसे स्वीकार नहीं करेंगे। मैं उनसे यह भी कहना चाहता हूँ कि उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि केवल हिन्दी भाषा में ही नहीं बल्कि उसके व्याकरण में भी इतना हेर-फेर करना पड़ेगा कि दूसरी भाषाओं के मुहावरे हिन्दी भाषा में खप सकें। भाषा तभी विकसित हो सकती है।

मैं आशा करता हूँ कि भाषा के इस प्रश्न को साम्प्रदायिक रूप नहीं दिया जाएगा। उसे एक बार साम्प्रदायिकता का रूप दे देने पर उसका उसमें से निकलना कठिन हो जाएगा। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम इस प्रश्न को साम्प्रदायिकता से परे केवल एक भाषा के रूप में देखें और भाषा का अर्थ यह है कि अपनी भावनाओं और अपने विचारों को उसी के द्वारा दूसरों तक पहुँचाया जा सके। यदि राष्ट्रभाषा ऐसी भाषा बना दी गयी जिसे कुछ ही लोग समझें तो हमारी समस्या हल नहीं हो सकती। हमें संकीर्ण विचारों से दूर रहना चाहिए। भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय किसी एक राज्य की दृष्टि से नहीं, बल्कि सारे देश की दृष्टि से विचार करना चाहिए और तभी भाषा को वह रूप प्राप्त होगा जिसका मैंने उल्लेख किया है। महात्मा गान्धी देश में उस भाषा को चलाना चाहते थे। जिसे वह कभी हिन्दुस्तानी अथवा कभी हिन्दी कहते थे। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यदि ऐसी भाषा को जिसे सभी लोग समझ सकें हम हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी उसमें कोई अन्तर नहीं। मैं नहीं समझ पाता कि इसमें झगड़े की क्या बात है।

एक दूसरा झगड़ा लिपि के बारे में भी है। हिन्दुस्तानी अरबी और नागरी, दोनों लिपियों में लिखी जाती है। हमारे संविधान ने नागरी लिपि को ही माना है। इसमें जबर्दस्ती की गुंजाइश नहीं है। यह खुशी की बात है। मगर हिन्दुस्तान में जितने लोग बसते हैं, हम उनके विचारों से अवगत होना चाहते हैं। यदि हम उनको समझना चाहते हैं तो हिन्दुस्तान की जितनी लिपियाँ हैं, उनको हमें सीखना होगा। दक्षिण वालों को हिन्दी भाषा-भाषियों से यही शिकायत रही है कि वे तो हिन्दी सीखते हैं पर हिन्दी वाले दक्षिण की भाषा कभी नहीं सीखते। उसी प्रकार उर्दू के अक्षर हम जानें और उर्दू की किताबों से अपना परिचय रखें तो जिन मुस्लिम देशों की वह लिपि है, उनसे हमारा सम्बन्ध और अधिक घनिष्ट हो सकता है। इसलिए उसको सीखना आवश्यक है। मैं आशा करता हूँ, लोग इस ओर ध्यान देंगे और दोनों लिपियाँ सीखकर लाभ उठाएँगे।

आपकी सभा यह काम कर रही है। इसमें जो कठिनाइयाँ हैं, उनको मैं जानता हूँ। लेकिन उनके बावजूद आप जो काम कर रहे हैं, उसके लिए मैं आपको बधाई देना चाहता हूँ।

सबकी मंज़िल एक है

मैं अपने लिए इसे निहायत खुशकिस्मती का मौका समझता हूँ कि जब-जब यह मौका आता है, आप मुझे चन्द शब्द कहने का मौका देते हैं। गुरु नानक जैसी हस्तियाँ संसार में जब उनकी ज़रूरत होती है, तभी आया करती हैं। जैसा अभी कहा गया है, ऐसी हस्तियों का काम यही होता है कि जो लोग गलत रास्ते पर चल रहे हों तथा जो बिगड़ते जा रहे हों, उनको सही रास्ते पर लायें। इस तरह की जितनी हस्तियाँ संसार में आज तक हुई हैं, सबने अपने-अपने वक्त पर उस ज़माने के मुताबिक काम किया है।

इसी प्रकार तरह-तरह के मज़हब कायम हुए। उनमें उसूली फ़र्क कहीं नहीं है मगर वक्त और जगह के ख्याल से रस्म-रिवाज, तौर-तरीकों में कुछ ऊपरी फर्क होता रहा। आज हम जितने झगड़े देखते और सुनते हैं, वे सब झगड़े उसूली मामले के बारे में नहीं हैं क्योंकि उसमें उन झगड़ों की कोई गुंजाइश नहीं होती। अगर झगड़े होते हैं तो वे रस्म-रिवाज और तौर तरीके जैसी बाहरी चीज़ों के लिए होते हैं। इन चीज़ों को अलग करके, जैसा अभी गज़नफर अली साहब ने कहा, उनके उसूलों पर गौर करें तो मालूम होगा कि एक दूसरे से कोई झगड़ा नहीं है। हिन्दुस्तान में जिस वक्त गुरु नानक देव का अवतार हुआ, उस वक्त शायद इसी तरह के झगड़े फैले हुए थे। तभी उन्होंने हमको यह बताया कि उस वक्त जो दो धर्म ज़ोरों से प्रचलित थे, उन दोनों में कोई फर्क नहीं है और उसूलन दोनों एक ही हैं।

आज हिन्दुस्तान के अन्दर दो ही नहीं और भी कई मज़हब प्रचलित हैं और सभी मज़हबों के लाखों-लाख, करोड़ों-करोड़ लोग इस देश में बसते हैं। आज हमको फिर वैसे ही अवतार की ज़रूरत है जो हमको वही सबक सिखाये जो गुरु नानक देव ने सिखाया था। बदकिस्मती से आज हम उस पर अमल नहीं कर रहे हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि हम ऐसे दिन को जो निहायत शुभ दिन है, हर साल मनाया करें जिससे कम से कम हम, जो भूले और भटके हुए हैं, यह जान सकें कि जितने मज़हब हैं सबका उसूल एक ही है। आपस के मज़हबी झगड़े सिर्फ बेबुनियाद ही नहीं बेउसूल भी हैं। सारे संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मज़हब के कारण जितने भी झगड़े हुए हैं, उनमें कोई यह नहीं कह सकता

चेम्सफोर्ड क्लब (नयी दिल्ली) में गुरु नानक के जन्म दिवस पर भाषण, २१ नवम्बर, १६५३

कि वह जीत गया और दूसरा हार गया। कोई आदमी किसी मजहब को कभी भी नेस्तनाबूद नहीं कर सका और आइन्दे भी नहीं कर पाएगा।

सबसे अच्छी बात यह है कि हमें एक-दूसरे को समझना चाहिए और खास करके इस मुल्क के अन्दर जितने भी मजहब फैले हुए हैं, उनकी एक-दूसरे से अदावत नहीं होनी चाहिए। उनका आपस में मेल-जोल होना चाहिए और एक-दूसरे को उनके ख्यालात जाहिर करने का मौका देना चाहिए जिससे देश में सभी लोग शान्ति और सुख के साथ बस सकें और अलग-अलग रास्ते से चलते हुए भी अपनी मंजिल पर पहुँच सकें। आखिर मंजिल तो एक ही है। यह तो हमारे देश के अन्दर आज से नहीं हजारों वर्षों से माना गया है। हमारे यहाँ जितने भी अवतार हुए हैं, जितने भी साधू-सन्त हुए हैं, उन्होंने बताया है कि सबको एक ही जगह जाना है—चाहे कोई पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, या उत्तर के रास्ते से जाये। इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि कोई पूर्व या पश्चिम से क्यों आता है। सबका मकसद वहीं पहुँचना है। अगर अपनी जिन्दगी पाक है तो इसमें कोई शक नहीं कि हम वहाँ पहुँचेंगे चाहे हम पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, या उत्तर के रास्ते से जायें। इसे हमें समझना है और अपनी रोजाने की जिन्दगी में बरतना है। तभी हम अपना और अपने देश का भला कर सकेंगे।

भारत एक खुश-किस्मत देश है

मैं अपनी खुश-किस्मती समझता हूँ कि आज मैं इस तरकीब में शरीक हो सका। ऐसे बुजुर्गों की हस्तियाँ दुनिया को ऊपर उठाती हैं और उनकी यादगार में जब कुछ कहने का और अपना खिराजे-अदब पेश करने का मौका होता है तो यह भी अपनी खुश-किस्मती ही समझनी चाहिए। इसीलिए मुझे खुशी है कि मैं यहाँ हाजिर होकर इसमें हिस्सा ले सका। मुझे हर साल यहाँ आने की दावत दी जाती है और मैं इस विचार से यहाँ हाजिर हो जाता हूँ कि यहाँ से कुछ लेकर ही जाऊँगा और कुछ दिनों तक काम चलेगा।

हजरत निजामुद्दीन जैसी हस्तियाँ इस दुनिया में हो गुजरी हैं जिन्होंने अपने ही वक्त के लिए नहीं बल्कि हमेशा के लिए बहुत-कुछ छोड़ा है। दुनिया के लिए वह हमेशा याद रखने की चीज है और इसी वजह से आज ६५० बरसों के बाद इतना जमाना बीतने पर भी इस मुल्क के मुसलमान, बहुतेरे हिन्दू और दूसरे मजहब के लोग ऐसी हस्तियों की याद में यहाँ जमा होना अपनी खुश-किस्मती समझते हैं और यहाँ से कुछ ले जाना चाहते हैं।

हजरत निजामुद्दीन के उर्स (नयी दिल्ली) के अवसर पर भाषण, २५ दिसम्बर, १९५३

ऐसी हस्तियां बादशाहों से भी बुलन्दतर होती हैं और उसका सबब यह है कि बहुत से लोग उनसे फायदा उठाते हैं। ये हस्तियां जो कुछ कह जाती हैं, वह सिर्फ इस दुनिया के लिए ही नहीं बल्कि दूसरी दुनिया के लिए भी कारगर होता है। इसलिए उनके गुजर जाने के बाद भी हजारों-हजार लोग उनको याद करते हैं और उनकी याद में यदि चन्द लमहे भी मिल सकें तो अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाना चाहते हैं।

ऐसे शाही बादशाह दिल्ली में हुआ करते थे, मगर शाही तख्त आज नहीं रहा और न शाही शान-शौकत ही आज रही। ऐसे बहुतेरे बादशाह इस मुल्क में और दूसरे मुल्कों में हो गुजरे जिनकी बड़ी-बड़ी सल्तनतें थीं और जिन्होंने बड़े-बड़े मुल्कों पर राज्य किया। पर सबकी बादशाहत खत्म हो गयी। लेकिन इन बुजुर्गों ने जो सल्तनतें कायम कीं, वे दिल की सल्तनतें हैं। दिल पर जो सल्तनतें कायम होती हैं, वे ऐसी ही हस्तियों द्वारा होती हैं। दिल की सल्तनत दुनिया की सल्तनत से कहीं ज्यादा ताकतवर होती है और यह ताकत आज तक इस सल्तनत में है और हमेशा कायम रहेगी। हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में जहां पर मुतफर्रक मजहब हैं और मुतफर्रक जाति के लोग बसते हैं हमारे साधू-सन्तों और औलिया लोगों ने चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, मिलजुलकर रहने पर बहुत जोर दिया है और यह उन्हीं की नसीहत है जिसके कारण हमने एक-दूसरे के साथ तफरीक नहीं रखी और अब तक नहीं रखते हैं। जिस वक्त हजरत साहब यहां तशरीफ रखते थे, उन्होंने अपनी जिन्दगी से लोगों को यह सबक सिखाया था। आज हमें वही चीज विरासत में मिली है। हम कोशिश करेंगे कि इसे हमेशा कायम रखें। जब तक यह कायम रहेगी, हम इस मुल्क में अमन और सुलह रख सकते हैं। देश को ऊंचा उठाने के लिए ऐसे ही मौके होते हैं और ऐसे ही मौकों पर हाजिर होकर हम उन बुजुर्गों की नसीहतों पर ग़ौर करते हैं।

हमारे मुल्क में बहुतेरे सन्त हुए। सब ने हमें यह नसीहत दी कि सबको बराबर समझा जाये और हरेक को पूरी आजादी रहे, सबको बराबर के हक हों और सबको यह हक हो कि वे आजादी से रहें। इतना ही नहीं बल्कि जिस मजहब को वे मानते हैं, उस मजहब के तौर-तरीकों को भी अपनी जिन्दगी में कायम रख सकें और उतार सकें। यही हमारे संविधान का एक बहुत बड़ा जुज है जिससे हम सारी दुनिया के सामने सिर ऊंचा रखकर कह सकते हैं कि हम मजहब और जाति की बिना पर, मर्द और औरत होने की बिना पर या किसी दूसरी बिना पर कोई तफरीक न देख सकते हैं और न देखना ही चाहते हैं। मैं समझता हूं, जो चीज कानूनन बनायी गयी है, उस चीज को सिर्फ कानूनी तौर पर ही नहीं माना गया बल्कि हमने उसको अपनी जिन्दगी का एक जुज बना लिया है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सभी मजहबों के बुजुर्गों ने इस चीज को हमें सिखाया है। इसलिए संविधान में जो चीज है वह नयी नहीं है। वह तो एक विरासत है जो हमारे पास एक जमाने से चली आयी है और इसी विरासत को हमने दुनिया के सामने रखा है। इस तरह की तरकीबों से हमें नूर मिलेगा। इसी तरह के जज़बात से जो ऐसे मौकों पर इजहार होते हैं, हमें हमेशा बल मिलता रहेगा और इस देश की आगे तरक्की होती रहेगी।

इसीलिए जब ऐसे मौके आते हैं तो मुझे खुशी होती है कि जो चन्द लमहे यहां

अच्छे गुजरेंगे, उनमें मैं भी यहाँ से कुछ लेकर ही जाऊँगा, सिर्फ पगड़ी या 'तबर्रुक' लेकर ही नहीं, बल्कि कुछ अच्छे खयालात भी लेकर जाऊँगा।

आदर्श शिक्षक

यहाँ आने पर मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ उन बहुत से छोटे-छोटे बच्चों के लिए, जो भूकम्प के कारण अनाथ हो गये थे, एक कीर्ति-घर स्थापित किया गया है। मैंने उसको जाकर देखा। उनके रहने का ढंग तथा सफाई इत्यादि सब कुछ अच्छा लगा। यहाँ केवल इसी स्थान के ही नहीं बल्कि सारे राज्य के शिक्षक शिक्षण लेने के लिए आये हैं। यहाँ से जो कुछ सीखकर जाएँगे, वे अपने स्थान पर उसके सम्बन्ध में सब लोगों को बताएँगे।

मैं विशेषकर शिक्षक वर्ग के लोगों से कहना चाहता हूँ कि और लोगों को जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसे वे कम सीखें या अधिक, उसका प्रभाव उन्हीं तक सीमित रहता है दूसरों पर नहीं पड़ता, परन्तु वे लोग यहाँ से जो कुछ पढ़कर जाएँगे, वह केवल अपने ही लिए नहीं बल्कि अनेकानेक बच्चों और बच्चियों के लिए सीखकर जाएँगे। उनको अपने इस उत्तर-दायित्व को और भी अधिक समझना चाहिए। उन्हें सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि जैसा उनका अपना चरित्र होगा, वैसा ही चरित्र और चालचलन वह अपने हाथ में आये हुए बच्चों का बना सकेंगे। यदि उनमें कुछ भी त्रुटि रह गयी तो वह केवल उनके अपने लिए ही हानिकर न होगी, बल्कि उससे दूसरों को भी हानि पहुँचेगी। इसलिए आप सबको यह समझकर जो कुछ आप सीखना चाहें, उसे अच्छी तरह समझना और सीख लेना चाहिए। आपको अपना चरित्र इतना सुन्दर और पवित्र बनाना चाहिए कि आप बच्चों को अच्छी तरह से सिखा-पढ़ा सकें और उनको चरित्रवान् बना सकें। भारतवर्ष में पढ़े-लिखे लोग तो बहुत हैं और उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस क्षेत्र में भी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही जाएगी। परन्तु देश तथा संसार के और अपने लिए केवल पढ़ाई ही पर्याप्त नहीं है। जब तक पढ़ाई के साथ-साथ चरित्र भी ऊँचा न हो जाये और उसमें पवित्रता न आ जाये, तब तक आपके पढ़ाने का काम पूरा नहीं हो सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि विशेषकर शिक्षक लोग इस पर अधिक ध्यान दें और वे दूसरों को भी सिखायें और उनको चरित्रवान् बनायें।

मैंने छोटे बच्चों को भी काम करते हुए देखा। यहाँ के जो आदिमजाति के लोग

उत्तरपूर्व सीमान्त अभिकरण (असम) में अध्यापक प्रशिक्षण स्कूल में भाषण, २३ फरवरी, १९५४

हैं, विशेषकर उनके काम के नमूने भी देखे। मैं जहाँ-जहाँ गया, लोगों ने प्रेमपूर्वक कुछ न कुछ भेंट ही दी। कम समय रहने पर भी यहाँ एक अच्छी भेंट मिल गयी। मुझे यहाँ का बना हुआ एक कोट मिला। इस प्रेम के लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। यह कहने की बात नहीं है और मैं जानता हूँ कि आप मेरे प्रति जो प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं, वह भारतवर्ष के प्रति है, केवल मेरे लिए ही नहीं। एक दिन था जब राजे-महाराजे तथा बादशाह हुआ करते थे और व्यक्ति ही सब कुछ होता था। अब हमने गणराज्य बना लिया है। गणराज्य का अर्थ होता है किसी एक व्यक्ति का राज्य नहीं बल्कि सबका राज्य। हमारे गणराज्य में न कोई प्रजा है और न कोई राजा। या यों कहें कि सबके सब प्रजा हैं या राजा। तो हम सब बराबर हैं और बराबर रहकर सब लोग एक-दूसरे की सहायता करते हैं तथा एक दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होते हैं। हमारा कर्त्तव्य मिल-जुलकर भारत का उत्थान करना है। मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ से जो शिक्षण प्राप्त करके निकलेंगे, उसका उपयोग आप भारत, असम और इन क्षेत्रों की जहाँ आदिवासी लोग बसते हैं, उन्नति करने में करेंगे।

राष्ट्रभाषा और हिन्दी संस्थाएँ

आपने मुझे हीरक जयन्ती समारोह के उद्घाटनार्थ निमन्त्रित किया, इसके लिए मैं आप लोगों का आभारी हूँ। मेरे सम्बन्ध में श्री सम्पूर्णानन्द जी ने जो शुभ विचार प्रगट किये हैं, वे उनकी उदारता के सूचक हैं। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैं अपने आप को हिन्दी का विद्वान् नहीं मानता, अपितु हिन्दी भाषा का प्रेमी और सेवक अवश्य हूँ और इसी नाते इस संस्था के हीरक जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने आया हूँ।

देवनागरी लिपि के प्रचार और हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए नागरी प्रचारिणी सभा ने गत साठ वर्षों में जो कुछ किया है, वह किसी से छिपा नहीं तो भी इसके इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालना अनुचित नहीं होगा।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना १० मार्च, १८९३ को स्कूल में पढ़ने वाले कतिपय उत्साही छात्रों द्वारा हुई थी। इन छात्रों में सर्वश्री ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू श्यामसुन्दर दास और श्री रामनारायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। यही त्रिमूर्ति सभा की स्थापना से लेकर लगभग ५० वर्ष तक निरन्तर किसी न किसी रूप में सभा की सेवा में लीन रही और

नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) के हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर उद्घाटन भाषण, ६ मार्च, १९५४

यह सौभाग्य की बात है कि ठाकुर शिवकुमार सिंह के सत्परामर्श हमें आज भी उपलब्ध हैं।

सभा के पहले मन्त्री श्री श्यामसुन्दर दास हुए। दो आना मासिक चन्दा से कार्य प्रारम्भ हुआ और स्थापना के प्रथम वर्ष में ही इन मेधावी छात्रों के उद्योग से प्रभावित होकर राजा रामपाल सिंह, महामना मदन मोहन मालवीय, कंकरोली नरेश, सर्वश्री बालकृष्ण लाल, अम्बिकाप्रसाद व्यास, बद्रीनारायण चौधरी "प्रेमघन", श्रीधर पाठक, तथा डा० ग्रियर्सन आदि जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने इस सभा का सदस्य होना स्वीकार किया। सभा ने अपने शैशव काल में ही नागरी लिपि और हिन्दी भाषा को सरकारी न्यायालयों में स्थान दिलाने का आन्दोलन खड़ा किया और महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय के सक्रिय सहयोग से १६०० में तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के सरकारी कार्यालयों और न्यायालयों में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि स्वीकृति हुई। इस कार्य के सम्पादन में जो प्रयत्न सभा के सदस्यों ने किया, वह अध्यवसाय, लगन, उत्साह और राष्ट्रभाषा-प्रेम का अनुकरणीय आदर्श है।

हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए सभा ने दूसरा कार्य हिन्दी पुस्तकों की खोज का किया। सभा के कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर १८६४ में ही गया और उन्होंने देश की अन्य संस्थाओं तथा व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करके कई सहस्र पुस्तकें एकत्र कीं। इनमें अनेक नवीन पुस्तकें भी थीं जो हस्तलिखित रूप में उपेक्षित पड़ी थीं। बाद में खोज सम्बन्धी कार्य के लिए सभा को संयुक्त प्रान्त की सरकार से भी आर्थिक सहायता मिली और १६०० में बा० श्यामसुन्दर दास के मन्त्रित्व में एक समिति बना दी गयी। इस समिति के तत्वावधान में ८ वर्ष तक खोज सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रकाशित होता रहा जिसमें हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण रहता था।

हिन्दी पुस्तकों के संग्रह के लिए इस सभा द्वारा आर्य-भाषा पुस्तकालय की स्थापना किया जाना एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस समय भारतवर्ष में हिन्दी पुस्तकों का इतना समृद्ध पुस्तकालय दूसरा नहीं है। इसमें लगभग चालीस हजार पुस्तकें हैं। खोज सम्बन्धी कार्य के लिए प्रति वर्ष सैकड़ों अनुसन्धानकर्ता यहाँ आते हैं।

सभा के प्रकाशन चार कोटि के हैं। 'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष' सभा का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन 'हिन्दी शब्द सागर' है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया। तीसरा हस्तलिखित तथा दुर्लभ पुस्तकों का प्रकाशन है जो साहित्य की अभिवृद्धि में अमित योग देता है। चौथा प्रकाशन मौलिक पुस्तकों का है जिसमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, श्यामसुन्दर दास आदि विद्वानों की पुस्तकें निकली हैं। सभा के तत्वावधान में दो ग्रन्थमालाएँ चल रही हैं। इन मालाओं में इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है।

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' सभा का प्रमुख-पत्र है जिसमें गम्भीर विषयों पर अनुसन्धान तथा विवेचनापूर्ण शैली के निबन्ध तथा लेख छपते हैं। यह पत्रिका आर्थिक घाटा सहती हुई भी विगत पचपन वर्ष से साहित्य की अभिवृद्धि में योग दे रही है।

सभा द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य का देशव्यापी प्रचार तथा नवयुवकों में हिन्दी

के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का जो कार्य प्रारम्भिक पच्चीस-तीस वर्षों में सम्पन्न हुआ, वह इस देश की अन्य कोई संस्था नहीं कर सकी। इस सभा की सेवा करने वाले व्यक्तियों में एक ओर जहाँ भारतेन्दु युग से प्रभावित सर्वश्री राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी आदि थे, वहाँ द्विवेदी युग के प्रतिष्ठित लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मिश्रबन्धु, भगवानदीन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मदन मोहन मालवीय, गिरधर शर्मा आदि विद्वानों ने सभा की पूर्ण मनोयोग से सेवा की।

सभा ने ऐसे समय कार्य आरम्भ किया था जब हिन्दी के प्रचार के लिए वातावरण अनुकूल नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-प्रचार का अर्थ अधिकारियों से संघर्ष और विपरीत परिस्थितियों से जूझना था। उस समय प्रोत्साहन के पूर्ण अभाव में भी नागरी प्रचारिणी सभा साहित्य-सेवा और प्रचार का कार्य तत्परता से करती रही और इसकी सेवाओं का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल और प्रशंसनीय रहा है।

मैंने कई बार पहले भी कहा है, जहाँ अहिन्दी भाषा-भाषियों का यह कर्तव्य है कि वे राष्ट्रीय कार्य के लिए हिन्दी सीखें, वहाँ हिन्दी-भाषियों पर भी कम से कम एक प्रादेशिक भाषा सीखने का दायित्व आता है। इससे केवल अदला-बदली की भावना से अभिप्राय नहीं। ऐसा करने से ही हिन्दी तथा दूसरी भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के निकट आ सकती हैं। इन भाषाओं और हिन्दी के बीच प्रतिस्पर्धा न पहले थी और न अब है।

हिन्दी के लिए यह अवश्य ही गौरव का विषय है कि उसे भारतीय संविधान ने अखिल भारतीय भाषा का स्थान दिया है। इससे हिन्दी-भाषियों और हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली सभी संस्थाओं का दायित्व बहुत बढ़ गया है। संविधान में हिन्दी को यह ऊँचा स्थान दिये जाने का विशेष कारण यह था कि इसके जानने और बोलने वालों की संख्या भारत की दूसरी भाषाओं के जानने वालों से कहीं अधिक है। उन भाषाओं का भी अपना गौरवपूर्ण साहित्य है और उनके बोलने वाले अपनी भाषाओं के साथ प्रेम रखते हैं और उन पर गौरव करते हैं। इसलिए सभी ने हिन्दी को जब यह स्थान दिया है, तो यह समझ कर नहीं कि उनकी अपनी भाषा किसी बात में कम है पर यह समझकर कि राष्ट्रीय काम के लिए हिन्दी का ही प्रचार और प्रसार सुगम और सुलभ होगा। हिन्दी को अखिल भारतीय कामों के लिए प्रधानता देते हुए प्रादेशिक भाषाओं को वहाँ के कामों के लिए प्रधानता दी गयी है। इसलिए यह अनिवार्य है कि जहाँ हिन्दी का प्रचार हो, वहाँ प्रादेशिक कामों के लिए स्थानीय भाषाओं को भी प्रोत्साहन दिया जाये और वे अपने सीमित क्षेत्र में अपना काम सुचारु रूप से करें। शायद यह कहना भी अनुचित न होगा कि हिन्दी-भाषी राज्यों में तो हिन्दी का वही स्थान होगा जो किसी भी प्रादेशिक भाषा का उसके अपने राज्य में, पर अन्य भाषा-भाषी राज्यों में सीमित काम और अखिल भारतीय क्षेत्र में प्रायः सभी काम हिन्दी द्वारा ही किये जाएँगे।

हिन्दी-भाषियों का प्रयत्न यह होना चाहिए कि अहिन्दी-भाषियों ने जिस सद्भावना से हिन्दी को राष्ट्रीय कामों के लिए स्थान दिया है, उसी सद्भावना के साथ वे हिन्दी के

प्रचार में तत्पर हों। हिन्दी की किसी भी प्रादेशिक भाषा से होड़ नहीं है। सच पूछिये तो हिन्दी-भाषियों को अन्य प्रादेशिक भाषाओं का पोषक और समर्थक होना चाहिए जिस प्रकार अहिन्दी-भाषी हिन्दी के पोषक और समर्थक होना चाहते हैं। हिन्दी-भाषियों के व्यवहार और आचरण से यदि कहीं भूल से भी यह आभासित हुआ कि हिन्दी अन्य सभी भाषाओं से अधिक समृद्ध, अधिक परिपुष्ट साहित्यवाली या प्राचीन तथा नवीन विचारों और भावों को व्यक्त करने में अधिक शक्तिशाली भाषा है और इसलिए इसको अधिकार है कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कामों के लिए यह राष्ट्रभाषा मानी जाये, तो इसका फल यह होगा कि अन्य भाषा-भाषी हिन्दी के प्रति ईर्ष्या करने लगेंगे और जो संविधान चाहता है, वह काम पूरा नहीं हो सकेगा और हिन्दी उस स्थान को प्राप्त नहीं कर सकेगी जो संविधान ने उसे देने का निश्चय किया है। दूसरे शब्दों में हमें हिन्दी का प्रचार नम्रतापूर्वक करना चाहिए।

मुझे यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है इस दिशा में नागरी प्रचारिणी सभा का दृष्टिकोण सदा से व्यापक और उदार रहा है। सभा के पदाधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं ने सदा ही अन्य भारतीय भाषाओं का समुचित आदर किया है। यह सभा की परम्पराओं के अनुकूल ही है कि हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में जो प्रकाशन की योजना बनायी गयी है, उसमें अन्य भारतीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति के सिंहावलोकन को भी स्थान दिया गया है।

हिन्दी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने शब्दों का उनके भिन्न देश अथवा भाषा में उद्गम होने के कारण बहिष्कार नहीं किया और सच पूछिये तो सभी जीती-जागती भाषाओं का यह एक गुण है कि वे अपने शब्द-भण्डार को बढ़ाने में हिचकतीं नहीं चाहे शब्द किसी भी उद्गम के हों। उन पर अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता क्योंकि सभी जीती-जागती भाषाओं में आदान-प्रदान होता ही रहता है। इसलिए जब हम हिन्दी को भारत के लिए एक सार्वभौम भाषा बनाना चाहते हैं तो प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों और मुहावरों के लिए भी द्वार खुला रखना चाहिए। मैंने ऐसे कई लोगों के लेख देखे हैं जो हिन्दी-भाषी नहीं हैं और जिन्होंने हिन्दी का अभ्यास राष्ट्रीय कामों के लिए ही किया है। उनके लेखों में कुछ ऐसे शब्द और मुहावरे देखने में आये हैं जो अर्थ तो स्पष्ट कर देते हैं पर आधुनिक हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं। अन्य भाषा-भाषी ऐसे शब्दों और मुहावरों को अक्सर व्यवहार में लाया करेंगे और हम हिन्दी-भाषियों को उनका स्वागत करना चाहिए न कि बहिष्कार। हिन्दी सच्चे अर्थ में राष्ट्रभाषा तभी होगी जब भारत के सभी निवासी इसके साथ प्रेम करने लगेंगे और इसकी उन्नति में अपना गौरव मानने लगेंगे। यह भावना तभी उत्पन्न और परिपुष्ट हो सकती है जब वे यह समझने लगें कि हिन्दी में कुछ उनकी भी अपनी देन है और हिन्दी पर उनका भी कुछ अधिकार है। मैं समझता हूँ कि हमें इस भावना का स्वागत करना चाहिए और इससे डरना नहीं चाहिए। मैं तो यह भी मानता हूँ कि कहीं-कहीं हमारे व्याकरण पर भी अहिन्दी-भाषियों का प्रभाव पड़ेगा और हमको उससे भी नहीं डरना चाहिए।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि हिन्दी-भाषी और हिन्दी संस्थाएँ निस्पृह भाव से हिन्दी

की श्रीवृद्धि में लग जायें जिससे अन्य भाषा-भाषी भी उसके विभिन्न प्रकार के साहित्य से परिचय पाने के लिए उसे सीखना आवश्यक समझें जिस प्रकार आज कोई भी विद्वान् आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त करने के लिए यूरोपीय भाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक समझता है। यदि केवल काव्य अथवा ललित कला सम्बन्धी ग्रन्थ ही यूरोपीय भाषाओं में होते तो हमको उन भाषाओं को सीखने की शायद आवश्यकता भी न होती, पर विज्ञान से परिचय प्राप्त करने के लिए उन भाषाओं का जानना अनिवार्य हो गया है। उसी प्रकार हिन्दी भी इतनी समृद्ध होनी चाहिए कि आधुनिक विद्याओं को प्राप्त करने के लिए उसका जानना केवल पर्याप्त ही नहीं, आवश्यक भी हो जाये तथा इस भाषा में मौलिक ग्रन्थ भी लिखे जायें जिनको पढ़ने के लिए अहिन्दी-भाषियों के लिए हिन्दी सीखना आवश्यक हो जाये। जितनी बड़ी संख्या हिन्दी जानने वालों की है, उतनी बड़ी संख्या संसार की दो-तीन भाषाओं के बोलने वालों की है। इसलिए यदि इतने लोगों में यह भावना उत्पन्न हो जाये कि वे हिन्दी को संसार की भाषाओं में वही स्थान उपलब्ध कराना चाहते हैं जो किसी भी भाषा को प्राप्त है और हिन्दी-भाषी उस उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की विद्याओं की प्राप्ति के लिए लग जायें और हिन्दी में विभिन्न विषयों पर मौलिक ग्रन्थ लिखने लग जायें तो केवल भारतवर्ष के ही अहिन्दी-भाषी नहीं, समस्त संसार के अहिन्दी-भाषी हिन्दी सीखनी आवश्यक समझेंगे। पर यदि हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य का निर्माण नहीं हुआ, तो विदेशों की कौन कहे, इस देश में भी सब लोगों की दृष्टि में हिन्दी को वह ऊँचा स्थान नहीं मिल सकेगा चाहे संविधान के कारण सार्वदेशिक कामों में उसका उपयोग होने भी लग जाये। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस ऊँचे आदर्श को सामने रखकर हिन्दी-भाषी हिन्दी का भण्डार भरपूर करने में लग जायें और हिन्दी में तेजी के साथ और उच्च कोटि की जितनी पुस्तकें लिखी जाएँगी, उतनी ही उसकी प्रतिष्ठा और सर्वमान्यता बढ़ती जाएगी।

हिन्दी साहित्य के बहुतेरे ग्रन्थ लुप्त होते जा रहे हैं। प्रचलित ग्रन्थों के भी अधिकारयुक्त शुद्ध संस्करण सदा नहीं मिलते। आपने ऐसे ग्रन्थों के शुद्ध संस्करण के प्रकाशन में बहुत काम किया है पर अभी भी बहुत काम शेष है। मैं चाहूँगा कि इसके अतिरिक्त आधुनिक ढंग की पुस्तकें या ऐसी पुस्तकें भी लिखी जायें जो अपने-अपने विषय में प्रामाणिक समझी जा सकें। विभिन्न विषयों के ज्ञाता और लेखक जो यहाँ उपस्थित हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि अपने मौलिक विचारों को वे यथासाध्य हिन्दी में ही प्रकाशित किया करें। और यदि प्रचारार्थ वे यह आवश्यक समझें कि उनका अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित होना आवश्यक है, तो वे उनका अनुवाद भी प्रकाशित करें। अन्य भाषाओं में किसी भी विषय पर जो मौलिक ग्रन्थ निकलते हैं, उनमें से भी चुनकर अच्छे से अच्छे मौलिक ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित होना चाहिए। अंग्रेजी साहित्य का भण्डार बहुत भरपूर है; तो भी किसी भी यूरोपीय भाषा में शायद ही कोई ऐसा मौलिक ग्रन्थ हो जिसका कुछ ही महीनों में अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित न हुआ हो। इस तरह अंग्रेजी-भाषियों के लिए किसी दूसरी भाषा को जानना अनिवार्य नहीं है। पर वे अपने ज्ञान को और विस्तृत करने के लिए अन्य भाषाओं को भी सीखते हैं। उसी प्रकार हिन्दी का स्थान

भी ऐसा हो जाना चाहिए कि केवल हिन्दी जान कर ही हम संसार के विचारों से और गति-विधि से पूरी तरह परिचित हो सकें और इस परिचय-प्राप्ति के लिए हिन्दी में सभी ग्रन्थ भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुलभ हो जाने चाहिएँ। नागरी प्रचारिणी सभा ने आज तक हिन्दी की जिस प्रकार से सेवा की है, उससे ऐसी आशा करना कि वह इस प्रकार के साहित्य-सृजन में महत्त्वपूर्ण काम करेगी स्वाभाविक है और मैं चाहूंगा कि विद्वान् तत्परता के साथ इस काम में लग जायें। संविधान ने हिन्दी के सम्बन्ध में केन्द्रीय और राज्य सरकारों पर जो भार डाला है, सरकार उसे निभाएगी। विद्वानों का काम इस झगड़े में पड़ना नहीं है। जो लोग राजनीतिक क्षेत्र में काम कर रहे हैं वे जब जैसी आवश्यकता होगी, सरकार के साथ मिलजुल कर अथवा दबाव डालकर हिन्दी के लिए जो कुछ भी आवश्यक होगा, करते और कराते रहेंगे। इसलिए एक प्रकार से हिन्दी प्रेमियों को अपने कामों का बँटवारा कर लेना चाहिए। साहित्यिक लोगों के कामों में राजनीतिक लोगों का हस्तक्षेप बेकार ही नहीं, हानिकर भी हो सकता है पर उनकी सहायता और सहानुभूति तो आवश्यक है ही।

आपने कई प्रकार के काम अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि आप उनमें सफल हों। दो विषयों के सम्बन्ध में मैं आपको सूचना देना चाहता हूं। आपने शब्दसागर के नये संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिन्दी और हिन्दी-भिन्न संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिन्दी भाषा भी अपने को इस प्रगति से वंचित नहीं रख सकती। इसलिए शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिम्बित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थी के लिए भी साधारणतः पर्याप्त हो। आपका यह भी निश्चय है कि प्राचीन ग्रन्थों के संशोधित संस्करण प्रकाशित किये जायें। मैं आपके निश्चयों का, विशेषकर इन दो का स्वागत करता हूं। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपये की सहायता जो पांच वर्षों में बीस-बीस हजार करके दी जाएगी, देने का निश्चय हुआ है। इसी प्रकार मौलिक प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए पचीस हजार रुपये की पांच वर्षों में पांच-पांच हजार करके, सहायता दी जाएगी। मैं आशा करता हूं कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।

सम्प्रति सभा के सामने प्रमुख कार्य ये हैं :—

क. प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दकोष।

ख. विश्वविद्यालयों के उपयुक्त उच्च कोटि के साहित्य का सृजन।

ग. खोज द्वारा प्राचीन पुस्तकों को प्राप्त करके प्रकाशित करना।

घ. प्रादेशिक भाषाओं के गम्भीर साहित्य को हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित करना।

ङ. एक-एक अनुसन्धान-विभाग स्थापित करके साहित्य, राजनीति, इतिहास आदि के ग्रन्थों का पुनरुद्धार और विभिन्न स्थानों पर जो शोध कार्य हो रहा है, उसका केन्द्रीकरण और समन्वय।

ख. लिपि-सुधार के लिए जो समिति बनी है उसके सुझावों को दृष्टि में रखकर नागरी लिपि को सुव्यवस्थित करने का कार्य नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा करना।

मुद्रण तथा टंकण की आवश्यकताओं को देखते हुए नागरी लिपि में सुधार की ओर जनता और सरकार, दोनों का ध्यान गया है। मुझे खेद है कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पन्न होने में विलम्ब हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि केन्द्रीय तथा उत्तर प्रदेशीय सरकारों के प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी लिपि में जो त्रुटियाँ हैं, उनको यथाशीघ्र दूर कर दिया जाएगा। इस प्रश्न का विस्तृत रूप से विचार करने का विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से विचार-विमर्श कर लेने का यह फल अवश्य होगा कि संशोधित लिपि सर्वसम्मति से निश्चित हो सकेगी और वह सभी को मान्य होगी। मेरा विचार है कि अन्य भारतीय भाषाओं के बोलने वाले भी इन सुधारों से लाभ उठा सकेंगे।

हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर नागरी प्रचारिणी सभा को मैं हृदय से बधाई देता हूँ। किसी भी सार्वजनिक संस्था के लिए साठ वर्ष का व्यस्त तथा सचेष्ट जीवन गौरवपूर्ण समझना चाहिए। आपकी संस्था ने इस साठ वर्ष की अवधि में बहुत उथल-पुथल देखी है। यद्यपि आपकी संस्था पूर्ण रूप से साहित्यिक है, फिर भी इसकी कार्यप्रणाली पर देश की राजनीति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी यदि आप भाषा-प्रचार और अनुसन्धान का कार्य सुचारु रूप से कर सके, इसका प्रमुख कारण सभा के कार्यकर्त्ताओं का भाषा-प्रेम और साहित्य के प्रति अनुराग ही कहा जा सकता है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि हिन्दी भाषा के विकास तथा निर्माण में आपकी सभा ने गौरव-पूर्ण भाग लिया है। मुझे पूरी आशा है कि अब परिस्थितियों के अनुकूल हो जाने पर, जब कि हिन्दी प्रचार कार्य राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य बन गया है, नागरी प्रचारिणी सभा और भी उत्साह के साथ कार्य कर सकेगी।

हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है, परन्तु उसे अभी जनता द्वारा पालन-पोषण और साहित्यिकों द्वारा सेवा की अपेक्षा है। मैं आशा करता हूँ कि नागरी प्रचारिणी सभा तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं की चेष्टा से हिन्दी भाषा और साहित्य का भण्डार शीघ्र ही बहुत विपुल तथा व्यापक हो सकेगा जैसा कि इस महान् तथा प्राचीन देश की राष्ट्रभाषा का होना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता और हिन्दी

इस द्वीप में भी लोग राष्ट्रभाषा के प्रचार के महान् राष्ट्रीय कार्य में संलग्न हैं। आप जानते हैं कि भारतीय संविधान में हिन्दी को यह स्थान दिया गया है कि देश के सारे काम, जिनका सम्बन्ध सारे देश के साथ होगा, हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में हुआ करेंगे। इसके लिए १५ वर्ष का समय रखा गया है। इसलिए जहाँ-जहाँ हिन्दी का प्रचार कम अथवा नहीं है, वहाँ उसका प्रचार किया जाये और जो लोग हिन्दी नहीं जानते वे, हिन्दी तथा नागरी लिपि सीख लें जिससे १५ वर्षों के बाद सारा सरकारी कामकाज हिन्दी में किया जा सके। इसी दृष्टि से हमारा संविधान लागू होते ही जनवरी, १९५० से आपकी इस संस्था ने भी इस काम को आरम्भ किया। शिक्षकों की नियुक्ति करके हिन्दी सीखने के इच्छुक व्यक्तियों को हिन्दी सिखाने का काम आपने अपने ऊपर लिया, यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है। मैं आशा करता हूँ कि इसका यहाँ प्रसार होगा और १०-१२ वर्षों का समय तो बहुत होता है, उसके पहले ही यहाँ के सभी लोग हिन्दी सीख चुकेंगे।

मैंने सुना था और अब उसे देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि यहाँ के सभी लोग हिन्दी बोलते और समझते हैं। जितने लोगों से मेरी भेंट हुई है, चाहे वे भारतवर्ष के किसी भी भाग से हो क्यों न आये हों और जिनकी भाषा कोई दूसरी ही क्यों न रही हो, वे सब के सब हिन्दी बोलते और समझते हैं। हिन्दी लिखने में शायद कुछ ही लोगों को कठिनाई का अनुभव हो। नागरी लिपि बहुत सरल है, उसको सीख लेना कोई कठिन काम नहीं है। भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में नागरी वर्णमाला ही प्रचलित है। बंगला, मराठी, गुजराती तथा दक्षिण की तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि सभी भाषाओं की एक-सी वर्णमाला है। उनके लिखने की विधि अलग-अलग है, परन्तु अक्षर एक ही हैं। उदाहरण के लिए 'क' सभी में है। लिखने की विधि में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य है। जिन लोगों को इनमें से किसी की भी वर्णमाला से परिचय होगा, उनको हिन्दी की वर्णमाला से परिचय है ही। केवल लिखने में जो थोड़ा-बहुत भेद है, उसी को सीखना है। इसलिए मैं समझता हूँ कि यहाँ हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचार का काम सुगम है और आप सरलता से पूरा कर सकते हैं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (पोर्ट ब्लेयर) के पारितोषिक-वितरण समारोह में भाषण, १० मार्च, १९५४

हिन्दी-प्रचार के काम से मेरा प्रायः ३६-३७ वर्षों से गहरा सम्बन्ध रहा है। १९१८ से जब महात्मा गान्धी ने मद्रास जैसे स्थानों में जहाँ के लोग हिन्दी से बिलकुल अपरिचित थे और जिनकी अपनी ही दूसरी भाषाएँ थीं, हिन्दी के प्रचार का काम प्रारम्भ किया, मेरा किसी न किसी रूप में इस काम के साथ सम्पर्क रहा। आपको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि ऐसे राज्यों में भी जहाँ की भाषा हिन्दी से बिलकुल भिन्न है, विशेषकर दक्षिण के राज्यों में, हिन्दी का प्रचार खूब ज़ोरों से हुआ और अभी भी हो रहा है। आज जिन लोगों को पुरस्कार प्राप्त हुए हैं, उसमें ध्यान देने की बात यह है कि एक ही साथ परीक्षा में पास होने के कारण पति और पत्नी, दोनों को प्रमाणपत्र दिये गये। आप लोगों के लिए शायद यह नयी बात हो सकती है किन्तु मेरे लिए नहीं क्योंकि दक्षिण भारत में मैंने एक-साथ तीन पीढ़ियों के व्यक्तियों को—दादा, बाप बेटे को अथवा दादी, माँ और पुत्री को—प्रमाणपत्र बाँटे हैं। आपको यह जानकर और भी प्रसन्नता होगी और मैं समझता हूँ कि आप लोगों को भी कुछ इसी प्रकार का अनुभव हुआ होगा कि जहाँ लड़कियों तथा लड़कों, दोनों ने एक-साथ हिन्दी सीखना आरम्भ किया, वहाँ लड़कियों ने हिन्दी अधिक तीव्रता से सीखी और वे तेज़ निकलीं तथा परीक्षा में भी लड़कों से आगे रहीं। यहाँ भी पत्नी ने पति के साथ-साथ परीक्षा पास की तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में जब भी दूसरी परीक्षा होगी, तो पत्नी पति से आगे बढ़ जाएगी। यदि हमारे घर की स्त्रियाँ हिन्दी लिखना और बोलना सीख लें, तो उससे काम सरल हो जाता है क्योंकि बच्चे तो माँ की गोद में ही रहेंगे और माँ उनको कुछ न कुछ सिखला सकेगी। इसलिए मैं समझता हूँ कि स्त्रियों में इसका प्रचार काफी होना चाहिए और ऐसा हुआ तो सभी को प्रचार का कम काम करना पड़ेगा। हमारे मुख्य आयुक्त की धर्मपत्नी ने भी जो आपकी सभा की मन्त्रिणी हैं और जिनको हिन्दी सीखने की क्या आवश्यकता थी, हिन्दी सीखी है और उन्होंने मुझ से भी हिन्दी में बातें कीं। यह सब आप अपनी आँखों से देख सकते हैं कि जिन लोगों ने अपने घर में किसी स्त्री को हिन्दी सिखा दी, उनके बच्चे हिन्दी सरलता से सीख सकते हैं। इसलिए मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि पति-पत्नी दोनों ने एक-साथ परीक्षा पास की है।

मुझे एक और बात से भी प्रसन्नता हुई है। जब से मैं यहाँ आया हूँ मैंने देखा है कि यद्यपि यहाँ सब राज्यों से लोग आये हैं जो वहाँ एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु यहाँ वे इस प्रकार हिलमिल गये हैं कि उनमें परस्पर भेद नहीं रह गया है। शादी-विवाह भी आपस में ही हो जाता है और बोलचाल, रहन-सहन, खानपान सब एक-सा होता जा रहा है। नाम पुराने चले आ रहे हैं, इसलिए नाम से मालूम हो जाता है कि कौन किस राज्य का है। जिन परीक्षार्थियों ने परीक्षा पास की है और अभी जिनको मैंने प्रमाणपत्र दिये हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे प्रदेश के ही थे जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। मुझे यह देखकर और भी प्रसन्नता हुई कि सबसे पहला पुरस्कार एक महिला ने प्राप्त किया। सचमुच आप यहाँ ऐसी स्थिति पैदा कर रहे हैं जिसमें, जैसा हम चाहते हैं, सब मिलजुल कर रहेंगे। इस प्रकार का मेलजोल स्थापित करने में राष्ट्रभाषा का बहुत महत्त्व है। मैं आशा करता हूँ कि आपका राष्ट्रभाषा-प्रचार का काम तेज़ी से चलेगा और जिन लोगों को अक्षर-ज्ञान

प्राप्त करना है, वे उसे सीखने में विलम्ब नहीं करेंगे क्योंकि भविष्य में थोड़े ही दिनों बाद हमारा सब काम हिन्दी में ही होने लगेगा। मैं समझता हूँ कि इस सम्बन्ध में आप अन्य प्रदेशों से आगे बढ़े हुए हैं क्योंकि आप हिन्दी भाषा जानते हैं और नागरी लिपि सीख लेने पर आपको हिन्दी का पूर्ण ज्ञान हो जाएगा। मैं आशा करता हूँ कि जब हमारे संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्रलिपि मान ली तो आप इसको उत्साह के साथ सीखेंगे जिससे जब सरकार का काम हिन्दी भाषा में होने लगे तो आप योग्यता के साथ कर सकें।

यहाँ पर आपने बच्चों को भूगोल सिखाने के लिए पुस्तक लिखने का निश्चय किया और उस निश्चय के अनुसार पुस्तक तैयार भी कर ली। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पुस्तक छपने जा रही है और यहाँ के बच्चों को यहाँ का भूगोल सीखने का अच्छा अवसर मिलेगा। सच पूछिये तो यहाँ के सम्बन्ध में इस प्रकार का ज्ञान केवल यहाँ के लोगों को ही नहीं, भारतवर्ष के अन्य भागों के लोगों को भी कम है। आशा है, आपकी पुस्तक से बच्चों को यहाँ का भूगोल सीखने में सुविधा होगी और दूसरे लोगों को भी यहाँ के भूगोल का ज्ञान हो जाएगा।

शास्त्रीय संगीत की महान् परम्परा

इस संगीत महोत्सव में सम्मिलित होकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। संगीत नाटक अकादेमी द्वारा आयोजित इस संगीत महोत्सव में आपने मुझे निमन्त्रित किया, इसके लिए मैं आप सबका आभारी हूँ। सौभाग्य से पिछले साल जब संगीत नाटक अकादेमी की स्थापना हुई, उस समय भी मैं आप लोगों के बीच था और आपने इस संस्था का उद्घाटन करने का श्रेय मुझे दिया था।

हमारे जीवन में संगीत का व्यापक स्थान है। भारतवासियों को अपने प्राचीन युग से अथवा अपने पूर्वजों से शास्त्रीय संगीत के रूप में एक बहुमूल्य निधि मिली है। हमारे पूर्वजों की दृष्टि में संगीत का ध्येय आध्यात्मिक साधना था और उन्होंने संगीत का इसी आदर्श के अनुकूल विकास किया। हम कह सकते हैं कि हमारे देश में यह कला पूर्णता के शिखर पर पहुँच चुकी थी।

संगीत के ध्येय के सम्बन्ध में आज हमारे विचार चाहे कुछ भी हों, यह सभी स्वीकार

संगीत नाटक अकादेमी द्वारा आयोजित संगीत महोत्सव (नयी दिल्ली) के अवसर पर भाषण
३१ मार्च, १९५४

करेंगे कि इसमें सामंजस्य की ओर ले जाने वाली और व्यक्त जगत् से ऐक्य का आभास कराने वाली शक्ति निहित है। संगीत से वातावरण में ही नहीं बल्कि श्रोताओं और गायकों के मन में भी सामंजस्य की उत्पत्ति होती है। संगीत के उच्च ध्येय और व्यापक प्रभाव के कारण ही प्राचीनकाल में भारतवासियों ने संगीत को जनसाधारण के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में ऊँचा स्थान दिया था। शायद ही कोई ऐसा भारतीय त्यौहार या उत्सव हो जिसमें संगीत का आयोजन न होता हो। संगीत जन्म से मृत्यु पर्यन्त हमारे साथ रहता है। हमारे सभी रीति-रिवाजों में इसका कुछ न कुछ स्थान है। शताब्दियों से हम संगीत के प्रशंसक तथा उपासक रहे हैं और हमने इसकी गणना सदा मानव की उच्चतम साधनाओं में की है।

काल के प्रभाव से हम लोगों की रुचि में काफी परिवर्तन हुआ, परन्तु शास्त्रीय संगीत उसी प्रकार बना रहा और उसमें कोई विशेष और मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। मुसलमान बादशाहों और अमीर-उमरों के द्वारा संगीत को केवल प्रोत्साहन ही नहीं मिला, इसमें समयानुकूल हेर-फेर भी हुए और आज विशेषकर उत्तर भारत के संगीत ने उसी युग से प्रभावित और बहुत अंशों में अनुप्राणित होकर अपना नया रूप ग्रहण कर लिया है। पर जो भी हेर-फेर हुए, वे हैं ऊपरी पोशाक मात्र ही। भारतीय संगीत शरीर और आत्मा से अभी भी वही प्राचीन शास्त्रीय संगीत बना हुआ है। ऐसी आशा की जाती है कि इसमें अभी भी इतनी शक्ति है कि यह अपने को एक बार फिर आधुनिक वातावरण के अनुकूल बना लेगा।

प्राचीन संगीत-कला भारतीय रजवाड़ों के दरबारों में उनके आश्रय से पनपती रही। यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय नरेशों द्वारा दिये गये प्रश्रय के कारण संगीत लुप्त होने से बच गया, परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि इन वर्षों में भारत की जनता का शास्त्रीय संगीत से बहुत कम सम्पर्क रहा। अतः जनता और हमारे परम्परागत सर्वश्रेष्ठ संगीत के बीच एक खाई पैदा हो गयी। यदि हमें संगीत को जीवित रखना है और सहस्रों वर्ष पुरानी इस अमूल्य परम्परा की रक्षा करनी है तो हमें इस खाई को पाटना होगा। यदि यह आवश्यक हो तो शास्त्रीय संगीत में ऐसे संशोधन करने में कोई बुराई नहीं जिनके फलस्वरूप यह लोकप्रिय बन सके। इसके साथ ही जनसाधारण को भी शिक्षित करने की आवश्यकता है जिससे उनकी रुचि अधिक परिष्कृत हो सके और वे शास्त्रीय संगीत का आनन्द उठा सकें।

भारत गणराज्य में नरेशों अथवा रजवाड़ों का वह स्थान नहीं रह गया, जो पहले था। इसलिए यह आवश्यक है कि संगीत-कला को जनता अथवा लोकप्रिय सरकार का प्रश्रय प्राप्त हो। यह भी एक कारण था जिसके आधार पर भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने संगीत नाटक अकादेमी की स्थापना की। इस अकादेमी की संरक्षकता में ही संगीत सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना और प्रोत्साहन की सूचना पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं आशा करता हूं कि सभी राज्यों में अकादेमी की शाखाएँ अथवा इस प्रकार की दूसरी संस्थाएं स्थापित हो जाएँगी और संगीत को यथेष्ट प्रोत्साहन प्राप्त होने लगेगा। आज के

जनतन्त्रवाद के युग में प्रत्येक शुभ कार्य के लिए जनसाधारण का समर्थन तथा सहायता अपेक्षित है। यदि संगीत, सामन्तों अथवा कुछ इने-गिने वर्गों तक ही सीमित रहा, तो समझ लेना चाहिए कि उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं।

मेरा विश्वास है कि संगीत नाटक अकादेमी के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय संगीत संकुचित वातावरण से निकलकर उन्मुक्त वातावरण में आ सकेगा और साधारण जनजीवन से मिलकर और भी समृद्ध हो सकेगा। हमारा शास्त्रीय संगीत वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आश्रित है और उसमें मानव को ऊपर उठाने की शक्ति है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि वह शीघ्र ही लोकप्रिय बन जाएगा। इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन जाने के साथ-साथ हमारी एक अमूल्य राष्ट्रीय परम्परा की भी रक्षा हो सकेगी।

मेरी हार्दिक कामना है कि संगीत नाटक अकादेमी अपने प्रयत्नों में सफल हो। मैं उन सभी संगीतज्ञों तथा गायकों को बधाई देता हूँ जिन्हें आज पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

सोलहवीं शताब्दी के राष्ट्रीय कवि—रहीम

आधुनिक युग में जिन गुणों के आधार पर हम किसी भी कवि, लेखक अथवा कलाकार को राष्ट्रीय कवि कहते हैं, वे सभी गुण हमें अब्दुर्रहीम खानखाना में मिलते हैं। मेरे विचार से यदि हम रहीम की गणना सोलहवीं शताब्दी के राष्ट्रीय कवियों में करें तो इससे सभी सहमत होंगे। हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए सोलहवीं शताब्दी का विशेष महत्त्व है। उसी शताब्दी में सूरदास और तुलसीदास जैसे महाकवियों ने अपनी कविता द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की।

हिन्दी के लिए वह संक्रमण काल था। कई शतियों के अनिश्चित जीवन के बाद लोगों को अकबर के राज्य में शान्ति मिल सकी। अकबर की सहिष्णुता और कला तथा साहित्य को प्रोत्साहन देने की नीति के कारण हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। अभी तक कविता का सृजन एक विशेष उद्देश्य से होता था। प्रारम्भिक काल की कविताएँ अधिकतर वीर रस की होती थीं। उसके बाद परिस्थितियों के बदलते ही कविता का झुकाव भक्ति की ओर हुआ। लोग राम और कृष्ण की आराधना में सुख का अनुभव करने लगे और प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच सन्तोष तथा सामंजस्य प्राप्त करने में सफल हुए।

संसदीय हिन्दी परिषद् द्वारा आयोजित रहीम समारोह (नयी दिल्ली) में भाषण, ८ अप्रैल, १९५४

अकबर के काल में ज्यों ही परिस्थितियां अनुकूल होने लगीं, सन्तोष और सामंजस्य के अतिरिक्त कविता मनोरंजन का भी विषय बन गयी। यही कारण है कि उस काल में अनेकों हिन्दी कवि हुए जिनमें हिन्दू और मुसलमान, दोनों हैं।

कई दृष्टियों से रहीम को उस काल की सामाजिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। रहीम अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत के विद्वान् थे। उनकी कविता के कुछ नमूने मात्र देखने से यह पता लगता है कि अवधी और ब्रजभाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। स्वयं एक उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ रहीम विद्वानों और कवियों के प्रश्रयदाता भी थे। कविता के सच्चे ग्राहक होने के नाते कवियों के प्रति रहीम की उदारता इतिहास का विषय बन गयी है। जब कभी वे किसी के मुख से अच्छा छन्द अथवा दोहा सुनते तो मुग्ध हो जाते और उसे मालामाल किये बिना नहीं रहते। कहते हैं कि उन्होंने गंग कवि को केवल एक छन्द पर ३६ लाख रुपया पुरस्कार दिया था। रहीम की स्वाभाविक उदारता से परिचित कवि गंग ने एक दिन नीचे लिखे दोहे में खानखाना से प्रश्न किया :

सीखे कहाँ नवाज जू ऐसी देनी देन,
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे करो, त्यों-त्यों नीचे नैन।

खानखाना ने तुरन्त इसके उत्तर में यह दोहा पढ़ा :

देनदार कोऊ और है भेजत सो दिन-रैन,
लोग भरम हम पर धरें, याते नीचे नैन।

साहित्यिकों का अनुमान है कि उनके समकालीन कवियों में से अधिकांश रहीम से परिचित थे और कई कवि उनकी उदारता के कारण कृतकृत्य भी हुए थे। कुछ भी हो, इस बात में सन्देह की गुंजाइश नहीं कि रहीम के साहित्य-प्रेम और उदात्त भावनाओं के कारण प्रायः सभी कवि उनका आदर करते थे।

अपने जीवनकाल में रहीम ने प्रारब्ध के जो उतार-चढ़ाव देखे, वे कम लोगों को देखने को मिलते हैं। एक ओर वे अकबर जैसे महान् सम्राट के सेनापति और अनेक जागीरों के मालिक रहे और दूसरी ओर जीवन के संध्या-काल में उन्हें कारावास की यातना भी भुगतनी पड़ी और ऐसी निर्धन अवस्था में अपने दिन बिताने पड़े जिसकी कल्पनामात्र से करुणा का स्रोत फूट पड़ता है। प्रायः उनके मानवोचित गुणों, सहृदयता तथा वीरत्व की सच्ची परीक्षा का परिचय हमें इसी काल में मिलता है। रहीम इतने शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति थे कि असाधारण अभाव उनकी प्रतिभा को कुण्ठित नहीं कर सका। उनकी जीवन-धारा बदल गयी, किसी हद तक जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बदल गया, परन्तु वे स्वयं नहीं बदले। उनका कविता-प्रेम और ईश्वर में विश्वास यथापूर्व बना रहा। अपनी दीन-हीन अवस्था की व्यंजना उन्होंने इस प्रकार की है :

तब ही लौं जीवो भलो, दैबौ होय न धीम,
जग में रहिबो कुंचित गति, उन्चित न होय रहीम।

इससे स्पष्ट है कि अपनी दरिद्रता के कारण रहीम को जो दुःख हुआ उसका प्रधान

कारण यह नहीं था कि उन्हें कष्ट सहना पड़ा था और वे ऐश्वर्य का जीवन नहीं बिता सकते थे, बल्कि यह कि अब वे औरों को कुछ दे नहीं सकते थे। इस अवस्था में भी वे यथासम्भव किसी को निराश नहीं करना चाहते थे। जब इस दीन दशा में वे चित्रकूट में रहने लगे तो वहाँ भी उन्हें याचकों ने आ घेरा। उनके अपने पास तो कुछ देने के लिए था नहीं, इसलिए निम्न दोहा लिखकर रहीम ने एक याचक को रींवा नरेश के पास भेज दिया :

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेस,
जा पर विपदा परति है, सो आवत यहि देस।

स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति ने जीवन के दोनों पक्षों को इस गहराई से देखा हो और जिसमें विवेक और विद्वता की कमी न हो, वह निश्चय ही मर्मज्ञ होगा। इसलिए जीवन के किसी भी पहलू का चित्र खींचने के लिए रहीम को कल्पना का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं थी। अपने वास्तविक अनुभव के बल पर ही उन्होंने सब कुछ लिखा। उन्हें जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव था। यही कारण है कि उनके दोहे इतने अधिक लोकप्रिय हुए और आज भी सर्वसाधारण के मुँह पर हैं। उनके दोहों के कुछ नमूने देखिये। प्रत्येक दोहे में मार्मिकता और ठोस अनुभव भरा है :

दीन सबन को लखत हैं, दीनहिं लखे न कोय,
जो रहीम दीनहिं लखे, दीनबन्धु सम होय।
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय,
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पिआसो जाय।
ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी लाहिं
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं।
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान,
कहि रहीम पर-काज हित, सम्पत्ति सुचहिं सुजान।
रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर,
जब नीके दिन आहिहैं, बनत न लागिहिं बेर।

रहीम की हिन्दी रचनाओं में 'बरवै नायिका भेद,' 'रहीम दोहावली' और 'मदनाष्टक' प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उन्होंने फारसी का एक दीवान भी लिखा था और 'वाक्याते-बाबरी' का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया था।

बहुँमुखी प्रतिभा की दृष्टि से रहीम की तुलना हम अमीर खुसरो से ही कर सकते हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस है। इनकी भाषा के पीछे जो भाव हैं, वे एकान्त सत्य होकर सजीव हैं और उनका मानव-जीवन से अटूट सम्बन्ध है। उनकी रचना के पीछे एक ऐसा हृदय है जिसमें अनुभव, अन्तर्दृष्टि और सरसता है।

आज हम उस महान् कवि की स्मृति में यहाँ एकत्र हुए हैं। रहीम की कविता, हिन्दी के प्रति उनके अनुराग और साहित्यिकों के प्रति सद्भावना का स्मरण आते ही हमारा ध्यान मध्य युग में हिन्दी के विकास की ओर बरबस खिंच जाता है। उस समय हिन्दी

काव्य की भाषा तो बन चुकी थी, परन्तु अभी वह मार्ग ही खोज रही थी। इसके साहित्य को रहीम जैसे प्रतिष्ठित और विद्वान् राजसेवी का समर्थन प्राप्त हुआ। वे मुसलमान थे और अपनी साहित्य-पिपासा को शान्त करने के लिए अरबी और फारसी के समृद्ध साहित्य से असीम सामग्री पा सकते थे, किन्तु उन्होंने संस्कृत और हिन्दी सीखी और स्थानीय भाषा में उच्च कोटि की कविता की। अकबर के दरबारी कवियों में रहीम प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त अकबरी दरबार से और भी कई मुसलमान कवियों का सम्बन्ध था। इस प्रकार प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करते ही हिन्दी को धर्म अथवा जाति के भेदभाव बिना सभी वर्गों के भारतीयों का योगदान मिला। जिस भावना से ये कविगण प्रेरित हुए और इन्होंने हिन्दी के भण्डार को भरा, वह भावना आज भी हमारे लिए गौरव का विषय है और हमारी राष्ट्रभाषा की अतुल सम्पत्ति है।

मैं संसदीय हिन्दी परिषद् को इस आयोजन के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप रहीम के सम्बन्ध में हमारी जानकारी में और भी वृद्धि होगी।

फिल्म-निर्माताओं का कर्त्तव्य

आधुनिक युग की एक बड़ी देन यह है कि हम किसी भी चीज़ की बहुत प्रतियाँ बना सकते हैं। प्राचीनकाल में यदि कोई पुस्तक लिखता था तो ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति एक ही होती थी। उसकी यदि प्रतियाँ बनानी हुईं तो दूसरे आदमी को पूरा ग्रन्थ लिखना पड़ता था, जो बहुत ही व्ययसाध्य और श्रमसाध्य काम होता था। आज किसी ग्रन्थ या वस्तु की प्रतियाँ केवल मुद्रणालय में ही नहीं बल्कि अन्य प्रकार से भी बन सकती हैं। एक का अनेक बना देना आज एक खेल-सा हो गया है। यदि किसी अच्छे नाटककार ने मंच पर अच्छा खेल दिखलाया तो उसकी बड़ी ख्याति हुआ करती थी, पर वह नाटककार एक ही स्थान पर अपना खेल दिखला सकता था और यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक ही खेल को यदि वह फिरसे दिखलाना चाहे तो उसे उतनी ही कुशलता से दिखला सकेगा जितनी कुशलता से उसने पहली बार दिखलाया था। आज केवल यही नहीं कि नाटककार के चित्र की प्रतियाँ बहुत बन सकती हैं, बल्कि उसके चलचित्र की प्रतियाँ बनती हैं और साथ-साथ उसकी वाणी भी सुनने में आ सकती है और वह केवल एक स्थान पर ही नहीं बल्कि संसार के एक कोने

सर्वश्रेष्ठ चलचित्रों (फिल्मों) के पुरस्कार-वितरण के अवसर पर भाषण, १० अक्तूबर, १९५४

से दूसरे कोने तक जहाँ चाहें, सभी स्थानों पर और जितनी बार चाहें सुन सकते हैं और देख सकते हैं। इसी का नाम साधारणतः फिल्म हो गया है।

फिल्म में बड़ी शक्ति है। यदि अच्छे पात्र, अच्छे कथानक और अच्छा आदर्श दिखलाया जाये तो उसका प्रभाव बहुत ही अच्छा पड़ता है जैसे किसी भी अच्छे नाटक का। पर वहाँ भी यदि कथानक दूषित हो, पात्र चरित्रवान न हों और गतिविधि उनकी ऐसी हो जो समाज अथवा व्यक्ति को ऊपर उठाने के बदले नीचे ले जाने वाली हो, तो उसका प्रभाव उतना ही बुरा पड़ता है। नाटक तो एक आदमी एक स्थान पर करके उसका भला या बुरा प्रभाव वहाँ बैठे हुए लोगों पर ही डाल सकता है, दूर-दूर के लोगों तक उसका प्रभाव नहीं पहुँच सकता। पर फिल्मों में भला या बुरा करने की शक्ति कई गुनी अधिक हो जाती है। किसी फिल्म की जितनी प्रतियाँ बना ली जाती हैं, उतना ही उसका प्रभाव भी असीमित हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि जिस चीज़ में इतनी शक्ति हो, उसका उपयोग इस प्रकार से किया जाये कि उससे अच्छे से अच्छा फल मिले और उसमें किसी प्रकार की बुराई न आने पाये।

आज सिनेमा का उपयोग तीन कामों में होता है—शिक्षा, मनबहलाव और प्रचार। ये तीनों काम जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं। सिनेमा का उपयोग शिक्षा के काम में जितना बढ़ेगा, उतना ही लाभ हो सकता है, पर शर्त यह है कि कथानक शिक्षाप्रद हो और जो पद्धति अपनायी जाये वह ऐसी हो जिसके द्वारा शिक्षार्थियों को सच्ची शिक्षा मिल सके। जब मैं शिक्षा शब्द का उपयोग करता हूँ, तो मेरे ध्यान में केवल बच्चों की ही शिक्षा नहीं है। सिनेमा द्वारा बच्चों से भी अधिक प्रौढ़ों को शिक्षा देने में सहायता मिल सकती है। शिक्षा का अर्थ केवल अक्षरज्ञान या पुस्तकीय विद्या नहीं है। मनुष्य चाहे जितना भी पढ़े किन्तु उसको जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसका एक अंश ही पुस्तकों से मिल सकता है। बहुत बड़ा अंश अनुभव और लोगों की कही-सुनी बातों से, देखे हुए दृश्यों से और कुल तथा समाज की परम्परा से प्राप्त होता है। सिनेमा इस सभी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो सकता है, क्योंकि यह मनुष्य की दृश्य और श्रव्य अनुभूतियों के क्षेत्र को बहुत ही बढ़ा सकता है। यह एक साधारण सी बात है जिसे सभी जानते हैं कि केवल सुनी-सुनायी बात की अपेक्षा हम पर देखे हुए दृश्य का प्रभाव अधिक पड़ता है और हम यदि सिनेमा द्वारा किसी चीज़ को देख लेते हैं, तो उसका उतना फल तो नहीं होता जितना स्वयं आँखों द्वारा देखने से मिलता है। उससे तो कहीं अधिक अमिट छाप किसी के सामने किसी दृश्य के वर्णन करने से पड़ती है।

मनबहलाव के भी साधन कितने ही प्रकार के होते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो मनबहलाव के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होते हैं और इसके विपरीत बुरे संस्कारों का साधन बन जाते हैं। मैं स्वयं यह दावा नहीं कर सकता कि मैंने बहुत सी फिल्में देखी हैं। सच पूछिये तो मुझे बहुत कम फिल्में देखने का अवसर मिला है। पर मेरे पास जो खबरें पहुँचती हैं, बहुतेरे विश्वसनीय भाइयों और बहनों द्वारा जो शिकायतें पहुँचायी जाती हैं, उनसे मालूम होता है कि बहुतेरी फिल्में दूसरी कोटि की हैं जो शिक्षा अथवा मनबहलाव का साधन न बनकर बुरी

वासनाओं को जागृत करती हैं, विशेषकर युवकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव डालती हैं। हो सकता है कि इस प्रकार की फिल्में अधिक लोकप्रिय होती हों, उनके द्वारा अधिक पैसे कमाये जा सकते हों। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि फिल्म-निर्माताओं का काम ऐसी फिल्मों को बनाना है जो लोकप्रिय हों क्योंकि वे एक प्रकार की मांग को पूरा करती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि फिल्मों का ध्येय मनबहलाव ही है। उसको तो तभी सफल मानना चाहिए जब फिल्में उन लोगों का मन बहला सकें जिन लोगों के लिए बनायी गयी हों। ये सब बातें बहस के रूप में कही जा सकती हैं, पर मैं चाहूँगा कि कोई भी सिनेमा हो अथवा फिल्म के बनाने वाले हों, वे यदि अपना कर्त्तव्य समाज-सेवा समझते हैं और उन्हें ऐसा समझना भी चाहिए, तो उन सबके लिए ये सब बातें यदि अग्राह्य नहीं तो गौण अवश्य हैं और उनका मुख्य उद्देश्य तो सेवा ही होना चाहिए। सेवा तभी तक सेवा रहती है जब तक वह सेव्य का हित करे न कि उसे गिराये। इसलिए मैं चाहूँगा कि फिल्म बनाने वाले इस पर विचार करें कि उनका उद्देश्य क्या है। उद्देश्य सेवा ही होना चाहिए और सेवा के साथ-साथ यदि धनोपार्जन भी हो जाये तो निर्दोष है। यदि धनोपार्जन ही उद्देश्य हो और सेवा न हो, तो वह अग्राह्य होना चाहिए।

यदि मनुष्य अपने-स्वार्थवश कुछ ऐसा काम करता है जो उसके व्यक्तिगत लाभ के लिए तो ठीक हो पर जिससे समाज को हानि पहुँचती हो, तो उसे रोकना पड़ता है। किसी भी देश में जितने दण्डविधान प्रचलित होते हैं उन सभी का उद्देश्य यही होता है कि कोई मनुष्य अपने स्वार्थवश या अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए ऐसा काम न करने पाये जिससे समाज को अथवा दूसरों को हानि हो। फिल्म के काम में भी यही होना चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि सबसे अच्छा और सुधरा हुआ समाज वह है जिसमें दण्डविधान की आवश्यकता ही न हो और जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपने ऊपर इतना संयम और नियन्त्रण रखता हो कि उसको ठीक मार्ग पर चलाने के लिए किसी ऊपरी भय की आवश्यकता ही न रहे पर ऐसा समाज अभी तक देखने में कहीं नहीं आया है, और इसलिए दण्डविधान की आवश्यकता होती है। तो भी जितना सुधरा हुआ समाज होगा अर्थात् जिस समाज के व्यक्ति जितने अधिक सुधरे हुए होंगे, उस समाज में दण्डविधान की उसी मात्रा में कम आवश्यकता होगी। फिल्म बनाना अथवा फिल्म में भाग लेना अच्छे और समझदार लोगों का ही काम हो सकता है, जिनसे यह आशा करना अनुचित न होगा कि वे अपना उद्देश्य और आदर्श समाज सेवा रखेंगे न कि केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि। इसलिए उनसे मेरा निवेदन यह है कि वे इस आदर्श को सामने रखकर समाज के सच्चे सेवक बन जायें। साथ ही जब तक यह उद्देश्य पूरा नहीं होता तब तक समाज जिसका प्रतिनिधि देश या शासन है, उसका नियन्त्रण करे और उसे करना चाहिए। स्वतन्त्रता बड़ी बहुमूल्य वस्तु है पर उसकी भी मर्यादा है और इस मर्यादा का पालन करना सभी स्वतन्त्रताप्रिय व्यक्तियों का कर्त्तव्य है क्योंकि वैसा न करने से वे स्वयं स्वतन्त्रता में बाधा डालने का कारण बन जाते हैं।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि विशेषकर वे फिल्में जिनके द्वारा लोगों तक जानने योग्य बातों का ज्ञान पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है, बहुत बड़ी सेवा का काम

करती हैं और साथ ही साथ उनके द्वारा प्रचार का काम भी होता है। हो सकता है बहुतेरे लोगों को इनमें रस न मिले और उनको मनबहलाव का साधन न मानते हों, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके द्वारा जनता को लाभ पहुँचाया जा सकता है। जनसाधारण की अभिरुचि भी मनबहलाव के साधनों द्वारा बहुत हद तक बदली जा सकती है और उनको बनाने वाले स्वयं इस बात को जानते हैं कि इस बारे में वे कितनी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। बहुतेरे खेलकूद ऐसे हुआ करते हैं जिनके द्वारा प्रत्येक खेलनेवाले और देखनेवाले को शरीर का गठन, स्फूर्ति, सहयोग इत्यादि की शिक्षा मिलती है। दूसरे खेल ऐसे भी हो सकते हैं कि जिनमें क्रूरता, निर्दयता इत्यादि लोगों के सामने दिखलायी जाती है और इन दुर्गुणों के प्रति घृणा उत्पन्न न करके श्रद्धा की भावना पैदा की जा सकती हैं। इसी प्रकार सिनेमा द्वारा विलासिता के बदले उच्च आदर्शों की भी शिक्षा दी जा सकती है और मैं चाहूँगा कि ऐसे आदर्शों पर ज़ोर देकर सिनेमा बनाने वाले पैसे भी कमायें और सेवा भी करें।

हमारी सरकार ने यह निश्चय करके कि अच्छी फिल्मों को पुरस्कार दिया जाये, कला को प्रोत्साहन दिया है। अच्छी से अच्छी फिल्म चुनने में इन आदर्शों की ओर ध्यान रखा जाना चाहिए और फिल्म बनानेवालों में ऐसा लोकमत हो जाना चाहिए कि वे ऊँचे आदर्शों को अपने सामने रखना अपना कर्त्तव्य समझें। जिस पर सरकारी अथवा किसी दूसरे प्रकार का नियन्त्रण लगाया जाता है, उसको तो वह बुरा मालूम होता ही है और वह स्वभावतः उससे बचने का मार्ग ढूँढ़ने लगता है, पर जहाँ लोकमत उस चीज़ को बुरी बतलाता है, वहाँ वे स्वयं उसे बुरी समझकर उससे बचना चाहते हैं और उस नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं रहती। मैं आशा करूँगा कि इस बढ़ती हुई और उन्नतिशील कला में दिन-प्रति-दिन इन बातों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा और जो शिकायत अब तक सुनने में आती है, उसकी कोई गुंजाइश फिल्म बनानेवाले नहीं छोड़ेंगे।

शिक्षा-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आवश्यक

नयी तालीम में मेरी रुचि उसी दिन से रही है जिस दिन प्रातःस्मरणीय पूज्य महात्मा गान्धी जी ने इस विषय पर विचार करने के लिए पहले-पहल एक सम्मेलन वर्धा में किया था जिसमें देश के कुछ शिक्षाशास्त्री और राष्ट्रीय शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले कार्यकर्ता आमन्त्रित थे। उस दिन से इस पद्धति की जिस प्रकार से जांच और प्रगति हुई

अखिल भारतीय नयी तालीम सम्मेलन (सानोसरा, सौराष्ट्र) के अवसर पर भाषण, १३ नवम्बर, १९५४

है, मेरा उससे कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है और इसलिए मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आपने आज मुझे शिक्षा सम्बन्धी विचारों को व्यक्त करने का अवसर दिया, यद्यपि मैं जानता हूँ कि ऐसा करने में बहुत अंश में पुनरावृत्ति करूंगा और हो सकता है मेरे मत से दूसरों का, विशेषकर शिक्षाशास्त्रियों का मत न मिले। इसके अतिरिक्त विचारणीय बात यह भी है कि शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय और राज्यों की सरकारें आज जो नीति बरत रही हैं, उसका मेरे मत के साथ कहाँ तक मेल होता है और मेरे मत में अथवा उस नीति में परिवर्तन कहाँ तक आवश्यक दीखता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मैं आज जो कुछ कहूँगा, वह व्यक्तिगत विचार के रूप में ही समझा और देखा जाएगा और उस पर आप निर्भीकतापूर्वक और निर्लिप्त रूप से भलीभाँति विचार करेंगे।

यह एक मानी हुई बात है कि जो पद्धति आज तक प्राथमिक वर्ग से लेकर विश्वविद्यालयों की उच्चतम कक्षा तक प्रचलित है, वह वही पद्धति है जिसको ब्रिटिश सरकार ने इस देश में चलाया था और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी अभी तक उसमें कहीं कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। उसके लिए हम किसी को दोषी भी नहीं ठहरा सकते क्योंकि जिस प्रकार शान्ति-पूर्वक हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ, उसमें यह अनिवार्य था कि स्वराज्य के साथ-साथ वह शासन-पद्धति, शिक्षा-पद्धति तथा सारा उपक्रम जो अंग्रेजी राज्य में प्रचलित थे हमको विरासत के रूप में मिलें। यह हमारा काम है कि हम उनमें से प्रत्येक पर नयी परिस्थिति के प्रकाश में विचार करें और जो कुछ परिवर्तन आवश्यक जंचे, उसे अमल में लायें। इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजों ने जो शिक्षापद्धति आरम्भ की, वह विशेषकर अपने राज को आसानी से और सुविधा के साथ चलाने के लिए जारी की थी। उसके साथ-साथ उनके दिल और दिमाग में भी यह विचारधारा काम कर रही थी कि यहाँ की संस्कृति और साहित्य में कोई ऐसी चीज नहीं है जिसको वे अपनी संस्कृति, साहित्य इत्यादि की अपेक्षा अधिक अच्छा समझें अथवा जिनको वे बनाये रखना उचित समझें। धीरे-धीरे उनकी विचारधारा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन भी हुआ पर मूल रूप से नहीं और इसी बीच यूरोप में विज्ञान की जो प्रगति हुई, वह इस देश में उनकी भाषा के द्वारा ही प्रसारित हो सकती थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि शासन की सुविधा और अपनी भाषा तथा संस्कृति के प्रति श्रद्धा के कारण उन्होंने इस पद्धति को जारी रखा और इसको अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी कई पीढ़ियों ने जो शिक्षा पायी, इसी पद्धति से पायी और जो कुछ हमारे अपने देश की संस्कृति, साहित्य इत्यादि से मिल सकता था, उसकी ओर न अधिक ध्यान दिया गया और न उसके प्रति हमारे हृदयों में कोई प्रतिष्ठा ही बढ़ी, यद्यपि यह कहना भी सही है कि कुछ थोड़े से विद्वान् ऐसे हुए जिन्होंने अंग्रेजी से ही प्रेरणा लेकर अपनी सारी चीजों का अध्ययन कर अनुसन्धान किया और उनकी श्रेष्ठता भी बतलायी।

इसलिए आज दो विचारधाराओं में संघर्ष है। कुछ लोगों का विचार है कि हमारी अपनी भाषा ही ऐसी भाषा हो सकती है जो केवल शिक्षालयों के लिए ही नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा का माध्यम बन सकती है और जब तक उसको माध्यम बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक शिक्षा इने-गिने लोगों की ही वस्तु रहेगी और

जन-समूह के जीवन तक नहीं पहुँच सकेगी। दूसरी विचारधारा यह है कि आज के विज्ञान-युग में हम इस देश को यूरोपीय विचारधारा से अलग नहीं रख सकते और न इसका अलग रहना वांछनीय है, और इसलिए कम से कम उच्च शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही दी जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो हम जीवन की दौड़ में और देशों की तुलना में पीछे रह जाएँगे और प्रगति नहीं कर सकेंगे। यह बात केवल शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि विचार करके देखा जाये तो बहुत गहरी है और सारी पद्धति के सम्बन्ध में है।

पिछले ५० वर्षों में शिक्षा के प्रति लोगों की श्रद्धा बहुत बढ़ी है जो इस प्रकार के शिक्षालयों की बढ़ती हुई संख्या से प्रमाणित हो जाती है। १९११-१२ में जब भारत के अन्तर्गत बर्मा और पाकिस्तान भी सम्मिलित थे, विश्वविद्यालयों और कालेजों की संख्या १८६ थी और १९४८-४९ में जब बर्मा और पाकिस्तान भारत से अलग हो चुके थे और इस प्रकार क्षेत्र और जनसंख्या बहुत घट गयी थी, विश्वविद्यालयों और कालेजों की संख्या ५३७ थी मध्यम वर्ग के स्कूलों की संख्या १९११-१२ में ६,३७० और १९४८-४९ में १४,३४२ थी। १९११-१२ में जहाँ इण्टरमीडिएट, बी० ए०, बी०एस-सी के वर्गों में विद्यार्थियों की संख्या ३१,९७४ थी वहाँ १९४८-४९ में उन वर्गों तथा एम०ए०, एम०एस-सी० आदि वर्गों को मिलाकर वह संख्या २,१४,६७७ हो गयी जिनमें २३,०५८ लड़कियाँ थीं और १९५१-५२ में बी० ए०, बी०एस-सी०, एम०ए०, एम०एस-सी० तथा दूसरी उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या ६३,४६५ थी। मैं समझता हूँ कि उसके बाद भी पिछले तीन वर्षों में यह संख्या और भी बढ़ गयी है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि देश में शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा बहुत अधिक है जो अब शहरों तक ही सीमित न रह कर ग्रामीण जनता में भी दीख रही है। पर उसका एक फल यह भी देखने में आ रहा है कि इतने लोग इन संस्थाओं से उत्तीर्ण होकर अपने को एक प्रकार से बेकार पा रहे हैं। सरकारी नौकरियाँ अथवा दूसरे प्रकार के काम जो शिक्षित वर्ग को मिल सकते हैं सीमित हैं, और जितने लोग उत्तीर्ण होते हैं उनमें से थोड़े ही लोग उनमें लग सकते हैं या उनमें लगने की योग्यता रखते हैं। अधिकांश विद्यार्थी अब जो वह काम नहीं कर सकते जो उनके पिता और दूसरे पूर्वज लोग किया करते थे। अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप उस काम के प्रति उनकी भावना में परिवर्तन आ गया। परिणाम यह हुआ कि बेकारी बढ़ी और उसके फलस्वरूप जीवन के प्रति असन्तोष और उपेक्षा की भावना को बल मिला। यह इस देश के लिए बहुत भयंकर चीज है। इसलिए हम इस विषय पर मौलिक रूप से विचार करें कि जो पद्धति आज चल रही है और जिस पर हम इतना व्यय करके युवक और युवतियों को बहुत बड़ी संख्या शिक्षित कर रहे हैं, वह आज की परिस्थितियों के कहाँ तक अनुकूल और लाभदायक है।

महात्मा गान्धी जी ने इस आने वाली परिस्थिति का अनुमान लगाकर यह निश्चय कर लिया था कि यदि इस देश में अमीर और गरीब, प्रत्येक भारतवासी के लिए शिक्षा आवश्यक है तो वह इस पद्धति से नहीं दी जा सकेगी, क्योंकि इसमें व्यय इतना है कि यह देश उस

भार को नहीं उठा सकेगा। इन्हीं दोनों विचारों से उन्होंने नयी तालीम की पद्धति निकाली जिसको अन्य देशों के उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्रियों ने भी शास्त्रीय ढंग से विचार करके उपयोगी और लाभदायक ठहराया। महात्मा जी के विचार से, जहाँ तक मैं उसको समझ सकता हूँ, इस पद्धति में अपने दो मौलिक तथ्य थे। एक तो इसमें शिक्षा केवल पुस्तकों के द्वारा ही न दी जाकर किसी न किसी प्रकार के काम के द्वारा दी जाये जिससे बच्चों को जो ज्ञान प्राप्त हो वह अनुभव से प्राप्त हो न कि केवल स्मरण शक्ति पर आश्रित रहकर रटाई द्वारा। उन्होंने सोचा था, और उच्चतम शिक्षाशास्त्रियों का भी यही विचार है, कि इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान बच्चों में जागरूकता, कार्यकुशलता, स्वतन्त्र भावना पैदा करता है जो इस जीवन के संग्राम में बहुत सहायक हो सकता है। दूसरा मौलिक विचार उनका यह था कि इस प्रकार की शिक्षा इस देश के लिए अनुकूल ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। बच्चों से जो कुछ भी काम कराया जाये, वह उत्पादक काम हो और उससे जो कुछ भी पैदा हो उससे शिक्षा का व्यय यदि पूरा-पूरा नहीं तो अधिकांश निकल सके क्योंकि यदि शिक्षा का व्यय दूसरे प्रकार से निकालने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह बोझ इतना बड़ा होगा कि शिक्षा सार्वजनिक नहीं बन सकेगी।

पिछले १६-१७ वर्षों में जो कुछ भी विचार किया गया या प्रयोग करके देखा गया उससे जहाँ तक मैं समझता हूँ वही निष्कर्ष निकाला जा सकता है जो पहले सम्मेलन में हुई बहस से निकाला जा सकता था। हमारे शिक्षाशास्त्रियों ने इस पद्धति की अनुकूलता और श्रेष्ठता तो मान ली थी, पर उनकी दृष्टि में इसके द्वारा शिक्षा का व्यय निकालना असम्भव ही नहीं अनुचित भी था। प्रयोग से देखा गया है कि इस पद्धति की उपयोगिता है और इससे पूरा नहीं तो अधिकांश व्यय निकाला जा सकता है। यह मैं प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कह रहा हूँ। उच्च कोटि की शिक्षा के सम्बन्ध में अभी प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है, इसलिए उसके सम्बन्ध में अभी कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। इतना होते हुए भी हम देखते हैं कि इस पद्धति को उतना प्रोत्साहन नहीं मिला और न इसका उतना प्रचार ही हुआ जितना होना चाहिए था और जितना स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हम कर सकते थे। इसका कारण, जहाँ तक मैं समझता हूँ, यही है कि इसकी उपयोगिता प्रमाणित होने पर भी पुरानी पद्धति पर जो आस्था थी, वह अभी दूर नहीं हुई है और इसी कारण शिक्षा के काम में जो व्यक्ति लगे हुए हैं उनका न तो इस ओर ध्यान गया है और न उन्होंने इस विषय पर गहराई से चिन्तन ही किया है।

आज भी हम इतना ही कह सकते हैं कि इस पद्धति का, अभी केवल प्रयोग ही किया जा रहा है। इसे राष्ट्रीय कार्यक्रम मानकर हमारी सरकार ने उसको चालू करने का निश्चय नहीं किया और क्रियात्मक रूप से कुछ करने की बात तो नहीं के बराबर ही है। उसका परिणाम यह हुआ कि पुरानी पद्धति की संस्थाएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं और शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार जो कुछ भी व्यय कर सकती है या करना चाहती है उसका बहुत बड़ा अंश उस पद्धति को ही बनाये रखने में व्यय हो रहा है और इस पद्धति को बहुत कम प्रोत्साहन मिला है। मेरा अपना विश्वास है कि जब तक शिक्षा में

मौलिक रूप से परिवर्तन नहीं किया जाएगा, तब तक जो दृश्य आज हम देख रहे हैं, वह और भी भयंकर होता जाएगा। वर्तमान शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप असन्तोष की भावना और शिक्षित वर्ग में जीवन के प्रति उपेक्षा और निराशा बढ़ती जाएगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि शिक्षा से जितने लोगों का सम्बन्ध है और विशेषकर शिक्षाशास्त्री और विश्वविद्यालयों, कालेजों तथा स्कूलों के संचालक एवं शिक्षा मन्त्री इस सारे विषय पर केवल विचार ही न करें, बल्कि शिक्षा-प्रणाली को क्रियात्मक रूप से बदलने का निश्चय करें। जब तक ऐसा नहीं होगा, हमारी समस्या अधिक जटिल होती जाएगी।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तालीमी संघ अपने ढंग से अपना काम बराबर करता जा रहा है और यद्यपि यह कहना कठिन है कि इसका देश के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ रहा है तो भी मैं यह मानता हूँ कि जो अनुभव प्राप्त किया जा रहा है, वह देश के लिए मूल्यवान है और यदि आज नहीं तो कल, या जब कभी इस चीज़ पर विचार किया जाएगा और परिस्थिति द्वारा बाध्य होकर शिक्षा-प्रणाली में मौलिक परिवर्तन करना आवश्यक समझा जाएगा तो इस अनुभव से लाभ उठाया जा सकेगा और तब इसका मूल्य मालूम होगा। जैसा मैंने कहा, प्राथमिक वर्ग का अनुभव तो अच्छा ही हुआ है और हम उस अनुभव के बल पर ही इस कार्यक्रम को देश के सामने रख सकते हैं। उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अभी उतना अनुभव प्राप्त नहीं हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि जो प्रयोग इस सम्मेलन के फलस्वरूप यहाँ होने वाला है उसका फल भी वैसा ही लाभदायक होगा जैसा प्राथमिक वर्ग सम्बन्धी प्रयोग से हुआ। इसलिए मैं इस प्रयोग को बहुत महत्त्व देता हूँ और मैं आशा करता हूँ कि वे लोग जो इस आवश्यक और पुण्य काम में लगे हुए हैं, प्रतिकूल वायुमण्डल से घबड़ा कर इसको छोड़ेंगे नहीं।

मुझे याद है कि १९२३ या १९२४ में जब असहयोग आन्दोलन कुछ ढीला पड़ रहा था, उस समय बिहार विद्यापीठ की एक समावर्तन सभा में स्वनामधन्य श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा था कि इस प्रकार के शिक्षालय टिमटिमाते दिये हैं। मैं मानता हूँ कि तालीमी संघ के शिक्षालय अभी टिमटिमाते दिये हैं पर तो भी उनका बड़ा महत्त्व है और वह इसलिए नहीं कि वे पिछले दिनों का स्मरण दिलाते हैं बल्कि इसलिए कि एक दिये में भी वह शक्ति है जो हज़ारों दिये जला सकता है और यदि उसमें सच्ची ज्योति है तो वह इस प्रकार से हज़ारों दिये जलाकर हज़ारों कोनों को प्रकाशमान कर उसे और आगे बढ़ा सकता है। इसलिए मैं इन दियों को जलाये रखने का आग्रह करता हूँ। मैं इनकी ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखता हूँ और उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब इनकी ज्योति सारे देश में चमकेगी और सारे देश को एक नयी प्रेरणा, एक नया उत्साह और नया जीवन दे सकेगी।

महात्मा गान्धी जी ने यद्यपि अपने विचारों को एकत्रित करके एक शास्त्रीय ग्रन्थ के रूप में नहीं रखा पर इसमें सन्देह नहीं कि उनके सिद्धान्त सार्वभौम थे और उनका प्रभाव जीवन के सभी पहलुओं पर पड़ता है। उनमें शिक्षा का एक प्रधान

स्थान था क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही देश अथवा संसार की पिछड़ी स्थिति पलटी जा सकती है, विशेषकर जब वह शिक्षा सैद्धान्तिक विषय न रह कर लोगों के प्रतिदिन के जीवन का अंश बन जाती है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने इस कार्यक्रम को हजारों विघ्न-बाधाओं के बीच भी जारी रखें और उस समय की प्रतीक्षा करें जब इसकी उपयोगिता और श्रेष्ठता केवल सिद्धान्त रूप में ही नहीं मानी जाएगी बल्कि इसे क्रियात्मक रूप से सारे देश में प्रचारित और प्रसारित किया जाएगा।

इन शब्दों के साथ मैं आप सबको इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ कि आपने मुझे कुछ मौलिक बातें कहने का अवसर दिया। यह बात जब सिद्धान्त रूप से स्वीकृत हो जाये और उसको कार्यान्वित करने का समय आ जाये तब इसके सभी पहलुओं पर विचार करके एक ऐसा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है जिसे देश स्वीकार कर सके और जिसको तैयार करने में उस अनुभव को जो आप इन प्रयोगों द्वारा प्राप्त कर रहे हैं, ठीक से उपयोग में लाया जा सके।

समाज में स्त्रियों का महत्त्व

मुझे आपके इस विकास-गृह में आकर आज बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इसका कारण यह है कि मैं इस बात को मानता हूँ कि स्त्रियों को समाज में बराबर का स्थान मिलना चाहिए जिससे वे अपने को केवल सुरक्षित ही नहीं बल्कि सुखी भी बना सकें। समाज की रूढ़ियों के कारण उनको बहुत प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते हैं और बहुत सी रूढ़ियों का बुरा प्रभाव केवल स्त्रियों तक ही सीमित न रहकर सारे समाज पर पड़ता है। ऐसा होना स्वाभाविक और अनिवार्य है क्योंकि किसी भी समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या के बराबर तो होती ही है, कहीं-कहीं अधिक भी होती है और इसलिए यदि केवल पुरुषों की उन्नति हो और स्त्रियों को जहाँ की तहाँ ही छोड़ दिया जाये तो वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। जैसे किसी एक शरीर का आधा अंग उन्नत हो और शक्तिवान बनाया जाये और दूसरा आधा अंग जहाँ का तहाँ छोड़ दिया जाये तो वह शरीर दुर्बल और बीमारियों का घर बन जाएगा। वही बात समाज की है। इसलिए महात्मा गान्धी जी ने स्त्रियों को समाज में वही स्थान देने का निश्चय किया और दिया जो पुरुषों को प्राप्त है।

मैं एक ऐसे प्रदेश का रहने वाला हूँ जहाँ पर्दा-प्रथा लम्बे समय से बहुत जोरों से रही है और उसका हम यह परिणाम अनुभव करते आये हैं कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत

विकास-गृह (अहमदाबाद) का उद्घाटन करने के अवसर पर भाषण, १४ नवम्बर, १९५४

ही निस्सहाय और अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं की शिकार बन रही है। १६३० में जब स्वराज्य-आन्दोलन और सत्याग्रह का कार्यक्रम जोरों पर था, महात्मा जी ने स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही स्थान नहीं दिया, बल्कि उस कार्यक्रम में जो एक कठिन काम था, वह स्त्रियों के सुपुर्द किया। उस समय के कार्यक्रम का एक मुख्य अंग विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार था और महात्मा जी के कहने पर यह काम स्त्रियों को मिला और दूसरे काम भी वे करती रहीं। जब विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आरम्भ हुआ तो दुकानों में जितने विदेशी वस्त्र थे, उनको गाँठों में बन्द करके उन पर कांग्रेस कमेटी की मुहर लगाकर रखने की बात चली ताकि वे बाजार में न बिक सके। यह काम स्त्रियों ने अपने ऊपर लिया। कुछ व्यापारियों ने तो इसमें काफी सहायता दी पर कुछ व्यापारी सहयोग नहीं देना चाहते थे। इसलिए ऐसी दुकानों पर पिकेटिंग करने अर्थात् धरना देने का काम आरम्भ करना पड़ा। चूंकि गान्धी जी का कहना था कि यह काम स्त्रियों का है, इसलिए पर्दे के पीछे छिपी रहने वाली स्त्रियों ने भी पर्दे से बाहर निकल कर इस काम को सम्हाल लिया।

उन दिनों मुझे एक ऐसा उदाहरण देखने में आया जिसका यदि मैं वर्णन करूं तो आप हँसेंगे और उसका कितना अच्छा परिणाम हुआ, यह भी समझ सकेंगे। एक स्त्री जो अपने घर से बाहर कभी नहीं निकल सकी थी और जो अपने घर को बाहर से पहचान भी नहीं सकती थी, घर से बाहर आकर इस काम में जुट गयी और प्रति दिन इस कार्यक्रम को करने लगी। कोई कार्यकर्ता या कोई एक स्त्री सारे शहर में घूम कर इस प्रकार की जितनी पिकेटिंग करनेवाली स्त्रियाँ होती थीं, उनको अलग-अलग दुकानों पर खड़ी कर जाती थी और दोपहर या शाम को जब समय होता था उनको उनके घर पहुँचाया करती थी। वे स्त्रियाँ इतनी निस्सहाय थीं कि उनको अकेली छोड़ दिया जाये तो वे अपने घर भी नहीं पहुँच सकती थीं और यदि उनके पति का नाम भी पूछा जाये तो वे नाम भी नहीं बताती थीं। वे शिक्षित तो थीं नहीं कि उनसे पति का नाम लिखने को कहा जा सके।

एक दिन की बात है कि दुकानों पर जो स्त्रियाँ खड़ी की गयी थीं, उनमें से एक स्त्री उसी दुकान पर खड़ी रह गयी और जिस स्वयंसेविका का काम उसको घर पहुँचाने का था, वह भूलकर या गलती से उस दुकान पर नहीं गयी। वह स्त्री वहीं खड़ी रह गयी। वह स्वयं अपने घर नहीं गयी क्योंकि उसको मालूम ही नहीं था कि किस मार्ग से उसके घर पहुँचा जा सकता था और यदि उसे उसके मकान के द्वार पर भी पहुँचा दिया जाता, तो जब तक घर के लोग आकर उसको पहचान नहीं लेते और भीतर नहीं ले जाते तब तक जा नहीं सकती थी। एक पुरुष, जो उसमें ही काम कर रहा था और जिसकी स्त्री भी उसी काम में लगी थी, अपनी स्त्री के साथ यह देखने के लिए निकला था कि कहीं कोई स्त्री छूट तो नहीं गयी है। संयोग से वह उसी दुकान पर पहुँचा। उस स्त्री से पूछने पर उनकी पत्नी को मालूम हुआ कि उसे कोई बुलाने नहीं आया था, इसलिए वह वहाँ ही खड़ी रह गयी। उस समय दुकान बन्द हो चुकी थी। उन्होंने कहा, "चलिये हम आपको घर पहुँचा दें। अपने पति का नाम बताइये।" वह अपने पति का नाम भी नहीं बताती थी और लिख भी नहीं सकती थी। उसे अपने मुहल्ले का भी पता नहीं था। उनके सामने यह समस्या आ

गयी कि उसको किस प्रकार घर पहुँचाया जाये। उन्होंने उसको अपनी गाड़ी में बैठा लिया और जिन-जिनकी स्त्रियाँ आयी थीं उनके घर जाकर पूछने लगे। अन्त में इस प्रकार मालूम हो सका कि वह स्त्री किसकी थी। यह उदाहरण मैंने आपको इसलिए दिया कि आप समझें कि महात्मा गान्धी के एक शब्द से ऐसी स्त्रियों में भी साहस पैदा हो गया और उनमें काम करने की इतनी प्रबल इच्छा हो गयी कि वे निडर होकर दुकानों पर जाकर खड़ी होती थीं। पुरुष जब उन दुकानों पर सामान खरीदने आते थे तो स्त्रियों को देखते ही अलग चले जाते थे। उसका परिणाम यह हुआ कि दो-चार दिनों में विदेशी कपड़े की बिक्री एक-दो स्थान पर नहीं सारे बिहार में बन्द हो गयी।

एक ओर तो उसका फल स्त्रियों पर यह हुआ कि उनमें साहस पैदा हो गया और वे निडर होकर काम करने लगीं और दूसरी ओर पुरुषों ने सोचा कि पर्दा बेकार है। अब पुरुषों की ओर से बिहार में भी उतनी रोक-टोक नहीं है। अब यदि स्त्रियाँ उतनी स्वतन्त्रता से वहाँ नहीं फिरतीं तो उनकी अपनी पुरानी आदत है जिसके कारण वह लाभ नहीं उठा रहीं।

बिहार का एक दूसरा उदाहरण और सुनिये। गया काँग्रेस के समय महात्मा गान्धी का आन्दोलन जारी हो चुका था, यद्यपि उसका प्रभाव दूर तक नहीं फैला था। स्वागत समिति की ओर से जब पण्डाल बनने लगा तो स्त्रियों की ओर से उनके लिए अलग स्थान निर्धारित करने की माँग आयी और यह भी माँग आयी कि वह स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पर्दा रहे पर वे सब कुछ देख सकें। मैंने उसका प्रबन्ध किया और पण्डाल के भीतर गैलरी की भाँति एक ऊँचा स्थान बनवाया और पर्दा करवा दिया जहाँ से वे तो दूसरों को देख सकती थीं पर उन्हें कोई नहीं देख सकता था। वह जगह बनी और स्त्रियाँ वहाँ आकर बैठीं। पहले दिन जब अधिवेशन का काम आरम्भ हुआ तो सब स्त्रियाँ अपने निर्धारित स्थान पर बैठीं। दूसरे दिन उनमें से कुछ नीचे आकर बैठीं। परन्तु तीसरे-चौथे दिन जब अधिवेशन का काम समाप्त हो रहा था तो सबकी सब स्त्रियाँ नीचे आकर बैठ गयीं। इसका प्रभाव पुरुषों और स्त्रियों, दोनों पर पड़ा।

जब हम अपने देश का संविधान बनाने लगे तो अन्य देशों की भाँति हमारे देश की स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए न तो लड़ने की आवश्यकता पड़ी और न किसी से कुछ कहने की। उन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम के समय जो काम करके दिखलाया और जिस प्रकार उसमें भाग लिया, उसके बाद किसी के मुँह से यह बात नहीं निकल सकती थी कि उनको बराबरी का स्थान न देकर कोई दूसरा स्थान दिया जाये। इसलिए संविधान में जो अधिकार पुरुषों को प्राप्त है, वही प्रत्येक स्त्री को भी प्राप्त है। स्त्री होने के नाते किसी बात में या किसी काम में वह अयोग्य नहीं समझी जाएगी। समाज में जो रूढ़ि पुराने समय से चली आ रही है, वह धीरे-धीरे कम हो रही है। आपकी जैसी अन्य संस्थाएँ बहुत आवश्यक हैं। जब तक स्त्रियों को कार्यरूप से समानता का अधिकार नहीं मिल जाता तब तक उनकी आवश्यकता रहेगी। जनकल्याण का हमारा कार्य जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक इस प्रकार की संस्थाएँ जितनी प्रगति करें, बढ़ती जायें, जितनी जल्दी अपना काम बढ़ायें उतना ही देश और समाज के लिए कल्याणकारी होगा।

ईश्वर की दया से अहमदाबाद जैसे नगर अथवा गुजरात जैसे प्रदेश में न तो निस्पृह स्त्रियों और पुरुषों की कमी है जो इस प्रकार के काम में समय दे सकें और न ऐसे दानी व्यक्तियों की कमी है जो ऐसी संस्थाओं को जीवित रखें। इसलिए जब यहाँ दोनों का इस प्रकार से समागम है तो उसका फल यह होना चाहिए कि कम से कम इस शहर और प्रदेश में एक भी ऐसी स्त्री या ऐसा बच्चा न रह जाये, जिसको संभालना आवश्यक हो। इस विकास गृह का जब तक उतना विकास न हो जाये तब तक मैं इसके काम को पूरा नहीं समझूंगा।

मैं आशा करता हूँ कि जिस लगन के साथ आपने काम किया है और जिस उत्साह के साथ काम करने वाली स्त्रियाँ काम कर रही हैं उसको आप जारी रखेंगे और आपका काम दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाएगा। जो काम हुआ है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ और जो काम शेष है उसके लिए आशा प्रकट करता हूँ कि वह शीघ्र ही पूरा होगा।

स्त्री-शिक्षा का महत्व

भारतवर्ष के लिए स्त्री-शिक्षा बहुत ही आवश्यक है। हमारे संविधान में पुरुष और स्त्री को सब बातों में समान अधिकार दिये गये हैं। इस बात को देख कर विदेश के लोग कुछ आश्चर्य भी करते हैं क्योंकि दूसरे देशों में जो बहुत सभ्य समझे जाते हैं, इस प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के साथ बहुत संघर्ष करना पड़ा। कई व्यक्तियों ने मुझ से पूछा भी कि ऐसा कैसे और क्यों हुआ? उसका उत्तर बहुत सीधा है और वह यह कि जब महात्मा गान्धी ने इस देश में स्वराज्य का काम आरम्भ किया तो उन्होंने स्त्रियों को भी इस काम में वैसे ही लगा दिया जैसे पुरुषों को लगाया क्योंकि उनके अहिंसात्मक कार्यक्रम में शारीरिक बल की अधिक आवश्यकता नहीं होती। उसमें तो आध्यात्मिक बल की अधिक आवश्यकता होती है और यह मानी हुई बात है कि हमारे देश की स्त्रियों में यह बल, पुरुषों से अधिक नहीं तो उनसे किसी प्रकार कम भी नहीं होता। इसलिए गान्धी जी ने स्त्रियों को कठिन से कठिन काम दिया।

आप लोगों में से जिनको उस समय का इतिहास मालूम है, उनको यह स्मरण होगा कि जिस समय सत्याग्रह आरम्भ किया गया उस समय महात्मा जी ने यह घोषणा की थी कि दो-तीन काम केवल स्त्रियाँ ही करें। वे काम थे—शराब बन्दी और विदेशी

सरोजिनी देवी कन्या महाविद्यालय (भोपाल) के शिलान्यास के अवसर पर भाषण, ८ जनवरी, १९५५

कपड़े का बहिष्कार। ये दोनों काम सरल नहीं हैं। भारत के वातावरण में शराब को बहुत प्रोत्साहन नहीं मिलता। परन्तु जो पियक्कड़ थे, वे ऐसे स्थानों में जाकर शराब पिया करते थे जहाँ उनको रोकना कुछ सरल काम नहीं था। महात्मा जी ने वह काम स्त्रियों को दिया और कहा कि वे जाकर लोगों को शराब पीने से रोकें। नशेबाज लोगों का क्या ठिकाना। पता नहीं वे कब क्या कर बैठें। परन्तु स्त्रियों ने उस काम को सम्हाला और उसे इतनी कुशलता से किया कि शराब की दुकानों से होने वाली सरकार की आय थोड़े दिनों में ही बहुत कम हो गयी। इसी प्रकार विदेशी कपड़े के सम्बन्ध में भी स्त्रियों ने विदेशी कपड़ों की गाँठे बंधवाकर रखवा दीं जिससे न वे बाजार में रहें, न बिक्री हो और न लोगों को मिले। यह भी सरल नहीं था क्योंकि जिनके पास यह कपड़ा था, उनके लिए उसे छोड़ देना आसान नहीं था और कई ऐसे मनचले लोग भी थे जो उसी प्रकार के कपड़े को खरीदना चाहते थे।

महात्मा जी के प्रयास से स्त्रियों में इतनी जागृति आ गयी कि उन्होंने कठिन से कठिन काम को सार्थक कर दिखाया और उनके साथ जो काम करने वाले लोग थे, उनका भी यह अविश्वास दूर हो गया कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान काम नहीं कर सकतीं। इसीलिए किसी ने इसका विरोध तक नहीं किया कि स्त्रियों को पूरे-पूरे अधिकार क्यों दिये जाते हैं। स्त्रियों को अधिकार तो मिल गये परन्तु हम अभी उनमें उनका उपयोग करने की शक्ति पैदा नहीं कर सके हैं। इसलिए ऐसे कालेजों अथवा संस्थाओं द्वारा स्त्रियों को उन्नत और शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाता है। यदि ये सब अधिकार मिल जाने के बाद आज हम उन्हें पूरी तरह से इसके योग्य नहीं बना देते तो उसका परिणाम ठीक वैसा ही होगा जैसा किसी बीमार को अनजान वैद्य या अनजान डाक्टर के हाथ में सौंप देने से होता है। यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्त्रियों के लिए ऐसी संस्थाएँ स्थापित करें। आप एक ऐसी संस्था खोलने जा रहे हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।

स्वर्गीय सरोजिनी देवी जिनके नाम से यह संस्था स्थापित की जा रही है, एक प्रमुख नेत्री थीं। जब महात्मा जी स्वयं नमक-सत्याग्रह करने गये तो अपने स्थान पर उन्होंने सरोजिनी देवी को नियुक्त किया। उन्होंने कष्ट झेल कर नमक बनाया और गिरफ्तार हुईं। उन्होंने अपने सारे जीवन में देश की सेवा की और उनसे जो कुछ भी आशा की गयी, उसको उन्होंने अपने परिश्रम तथा लगन से पूरा किया। अतः आपने अपने कालेज के साथ उनका नाम जोड़कर बहुत अच्छा किया है।

मुझे आशा कि इस कालेज में पढ़ने वाली लड़कियाँ उन जैसी योग्यता तथा उन जैसा देश-प्रेम सीखकर निकलेंगी और केवल भोपाल राज्य की ही नहीं बल्कि सारे देश की सेवा कर सकेंगी। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आपने यह कालेज स्थापित करने का निश्चय किया और मुझे अवसर दिया कि मैं इसका शिलान्यास करूँ।

संसार के लिए वरदान—अहिंसा का मार्ग

मैं यहाँ कुछ कहने के लिए नहीं आया था। मैंने सोचा था कि यहाँ आकर भगवान् महावीर की जीवनी, उनकी शिक्षा और उपदेश के सम्बन्ध में कुछ सुनूँगा और सीखूंगा। मेरी यह आशा कुछ हद तक पूरी भी हुई है। कुछ भाइयों ने ऐसी बातें बतायीं जिनका हृदय पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मैं तो आप सबसे केवल एक ही बात कहना चाहता हूँ।

जैनी लोग इस देश में २,५०० वर्षों से अहिंसा का प्रचार करते आये हैं। यह परम्परा अटूट रूप से आज तक चली आ रही है। बहुतेरे ग्रन्थ लिखे गये हैं। मैं समझता हूँ कि विद्वान् तथा मुनि लोग आज भी ग्रन्थ लिख रहे हैं और प्रचार कर रहे हैं। फिर भी यह दुःख के साथ कहना पड़ेगा कि हममें से बहुत लोगों को महावीर स्वामी की शिक्षा-दीक्षा तथा उनके साहित्य से आज भी पर्याप्त परिचय नहीं है। उस साहित्य को जैनी तो पढ़ते हैं पर दूसरे लोगों का इस साहित्य से बहुत ही कम परिचय है, यद्यपि इसका प्रभाव उनके जीवन पर आज से नहीं २,५०० वर्षों से पड़ता आया है। एक प्रकार से उनका सारा जीवन उसी ढाँचे में ढला हुआ है।

मैं चाहूँगा कि आप इस देश में तथा संसार में जहाँ तक हो उस साहित्य का प्रचार करें। ग्रन्थ कम नहीं हैं। मैंने सुना है कि इस देश में जैन साहित्य की हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ पड़ी हुई हैं। एक स्थान पर नहीं, जिधर जाइये उधर पुस्तकालयों और संग्रहालयों में उनको सुरक्षित रखा गया है। मैं आज ही राजस्थान के दौरे से लौटकर आया हूँ। मुझे जैसलमेर जाने का भी अवसर मिला। वहाँ जाकर मैंने देखा कि ग्रन्थों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें कितनी सावधानी के साथ जमीन के नीचे तहखाने के नीचे तहखाने में रखा गया है। इसीलिए वे ग्रन्थ सुरक्षित रह सके हैं। आपके हजारों ग्रन्थ अन्यत्र भी पड़े हुए हैं जिनका सर्वसाधारण को ज्ञान नहीं है। उनका प्रकाशन एक अत्यन्त आवश्यक काम है।

आज के युग में जैन विचारों की ओर लोगों का काफी झुकाव है। जैसा हमारे प्रधान मन्त्री ने कहा है, यदि आज के संसार में हमने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया तो संसार के लिए एक बड़ा भारी दुष्परिणाम होने वाला है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो

महावीर जयन्ती समारोह (कन्स्टीटयूशन हाउस, नयी दिल्ली) में भाषण, ७ अप्रैल, १९५५

गया है कि इसके जितने ग्रन्थ हैं और उनमें से जो कुछ मिल सकता है वह सब लोगों के सामने लाया जाये जिससे लोग उनसे लाभ उठा सकें और उन सिद्धान्तों को अपने दैनिक जीवन में उतारने का प्रयत्न करें।

मुझे आज यह जानकर कि महावीर स्वामी का जन्म वैशाली में और उनका निर्वाण पावापुरी में हुआ था, बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने १२ वर्षों तक तपस्या की थी। उसी बिहार भूमि में लोगों के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जैन-साहित्य के अध्ययन के लिए एक प्रतिष्ठान स्थापित किया जाये। मुझे बिहार के राज्यपाल का एक पत्र इस आशय का मिला है कि वैशाली में प्रतिष्ठान स्थापित करने का निश्चय हो गया है और उसके लिए सवा पाँच लाख रुपये की व्यवस्था कर ली गयी है। प्रकाशन का काम दूसरी संस्थाएँ भी कर रही हैं और करना चाहती हैं। मैं आशा करूँगा कि अब जैन-साहित्य को खोजने के लिए किसी को जैसलमेर की गुफाओं में जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी बल्कि वह चीज़ घर-घर में पहुँच जाएगी और सब लोग उसका लाभ उठा सकेंगे।

मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि जैन धर्म के आपके विद्वान् लोग अच्छे-अच्छे ग्रन्थों को चुनकर उनके प्रकाशन में सहायता दें। आप में से जो धनवान हैं, वे पैसे देकर सहायता करें और जो साधारण लोग हैं वे उनका अध्ययन करके उनको अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। अन्य लोग भी उनसे लाभ उठायें और अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। तभी सब लोग इस प्रकार के उत्सव के महत्त्व और सार्थकता के विषय में समझ सकेंगे।

हिन्दी किसी के हित में बाधक नहीं

आपकी संस्था, जैसा अभी बताया गया है, केवल ७-८ वर्ष पुरानी है। इस थोड़े ही काल में इस संस्था ने जितना काम किया है और जितनी प्रगति की है, उसके लिए वह बधाई की पात्र है क्योंकि मुख्यतः विश्वकोष के निर्माण का ही काम इतना बड़ा था कि यदि समिति की स्थापना केवल उसी कार्य के लिए ही की गयी होती तो भी कोई आश्चर्य की बात न होती।

इस समिति ने तेलुगु भाषा और तेलुगु साहित्य की चौमुखी उन्नति में हर प्रकार से सहायता दी है। आज जिन व्यक्तियों को मेरे हाथों पारितोषिक प्राप्त हुए हैं, वह इस बात का सूचक है कि साहित्य की जो वृद्धि और उन्नति हो रही है, उसमें सभा की

तेलुगु भाषा समिति (हैदराबाद) के वार्षिकोत्सव में भाषण, २६ जून, १९५५

कितनी रुचि रही है और उसमें वह कितनी सहायता देती आयी है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि आज इस अवसर पर आपने विश्वकोष का दूसरा भाग तैयार करके मुझे दिया है। पहला भाग पाने का सौभाग्य मुझे आज से पहले, शायद दो वर्ष हुए होंगे, दिल्ली में प्राप्त हुआ था। मुझे पूरा विश्वास है कि इसके जो शेष भाग हैं, वे भी क्रमशः आपके कार्य-क्रम के अनुसार तैयार हो कर प्रकाशित हो जाएँगे। यह एक बहुत बड़ा काम है।

हमारे देश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं। सबका अपना-अपना अलग साहित्य है। सबके बोलनेवाले, जाननेवाले, अध्ययन करनेवाले अलग-अलग और बड़ी-बड़ी संख्या में हैं। ६०-७० वर्षों में जबसे देश में राजनीतिक जागृति हुई और स्वराज्य-प्राप्ति के काम में बहुतेरे लोग लगे, इन सब भाषाओं और इनके साहित्यों की भी वृद्धि साथ-साथ हुई। यह केवल हमारे देश की ही बात नहीं है। यदि सभी देशों और सभी भाषाओं के साहित्य के इतिहास को देखा जाये तो यह मालूम होगा कि साहित्य का लोक-जागृति के साथ सदा से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और जब-जब जहाँ-जहाँ लोक-जागृति हुई, उस देश में वहाँ की भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि भी ठीक उसी समय उसी मात्रा में हुई है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हमारे देश में भी ऐसा ही हुआ। अब जब कि हम स्वतन्त्र हो गये हैं तो हमें और भी सुविधाएँ मिली हैं। हम आशा करते हैं कि अगले ५० वर्षों में हमारे देश की सभी भाषाएँ ऐसी ही उन्नति करेंगी तथा उनके साहित्य की इतनी अभिवृद्धि होगी कि वे संसार की अन्य भाषाओं की तुलना में न तो साहित्य की अच्छाई और खूबी की दृष्टि से और न उनके जाननेवालों और बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से पीछे रहेंगी। इसलिए भारतवर्ष की आज की स्थिति पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है।

जिस समय हमारा संविधान बन रहा था, उस समय हमारे सामने यह प्रश्न आया कि हम अपने देश के लिए कोई ऐसी भारतीय भाषा रखें जिसमें सारे देश का काम हुआ करे या जो अंग्रेजी, अंग्रेजी शासन के समय से लेकर आजकल भी काम में आ रही है, उसी को जारी रखें। जिस समय हम लोग स्वाधीनता-संग्राम में लगे हुए थे, मुझे यह भलीभाँति स्मरण है कि हम अपने भाषणों में बहुधा यह कहा करते थे कि हम स्वतन्त्र होने पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे। उस भाषा का प्रयोग करने का अर्थ यह है कि हम स्वतन्त्रता के मुख्य उद्देश्य को ही नहीं समझ पाये हैं, क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ है हमारे हृदय और मस्तिष्क की स्वतन्त्रता जिससे हम स्वयं विचार तथा अनुभव कर सकें। यह काम किसी विदेशी भाषा में नहीं हो सकता। हम स्वतन्त्र तो हो गये। अब हमारे लिए यह विचार करना आवश्यक-सा हो गया है कि अब हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए। संविधान सभा ने सब लोगों की राय से यह निश्चय किया कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जितनी भाषाएँ बोली जाती हैं, वे वहाँ की मुख्य भाषाएँ बनी रहें परन्तु सारे देश के काम के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा का रूप दिया जाये।

दक्षिण भारत के लोग कभी-कभी ऐसा सोचने लगते हैं कि उन पर हिन्दी क्यों लादी जा रही है। मैं सबसे अत्यन्त विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि हिन्दी

का न तो कहीं साम्राज्य है और न उसे किसी पर बलपूर्वक थोपने का ही प्रयत्न किया जा रहा है। हम तो एक साम्राज्य को तोड़ कर बाहर निकले हैं। फिर हम एक दूसरा साम्राज्य, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, स्थापित करने का विचार कैसे कर सकते हैं? यह तो हमारे लिए असम्भव-सी बात है और इस प्रकार की चेष्टा एक ऐसी चेष्टा होगी जो कभी भी सफल नहीं होगी क्योंकि भारतवर्ष एक ऐसा देश है जिसमें आज से नहीं, न मालूम कितनी सहस्राब्दियों से विभिन्नता होते हुए भी एक प्रकार की ऐसी एकता रही है जिससे सारा देश एक है और जिसने सारे देश को एक सूत्र में बांध रखा है। यह कहना कठिन है कि वह चीज क्या है, परन्तु इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यदि आप किसी विदेशी से पूछें तो उसकी दृष्टि में भारतवर्ष कन्या-कुमारी से लेकर हिमालय तक एक ही है। इसी प्रकार हम सारे यूरोप को एक मानते हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति इस एकता को कमजोर बनाने का विचार नहीं कर सकता और न उसके विरोध में कोई कदम उठा सकता है। इसलिए सबको अपने हृदय से यह विचार निकाल देना चाहिए और फिर जब हम दूसरों से चीज माँग लेते हैं तो लावने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि सारे भारतवर्ष की सभी भाषाओं के बोलनेवालों ने देश के हित को सामने रख कर तथा आज के संसार की परिस्थिति पर विचार करके यह निश्चय किया कि हमारे लिए सबसे अच्छा मार्ग यही होगा कि हम सारे देश के काम के लिए एक भारतीय भाषा स्वीकार कर लें। यह तो एक संयोग की बात है कि वह स्थान हिन्दी को मिला क्योंकि हिन्दी जाननेवाले और बोलनेवालों की संख्या औरों की अपेक्षा अधिक थी। इसलिए यह उचित समझा गया कि जितने कम से कम व्यक्तियों को सीखना पड़े, उतना ही अच्छा है क्योंकि इसी में सुगमता होगी। हिन्दी को इसी विचार से स्वीकार कर लिया गया है। मैं यह दावा नहीं करता और दावा करना व्यर्थ भी है कि हिन्दी का साहित्य या हिन्दी भाषा अन्य भाषाओं के साहित्य अथवा उन भाषाओं की तुलना में बढ़-चढ़ कर या अधिक उन्नत है। हमने तो केवल सुविधा के विचार से एक भाषा को मान लिया है। अंग्रेज़ी को हटा कर उसके स्थान पर हिन्दी का प्रयोग करने में हम जो कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, उसको हमें इतनी मान्यता नहीं देनी चाहिए।

आठ-दस दिन हुए मैं प्रेज़ीडेन्सी कालेज के शताब्दी महोत्सव में भाग लेने के लिए कलकत्ता गया था। मैंने उसी कालेज में शिक्षा पायी थी। आज से ५० वर्ष से भी अधिक पहले जब मैं उस कालेज में पढ़ता था, तब मुझे इसका ज्ञान नहीं था कि वह कालेज प्रायः उन कालेजों में से एक था जो अंग्रेज़ी सिखाने के लिए सबसे पहले स्थापित किये गये थे। पिछले सौ वर्षों से हम अंग्रेज़ी भाषा को देश की अन्य सभी भाषाओं से एक प्रकार का अधिक महत्त्व देते आये हैं, क्योंकि वह हमारे देश में इतने जोर से फैल गयी और उसने ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया कि कोई दूसरी भाषा उसका स्थान नहीं ले सकती। जिस समय मैं पढ़ता था, उस समय हम लोगों के मन में कभी यह विचार भी नहीं आया था। जबकि एक विदेशी भाषा ने १००-१२५ वर्षों के

समय में ही हममें इतना घर कर लिया तो क्या हमारे अपने देश की भाषा, जिसके साथ हमारा इतना सम्पर्क और सम्बन्ध रहा है १०-२० वर्ष में भलीभाँति समझी या सीखी नहीं जा सकती ? ४०-४५ वर्षों से अंग्रेजी केवल अन्तर्प्रान्तीय कामों में ही नहीं बलिक प्रत्येक प्रान्त में भी हमारे सब कामों में आने लगी थी। आप लोगों को स्मरण होगा कि अपने देश में जब हम सभाएँ करते थे तो आपस में हमारे भाषण अंग्रेजी में हुआ करते थे। दुर्भाग्यवश आज भी कहीं-कहीं होते हैं, परन्तु हम नहीं समझ सकते कि जब ४०-४५ वर्षों में एक विदेशी भाषा को इतनी कुशलता से अपनाया जा सकता है, तो क्या हम १५ वर्षों में हिन्दी को नहीं अपना सकते ? अवश्य अपना सकते हैं। पर इसके लिए इसके इतिहास को ठीक-ठीक समझ लेना आवश्यक है।

जैसा कि मैंने कहा, किसी के मस्तिष्क में हिन्दी साम्राज्य की स्थापना करने या बलपूर्वक हिन्दी लादने का न तो कभी कोई विचार था और न इसके लिए कोई प्रयत्न ही हो रहा है। हिन्दी एक अत्यन्त सरल भाषा है और इसी विचार से इसे अपनाया गया है। हम चाहते हैं कि हमारी जितनी प्रादेशिक भाषाएँ हैं वे फलें-फूलें, उनकी जितनी उन्नति हो सकती है उतनी उन्नति हो। इसमें वे तभी सफल हो सकती हैं जब उस भाषा के बोलने वाले स्वयं अपनी भाषा का अभिमान रखें और अपना गौरव मानें। अंग्रेजी भाषा में आज इतना अधिक साहित्य हो गया है कि हमको जिस किसी भी वस्तु की आवश्यकता होती है, वही उसमें मिल सकती है। तो क्या हम अपनी भाषा को उसी प्रकार समृद्ध नहीं बना सकते कि दूसरे लोग हमारी भाषा को इसलिए पढ़ें और सीखें कि उसमें ऐसी चीजें हैं जिनको पढ़ना और सीखना दूसरों के लिए आवश्यक और लाभदायक है। मैं मानता हूँ कि यदि इस प्रवृत्ति और इस भावना से काम किया जाये तो आपस का विरोध नहीं रहेगा और एक-दूसरे के साथ वह सुन्दर स्पर्धा स्थापित हो जाएगी जिसके कारण सबके सब एक-दूसरे के साथ प्रेमभाव रखते हुए आगे बढ़ेंगे और उन्नति करेंगे। हम चाहते हैं कि सभी भाषाएँ उन्नत हों और इसीलिए आपकी तेलुगु भाषा समिति की उन्नति से मुझे प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार और भी प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति हो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी।

मैं चाहता हूँ कि हिन्दी जानने वाले तथा हिन्दी के साहित्यकार हिन्दी की सेवा इसी रूप में करें। केवल यह कहने से कि हम हिन्दी का प्रचार करेंगे, हिन्दी का प्रचार नहीं होगा। यदि आप हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य का निर्माण कर देंगे कि लोगों को उनकी आवश्यकता की सामग्री उपलब्ध हो सके, तो वे बिना प्रचार के ही हिन्दी सीखना आरम्भ कर देंगे। प्रचार का काम केवल इसलिए है कि हम जो सार्वदेशिक काम करना चाहते हैं, उसके लिए जितने ज्ञान की आवश्यकता हो, वह ज्ञान उन लोगों को दिया जाये जिनको यह काम करना है। यह कोई इतना बड़ा काम नहीं जो हो नहीं सकता। मैं आशा करता हूँ कि शेष दस वर्षों में ऐसा काम हो सकेगा कि जो लोग इस काम में लगेंगे उनको उसका पूरा ज्ञान पाने का अच्छा अवसर मिल जाएगा।

हम यह भी नहीं चाहते कि सार्वदेशिक काम में जिन लोगों को हिन्दी का ज्ञान

नहीं है उन्हें कोई असुविधा हो अर्थात् जो नौकरियाँ उनको मिलती हैं, हिन्दी न जानने के कारण नौकरियाँ मिलने में उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो। हम चाहते हैं कि उन्हें जितनी सुविधाएँ दी जा सकें, दी जायें। व्यक्तिगत रूप में से मैं इस बात को मानता हूँ और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने इस चीज़ को मान लिया है कि ऐसे व्यक्ति को, जो भारत सरकार की सेवा में लगा हुआ है, यदि कोई परीक्षा देने की आवश्यकता पड़े तो उसमें हिन्दी को ऐसा अनिवार्य विषय नहीं बनाया जाएगा कि वह अधिक अंक प्राप्त करने पर ही परीक्षा में उत्तीर्ण समझा जाये, बल्कि मैं तो यह चाहूँगा कि हिन्दी का विषय तो अवश्य रखा जाये पर उसके अंक परीक्षा-फल में न जोड़े जायें। नियुक्ति अन्य विषयों के परीक्षा-फल के आधार पर ही हो। उनको जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सके, उसी से काम लिया जाये। आखिर काम तो करना ही है और इसके लिए मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि यदि ऐसे लोगों को एकाध वर्ष की छुट्टी की भी आवश्यकता हो तो सरकार को वह भी देनी चाहिए। यदि इस काम के लिए उनको नित्य एक घण्टे का समय भी देना पड़े तो इसके लिए उनको समय भी मिलना चाहिए। मान लीजिये कि केन्द्रीय सरकार के हजारों कर्मचारी ऐसे हैं जिनको हिन्दी सीखनी है और दिन भर काम करने के बाद इसके लिए समय निकालना उनके लिए सम्भव न हो सके तो मैं यह कहूँगा कि काम के समय में से ही एक घण्टा, दो घण्टे जितना आवश्यक हो उनको उतना समय देकर हिन्दी की कक्षाएँ लगायी जायें और उनमें उनकी हाजिरी भी रखी जाये। उनकी परीक्षा ली जाये और उसमें उत्तीर्ण होने पर उनको अपने स्थान पर काम करने का अवसर दिया जाये।

पदोन्नति के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा नियम रखा जाये कि पांच-छः वर्षों में वे उतनी हिन्दी सीख सकें जिससे उनकी पदोन्नति में कोई बाधा न पड़े। इससे जो लोग हिन्दी सीखना चाहेंगे उन पर बोझ न होगा और वे धीरे-धीरे हिन्दी सीख सकेंगे। राज्य सरकारों को भी इसकी आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि केन्द्र का सम्बन्ध राज्यों के साथ है। जब तक राज्यों में कुछ लोग हिन्दी जानने वाले न होंगे तब तक यह काम सम्भव नहीं होगा। इसलिए राज्य सरकारों को चाहिए कि वे भी अपने यहाँ ऐसे लोग चुन लें जिनको केन्द्रीय काम के लिए अलग रखा जा सके और उनके लिए वैसा ही प्रबन्ध करें जैसा कि मैंने केन्द्र के लोगों के लिए सुझाया है। सरकार ने हिन्दी आयोग नियुक्त किया है। सरकार उसके प्रतिवेदन पर भी विचार करेगी। मैं तो यह स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि दक्षिण के लोगों को अपने मन से यह विचार निकाल देना चाहिए कि हमारा विचार उन पर हिन्दी लादने का है। उनको किसी प्रकार की असुविधा में डालने का विचार न हमारे मन में है और न हमारा यह प्रयत्न है कि उत्तर के लोगों को अधिक स्थान मिल सकें। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जिस प्रकार हिन्दीवालों का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण करें जिससे लोग हिन्दी पढ़ने के लिए लालायित हो जायें, उसी प्रकार दक्षिण के लोगों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे अपने यहाँ हिन्दी का प्रचार करें।

मैं आशा करता हूँ कि आपका यह कार्य अधिक फैलेगा और इससे लोगों में

उत्साह बढ़ेगा। आज से बीस वर्ष या उससे भी कुछ अधिक समय पूर्व मैं आपके इस प्रदेश (तेलुगु-भाषी क्षेत्र) में आया था। मुझे कई स्थानों में यह प्रश्न पूछना पड़ता था कि मैं अंग्रेज़ी में बोलूं या हिन्दी में, क्योंकि दुर्भाग्यवश मैं तेलुगु नहीं बोल सकता था। सत्यनारायण जी मेरे भाषणों का भाषान्तर करते थे। उस समय से मैं जानता हूँ कि आपके तेलुगु-भाषी प्रदेश में हिन्दी के प्रति बड़ा उत्साह है और मैं आशा करता हूँ कि और स्थानों में भी वैसा ही उत्साह होगा और लोग जल्दी से जल्दी इस चीज़ को समझ लेंगे।

जनता के लोकप्रिय भक्त कवि—गोस्वामी तुलसीदास

सन्त तुलसीदास, जिनकी जयन्ती के सम्बन्ध में आज के समारोह का आयोजन किया गया है, एक युग-प्रवर्तक महाकवि और भक्त थे। कविता के क्षेत्र में उनकी असाधारण प्रतिभा और छन्द-सौष्ठव ने जनसाधारण की भाषा का स्तर ऊँचा कर उसे एक विशेष महत्त्व प्रदान किया। उनके भक्तिभाव ने और भगवान् राम के प्रति उनकी अनुपम श्रद्धा ने भारतीय समाज को ऐसे समय जागृत किया जब अधिकांश लोग अकर्मण्य और निराशावादी होते जा रहे थे। अपने भक्तिभाव से उन्होंने उत्तर भारत के समस्त वातावरण को सुरभित और राममय बना दिया। राम चरितमानस ने करोड़ों व्यक्तियों के हृदय में भक्ति के पौधे को फिर से रोपा और तज्जन्य आस्था द्वारा समाज की विचारधारा तथा आचार-व्यवहार और विश्वास में ऐसा मौलिक परिवर्तन हुआ कि हम उसे यदि समाज का कायाकल्प कहें, तो अतिरंजन न होगा।

यही कारण है कि साहित्य में ही नहीं, इतिहास में भी मानव समाज में कवियों को इतना ऊँचा स्थान दिया गया है। विचारक होने के साथ-साथ कवि लोग अत्यधिक प्रभावशाली और प्रतापी होते हैं क्योंकि कवित्व की शक्ति उन्हें ऐसी क्षमता प्रदान करती है कि वे जनसाधारण के अधिक निकट न रहते हुए भी सच्चे जननायक बन जाते हैं। परिस्थितियों के रोचक निरूपण द्वारा और अपनी प्रतिभा तथा कल्पना के बल से जनता का मार्ग-दर्शन कर कविगण आदिकाल से तत्वदर्शी और युग-प्रवर्तक समझे जाते रहे हैं। ऐसे युग-प्रवर्तकों और तत्वदर्शियों में ही तुलसीदास जी की गणना की जाती है। इनकी रचनाओं से, विशेषरूप से रामचरितमानस से लाखों-करोड़ों अनपढ़ व्यक्ति भी परिचित हैं। इन्होंने भक्ति और रामोपासना की जो सरिता बहायी, उससे शिक्षित वर्ग ही लाभान्वित नहीं हुआ,

---

तुलसी जयन्ती (नयी दिल्ली) के अवसर पर भाषण, २६ जुलाई, १९५५

बल्कि अशिक्षित ग्रामीण लोग भी कृतकृत्य हुए। इस दृष्टि से तुलसीदास जी भारत के सफल लोककवि हैं।

एक और दृष्टि से भी तुलसीदास जी को हम सच्चा लोकनायक कह सकते हैं। यदि ऐसे प्रमुख ग्रन्थों की सूची तैयार की जाये जिनसे पीढ़ी दर पीढ़ी लाखों-करोड़ों व्यक्ति प्रभावित हुए हैं और जिन्होंने जनता के दृष्टिकोण, विचार तथा विश्वास और रहन-सहन पर स्थायी छाप डाली है तो निश्चय ही उन थोड़े से ग्रन्थों में तुलसीकृत रामचरितमानस की भी गणना करनी होगी। विगत तीन सौ से अधिक वर्षों से रामचरितमानस की कथा तथा कविता भारत के जनसाधारण के जीवन का अंग बन चुकी है। यद्यपि रामायण की मूल कथा वाल्मीकि ने लिखी थी और उसी आधार पर उत्तर भारत में तुलसीदास ने और दक्षिण में तमिल के महाकवि कम्बन ने उसे जन-साधारण की भाषा में रूपान्तरित किया, किन्तु रामचरितमानस की चौपाइयों और दोहों में व्यक्त की गयी कथा को जो व्यापक मान्यता मिली, उसके कारण यह कहा जा सकता है कि शायद तुलसीदास वाल्मीकि से भी आगे बढ़ गये हैं।

ऐसे महाकवि, भक्त और सच्चे लोकनायक की जयन्ती हमारे लिए राष्ट्रीय पर्व के समान है। तुलसीदास जी की वाणी स्वतः इतनी पवित्र और पावनमयी है कि वह किसी युग विशेष की वाणी नहीं, बल्कि काल और परिस्थितियों से ऊपर है। फिर भी स्वतन्त्र भारत में इस महात्मा की जयन्ती का निश्चय ही विशेष महत्त्व है। भारत जिन परम्पराओं और सद्‌विचारों तथा उन पर आश्रित संस्कृति पर गर्व करता है, तुलसीदास जी का जीवन और उनकी वाणी उसी परम्परा का एक अविभाज्य अंग हैं। हमारे देश का यह सौभाग्य रहा है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में जब कभी हमारे समाज की गति अधोमुखी हुई, उसी समय महापुरुषों और सन्त लोगों ने जनसाधारण के परित्राण के लिए जन्म लिया। इन्हीं पुरुषों के प्रताप का यह फल है कि हमारा राष्ट्र काल की विकरालता का सामना कर सका और गहनतम अन्धकार की घड़ियों से गुजरता हुआ आज भी जीवित है। सन्मार्ग पर चलने के लिए इन महापुरुषों के जीवन तथा शिक्षा से प्रेरणा ग्रहण करना और उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

इसलिए, इन सभी कारणों से आज के आयोजन का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि कम से कम उन प्रदेशों में जहाँ हिन्दी बोली जाती है और रामचरित-मानस का पाठ होता है, तुलसी जयन्ती उत्साहपूर्वक मनायी जाये। मुझे आशा है कि कालान्तर में जैसे ही तुलसी की वाणी का व्यापक प्रचार होगा और जनसाधारण उसका रसास्वादन करने लगेंगे, तुलसी जयन्ती का महत्त्व भी बढ़ता जाएगा और यह एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनायी जाने लगेगी।

आपस के झगड़े बातचीत से तय करें

मैं आप सबका सबसे पहले शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ कि आप जिस मुहब्बत के लिए इतने मशहूर रहे हैं, उसको आपने यहाँ बड़ी मेहरबानी और अच्छी तरह से मुझे दिखलाया है। मुझे इस बात की खुशी है कि बहुत दिनों से जिस दिन का मैं इन्तजार कर रहा था, वह दिन मेरे सामने आया और मैं इस नये प्रदेश में आ कर इस खुशी के मौके पर यहाँ भाग ले सका। इसलिए मैं आप सबको शुक्रिया और मुबारकबाद, दोनों देना चाहता हूँ।

जैसा आपने कहा, यह मुल्क बड़ा है और इस में बहुत किस्म के लोग बसते हैं— मुख्तलिफ मजहब के माननेवाले, मुख्तलिफ जबानों के बोलनेवाले, मुख्तलिफ रहन-सहन और रीति-रिवाजों को माननेवाले। अगर कोई बाहर का आदमी इस मुल्क में आये तो यह देख कर उसको ताज्जुब होगा कि जिन लोगों के बीच आपस में इतनी बातों में इख्तलाफ है, वे एक कैसे हो सकते हैं। मगर सैंकड़ों या यों कहिये हजारों बरस का हमारा इतिहास है कि इन सब इख्तलाफ़ के बावजूद हम सारे हिन्दुस्तान के लिए एक खास कल्चर, एक खास तौर-तरीका और रहन-सहन हमेशा रखते आये हैं। जब इन चीजों की तरफ ध्यान जाता है तो मालूम होता है कि हिन्दुस्तान किसी भी दूसरे गैर-मुल्क से बिलकुल अलहदा है और इसके सब हिस्से एक दूसरे से मिल करके सारे हिन्दुस्तान को बनाते हैं। यह जो एकता हमारे मुल्क में है, वह आज से नहीं कितने ही दिनों से कायम है। वह सिर्फ इन्सान की बनायी हुई चीज नहीं है क्योंकि तीनों तरफ समुद्र और एक तरफ ऐसा हिमालय है जिसको कोई पार नहीं कर सकता। इस तरह से चारों तरफ चार-बन्दी करके ईश्वर ने मुल्क को ऐसा बनाया है कि सब लोग मिल कर और एक हो कर के रहें और खुशी की बात यह है कि हम चाहते हैं कि हम एक हो कर ही रहें।

मुल्क के तकसीम हो जाने की वजह से हमारे देश की दो तरफ पूरब और पश्चिम में कुछ हिस्से कट कर अलग हो गये। मगर तो भी हिमालय की चोटी से कन्याकुमारी तक और पूरब में बंगाल से पश्चिम में अरब की खाड़ी तक जो हिन्दुस्तान अभी है, वह आज से पहले के किसी भी जमाने के उस हिन्दुस्तान से बड़ा है जहाँ एक राजा, एक बादशाह या

उस्मानिया कालेज (कुर्नूल, आन्ध्र) में भाषण, १७ अगस्त, १९५५

शहनशाह राज करता था। आज हम यह कह सकते हैं कि एक छत्र-छाया के नीचे जितना बड़ा हिन्दुस्तान आज है, उतना बड़ा हिन्दुस्तान कभी भी किसी बादशाह या शहनशाह के ज़माने में नहीं था। जितने भी बादशाह, शहनशाह या राजा हुए, उन्होंने खुशी के और रज़ामन्दी के तरीके से हिन्दुस्तान को एक छत्र के नीचे लाने की कोशिश की। सारा हिन्दुस्तान एक बादशाह या एक राजा के मातहत कभी नहीं हुआ। आज किसी के करने या किसी के दबाव से नहीं और न ज़बर्दस्ती से, बल्कि सारे हिन्दुस्तान के लोगों ने अपनी खुशी से, और एक राय हो कर इस बात को तय कर लिया कि सारा हिन्दुस्तान एक है और एक रहेगा। हम यह चाहते हैं कि अगर कहीं किसी मौके पर या किसी बात के लिए आपस में कुछ तफरका हो जाये तो उसको यह समझ कर कि सारा हिन्दुस्तान एक है, इस चीज़ को हम तय कर सकते हैं, न कहीं आपस में झगड़ने की ज़रूरत है और न लड़ने की। महात्मा गान्धी ने जो अहिंसा का रास्ता हमको बतलाया और जो नसीहत हमें दी, उसका मतलब यह है कि इस तरह की सभी बातें, जहाँ कहीं भी आपस में मत-भेद हो जाये, बैठ कर गुफ्तगू करके हम तय कर सकते हैं और हमको करना चाहिए।

जब इतनी मेहनत और इतनी कुर्बानी तथा इतने त्याग-तपस्या के बाद हम भारत को आज़ाद कर सके हैं तो उस सारे भारत को आज़ाद रखने और एक बनाये रखने का काम यहाँ के हरेक मर्द और औरत का है। मुझे आपसे आशा है और मेरा विश्वास है कि इस चीज़ को सब लोग समझते हैं और जैसे-जैसे वक्त बीतेगा वैसे-वैसे लोग इस चीज़ को समझते जाएँगे। इसलिए मुझे इसका डर नहीं था कि उत्तर और दक्षिण का झगड़ा किसी ऐसी हालत तक पहुँच जाएगा कि वह एक-दूसरे से अलग होने को सोचें। यह तो गैर-मुमकिन बात है और अगर अभी कुछ करना है तो यही करना है कि हमारे बीच उत्तर, दक्खिन, पश्चिम और पूरब में जो कुछ भी आपस के तफरीकात हों, ये सब दूर हो जायें। जहाँ तक सरकार का सवाल है, वह सबके लिए है और वह एक बराबर का इस तरह का इन्तज़ाम करना चाहती है जिसमें किसी को यह महसूस न हो कि हमारे सभी के हक एक जैसे नहीं हैं। उसी तरह से भारत के जितने बाशिन्दे हैं, उनका यह फर्ज़ हो जाता है कि वे मुल्क की हिफाज़त में और उसकी आज़ादी को बचाने में सब तरह की कुर्बानी के लिए हमेशा तैयार रहें। हिन्दुस्तान में मुसलमान तो कम हैं, मगर यह सबसे बड़ा दूसरा फिरका है। उनमें आपस में कई बातों में झगड़े हो जाते हैं। झगड़े एक घर में माँ-बाप के बीच में, बाप और बेटे के बीच में, भाई-भाई के बीच में और स्त्री-पुरुष के बीच में हो ही जाया करते हैं। मगर उन झगड़ों का यह तो मतलब नहीं कि घर ही खत्म हो जाये, उसका नतीजा यह होता है कि फिर उसके बाद आपस में सब मिलजुल कर झगड़े तय कर लेते हैं।

मैं जब से यहाँ आया हूँ और मैं जहाँ-जहाँ, जिस-जिस रास्ते पर और जिस-जिस पार्टी में मुझे लोगों से मिलने का मौका हुआ, सब जगहों में मुसलमानों की तादाद ज्यादा थी। मैंने दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि इस शहर के अन्दर मुसलमानों की तादाद काफी है और इस प्रदेश में इस जिले के अन्दर उनकी तादाद अच्छी है। यह खुशी की बात है और इससे भी बड़ी खुशी की बात यह है कि मुसलमानों के इतनी तादाद में होने पर भी आपके

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर में दीक्षान्त भाषण के लिए जाते हुए
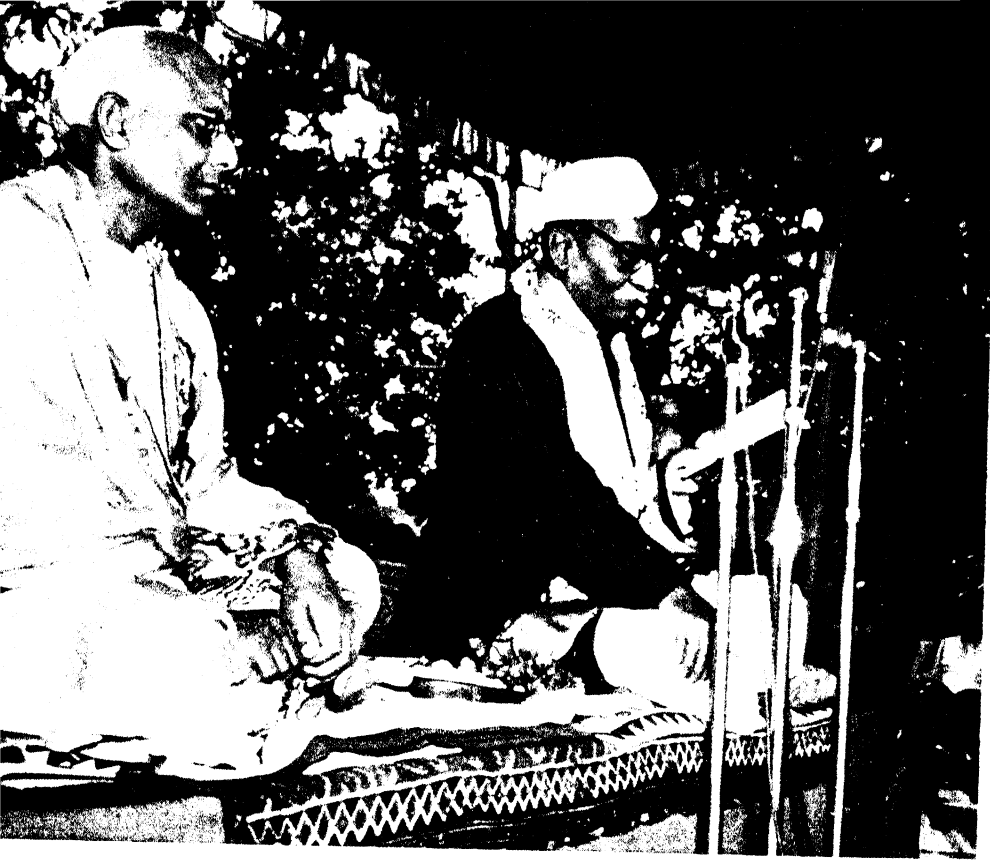
विश्वभारती विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण करते हुए
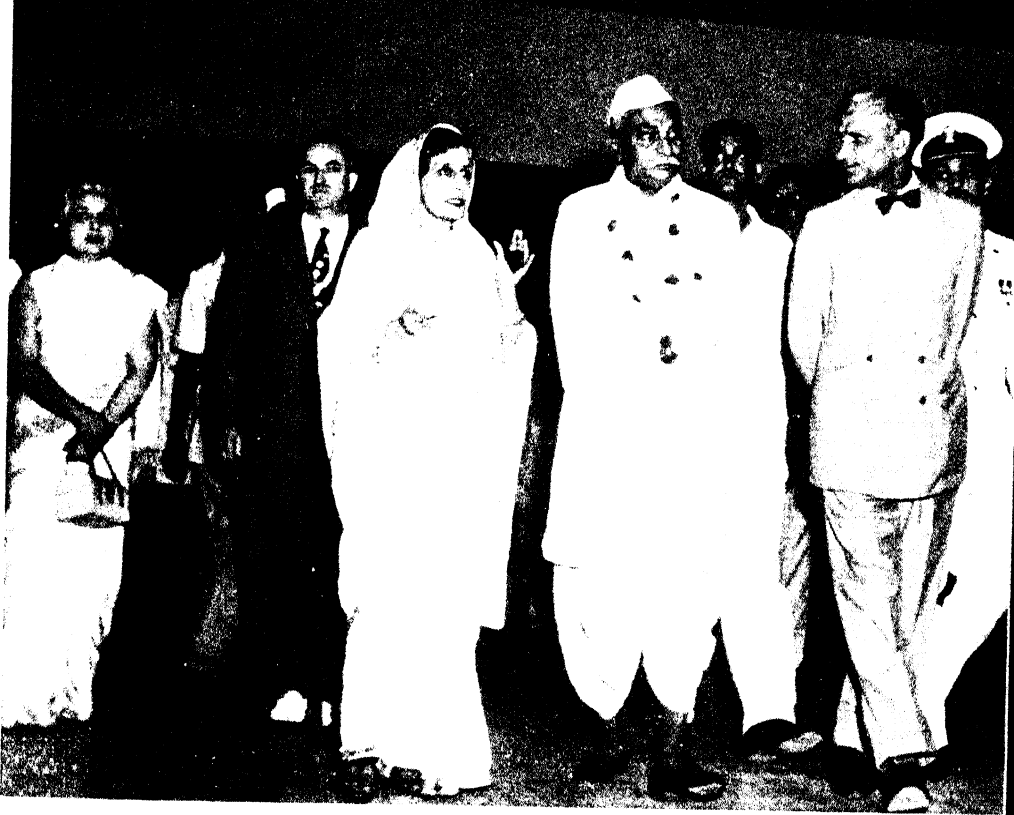
नयी दिल्ली स्थित हरिजन बस्ती में 'महात्मा गान्धी समाज केन्द्र' का उद्घाटन करते हुए
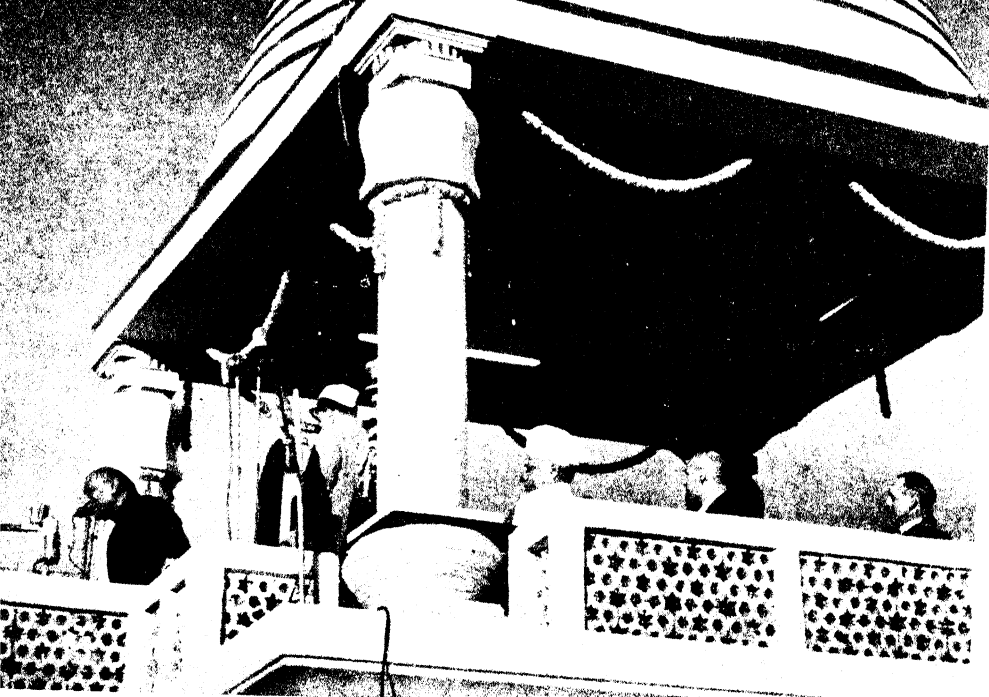
...न बुद्ध के २,५०० वें महापरिनिर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में रामलीला मैदान (दिल्ली) में आयोजित सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए

नयी दिल्ली की डाक और तार विभाग की शताब्दी प्रदर्शनी का निरीक्षण करते हुए
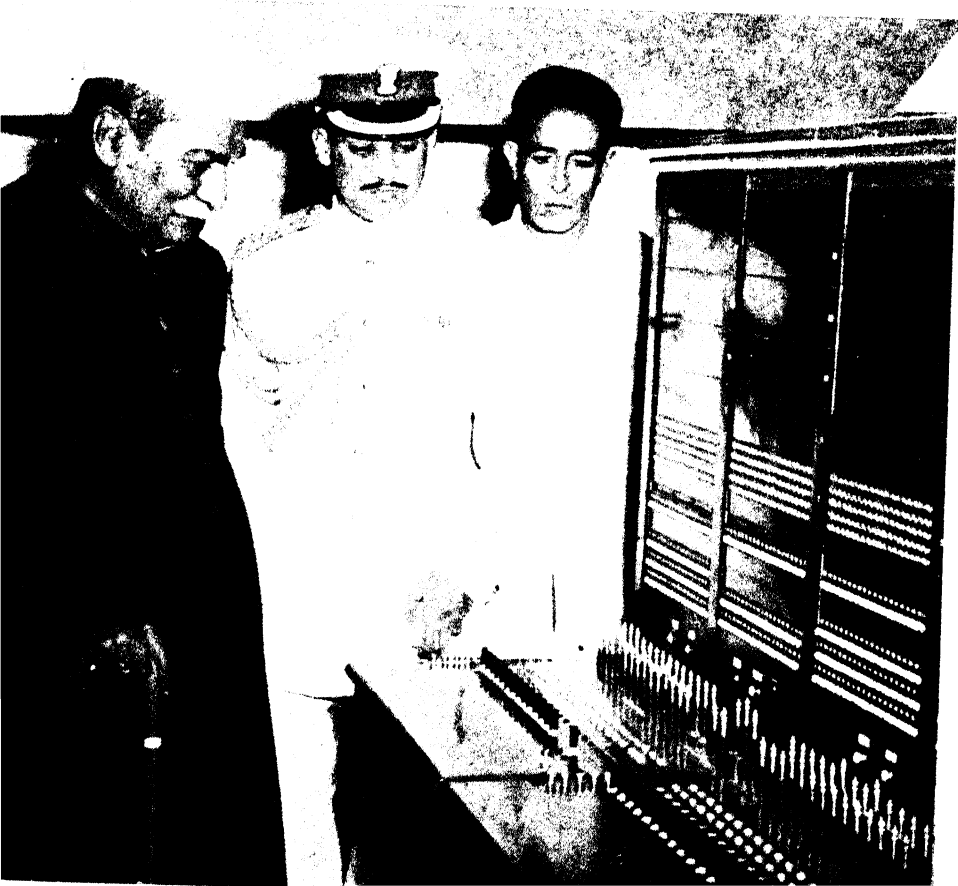
शहर में कभी किसी किस्म का झगड़ा नहीं हुआ है। मैं यह कहता हूँ कि यह चीज़ आईन्दा भी हमेशा के लिए आप कायम रखें और किसी को कहने या आपके खिलाफ उँगली दिखाने का मौका न मिले। इस शहर में अगर झगड़े का कुछ न कुछ ऐसा वाक़या हो गया तो उसका अफसोस सबको होना चाहिए। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है कि आप लोग ऐसा नहीं होने देंगे और इस जगह को इस चीज़ से हमेशा महफूज़ रखेंगे।

अभी आपने ज़िक्र किया कि हमारे मुल्क की इज्ज़त दूसरे मुल्कों में इस वक्त काफी है। यह हमारे प्रधानमन्त्री की वजह से है और जो कुछ उन्होंने खिदमत अपने मुल्क और साथ-साथ दुनिया की की है उसका यह नतीजा है कि आज शान्ति की हवा कुछ न कुछ बहने लग गयी है। कुछ दिन पहले सब जगहों में इस बात का डर रहता था कि कभी न कभी किसी न किसी वजह से लड़ाई शुरू हो जाएगी और दुनिया की आज की जैसी हालत है और जिस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और चीज़ों की तरक्की हुई है उससे यह डर होना कोई गैर-वाजिब या गैर-मुनासिब नहीं है क्योंकि जब इस तरह की चीज़ें जमा हो जाती हैं तो किसी छोटे वाक़ये को लेकर के एक बड़ा वाक़या पैदा हो सकता है। मगर शुक्र है कि जो आवाज़ हमारे प्रधानमन्त्री ने उठायी है, उसको आज दुनिया सुनने लगी है और उसका नतीजा है कि चारों तरफ तनातनी कुछ कम हो गयी है। मैं तो यह उम्मीद रखता हूँ कि अगर इसी तरह से सब चीज़ें चलती गयीं तो कुछ ही दिनों में हम कह सकेंगे कि पूरी तरह से शान्ति कायम हो गयी है। हम सब उस दिन के लिए दुआ करते हैं और आशा है कि हमारे मुल्क की इस नीति को और देश के लोग और भी अधिक समझेंगे और सिर्फ अपना ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया का भला इसी में है।

यों हमारा मुल्क तो आज़ाद हुआ। इसके सब हिस्से आज़ाद हो गये। एक हिस्से का झगड़ा, गोआ का अभी तक रह गया जिसके मुतल्लिक झगड़ा दरपेश है। यह सब हम लोगों को सुन कर अफसोस होता है कि आज १९५५ के साल के अन्दर भी लोगों को गोली से मारे जाने की ज़रूरत पड़े या लोगों को इस चीज़ के लिए जेलखाने जाने की ज़रूरत पड़े कि उनको आज़ादी चाहिए। न मालूम पुर्तगाल सरकार के दिल में क्या है, उसके सलाह-कार कैसे हैं और उसकी अपनी समझदारी कितनी है कि वह ऐसे हालात पैदा होने देती है। जब १९२०-२१ में हमने ब्रिटिश सरकार से हिन्दुस्तान की आज़ादी की इच्छा ज़ाहिर की और उसके लिए आवाज़ उठायी, उस वक्त ब्रिटिश सरकार की ताकत बहुत ज्यादा थी। पहली लड़ाई में जीत करके जब उसने और जगह हासिल कर ली तब वह दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकतों में गिनी जाने लगी और उसके साथ हिन्दुस्तान को बिना हथियारों के लड़ाई चलानी पड़ी। वह तो अहिंसा की लड़ाई थी और उसमें हथियारों की ज़रूरत नहीं थी। तब बहुत से लोग इस बात का मज़ाक करते थे। हम लोगों में से भी जो उस लड़ाई में शरीक हुए और काम कर रहे थे, बहुतों के दिलों में यह शक रहा कि न मालूम इसमें हम कामयाब होंगे या नहीं, और होंगे तो कब तक होंगे। १९२०-२१ की बात को छोड़ दीजिये, १९३०, १९४०, १९४२ तक भी पूरे इतमीनान के साथ कौन कह सकता था कि हिन्दुस्तान अब आज़ाद होकर रहेगा और यहाँ से अंग्रेज़ सिर्फ अपने राज्य को ही न उठा ले जाएँगे

बल्कि यहाँ से एक-एक करके उनके सिपाही भी चले जाएँगे और देश पर हमारा पूरा अधिकार और अख्तियार हो जाएगा। उस वक्त तक जब हम पूरे इतमीनान के साथ यह नहीं कह सकते थे तो दूसरे अगर न कहें तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

मगर हमको यह विश्वास था कि वह दिन बहुत जल्दी आने वाला है और यह सब हो कर रहेगा। पुर्तगाल सरकार की ताकत ब्रिटिश सरकार के मुकाबले कुछ भी नहीं है और जो चीज १६२० में हमने शुरू की थी और जिसमें २७ बरस काम करने के बाद हम कामयाब हो सके उस चीज को पुर्तगाल सरकार के खिलाफ आज सिर्फ भारत सरकार ही नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तान के लोग चाहते हैं और उनके साथ हमदर्दी दिखलाते हैं तो यह समझदारी की बात है। मगर अभी तक पुर्तगाल सरकार ने इस बात को समझा नहीं है। अगर हमने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जिसकी इतनी ताकत थी, हथियार नहीं उठाया और अपने आन्दोलन को इस तरह से चलाया जिसमें कहीं कशमकश न होने पाये तो गोआ के लोगों के सामने यह सब मिसाल अब भी मौजूद है और वे बहुत अच्छी तरह अपना काम चला रहे हैं और हिन्दुस्तान के लोग अच्छी तरह से सब चीजें देख रहे हैं और उनकी मदद करना चाहते हैं। हमें इसका डर नहीं कि इस मामले में वहाँ के लोग नाकामयाब रहेंगे। शायद पुर्तगाल सरकार यह सोच रही हो कि हिन्दुस्तान के लोग घबरा कर कुछ गड़बड़ शुरू कर देंगे तो सारी दुनिया के सामने उसको हम बदनाम कर सकेंगे मगर वे ऐसा नहीं कर सकेंगे। पर उनको बहुत जल्द ही, जो हम और गोआ के लोग चाहते हैं, उसे मानना पड़ेगा और गोआ को हिन्दुस्तान के हवाले करना ही पड़ेगा। ऐसे मौके पर इसका अफसोस जरूर होता है और उन लोगों के साथ हमदर्दी जरूर होती है जिन लोगों ने उसमें मार खायी, जिन्होंने अपनी जानें दीं और दूसरे तरीके से जिनको मुसीबतें और तकलीफें बर्दाश्त करनी पड़ीं। हम यही कहना चाहते हैं कि इन सबका नतीजा यही होगा कि गोआ आजाद होगा और हिन्दुस्तान से मिल कर रहेगा।

विनोबाजी आपके इस प्रदेश में अक्तूबर में आने वाले हैं और अभी आपकी सरहद पर उड़ीसा में दौरा कर रहे हैं। वे जिस काम को कर रहे हैं, उसकी खबर आप सब लोगों को है। वह एक बहुत बड़ा काम है और अगर उसमें उनको पूरी कामयाबी हासिल हो गयी और हम उम्मीद रखते हैं कि होगी तो बहुत-सी चीजों के लिए हमारे सामने रास्ता खुल जाता है। उन्होंने सम्पत्तिदान और भूदान का जो काम शुरू किया, उससे यह बात हम साबित कर सकेंगे कि लोग एक-दूसरे के साथ कितनी मुहब्बत रख सकते हैं और अपनी जायदाद देने में उनको जरा भी अफसोस नहीं होता। वे इस काम को गरीबी दूर करने के लिए कर रहे हैं जिससे सब सुख से रह सकें और मैं उम्मीद रखता हूँ कि जिस तरह से आपके प्रदेश ने महात्मा गान्धी के सारे आन्दोलनों के जमाने में पूरा भाग लिया और किसी से वह पीछे नहीं रहा, उसी तरह से जो कुछ वह चाहते होंगे उसको भी आप पूरा करने में जहाँ तक हो सकेगा मदद करेंगे।

गान्धी जी का नाम सार्थक करें

मैं आप लोगों का आभारी हूँ कि आपने मुझे विद्या मन्दिर के भवन का शिलान्यास करने के लिए आमन्त्रित किया और यह अवसर दिया कि ऐसे विषय पर मैं अपने विचार प्रकट कर सकूँ जिसमें मेरी विशेष रुचि है। जिस महान् विभूति का नाम आपकी संस्था से जुड़ा है और जिन आदर्शों को आपने अपनी शिक्षा संस्था में अपनाने का निश्चय किया है, वह महापुरुष और वे शिक्षा सम्बन्धी आदर्श हमारे लिए श्रद्धा के पात्र और यथासाध्य अनुकरणीय हैं।

इस देश की राजनीति पर महात्मा गान्धी की इतनी गहरी छाप पड़ी है कि उनके महान् व्यक्तित्व के दूसरे पहलुओं की ओर जन-साधारण का अभी तक पूरा ध्यान नहीं गया है। बहुत से लोग गान्धी जी को राजनीति के कार्यक्षेत्र में ही क्रान्तिकारी मानते रहे हैं। वास्तव में, जिन्हें उनके निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे जानते हैं कि गान्धी जी के सुझाव और उनकी विलक्षण विचारधारा ने शिक्षा के क्षेत्र में भी एक क्रान्तिकारी शिक्षा-पद्धति को जन्म दिया है। वे जो कुछ भी करते थे उस काम के व्यावहारिक पहलू की ओर उनका पूरा ध्यान रहता था। उनकी विचारधारा में कोरे सिद्धान्तवाद के लिए कोई स्थान नहीं था। वे जानते थे कि भारत एक कृषि-प्रधान देश है जिसकी ८० प्रतिशत जनता देहातों में रहती है। इसलिए गान्धी जी ने जिस किसी भी काम को अपने हाथ में लिया, उसके प्रचारार्थ ग्राम को ही अपना केन्द्र-बिन्दु माना। राजनीति, घरेलू उद्योग-धन्धे, समाज-सुधार अछूतोद्धार तथा शिक्षा, इन सभी क्षेत्रों में गान्धी जी ने जो कुछ भी किया, वह इस बात को ध्यान में रख कर किया कि अधिकांश भारतीय जनता देहातों में बसती है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक ग्रामीण जनता का सहयोग प्राप्त न हो तब तक इस देश में कोई भी सार्वजनिक आन्दोलन अथवा सुधार की योजना सफल नहीं हो सकती।

इस विचारधारा के परिणामस्वरूप ही वर्धा में बुनियादी शिक्षा का जन्म हुआ। इस नवीन शिक्षा-पद्धति के गुणावगुण का विस्तार में विवेचन न करते हुए मैं यहाँ केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि नयी तालीम भारतीय ग्रामीण जनता के रहन-सहन और उनकी

गान्धी विद्या मन्दिर (सरदारशहर, राजस्थान) के भवन का शिलान्यास करते समय भाषण, २८ अगस्त, १९५५

आवश्यकताओं के अनुरूप है। इस पद्धति द्वारा जो बच्चे शिक्षा प्राप्त करेंगे, उनके बारे में न तो यह डर होगा कि पढ़-लिख कर वे शहरों की ओर भागना चाहेंगे और न यह कि बेकार शिक्षित वर्ग की संख्या में वृद्धि करेंगे।

मुझे जब-जब अवसर मिला मैंने आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। जो शिक्षा-प्रणाली अंग्रेजों ने इस देश में जारी की थी, उसका उद्देश्य कुछ और ही था। उस प्रणाली की रचना विदेशियों के हाथों से हुई थी जो इस देश की परिस्थितियों से इतने परिचित नहीं हो सकते थे जितने स्थानीय नेता थे और हैं। दूसरे उनका प्रधान उद्देश्य सीमित था अर्थात् वे पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों की सहायता से शासन की बागडोर अपने हाथों में थामे रखना चाहते थे। अब स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जबकि न देश में विदेशी शासक हैं और न शिक्षा को सीमित उद्देश्य के जामे में बन्द करके रखने की आवश्यकता है, पुरानी शिक्षा-पद्धति हमारे लिए बेकार हो गयी है। स्वाधीन भारत को ऐसी शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता है जिसका लोगों के दैनिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध हो और जो उनकी दिनचर्या और उनके कामकाज में जन-साधारण की सहायक हो।

यदि हम यह मान कर चलते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य यह है कि शिक्षित लोग जन-साधारण के रहन-सहन और उनकी आवश्यकताओं के निकट रहें, तो हमें शहरों के साथ-साथ गाँवों को भी शिक्षा का केन्द्र बनाना होगा। ग्रामीण जनता की अपनी विशेष आवश्यकताएँ हैं जिन्हें ध्यान में रखे बिना कोई भी शिक्षा-प्रणाली उन लोगों के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। इस सचाई को स्वीकार कर लेने के बाद यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि ग्रामीण लोगों को देहात में स्थित संस्थाओं से ही अधिक लाभ पहुँच सकता है। नवीन शिक्षा-पद्धति और ग्रामीण वातावरण एक दूसरे को प्रभावित करेंगे और दोनों के लिए यह प्रभाव लाभदायक होगा।

इसलिए मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आप लोगों ने निजी परिश्रम और सूझबूझ से सरदारशहर के पास गान्धी विद्या मन्दिर के नाम से एक देहाती शिक्षा संस्था की स्थापना की है। जिस लगन से आपने इस शुभ कार्य को आरम्भ किया है और जिस तत्परता से कुछ भाइयों ने इसे चलाने का बीड़ा उठाया है, उससे विश्वास होता है कि यह विद्यालय शीघ्र ही आगे बढ़ेगा और कालान्तर में इसकी राजस्थान की प्रमुख शिक्षा संस्थाओं में गणना की जाएगी।

गान्धी विद्या मन्दिर में नयी तालीम नामक शिक्षा-प्रणाली को तो आपने चालू किया ही है, इसके साथ ही विभिन्न वर्गों के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किया गया है, वह बहुत उपयोगी और ग्रामीण जनता के लिए आकर्षण सिद्ध होगा। उच्च शिक्षा के आदर्शों को सामने रखते हुए अपने जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के हेतु आपने जो नये पाठ्य-विषय निर्धारित किये हैं वे ग्रामीण जनता में निश्चय ही लोकप्रिय होंगे। आपने इस विद्यालय में नन्हे-मुन्ने बच्चों से लेकर वयस्कों तक की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की है। मेरा विश्वास है कि इस विद्यालय की उद्योगशाला, कृषि फार्म, गो-पालन, वन-विकास

आदि विभागों से इस क्षेत्र के लोग पूरा लाभ उठाएँगे। सीमित साधनों के होते हुए निजी उत्साह के बल पर आपने उपयोगी और चहुँमुखी शिक्षा की योजना बनायी है, उसके लिए गान्धी विद्या मन्दिर से सम्बद्ध सभी लोगों को मैं बधाई देता हूँ। यह एक बहुत बड़ा रचनात्मक कार्य है।

आपके विद्यालय का भविष्य उज्ज्वल है। शायद इसे विश्वविद्यालय का नाम देना ठीक नहीं। न ही यह आवश्यक है क्योंकि विश्वविद्यालय की एक विशिष्ट परिभाषा है और उसका सरकारी नियमोपनियम से सम्बन्ध है। नाम की परवाह न करके आप शिक्षा का ठोस कार्य करते जायें, यही मेरा अनुरोध है।

मेरी हार्दिक कामना है कि यह विद्यालय मरूभूमिवासियों को शिक्षा रूपी अमृत का पान कराये और जिस महान् व्यक्ति के नाम पर आपने इसका नामकरण किया है, उससे राजस्थान के लोगों को देश-प्रेम और सार्वजनिक सेवा के कार्य में प्रेरणा मिले। मैं आपके विद्यालय की सफलता चाहता हूँ और यह आशा करता हूँ कि आप लोगों के प्रयत्नों के फलस्वरूप यह यथाशीघ्र एक बृहत् शिक्षाकेन्द्र का रूप धारण कर लेगा।

कुशल गृहिणी बनाना ही स्त्री-शिक्षा का ध्येय

मैं वनस्थली विद्यापीठ सोसाइटी का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस सुरम्य स्थान में आने का अवसर दिया। वनस्थली में चारों ओर प्राकृतिक सौरभ के दर्शन होते हैं और यहाँ के वातावरण में शान्ति, सरलता और सात्विकता व्याप्त है। इन बालिकाओं और छात्राओं को जो यहाँ रह कर विद्याध्ययन करती हैं, निश्चय ही इस वातावरण से प्रेरणा मिलती होगी। मैं कह सकता हूँ कि मुझ जैसे आगन्तुक भी जो यहाँ अल्प प्रवास के लिए आते हैं, इस प्रेरणा से अछूते नहीं रह सकते।

एक छोटी-सी पाठशाला से आरम्भ होकर वनस्थली विद्यापीठ ने गत २० वर्षों में जो प्रगति की है वह उसके प्रस्थापकों की दूरदर्शिता और यहाँ की शिक्षा-प्रणाली की लोकप्रियता का प्रमाण है। यहाँ शिक्षा के लिए भारत के प्रायः सभी भागों से बालिकाएँ आती हैं, जिनकी संख्या अब ४०० से ऊपर है। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिए छात्राओं को तैयार करने के अतिरिक्त इस विद्यापीठ की विशेषता यह है कि यहाँ कुछ नवीन शिक्षाक्रम की भी व्यवस्था की गयी है। इस शिक्षाक्रम के अन्तर्गत गृहविज्ञान तथा ललित कलाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाता है। चित्रकला, वाद्य

वनस्थली विद्यापीठ (पिलानी, राजस्थान) में भाषण, ३० अक्तूबर, १९५५

तथा गायन संगीत, शारीरिक शिक्षा और प्रायोगिक शिक्षा इस पाठ्यक्रम के मुख्य अंग हैं। मैं प्रायोगिक शिक्षा की विशेष सराहना करना चाहूँगा जिसमें भोजन बनाना, घरेलू औषधियाँ तैयार करना, सीना, कसीदा निकालना, कातना, जिल्दसाजी, दरी और कालीन बुनना, चमड़े का काम, खिलौने बनाना आदि उपयोगी काम सम्मिलित हैं। इस शिक्षाक्रम में और बुनियादी शिक्षा में बहुत-कुछ सादृश्य है। बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ बच्चों को यदि हाथ का काम या साधारण दस्तकारी भी सिखायी जाये तो इससे बच्चों के सर्वांगीण विकास में विशेष सहायता मिलती है।

इस अवसर पर मैं साधारणतः शिक्षा के सम्बन्ध में और विशेषकर महिलाओं की शिक्षा के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। किसी भी देश की शिक्षा-पद्धति का वहाँ की परिस्थितियों, वहाँ के दैनिक जीवन और तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। हमारा देश भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। जो शिक्षा-प्रणाली हमारे यहाँ गत एक-दो शताब्दियों से चल रही है, उसकी रूप-रेखा अंग्रेजी शासन द्वारा अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार की गयी थी। उस काल में इस प्रणाली से भी थोड़ा-बहुत उपकार हुआ और शिक्षा का प्रचार हुआ। परन्तु स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हमारे उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं का अधिक व्यापक हो जाना स्वाभाविक था। अब पुराने ढर्रे की शिक्षा-प्रणाली से काम चलना कठिन है। इस प्रणाली से जहाँ शिक्षितों की संख्या में वृद्धि हो रही है, वहाँ कई एक नवीन समस्याएँ भी पैदा होती जा रही हैं। उदाहरण के लिए, इसके द्वारा रोजगार की समस्या और भी जटिल हो गयी है। सभी पढ़े-लिखे व्यक्ति नौकरियाँ ढूढ़ते हैं और शारीरिक परिश्रम से दूर भागते हैं। यही नहीं, वे प्रायः पीढ़ियों से चले आने वाले अपने बाप-दादा के काम से भी विमुख हो जाते हैं और शहरी जीवन को ही जीवन का ध्येय मानने लगते हैं।

यदि हम अपने देश का कल्याण चाहते हैं और शिक्षा को सच्चे वरदान के रूप में देखना चाहते हैं, तो हमें इस विचारधारा को रोकना होगा और शिक्षा तथा शारीरिक श्रम में सामंजस्य स्थापित करना होगा। जहाँ तक स्त्री शिक्षा का सम्बन्ध है, उसकी आवश्यकताएँ किसी हद तक साधारण शिक्षा से भिन्न हैं। स्त्री का कार्यक्रम व्यावहारिक जीवन में वही नहीं कहा जा सकता जो पुरुष का है। मैं मानता हूँ कि नागरिकों के रूप में स्त्री और पुरुष के बीच भेद-भाव करना हमें पसन्द नहीं और इसलिए हमने अपने संविधान में दोनों को समान अधिकार दिये हैं। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि अधिकांश महिलाओं को गृहिणी बनना होता है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम है और इसकी अपनी आवश्यकताएँ हैं। यदि एक महिला उच्च शिक्षा प्राप्त करके कुशल गृहिणी बनने में कठिनाई महसूस करती है, तो समझना चाहिए कि उसकी शिक्षा दोषपूर्ण रही है। महिलाओं के लिए हम उसी शिक्षा को उपयोगी कह सकते हैं जो अन्य बातों के साथ-साथ उन्हें कुशल गृहिणी बनने की भी प्रेरणा दे। उनका शिक्षाक्रम उनकी भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर तैयार किया जाना चाहिए जिसमें शिक्षा-काल और बाद के व्यावहारिक जीवन में अधिक से अधिक सामंजस्य और तालमेल स्थापित हो सके।

मुझे प्रसन्नता है कि वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापकों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। देश के अन्य भागों में भी अब इस ओर ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा के पुनर्गठन का व्यापक प्रश्न केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सामने है। आशा की जाती है कि इस समस्या पर भरपूर विचार किया जाएगा।

अभी आपने शास्त्री जी का भाषण ध्यान-पूर्वक सुना और उन्होंने मुझ से एक विशेष अनुरोध भी किया। शास्त्री जी स्वयं इस राज्य के मुख्यमन्त्री रह चुके हैं और उस पद पर रहते हुए उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया, उसके तथा हमारे संविधान के ज्ञान के आधार पर उन्होंने यह भी आपको बताया कि मुझ पर भी कई प्रकार के बन्धन हैं और कुछ समस्याओं पर अपना मत रखते हुए भी मैं खुल कर स्पष्ट रूप से नहीं बोल सकता। यद्यपि मैं बहुधा ज्यादती करके बोल दिया करता हूँ। यह अभिलाषा कि इस विद्यापीठ को विश्वविद्यालय का रूप दे दिया जाये, एक शुभ और स्वाभाविक अभिलाषा है और इसको पूरा करना आपका काम है। मुझे यह भी भरोसा है कि जिस प्रकार आज तक इस संस्था ने उन्नति की, उसी प्रकार अन्य अभिलाषाओं की भाँति आपकी यह आशा भी पूरी होगी। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप अपनी ओर से प्रयत्न करते जायें—"हिम्मते मर्दां मददे खुदा।" इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं कि यदि आप अपने यत्न में लगे रहेंगे तो आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। यह कहना कठिन है कि पूरी आज हो जाएगी या कल। हमको और आपको इस प्रकार की संस्थाओं के काम करने के उन नियमों के अनुसार वैधानिक रूप से चलना है और जो व्यक्ति शिक्षा के अधिकारी हैं, वे चाहे यहाँ के मन्त्री हों या केन्द्र के, नियम के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकते। परन्तु जहाँ इच्छा होती है, वहाँ मार्ग भी निकल ही आता है। नियम आदि अच्छे कामों में बाधक नहीं हो सकते। इसलिए मैं आपको इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि आप अपनी ओर से प्रयत्न करते जायें और जो दूसरों को करना है, वे उस पर सोचेंगे और जो कुछ वह कर सकते हैं, मुझे विश्वास है कि वह भी अपनी ओर से करेंगे।

हमारे देश में शिक्षा की स्थिति एक प्रकार से शोचनीय है। मैं जब पिछले ५० वर्षों में हुई शिक्षा की प्रगति पर विचार करता हूँ तो जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ता है। जहाँ उस समय सारे देश में ५ विश्वविद्यालय थे आज कम से कम ३०-३३ विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके हैं। मैं अपने जिले के बारे में कह सकता हूँ क्योंकि उससे अधिक परिचित हूँ। उस समय हमारे जिले में, जो बिहार का एक जिला है, केवल ५ स्कूल थे पर आज कम से कम सौ-सवा-सौ अवश्य हैं। बिहार भर में उस समय कालेजों की संख्या चार थी और आज मैं समझता हूँ कि वहाँ कम से कम ५० कालेज हैं। मेरे विचार में सारे देश में शिक्षा इसी अनुपात से बढ़ी है। परन्तु कुछ नयी समस्याएँ पैदा हो गयीं और होती जा रही हैं। आज के शिक्षित लोगों में से अधिकांश ऐसे हैं जो किसी भी रोज़गार के योग्य नहीं हैं। इस शिक्षा का फल यह हो रहा है। इसमें बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है। आज इस बात की भी आवश्यकता है कि हम अपनी संस्कृति को न भूलें। और साथ ही यह भी ध्यान रखें कि हम किसी विदेशी चीज को विदेशी होने के कारण ही न त्याग दें। जो त्याज्य

है उसको त्यागना ही चाहिए और जिसे अपनाना है उसे अपनाना चाहिए। हमारे शिक्षाक्रम का उद्देश्य यह होना चाहिए कि जो कुछ विदेशों से संग्रह करने योग्य है, उसे संग्रह करें और जो त्याज्य है, चाहे वह अपना ही क्यों न हो, उसको छोड़ दें। इस आदर्श को अपने सामने रख कर ही आपने अपना शिक्षाक्रम बनाया है। मैं चाहता हूँ कि सारे देश की शिक्षा-प्रणाली में इस प्रकार विवेक से काम लिया जाये और शिक्षा-प्रणाली ऐसी बनायी जाये जिससे ऐसे नागरिक तैयार किये जा सकें जो भारत की एकता और स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकें। भारत की कुछ ऐसी विशेषता है कि जो भाँति-भाँति की विपत्तियों का सामना करते हुए आज हजारों वर्षों के बाद भी वह जीवित-जागृत है। मेरा विश्वास है कि हमारे पास कुछ ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम संसार को दे सकते हैं और संसार उन्हें चाहता भी है। केवल अपनी दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानवमात्र की दृष्टि से उनका संग्रह करना हमारा परम कर्तव्य है और वह हम तभी कर सकते हैं जब हम अपनी शिक्षा-पद्धति और शिक्षाक्रम को उसके अनुरूप बनाएँगे। इसलिए मेरा इस प्रकार की संस्थाओं में बहुत अधिक विश्वास होता है क्योंकि मैं इस बात को मानता हूँ कि सरकारी संस्थाएँ ऐसा काम नहीं कर सकती। जब कोई नया काम करना होता है उसको इसी प्रकार की संस्थाएँ आरम्भ कर सकती है। आप जो काम यहाँ कर रहे हैं, वह केवल कुछ बालिकाओं के लिए ही नहीं, बल्कि सारे देश के लिए लाभदायक है। यहाँ एक नये प्रकार का प्रयोग हो रहा है जिसकी ओर सम्पूर्ण देश की आँखें लगी हुई हैं।

मैं वनस्थली विद्यापीठ से अपरिचित तो नहीं किन्तु मुझे खेद है कि इसके साथ मेरा जितना घनिष्ट सम्पर्क चाहिए, उनता नहीं हो पाया है। उसका कारण समय और सुअवसर का अभाव है। इस संस्था की कोई त्रुटि नहीं है। मेरा विश्वास है कि आपका विद्यापीठ समाज की प्रशंसनीय सेवा कर रहा है। सादा जीवन, उच्च विचार, यह आपका आदर्श है। वनस्थली की भौगोलिक स्थिति, यहाँ का स्वच्छ जलवायु, शान्तिपूर्ण वातावरण और ग्राम्य तथा सात्विक जीवन, इन सबका अपना ही आकर्षण है। इसलिए यह जानकर कि यहाँ प्रायः सभी प्रदेशों से बालिकाएँ पढ़ने आती हैं और छात्राओं की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है, मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि यह विद्यालय दिनोंदिन उन्नति करेगा और स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बनाये रखेगा।

संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की जननी

मुझे इस बात का बहुत हर्ष है कि मैं पहले की भाँति इस वर्ष भी संस्कृत विश्व परिषद् के वार्षिकोत्सव में भाग ले रहा हूँ, जो वेंकटेश्वर की पवित्र नगरी तिरुपति में हो रहा है। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूँ और न यह दावा कर सकता हूँ कि मैं इस भाषा के अध्ययन के लिए अपनी इच्छा के अनुरूप समय दे सका हूँ। नम्रतापूर्वक केवल इतना ही कह सकता हूँ कि संस्कृत के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा और प्रेम है।

संस्कृत के प्रति निजी दृष्टिकोण का जब मैं विश्लेषण करता हूँ तो इस श्रद्धा के दो कारण दिखायी देते हैं—संस्कृत भाषा की उपादेयता और हमारी भावुकता। संस्कृत वह भाषा है जिसमें भारत की संस्कृति, हमारे अतीत का गौरव तथा भारत की आध्यात्मिक आकांक्षाएँ आदि सभी प्रतिबिम्बित होती हैं। भारतीय ज्ञान-भण्डार संस्कृत के अतिरिक्त पाली और प्राकृत में भी उपलब्ध है किन्तु ये दोनों भाषाएँ भी संस्कृत से मिलती-जुलती हैं। वास्तव में, पाली और प्राकृत का महत्त्व स्वयं संस्कृत के अध्ययन के पक्ष में एक प्रमाण है, क्योंकि संस्कृत के ज्ञान के बिना इन भाषाओं को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं। चाहे हम इस देश के प्रसिद्ध दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करें अथवा नृत्य तथा संगीत आदि भारत की ललित कलाओं के विकास की खोज करें या इस देश के प्राचीन इतिहास के टूटे हुए क्रम को जोड़ने का प्रयास करें, इन सभी कार्यों के लिए संस्कृत का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

यह सभी जानते हैं कि सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वानों ने अपने गहन तथा आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा संस्कृत साहित्य की विशेष सेवा की है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि उन विद्वानों के अध्यवसाय के बिना मानवीय विचार तथा संस्कृति के विकास में संस्कृत का जो ऊँचा स्थान रहा है, उसे समझना असम्भव हो जाता। रोजर ने भर्तृहरि के पद्यों का डच भाषा में सतरहवीं सदी में अनुवाद किया था। अठारहवीं सदी में विलकिंस महाशय ने काशी में अध्ययन किया और भगवद्गीता, हितोपदेश तथा शकुन्तला का अंग्रेजी में अनुवाद किया। शिलर तथा गेटे सरीखे प्रसिद्ध जर्मन कवि इन अनुवादों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। कौलब्रुक की चिरस्थायी कृतियाँ—संस्कृत कोष, हिन्दू विधि, संस्कृत व्याकरण

संस्कृत विश्व परिषद् के वार्षिकोत्सव (तिरुपति) पर भाषण, ११ नवम्बर, १९५५

और किरातार्जुनीय का अनुवाद—उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुई। लगभग इसी समय रूसी भाषा में रामायण और महाभारत के अनुवाद भी प्रकाशित हुए। रोजन और मैक्समूलर ने १८४०-७० में वेदों का अनुवाद किया। कई विदेशी विश्वविद्यालयों में १०० वर्ष हुए संस्कृत अध्यापन के लिए पृथक् विभाग खोले गये थे। जर्मन और फ्रांसीसी विश्वविद्यालयों में १७६२ में ही संस्कृत-अध्यापन की व्यवस्था हो गयी थी। आजकल काबुल विश्वविद्यालय में संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है।

इन सब बातों के कारण ही मैं समझता हूँ कि संस्कृत का पठन-पाठन बहुत उपयोगी है। दूसरी बात, भावुकता के सम्बन्ध में जो मैंने कही, उसका आधार भी संस्कृत की उपादेयता ही है। जैसा मैंने अभी कहा संस्कृत साहित्य इस देश का बृहत् ज्ञान-भण्डार है, जिसमें इस देश की दर्शन तथा कला-सम्बन्धी विचारधारा सन्निहित है। भारत की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं और सांस्कृतिक परम्परा का प्रमुख माध्यम होने के अतिरिक्त, संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्‌गम-स्रोत भी है। दक्षिण की चार भाषाओं पर भी जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से द्रविड़ कुल की भाषाएँ हैं, पारस्परिक सम्पर्क तथा आदान-प्रदान के कारण संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा है।

मैंने प्रायः यह सुना है कि सदियों तक समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधे रखने का श्रेय संस्कृत भाषा को है। मुझे इस कथन में काफी सचाई जान पड़ती है। आप कल्पना कीजिये कि दो हजार वर्ष पूर्व जब कि भूगोल तथा विस्तार की दृष्टि से हमारा देश आधुनिक भारत से बड़ा था, दूरस्थ प्रदेशों के निवासी किस प्रकार पारस्परिक व्यवहार करते होंगे और आपसी सम्पर्क बनाये रखते होंगे। उस प्राचीन काल में जिन दिनों आज की तुलना में यातायात के साधन न होने के बराबर थे, समस्त देश में सामान्य रीति-रिवाज धार्मिक विश्वास और लगभग एकजैसी शिक्षा पद्धति किस प्रकार सम्भव हुई होगी। साधारण अभिव्यक्ति और साहित्य का एक सामान्य माध्यम प्राप्त होने के कारण ही सब कुछ हो सका, और यह निर्विवाद है कि वह माध्यम संस्कृत भाषा थी। प्रादेशिक भाषाएँ निस्सन्देह विभिन्न प्रदेशों में बोली जाती थीं किन्तु प्राचीन काल में यदि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा कह सकते थे तो वह संस्कृत थी। इसका उन दिनों वही पद रहा होगा जो आधुनिक काल में विभिन्न देशों में उनकी राष्ट्रभाषाओं का है। इस देश के सांस्कृतिक विकास में संस्कृत का कितना ऊँचा स्थान है, यह समझने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

मेरा यह अभिप्राय नहीं कि हम संस्कृत को फिर से अन्तर्प्रादेशिक आसन पर पदासीन कर दें या ऐसा कर सकते हैं, यद्यपि मुझे ज्ञात है कि कुछ लोगों द्वारा इस प्रकार की माँग भी की गयी है। इस सम्बन्ध में संस्कृत की व्यावहारिकता तथा वांछनीयता के बारे में कुछ न कह कर मैं इतना ही निवेदन करना चाहूँगा कि आज की परिवर्तित स्थिति में भी संस्कृत का अध्ययन इस देश के लिए निस्सन्देह बहुत मूल्यवान सिद्ध होगा। इस भाषा का पद हम चाहे जो निर्धारित करें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि यह हमारी सभी आधुनिक भाषाओं की आधारशिला है।

विभिन्न भारतीय प्रदेश एक दूसरे से काफी दूर स्थित हैं और उन सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ, रीतिरिवाज और परम्पराएँ हैं। यह सब होते हुए भी, जब उत्तर भारत का निवासी दक्षिण भारत के जीवन में उसी प्रकार की आस्थाएँ और कर्मकाण्ड देखता है, तो वह मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। कुछ महीने हुए जब मैं वन-महोत्सव के दिन संयोग से हैदराबाद के किसी ग्राम में था मुझे वृक्षारोपण के लिए कहा गया। वृक्ष लगाने से पूर्व जिन मन्त्रों आदि का उच्चारण किया गया और जिस विधि का अनुसरण किया गया, वह ठीक वही थी जो प्रति वर्ष मैं राष्ट्रपति भवन में देखता हूँ। यह सादृश्य उन सभी रिवाजों के सम्बन्ध में देश भर में पाया जाता है, जिन्हें हम सोलह संस्कार कहते हैं और जिनका पालन करना प्रत्येक हिन्दू अपना कर्त्तव्य समझता है।

यही कारण है कि आपकी परिषद् का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना और इस देश में उस भाषा को उसके महत्व के अनुरूप स्थान दिलाना है। निस्सन्देह, इस सभा में उपस्थित विद्वत्मण्डली इस विषय पर विवेचनात्मक रूप से विचार करेगी और इस दिशा में देश का पथ-प्रदर्शन कर सकेगी। इस सत्प्रयास में मैं हृदय से परिषद् की सफलता की कामना करता हूँ।

शिक्षा का रूप क्या हो

सबसे पहले मैं आपको इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ कि आपने मुझे इस सम्मेलन में कुछ कहने का अवसर दिया है। आपके सामने जो विषय आएँगे वे इतने महत्त्व के हैं कि हरेक हिन्दुस्तानी चाहे वह किसी भी काम में लगा हो उन पर कुछ न कुछ ध्यान अवश्य देता होगा।

यह एक मानी हुई बात है कि बच्चा जैसा तैयार किया जाता है वह बड़े होने पर वैसा ही निकलता है। शिक्षा का काम यही है कि उसको अच्छी तरह से सुलझे तरीके पर तैयार करे और उसको इस योग्य बनाये कि उसे जिस किसी भी काम में लगाया जाये वह उस काम को कुशलता और सफलता के साथ पूरा कर सके। हमारे देश में जो शिक्षा-पद्धति अभी तक जारी है, वह नयी नहीं है बल्कि यदि मैं यह कहूँ कि वह १२५ वर्ष पुरानी है तो गलत नहीं होगा। १२५ वर्ष पहले जिस उद्देश्य को सामने रखकर यह शिक्षा-पद्धति जारी की गयी थी, वह उद्देश्य अब नहीं रहा पर शिक्षा-पद्धति अब तक लगभग वही है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में हुए ३०वें अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण, २८ दिसम्बर, १९५५

मैं मानता हूँ कि इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि उसमें परिवर्तन किया जाये जिससे हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता मिल सके। जहाँ तक मुझे मालूम है इस काम में अभी तक हम सफल नहीं हुए हैं। मैं तो शायद यह भी कह सकता हूँ कि उस शिक्षा-पद्धति को बदलने में जो प्रयास किया जाना चाहिए था वह अभी तक नहीं किया गया है।

इस देश में या सभी देशों में शिक्षा के तीन भाग होते हैं। एक तो वह जिसमें छोटे-छोटे बच्चों को शिक्षा दी जाती है, दूसरा वह जिसमें युवावस्था के पहले बड़े होने तक और तीसरा वह जिसमें युवावस्था के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। इन तीनों भागों की शिक्षा-पद्धतियाँ अलग-अलग हैं परन्तु वे एक-दूसरे से मिलती-जुलती होती हैं, और एक से दूसरे में जाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसलिए यदि हम अपने देश की शिक्षा में सुधार चाहते हैं तो सबसे अधिक आवश्यक यह है कि सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षा में सुधार किया जाये। उसके बाद माध्यमिक शिक्षा और विश्वविद्यालय के स्तर की शिक्षा में सुधार किया जाना चाहिए। मैं किसी को दोष नहीं देता, परन्तु जबसे हम स्वतन्त्र हुए हमने पहले विश्वविद्यालयिक शिक्षा में सुधार करने का निश्चय किया और विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया। उसके बाद माध्यमिक शिक्षा आयोग नियुक्त हुआ और प्राथमिक शिक्षा पर अब विचार किया जा रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि जो लोग शिक्षा के काम में लगे हुए हैं उन्होंने प्राथमिक शिक्षा को बिलकुल भुला रखा है। परन्तु यदि हम प्राथमिक शिक्षा से आरम्भ करके ही माध्यमिक और विश्वविद्यालयिक शिक्षा को हाथ में लेते तो हमें जो आज देखने को मिल रहा है, वह देखने को न मिलता। पहले तो विश्वविद्यालयों में स्थान प्राप्त करने में कठिनाई होती है और यदि स्थान मिल भी गया तथा किसी प्रकार से विश्वविद्यालय की उपाधि ले भी ली तो उसके बाद न तो वे अपने गाँव में लौट कर काम करने योग्य रहते हैं और न उनमें शहरों में काम करने की योग्यता रहती है। विश्वविद्यालयों से आज जितने स्नातक शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं उनमें से बहुतेरे निकम्मे होते हैं। इसमें उनका कोई दोष नहीं, क्योंकि उनको जैसा सिखाया-पढ़ाया जाता है वैसा ही वे सीख पढ़ सकते हैं।

बहुधा कहा जाता है कि विद्यार्थियों का स्तर इतना निम्न कोटि का हो गया है कि २५-३३ प्रतिशत लड़के ही पास होते हैं। विद्यार्थी जब पास करने के लिए पढ़ते हैं तो उनको फेल क्यों होना चाहिए। सच बात तो यह है कि विद्यार्थियों को फेल करने के बदले शिक्षकों को फेल करना चाहिए। पास होने वाले विद्यार्थियों में वृद्धि होने के साथ-साथ स्कूलों और कालेजों के स्तरों को भी उन्नति करना चाहिए। यदि छोटी कक्षाओं में स्तर नीचा रहा तो बड़ी कक्षाओं में वह ऊँचा नहीं हो सकता। विद्यार्थी कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा अवश्य ग्रहण करें, परन्तु उन्हें उसके योग्य भी होना चाहिए। जैसा अभी आपने कहा कि विद्यार्थी कालेजों और विश्वविद्यालयों में तो पहुँचते हैं पर वहाँ की पढ़ाई से लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि उनमें ऐसी योग्यता नहीं होती कि वे उस चीज को भलीभाँति समझ सकें। उसी का फल यह होता है कि वे फेल होते हैं। विद्यार्थियों को फेल करने का अर्थ है उनका

जीवन नष्ट करना, उनके माता-पिताओं के धन का अपव्यय तथा विद्यार्थियों को परेशान करना। इसलिए हमारी शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि जो जिस प्रकार की शिक्षा के योग्य हो, उसको वैसी ही शिक्षा दी जाये। ऐसी परीक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए जिनसे योग्य विद्यार्थियों को कुशलता से छाँटा जा सके और उन्हीं विद्यार्थियों को ऊपर की कक्षाओं में चढ़ाया जाये। शेष विद्यार्थियों में से जो जिस काम के योग्य हो, उसको वह काम दिया जाये। ऐसा करने से न तो माता-पिताओं के धन का अपव्यय होगा और न लड़कों का समय व्यर्थ जाएगा। इसका अर्थ यह नहीं कि कोई ऊपर नहीं जा सकता। इसका अर्थ इतना ही है कि ऐसी जाँच की जानी चाहिए कि किस विद्यार्थी में कितनी योग्यता है। जो ऊँची कक्षाओं में चढ़ाने के योग्य न हों, उन्हीं को रोका जाये और वे जिस काम के योग्य हों वह काम उनको दिया जाये। इस प्रकार सब अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार कुछ-न-कुछ काम करने लग जाएँगे।

आज कल जिधर देखो उधर ही हाई स्कूल खोलने का रिवाज-सा हो चला है। जब मैं उन दिनों की तुलना आज से करता हूँ जिस समय मैं पढ़ता था तो मालूम पड़ता है कि कितना परिवर्तन हुआ है। आज स्कूलों और कालेजों की संख्या कहीं अधिक बढ़ गयी है। मेरी पढ़ाई के समय में जितने स्कूल-कालेज थे आज उनकी संख्या उनसे सौ गुना है। सभी लोग इस प्रयत्न में रहते हैं कि प्रत्येक सब-डिवीजन में एक कालेज अवश्य हो जाये। पुराने समय में धनी किसान हाथी रखा करते थे और उनका देहातों में बड़ा आदर था। सबकी यह इच्छा होती थी कि वे भी इस योग्य हो जायें कि वे हाथी रख सकें। इसी प्रकार आजकल लोग कालेज पर कालेज खोलना चाहते हैं। उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि इनसे कुछ लाभ होता है या नहीं बल्कि एक चीज़ कर देना चाहते हैं इसलिए उसको करना चाहते हैं। मैं उनका उत्साह भंग नहीं करना चाहता परन्तु एक चीज़ अवश्य चाहता हूँ। आज आवश्यकता इस बात की है कि स्कूल कालेज भिन्न-भिन्न प्रकार के खोले जायें जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाये। स्कूल-कालेजों का अपना-अपना विशेष उद्देश्य होना चाहिए। आज प्राविधिक स्कूल-कालेजों की बहुत आवश्यकता है। उनका इस देश में बहुत अभाव है। इसलिए मैं तो यह चाहूँगा कि नये-नये प्राविधिक स्कूल-कालेज खुलें तो अधिक अच्छा होगा। यह काम शिक्षा विभाग के अधिकारी लोगों का है कि वे इस बात की ओर ध्यान दें कि देश में किस प्रकार की शिक्षा संस्थाओं की कितनी आवश्यकता है। यहाँ जो शिक्षाशास्त्री एकत्रित हुए हैं, उनको इस विषय में मेरे से अधिक अनुभव है और वे ही यह समझ सकते हैं कि आजकल जो शिक्षा दी जा रही है उससे देश को लाभ हो रहा है या नहीं। यों तो कोई कालेज खुल जाने से लाभ ही होता है, परन्तु सोचने की बात यह है कि उस पर जितना व्यय होता है और जितना समय लगता है वह विद्यार्थियों के लिए या हमारे लिए लाभदायक है या नहीं। मेरा आप से अनुरोध है कि आप इस पर विचार करें और देश को बतायें कि नये स्कूल-कालेज खोलने की आवश्यकता है या नहीं। आप जो कुछ बताएँगे उस पर सब लोग अवश्य ध्यान देंगे।

विद्यार्थियों के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहना

चाहता। मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि जो सम्बन्ध विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में होना चाहिए, वह नहीं है। एक समय था जब हमारे देश में शिक्षा का काम आदर का काम समझा जाता था। उस समय हम देखते थे चाहे मौलवी हों या पण्डित, उनको अधिक धन प्राप्त नहीं होता था। वे चाहे कैसी भी स्थिति में हों, सब लोग उनका आदर करते थे। उस समय शिक्षकों को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। आजकल हम सब यह समझते हैं कि आदर पैसे से होता है। जब से मैं सरकार में आया हूँ तब से लगभग नित्य यह सुनना पड़ता है कि इस स्थान का उत्तरदायित्व बहुत है इसलिए वेतन अधिक होना चाहिए अर्थात् अधिक उत्तरदायित्व के कारण वेतन अधिक हो और वेतन अधिक है तो उत्तरदायित्व अधिक हो। इस प्रकार दोनों चीजों को मिला दिया जाता है। सच पूछिये तो शिक्षक का काम उत्तरदायित्व का अधिक है क्योंकि उनका काम अपने शिष्यों को व्यवहार कुशल सामाजिक प्राणी बनाना होता है, उसमें धन का इतना मूल्य नहीं।

अब तो वातावरण ही बिल्कुल बदल गया है। धन के आधार पर जितना मान मिलता है, उतना और किसी चीज पर नहीं। इसलिए हमारे यहाँ के जो शिक्षक हैं उनको भी बाध्य होकर अधिक ध्यान धन पर देना पड़ता है क्योंकि एक ओर जो उनका पहले आदर होता था, वह कम हो गया और दूसरी ओर उनको धन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होता। इस सम्बन्ध में विचार करने का काम समाज का है। आज सब चीजों के लिए अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता होती है और इस कारण आज के शिक्षक गरीबी से रहते हैं। जो गरीबी से रहता है आज उसका आदर नहीं होता। इसलिए उनको धन देना आवश्यक हो गया है क्योंकि बिना धन के आदर के साथ रहना उनके लिए असम्भव है। इस समय विश्वविद्यालयों से जो अच्छे से अच्छे लड़के निकलते हैं वे पहले तो अध्यापन का काम नहीं करना चाहते। जो और कहीं नहीं जा सकते वे ही अध्यापन के व्यवसाय को अपनाते हैं। आज के विद्यार्थियों का झुकाव वकालत की ओर अधिक रहता है यद्यपि उसमें इसका निश्चय नहीं होता कि उनकी वकालत चलेगी या नहीं। किन्तु फिर भी उनका झुकाव उसकी ओर अधिक रहता है, अध्यापन के काम की ओर नहीं। इस व्यवस्था में परिवर्तन होना देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

आजकल हम बड़े-बड़े काम कर रहे हैं और इसमें सन्देह नहीं कि इस गरीब देश में लोगों को सबसे अधिक धन-सम्पत्ति की आवश्यकता है। परन्तु केवल धन-सम्पत्ति से ही काम नहीं चल सकता। मनुष्य को मनुष्य होना चाहिए। केवल धन से ही मनुष्य नहीं हो सकता। इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम है। इसके लिए हमें देश के सामने ऊँचा आदर्श रखना चाहिए। बच्चों के सामने आप उन आदर्शों को रखें, शिक्षक अपने सामने और दूसरे लोगों के सामने रखें तथा विशेषकर देश के नेता लोग ऊँचे आदर्शों की ओर ध्यान दें, तभी यह धारणा निर्मूल हो सकेगी कि मान-प्रतिष्ठा धन-सम्पत्ति पर ही आश्रित है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग जो शिक्षा के काम में लगे हुए हैं, धन-सम्पत्ति की अपेक्षा इस पर अधिक ध्यान दें।

मैं आपका बहुत अधिक समय ले चुका हूँ। अब और कुछ नहीं कहना चाहता।

यह विषय ही ऐसा था कि मैं अपने को यह सब कुछ कहने से रोक न सका। मैंने जो कुछ कहा है उससे यदि किसी को दुख पहुँचा हो, तो क्षमा करें और जो कुछ मैंने कहा है उस पर ध्यान दें। मैं इन शब्दों के साथ इस सम्मेलन का उद्‌घाटन करता हूँ।

महिलाओं में शिक्षा-प्रसार

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं इन्द्रप्रस्थ बालिका विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर यहाँ आ सका। इस प्रकार की शिक्षा संस्थाओं से मेरा सम्बन्ध बहुत दिनों से रहता आया है और जब कभी भी अवकाश मिलता है, मुझे विद्यालयों में जाकर और वहाँ के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों आदि से मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है। आपका विद्यालय अपने जीवन के ५० वर्ष पूरे कर ५१ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। ५० वर्ष अर्थात् अर्द्ध शताब्दी मनुष्य के जीवन में ही नहीं बल्कि एक संस्था के जीवन में भी दीर्घ अवधि कही जा सकती है। जीवन में अनुभव-उपार्जन का सम्बन्ध भी अधिकतर समय से ही है। इसलिए, चाहे व्यक्ति हो, समष्टि अथवा संस्था, जीवन में ५० वर्ष का विशेष महत्त्व है। इस अवसर पर, जिसे आप स्वर्ण जयन्ती के रूप में मना रहे हैं, आप अपने विद्यालय की सफलता और इस अवधि में उपार्जित अनुभवों पर गर्व कर सकते हैं। चार या पाँच विद्यार्थियों से आरम्भ करके आपने इस संस्था को इतना आगे बढ़ाया है कि आज इसमें सैंकड़ों बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। मैं आप सबको बधाई देता हूँ और आपकी सफलता की कामना करता हूँ।

शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में हमारे विचार चाहे कुछ भी हों, यह निर्विवाद है कि निरक्षरता को दूर करना हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है। निरक्षरता दूर करने और साक्षरता का प्रचार करने के लिए सभी शिक्षा-पद्धतियाँ एक जैसी उपयोगी हैं। आगे चल कर जब हम शिक्षा के ध्येय पर विचार करते हैं, तभी ये पद्धतियाँ विशेष विचार का विषय बन जाती हैं और हम उनके गुण-दोष की चर्चा करने लगते हैं। फिर भी मैं समझता हूँ, शिक्षा-पद्धति का प्रश्न बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि शिक्षा के बाद क्या किया जाये, यह प्रश्न उन सबके सामने आता है। जहाँ तक बालिकाओं का सम्बन्ध है, उनमें से अधिकांश रोजगार अथवा नौकरी करने के लिए नहीं पढ़तीं। ऐसा होते हुए भी, यह नहीं कहा जा सकता कि महिलाओं की शिक्षा का शिक्षा-पद्धति से एकदम कोई सम्बन्ध ही नहीं। शिक्षा-पद्धति से मानसिक तथा बौद्धिक विकास का विशेष सम्बन्ध है और इसलिए शिक्षा

इन्द्रप्रस्थ कन्या विद्यालय (दिल्ली) की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर भाषण, ८ जनवरी, १९५९

प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति शिक्षा-पद्धति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अन्तर केवल इतना ही है कि हमारे देश में महिलाओं की शिक्षा पर किसी भी पद्धति का प्रभाव अभी तक सीमित जान पड़ता है।

अभी दो सप्ताह से कम हुए, आधुनिक शिक्षा के सम्बन्ध में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में मुझे अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला। मैं समझता हूँ कि शिक्षा-पद्धति का सम्बन्ध समाज की परिस्थितियाँ और उसके कारण पैदा होने वाली आवश्यकताओं से बहुत गहरा है। यह एक मोटी बात है कि स्वाधीन होने के बाद हमारी परिस्थितियों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है जिससे भारतीय समाज का दृष्टिकोण और उसकी आवश्यकताएँ बहुत-कुछ बदल गयी हैं। अंग्रेज़ों ने आधुनिक शिक्षा-पद्धति को एक विशेष उद्देश्य से जन्म दिया था। अंग्रेज़ों के इस देश से चले जाने से और सत्ता हमारे हाथ में आ जाने से अब यह उद्देश्य भी लुप्त हो गया है। इसलिए कोई कारण नहीं कि ऐसी शिक्षा-पद्धति को, जिसका आधार तथा उद्देश्य आज की परिस्थितियों के प्रतिकूल हो चुके हों, क्यों जारी रखा जाये? सभी लोग परिवर्तन को आवश्यक समझते हैं, परन्तु प्रश्न इस बात का है कि आधुनिक शिक्षा-पद्धति का स्थान हम किस पद्धति को दें।

यह एक गम्भीर समस्या है। लगभग १२५ वर्षों से जो प्रणाली चली आ रही है, उसे सहसा बदलना सरल नहीं। गत आठ वर्षों से भारत सरकार और सभी राज्यों की सरकारों का ध्यान इस समस्या की ओर गया है और इसके सुलझाने के लिए यथासम्भव पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है। सौभाग्य से इस कार्य में सरकार को विश्वविद्यालयों और अध्यापकों की सभी संस्थाओं का भी सहयोग प्राप्त है। इसलिए हमें आशा करनी चाहिए कि इस सम्बन्ध में सरकार शीघ्र ही किसी निर्णय पर पहुँच सकेगी और दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा सम्बन्धी जो भी कार्यक्रम होगा, उसका प्रमुख अंग देश में संशोधित शिक्षा-प्रणाली चालू करना होगा। इसी बीच अभी तक हम जिस शिक्षा-प्रणाली को अपनाते आये हैं, उससे हमें अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करनी चाहिए।

मैंने महिलाओं की शिक्षा पर शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, उसका अर्थ यह नहीं कि महिलाओं की शिक्षा का महत्त्व बालकों और युवकों की शिक्षा से कम है। जिस राष्ट्र की महिलाएँ अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित हों, उसे हम शिक्षित राष्ट्र नहीं कह सकते। हमारे संविधान में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं। उन अधिकारों में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा भी एक है। इसलिए मैं समझता हूँ कि महिलाओं में शिक्षा-प्रसार का कार्य राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस दिशा में इस नगर में अभी तक जो कुछ सफलता प्राप्त की गयी है, उसमें इन्द्रप्रस्थ बालिका विद्यालय का ऊँचा स्थान है। मैं आशा करता हूँ कि आपका विद्यालय दिनोंदिन उन्नति करता रहेगा।

प्रादेशिक भाषाओं का प्रचार

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मैं बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती समारोह में भाग ले सका और मुझे आप महानुभावों से कुछ कहने का अवसर मिला। हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में बिहार राज्य सदा ही प्रमुख भाग लेता रहा है। यहां के लोगों को इस कार्य को सम्पन्न करने में चाहे कुछ भी कठिनाइयाँ आयी हों, परन्तु इस दिशा में बिहार में थोड़ा-बहुत काम बराबर होता रहा है। इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि हिन्दी के पक्ष में वातावरण बनाये रखने का बहुत-कुछ श्रेय बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन को है। पच्चीस वर्षों की इस अवधि में उत्साह भंग करने वाली अनेक घटनाओं के बावजूद सम्मेलन ने हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी सभी प्रयत्नों को एकसूत्र में बांधे रखा और तत्सम्बन्धी आन्दोलन का दृढ़ता से नेतृत्व किया।

आज स्वतन्त्र भारत में जब हिन्दी इस देश की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है, अब संघर्ष अथवा विरोध का समय नहीं रहा। आज का समय ठोस रचनात्मक कार्य का समय है। मैं जानता हूँ संघर्ष करना कठिन है, परन्तु उसी एकाग्रता से रचनात्मक कार्य करना उससे भी कहीं अधिक कठिन है। यह भी स्पष्ट है कि संघर्ष के बाद यदि रचनात्मक कार्य नहीं होता तो संघर्ष की उपादेयता ही लुप्त हो जाती है और जो सफलता प्राप्त की गयी हो उसकी सार्थकता संकट में पड़ जाती है। इसीलिए रचनात्मक कार्य के समय को वास्तविक परीक्षा का समय माना जाता है, जिसमें उन सभी सिद्धान्तों, उद्देश्यों और आदर्शों की पूरी परख होती है जिनका सहारा लेकर संघर्ष को जीवित रखा गया हो।

हिन्दी के हितैषियों और साहित्य-सेवियों के लिए अब यही समय है। मैं कह सकता हूँ कि शायद पहले कभी उन पर इतना गम्भीर दायित्व नहीं आया था जितना अब हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने से आया है। समस्त राष्ट्र ने सर्वसम्मति से हिन्दी भाषा का जो मान किया है और हमारे संविधान ने उसे जो स्थान दिया है, वह हम सबके लिए एक सद्भावना-पूर्ण चुनौती के समान है। यह निर्णय एक प्रकार से सभी हिन्दी-भाषियों और साहित्यिकों में विश्वास के प्रस्ताव के समान है। इस आदर को हम कैसे निभायें जिससे विभिन्न प्रादे-

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन (पटना) की रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर भाषण, २४ फरवरी, १९५६

शिक भाषाओं के बोलने वाले प्रतिनिधियों द्वारा किये गये उक्त निर्णय के औचित्य को सिद्ध कर सकें ? यह एक गम्भीर प्रश्न है जिस पर सभी हिन्दी-सेवियों को विचार करना चाहिए।

मेरे विचार से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करके और सभी भाषा-भाषियों के साथ सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखकर हम अपने कर्तव्य का पालन कर सकते हैं। मैं जानता हूँ कि हिन्दी को उन्नत करने और उसके साहित्य को अधिक समृद्ध बनाने के सम्बन्ध में बहुत-कुछ किया जा रहा है। कम से कम इस ओर सबका ध्यान आकृष्ट हो चुका है। राष्ट्र के हित की दृष्टि से प्रादेशिक भाषाओं के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करना और उन भाषाओं के बोलने वालों को हिन्दी सीखने की ओर स्वेच्छा से प्रेरित करना हिन्दी को समृद्ध करने की अपेक्षा कम महत्त्व का कार्य नहीं। ऐसा हम तभी कर सकते हैं जब हम उदारता और सहिष्णुता से काम लें और प्रादेशिक भाषाओं को उसी आदर की दृष्टि से देखें जैसा कि हिन्दी के सम्बन्ध में हम दूसरे लोगों से चाहते हैं। यद्यपि प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी का उपयोग अधिक व्यापक होगा, फिर भी हम सबको यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक प्रादेशिक भाषा समस्त देश के लिए एक बहुमूल्य सांस्कृतिक निधि है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा हमारे लाखों-करोड़ों देशवासियों की मातृभाषा है। इसलिए अहिन्दी भाषा-भाषियों का अपनी मातृभाषा से प्रेम स्वाभाविक है और हमें उनकी इस भावना का आदर करना चाहिए। अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार सन्तोषजनक गति से चल रहा है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि उन लोगों को जो कठिनाई हो, उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण हो और यथासम्भव हम अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी के पठन-पाठन को अधिक से अधिक आकर्षक और सरल बनायें।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन बहुत बड़ी संस्था है जिसके निर्माण में इस देश के अनेकों यशस्वी विद्वानों और देशभक्तों ने योग दिया है। मैं समझता हूँ कि यद्यपि सम्मेलन की स्थापना हिन्दी के प्रचारार्थ हुई थी, इसे हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं के प्रचार का कार्य भी अपने हाथ में ले लेना चाहिए। इससे एक ओर हिन्दी और दूसरी भाषाओं में पारस्परिक आदान-प्रदान बढ़ेगा और दूसरी ओर सम्मेलन का आधार भी अधिक व्यापक हो जाएगा। मेरे विचार से यह कार्य राष्ट्रीय साहित्य, हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, तीनों के हित की दृष्टि से उचित होगा।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने, जिसके रजत जयन्ती समारोह के उद्घाटन के लिए आपने मुझे आमन्त्रित करने की कृपा की है, पच्चीस वर्षों से भी अधिक समय पूर्व सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया था। इस राज्य के सभी लोग सम्मेलन की सेवाओं से भली प्रकार परिचित हैं। मैं आशा करता हूँ कि यह रजत जयन्ती समारोह इस राज्य के साहित्य-सेवियों को और अधिक बल देगा जिससे वे साहित्य की समृद्धि द्वारा और हिन्दी तथा अहिन्दी प्रदेशों के बीच पूर्ण सद्भावना का वातावरण तैयार करके, इस राज्य के लोगों की ही नहीं बल्कि देश भर की सेवा कर सकेंगे।

मैं आपके सामने दो-तीन सुझाव रखना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि हिन्दी को

अहिन्दी प्रदेशों में सरलता से स्वीकृत कराने के लिए साहित्यिक क्षेत्र में आदान-प्रदान के द्वारा अन्य भाषाओं के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। यह कार्य अन्य भाषाओं के अच्छे सुपाठ्य ग्रन्थों का हिन्दी में और इसी प्रकार हिन्दी के अच्छे ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में अनुवाद द्वारा हो सकता है, ये ग्रन्थ चाहे प्राचीनकाल के हों अथवा आज के नये युग के, चाहे वे शुद्ध साहित्य के हों अथवा दर्शन, इतिहास व आधुनिक विज्ञान के। इसके लिए हिन्दी लेखकों को और अन्य भाषा-भाषी लेखकों को पुरस्कार द्वारा तथा अन्य प्रकार से प्रोत्साहित करना चाहिए। मैंने देखा है कि अन्य भाषा-भाषी हिन्दी लिखने में कभी-कभी अपनी भाषा के शब्द, मुहावरे और वाक्य-शैली का उपयोग भी करते हैं। हिन्दी-भाषियों के लिए यह नये होते हैं पर उनको इस प्रकार के प्रयोगों का स्वागत करना चाहिए। तभी भाषा की समृद्धि हो सकती है, शब्द-भण्डार बढ़ सकता है तथा उसमें नये वाक्य और मुहावरे आ सकते हैं। जीती-जागती भाषा में इस प्रकार की वृद्धि के लिए पूरा स्थान होता है और होना चाहिए। हो सकता है कि कहीं-कहीं व्याकरण के पण्डितों को कुछ बातें खटकें पर जिस प्रकार के व्याकरण के दोष प्राचीन प्रयोगों में नहीं देखे जाते, उसी प्रकार इस युग के नये प्रयोगों में भी दोष नहीं देखना चाहिए। हिन्दी में ही इस बात का प्रमाण मिल सकता है। यदि तुलसीदास को व्याकरण की तराजू पर तोला जाये तो उनमें भी बहुत बातों में कमी दिखायी पड़ेगी। अंग्रेजी के सम्बन्ध में सभी जानते हैं कि उस भाषा की कितनी उन्नति हुई है। हिन्दी का जो रूप आज है यही आगे बना रहेगा, यह कोई नहीं कह सकता।

लल्लूलाल के सुखसागर की भाषा में और आज के गद्य में हम अन्तर देखते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्री मैथिलीशरण गुप्त में तो अन्तर देखने में आता ही है। इसलिए हमें हिन्दी के द्वार पूरे खुले रखने चाहिएँ, विशेषकर आज जब हम उसे सार्वदेशिक काम में राष्ट्रभाषा के रूप में लाना चाहते हैं। विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इस दिः में उदारतापूर्ण दृष्टि रखें।

देशी चिकित्सा प्रणालियाँ

मुझे बड़ी खुशी है कि आज मैं दिल्ली की इस पुरानी संस्था, आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बिया कालेज में आ सका और आप सब लोगों से मिल सका। जिन ऊँचे आदर्शों को सामने रखकर मसीहुल मुल्क हकीम अजमल खाँ साहब ने इस कालेज की बुनियाद डाली थी और पिछले ३५ वर्षों में इस कालेज और अस्पताल ने दिल्ली के जन-साधारण की जो सेवा की है, उससे हम सभी वाकिफ हैं। हकीम अजमल खाँ साहब सचमुच ऊँचे विचारों के नेता थे। एक यूनानी हकीम के तौर पर उन्होंने जो सफलता और लोकप्रियता पायी, वह भी बहुत असाधारण थी। जैसा कि कर्नल जैदी ने कहा, हकीम साहब की यह हार्दिक इच्छा थी कि यूनानी और आयुर्वेदिक इलाज के तरीकों को समय के अनुसार आगे बढ़ाया जाये जिससे कि ये पुराने और अनुभव की कसौटी पर कसे हुए तरीके झील की तरह स्थिर न रहें बल्कि बहती हुई नदी की तरह आगे बढ़ते जायें। अपने जीवन-काल में हकीम साहब ने बराबर इस आदर्श को सामने रखा और इस संस्था को इसी साँचे में ढालने की कोशिश की।

उनके असामयिक और अचानक निधन के बाद इस संस्था के बुरे दिन आ गये और देश के बँटवारे के बाद एक तरह से यह लुप्तप्राय हो गयी। अब फिर दिल्ली सरकार की मदद और जनता तथा आप लोगों के उत्साह से यह संगठित रूप से चलने लगी है। तो भी अभी यह अपनी उस अवस्था को नहीं पहुँच पायी है जो स्वर्गीय हकीम साहब के जीवन-काल में इसने पायी थी। इसका प्रमाण इतने से ही मिल जाता है कि जहाँ पहले ५०० से अधिक लड़के और १०० लड़कियाँ शिक्षा पा रही थीं, वहाँ आज उनकी संख्या अभी २५० के आसपास तक ही पहुँची है। अस्पताल और शोध विभाग, दोनों ही का विस्तार बहुत आवश्यक है। यह सबका कर्त्तव्य हो जाता है कि इसकी जरूरतों को पूरा किया जाये जिससे यह संस्था अपने संस्थापक के ऊँचे इरादों और हौसलों को कामयाब बना सके।

सरकार और जनता से प्रोत्साहन तथा सहायता पाने के लिए यह जरूरी है कि इन प्रणालियों में जो त्रुटियाँ और कमजोरियाँ आ गयी हैं, उन्हें दूर किया जाये। शिक्षा-पद्धति में भी आवश्यक हेर-फेर किये जाने चाहिएँ। आज की वैज्ञानिक प्रगति से जो कुछ भी लाभ

तिब्बिया कालेज (दिल्ली) के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण, ३१ मार्च, १९५६

उठाया जा सकता है, वह निस्संकोच भाव से उठाना चाहिए। जड़ी-बूटियों और खनिज-पदार्थों को पहचानना, शोधना और काम के लायक बनाना और तैयार औषधियों का आसानी से इस रूप में मिलाया जाना कि उनके बारे में किसी को किसी तरह का सन्देह न रह जाये, आवश्यक है। मैंने देखा है कि कुछ वैद्य लोग अपनी तैयार की गयी दवा ही देना चाहते हैं और दूसरे की तैयार की हुई वही दवा नहीं देना चाहते, क्योंकि उसमें विश्वास नहीं होता। जो जड़ी-बूटियाँ पंसारी के यहाँ से या बाहर से ली जाती हैं उनके सम्बन्ध में भी विश्वासपूर्वक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे बिलकुल ठीक ही हैं और जरूरत के मुताबिक हैं। इन सब त्रुटियों को दूर करना होगा। तभी इन प्रणालियों का रास्ता प्रशस्त हो सकेगा।

एक समय था जब कि इस देश की सरकार ऐलोपैथी अर्थात् पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली को ही मान्यता देती थी और उसे परम्परागत हिन्दुस्तानी चिकित्सा प्रणालियाँ पिछड़ी हुई और अवैज्ञानिक जान पड़ती थीं। इस धारणा में कुछ सचाई भी हो सकती है क्योंकि यूनानी और आयुर्वेद को अंग्रेजी शासनकाल में वह प्रोत्साहन नहीं मिला जो आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को प्राप्त हुआ। यहाँ तक कि पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी भी इन स्वदेशी इलाज के तरीकों से विमुख से हो गये। परन्तु इस देश की जनता, देहातों में रहने वाले हमारे करोड़ों भाई-बहन वर्षों से यूनानी और आयुर्वेद की ही शरण लेते रहे। इसका कारण यह नहीं कि देहातों में अंग्रेजी अस्पताल न होने से इन्हें स्वदेशी इलाज के तरीकों का आश्रय लेना पड़ा, बल्कि इन परम्परागत तरीकों में सर्व-साधारण का विश्वास और आस्था भी बराबर रही। पिछले १० वर्षों में स्थिति कुछ बदली है और सभी राज्यों की सरकारें आयुर्वेद और यूनानी प्रणाली को भी अपनी योजनाओं में स्थान देने लगी हैं।

इन सभी प्रणालियों के अपने-अपने गुण और विशेषताएँ हैं। इन देशी प्रणालियों द्वारा लाखों-करोड़ों व्यक्तियों ने लाभ उठाया है और मेरा अनुमान है कि आज भी सर्वसाधारण, विशेषकर गाँवों में रहने वाले लोग अधिक संख्या में इन प्राचीन देशी प्रणालियों से ही अधिक लाभ उठाते हैं। आजाद हिन्दुस्तान में इन सभी प्रणालियों के लिए काफी गुंजाइश है और मेरे विचार से ये सभी प्रोत्साहन और राज्याश्रय की अधिकारिणी है। आज ऐलोपैथी के प्रचार और प्रसार के लिए शिक्षालयों, अस्पतालों और अनुसन्धानशालाओं के लिए जितना खर्च हो रहा है, उसके मुकाबले देशी प्रणालियों की चिकित्सा, अनुसन्धान आदि के लिए बहुत कम खर्च होता है। हमारा उद्देश्य सार्वजनिक स्वास्थ्य का स्तर अधिक से अधिक ऊँचा करना और रोगों का निराकरण होना चाहिए। इस ध्येय की पूर्ति के लिए हम जो भी कार्यक्रम तैयार करें, उसमें आयुर्वेद और यूनानी प्रणालियों को आसानी से और जनता के हित में स्थान मिल सकता है। इन देशी प्रणालियों के अनुसार चिकित्सा के लिए लोगों को न तो अधिक खर्च करने की जरूरत होती है और न ही विदेशों का मुँह जोहना पड़ता है। साथ ही ये आसानी से प्राप्त भी हो सकती हैं।

दिल्ली नगर की तरह इस आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बिया कालेज ने भी इन ३५ वर्षों में ही जमाने के काफी हेर-फेर देखे हैं। मुझे खुशी है कि दिल्ली राज्य की सरकार ने

इस संस्था की सहायता की और कुछ समय बन्द रहने के बाद इसे फिर से खोला जा सका। मैं इस कालेज के संचालक-मण्डल के उत्साह और कर्तव्य-परायणता की प्रशंसा करना चाहता हूँ कि उन्होंने कठिन से कठिन समय में भी आशा को नहीं छोड़ा और वे बराबर हकीम अजमल खाँ साहब द्वारा शुरू किये गये इस पुण्य कार्य को आगे बढ़ाने में लगे रहे। मैं आपकी सफलता की कामना करता हूँ और यह आशा करता हूँ कि यह आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बिया कालेज और उन्नति करेगा और जनता की अधिक से अधिक सेवा कर सकेगा।

प्राविधिक शिक्षा का महत्त्व

मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि गुरु नानक इंजीनियरिंग कालेज के संस्थापकों के कृपापूर्ण निमन्त्रण पर इस संस्था की आधारशिला रखने के लिए मैं लुधियाना आ सका और आप सब लोगों से मिल सका। मैं आपसे सहमत हूँ कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रगति करने के लिए आर्थिक उन्नति की अवहेलना नहीं की जा सकती। यही नहीं, मैं समझता हूँ कि किसी भी राष्ट्र के आगे बढ़ने और सुख-शान्ति की स्थापना करने के लिए भौतिक अथवा आर्थिक साधनों का विकास अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इसलिए मैं ननकाना साहब शिक्षा न्यास (ट्रस्ट) को बधाई देता हूँ कि उन्होंने पंजाब सरकार के सहयोग से प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए एक उच्च संस्था के संगठन का निश्चय किया जिसे आज कार्यरूप दिया जा रहा है।

भारत सरकार का ध्यान देश के साधनों को उन्नत करने की ओर बराबर रहा है और देश में साधनों के नियमित विकास के हेतु ही पंचवर्षीय योजना को चालू किया गया है। हमारी पहली पंचवर्षीय योजना, जिसकी अवधि अभी हाल ही में समाप्त हुई है, इस दिशा में काफी सफल रही है। दूसरी योजना में, जो अधिक बड़ी और विस्तृत है, प्राविधिक प्रशिक्षण पर पहली योजना की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया है। इसलिए इस क्षेत्र में सरकार अथवा जनता आपके प्रयत्न का स्वागत करेगी।

आपने यह माँग की है कि दूसरी योजना के अन्तर्गत जो १५ इंजीनियरिंग कालेज चालू किये जाने वाले हैं, गुरु नानक इंजीनियरिंग कालेज को उन्हीं में से एक माना जाये और इसे सरकार की ओर से यथोचित सहायता दी जाये। मुझे प्रसन्नता है कि पंजाब

गुरु नानक इंजीनियरिंग कालेज (लुधियाना) के शिलान्यास के अवसर पर भाषण, ८ अप्रैल १६५६

सरकार ने सहायता सम्बन्धी माँग को स्वीकार किया है और संस्था को लगभग साढ़े पाँच लाख रुपये का अनुदान भी दिया है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आपके राज्य की सरकार जो भाखड़ा-नंगल बाँध जैसी महान् घाटी योजना को कई वर्षों से चालू देखती आ रही है, प्राविधिक प्रशिक्षण को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देने में संकोच नहीं करेगी। जैसा मैंने कहा, आर्थिक सहायता किसी भी योजना अथवा संस्था के लिए आवश्यक है, किन्तु इसके साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि जब कोई व्यक्ति अथवा समाज किसी सार्वजनिक कार्य को चलाने का दृढ़ संकल्प कर लेता है तो आर्थिक बाधाएँ उसका मार्ग नहीं रोक सकतीं। आपके प्रयत्नों से विश्वास होता है कि आप सरकार और जनता, दोनों की सहायता तथा सहयोग प्राप्त कर सकेंगे।

इस अवसर पर मैं अपने पंजाबी भाइयों के सम्बन्ध में दो शब्द कहना चाहूँगा। वे अपने परिश्रम, साहस और प्राविधिक प्रवीणता के लिए देश भर में प्रसिद्ध हैं। यद्यपि यह सच है कि आपके राज्य में प्राविधिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ पर्याप्त नहीं रही हैं, फिर भी यह प्रसन्नता की बात है कि पंजाब ने साधन न रहते हुए भी बड़ी संख्या में इंजीनियर पैदा किये हैं जो देश भर में काम कर रहे हैं। देश में जहाँ कहीं भी निर्माण-सम्बन्धी महान् योजनाओं पर काम किया जा रहा है, वहाँ थोड़ी-बहुत संख्या में पंजाबी इंजीनियर और अन्य प्रवीण कारीगर काम करते हुए अवश्य मिलेंगे। इसके लिए मैं आपके राज्य को और सब लोगों को बधाई देता हूँ। आपकी दक्षता और कार्यपटुता आपके लिए तो सौभाग्य की बात है ही, परन्तु वह हमारे राष्ट्र के लिए भी वरदानस्वरूप है क्योंकि भारत का प्रत्येक राज्य इस महान् राष्ट्र का अविभाज्य अंग है और प्रत्येक राज्य की सम्पन्नता अथवा विशेषताएँ सारे राष्ट्र की निधि हैं।

मुझे यह सुन कर बहुत सन्तोष हुआ कि आप चाहते हैं कि इस कालेज से शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी केवल अपने काम में ही पटु न हों बल्कि वे इस बात को भी ध्यान में रखें और जीवन का अंग बना लें कि धर्म ही जगत् को जीवित रख सकता है। मैं "धर्म" शब्द का व्यवहार यहाँ संकुचित अर्थों में नहीं कर रहा हूँ। धर्म में वे सभी आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धान्त और प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनको सभी धर्मों, पन्थों और सम्प्रदायों ने आवश्यक कहा और अनिवार्य माना है। उसके बिना समाज अनैतिक और विशृंखल हो जाता है। शिक्षित और सुसंस्कृत लोगों का यह कर्तव्य है कि वे अपने रहन-सहन और दिनचर्या में उन सिद्धान्तों और आदर्शों का क्रियात्मक उदाहरण समाज के सामने रखें। यदि आपकी यह संस्था इस तथ्य को शिक्षार्थियों में हृदयंगम करा दे तो उससे देश का बड़ा उपकार और कल्याण होगा।

इस संस्था के खुलने से जिसकी आज नींव रखी जा रही है, और एक दूसरे इंजीनियरिंग कालेज के चालू होने से जिसकी आधारशिला कल पटियाला में रखी जाएगी, इस क्षेत्र के युवकों को प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिक अवसर मिल सकेगा। मैं सहज ही कल्पना कर सकता हूँ कि इन सुविधाओं के मिलने से पंजाब का भविष्य कितना उज्ज्वल होगा और राष्ट्र-निर्माण में आपका राज्य कितना अधिक सहयोग दे सकेगा।

मेरे सम्बन्ध में जो विचार आपने प्रकट करने की कृपा की है, उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं एक बार फिर ननकाना साहब शिक्षा न्यास को बधाई देता हूँ। मैं आपकी सफलता की कामना करता हूँ और यह आशा करता हूँ कि इस प्रौद्योगिक संस्था द्वारा पंजाब तथा देश की और अधिक सेवा हो सकेगी।

संगीत तथा नृत्य

संगीत नाटक अकादेमी के वार्षिकोत्सव में इस वर्ष फिर सम्मिलित हो सकने की मुझे बहुत प्रसन्नता है। संगीत, नाटक आदि ललित कलाओं का जीवन में क्या महत्त्व है और प्राचीन काल से हमारे देश के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन में इन कलाओं का क्या स्थान रहा है, इस सम्बन्ध में मैं अपने विचार एक-दो बार पहले भी प्रकट कर चुका हूँ।

मेरा यह विश्वास है कि मनोरंजन और शारीरिक तथा बौद्धिक विकास में पूर्ण समन्वय के फलस्वरूप ही इन कलाओं की उत्पत्ति हुई थी। इन हजारों वर्षों में मनुष्य अथवा उसके चारों ओर का वातावरण चाहे कितना ही बदल गया हो, किन्तु संगीत और नृत्य के प्रति उसकी धारणा में विशेष अन्तर दिखायी नहीं देता। संगीत और नृत्य के प्रति मानव की आसक्ति एक सार्वभौम तथ्य है। यद्यपि विभिन्न देशों और विभिन्न कालों में इसकी अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की हो सकती है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि इन कलाओं के प्रति मानव की प्रतिक्रिया युग-युगान्तर से बहुत हद तक सामान्य अथवा एक-जैसी होती रही है। कौनसा देश अथवा मानव समाज ऐसा होगा जहाँ नर-नारी पावस ऋतु में आकाश में घिरते हुए बादलों को अथवा अपने महीनों के श्रम के फल खेतों में खड़ी पकी हुई फसल को देख आनन्दविभोर होकर नृत्य और संगीत की शरण नहीं लेते। यह प्रतिक्रिया नितान्त स्वाभाविक और प्राकृतिक है।

हमारे देश में अधिकांश ललित कलाएँ, विशेषकर संगीत और नृत्य राष्ट्र की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक पूँजी के अविभाज्य अंग हैं और सदा से रहे हैं। यही कारण है कि देश के धार्मिक जीवन में भी इन्हें प्रश्रय मिला और कलाप्रेमी मानव ने अपने इष्ट देवों और देवियों में भी कला सम्बन्धी गुणों को रोप दिया। इसी कारण नटराज कृष्ण जी आदि अवतारों का हम संगीत के किसी न किसी वाद्य से विशेष सम्बन्ध देखते हैं और वीणा के बिना तो सरस्वती की कल्पना ही कठिन है। इन बातों से ही यह अनुमान

संगीत नाटक अकादेमी के वार्षिकोत्सव (नयी दिल्ली) के अवसर पर भाषण, ११ अप्रैल, १९५६

लगाया जा सकता है कि भारत में संगीत और नृत्य को यहाँ के समाज ने कितना ऊँचा स्थान दे रखा था।

यदि स्वाधीन भारत में ललित कलाओं को पुनर्जीवित करने की ओर पग उठाया गया है, तो इसका कारण प्राचीन परम्पराओं की रक्षामात्र नहीं है। अपने निजी गुणों के कारण ये कलाएँ, विशेष रूप से संगीत और नृत्य इतने ऊँचे और सत्प्रेरणा देने वाले हैं कि सामाजिक वातावरण के उन्नयन और दैनिक जीवन को अधिक सुखमय बनाने के लिए ये बहुमूल्य उपादान हैं। समाज में सामूहिक मनोरंजन के साधनों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इनके द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक एकता की भावना को भी बल मिलता है।

इन सब बातों को ध्यान में रख कर ही इन कलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए और जन-साधारण में इनका प्रचार करने के हेतु संगीत नाटक अकादेमी की स्थापना की गयी थी। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि अकादेमी इस दिशा में अच्छा काम कर रही है और इसके द्वारा निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हो रही है। पिछले चार-पाँच वर्षों से लोकसंगीत और नृत्य के प्रति जन-साधारण की रुचि बढ़ रही है। इसका एक और सत्परिणाम जो देखने में आ रहा है, यह है कि देश के विभिन्न भागों में प्रचलित संगीत और नृत्य की प्रणालियाँ राष्ट्र के सभी भागों के लोगों में लोकप्रिय होती जा रही हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण के संगीत और नृत्य का प्रचार उत्तर भारत में हो रहा है और इसी प्रकार उत्तर, पश्चिम और पूर्व भारत की कलाओं का चलन दक्षिण में हो रहा है। संस्कृति तथा कला के क्षेत्र में इस प्रकार के आदान-प्रदान का विशेष महत्त्व है और राष्ट्र के जीवन में उसकी बड़ी उपादेयता है।

ललित कलाओं के प्रचार और कलाकारों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से ही राष्ट्रीय पुरस्कारों की परिपाटी चलायी गयी है। पुरस्कार के कारण स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। मैं इस वर्ष के पुरस्कार-विजेताओं को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनका कला-प्रेम बना रहेगा और वे कला को ऊँचे से ऊँचे शिखर पर पहुँचाने का प्रयत्न करते रहेंगे।

पंजाबी तथा हिन्दी

दूसरे अखिल भारतीय पंजाबी साहित्य सम्मेलन के सम्मुख कुछ शब्द कहने के अवसर का मैं स्वागत करता हूँ और इस सम्मेलन के संयोजकों के प्रति आभारी हूँ जिनके कृपापूर्ण निमन्त्रण के कारण मैं यहाँ आ सका।

मुझे यह देखकर बहुत हर्ष होता है कि दूसरी भारतीय भाषाओं की भाँति पंजाबी भाषा दिनोंदिन प्रगति कर रही है और इसका साहित्य भी समृद्ध होता जा रहा है। इन सभी भाषाओं का एक परिवार है जिसे हम भारतीय साहित्य कह सकते हैं। इस परिवार के लिए सभी भाषाओं का महत्त्व है और सभी मिलकर परिवार के गौरव को बढ़ाती और इसके साहित्य भण्डार को समृद्ध करती हैं। इसलिए भारतीय भाषाओं में परस्पर विरोध या किसी प्रकार के भेद-भाव का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रायः हर भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं, अपना साहित्य है और अपना-अपना क्षेत्र है। इनके आपसी सम्बन्ध इतने गहरे और निकट के हैं कि एक भाषा की उत्पत्ति और विकास को जाने बिना दूसरी भाषाओं के सम्बन्ध में कुछ समझना सम्भव नहीं।

भारतीय साहित्य की सरिता ने संसार के सामने प्रागैतिहासिक काल से सामंजस्य, समन्वय और विचार-स्वातन्त्र्य के क्षेत्र में एक उच्च आदर्श रखा है। वैदिक काल के बाद से ही, जबसे हमारे देश में साहित्य-सृजन का पता चलता है, राष्ट्र की विचारधारा संस्कृत में प्रवाहित हुई। उसके बाद साहित्य-रचना के लोकप्रिय माध्यम पाली और प्राकृत बनने आरम्भ हुए और संस्कृत के साथ-साथ ये दोनों भाषाएं पनपने लगीं। मध्ययुग में इन तीनों भाषाओं अर्थात् संस्कृत, पाली और प्राकृत से नयी शाखाएँ फूटने लगीं। यही काल आधुनिक भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति का समय था। ये सभी भाषाएँ, जिन्हें इण्डोआर्यन परिवार का माना जाता है, अपने-अपने वातावरण, अपनी विशिष्ट प्रतिभा तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होती रही हैं। स्पष्ट है कि इन भाषाओं का, जिनमें पंजाबी भी सम्मिलित है, मूल स्रोत एक है। इनका शब्द-भण्डार भी लगभग एक ही है और इसी प्रकार इन सबकी प्रेरणा का आधार एक भारतीय संस्कृति, एक विचारधारा और एक ही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। उधर दक्षिण की भाषाएँ भी, जिनका द्रविड़ परिवार से

पंजाबी साहित्य सम्मेलन (नयी दिल्ली) में भाषण, १५ अप्रैल, १९५६

सम्बन्ध है, लगभग उसी समय विकसित होने लगी थीं, यद्यपि उनमें सबसे पुरानी भाषा तमिल का विकास-काल मध्ययुग से बहुत पहले का स्वीकार किया जाता है।

इस दृष्टि से देखा जाये तो यह मानना पड़ेगा कि हमारे देश में विचार-स्वातन्त्र्य ही नहीं भाषा-स्वातन्त्र्य भी पूर्ण रूप से रहा है। विभिन्न प्रदेशों में चाहे और किन्हीं विषयों को लेकर विवाद और संघर्ष हुए हों, किन्तु जहाँ तक मैं जानता हूँ भाषा के आधार पर यहाँ कभी वैमनस्य नहीं फैला। राजनीतिक उथल-पुथल होती रही, सल्तनतों के भाग्य बनते-बिगड़ते रहे, परन्तु विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं का उनकी क्षमता के अनुसार निर्बाध गति से विकास होता रहा। यही नहीं, इस बात के अनेकों प्रमाण मौजूद हैं कि इन भाषाओं में पारस्परिक आदान-प्रदान सदा से जारी रहा। बहुत से ऐसे सीमावर्ती कवि हुए जिन्हें दो या इससे भी अधिक भाषाओं ने अपना कवि माना है जैसे विद्यापति पर हिन्दी और बंगाला दोनों भाषाओं को गर्व है और मीरा पर हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाएँ अपना अधिकार मानती हैं। हिन्दी और पंजाबी के उभयनिष्ठ कवियों की संख्या तो एक दर्जन से भी ऊपर होगी। जिन मान्य गुरुओं और उनके अनुयायियों ने पंजाबी का बीज बोया और उसका पथप्रदर्शन किया, प्रायः उन सभी गुरुजनों को हिन्दी साहित्य में भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिन्दी और पंजाबी भाषाओं में कितना घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और अब भी है, यह उन दोनों भाषाओं के इतिहास और उनमें प्रचलित सामान्य शब्दों से स्वतः प्रकट हो जाता है।

स्वाधीन भारत में हिन्दी की स्थिति बदल गयी है और वह धीरे-धीरे सार्वदेशिक भाषा बन रही है, जिसे कालान्तर में अंग्रेज़ी का स्थान ग्रहण करना है। हिन्दी और पंजाबी सहोदरा भाषाएँ हैं पर उनके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हो गये हैं। पंजाबी का विकास और उसके साहित्य की समृद्धि किसी भी अन्य भाषा और उसके साहित्य की भाँति भारत राष्ट्र की निधि है। पंजाबी साहित्य के बारे में मेरी जानकारी अधिक नहीं परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि इसकी परम्पराएँ तथा विचारधारा स्वस्थ और देश के लिए गौरवमय हैं। भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक मतों के अनुयायी और विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले रहते हैं। इसमें सभी भाषाओं के अपने क्षेत्र में स्वच्छन्द रूप से पनपने और समृद्ध होने की पूरी गुंजाइश है। मुझे पूर्ण आशा है कि भारत की सभी भाषाएँ बराबर आगे बढ़ती जाएँगी और देश से अज्ञान तथा अन्धकार को दूर करने में योग देंगी।

प्राकृत साहित्य के बिना भारतीय साहित्य अधूरा

यह बिहार का सौभाग्य है कि उसका अतीत प्राचीन भारत के इतिहास की पृष्ठ-भूमि है। प्राचीन इतिहासकालीन भारत के जीवन को समझने के लिए बिहार को समझना आवश्यक है। हमारे गौरवमय अतीत से सम्बन्धित बिहार में जितने भी प्रमुख स्थल हैं, वैशाली निस्सन्देह उनमें से एक है। यह नगरी लिच्छिवियों और वज्जियों के गणराज्य की राजधानी थी। यह स्थान प्राचीन काल में गणराज्य अथवा प्रजातन्त्र का प्रसिद्ध केन्द्र था। एक समय था जब इस भूमि में किसी राजा का शासन नहीं था, जनता के सात हजार से अधिक प्रतिनिधि सारा राजकाज चलाते थे। न्याय का विधान इतना सुन्दर था कि स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से उसकी प्रशंसा की थी। निश्चय ही लोकशासन की सारी चेतना यहाँ मूर्तरूप से देखी जाती थी।

इसके अतिरिक्त वैशाली भगवान् महावीर की भी जन्मभूमि है और यह भगवान् बुद्ध को बहुत प्रिय थी। स्वयं भगवान् बुद्ध ने इस स्थान को बार-बार अपनी चरण-रज देकर पावन बनाया था और इसकी सभा की देवताओं की सभा से तुलना की थी। वैशाली से जो सद्विचारधारा प्रवाहित हुई, उससे समस्त भारत ही नहीं बल्कि एशिया के निकटवर्ती देश भी लाभान्वित हुए। इसलिए वैशाली का स्थान हमारे प्राचीन इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। मैं समझता हूँ, प्राकृत अनुसन्धानशाला के लिए यह स्थान ही सबसे अधिक उपयुक्त है। हमारे सांस्कृतिक जीवन में और इतिहास के अध्ययन में यह अनुसन्धानशाला एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करेगी।

इस अनुसन्धानशाला में जैन साहित्य और प्राकृत ग्रन्थों के सम्बन्ध में अनुसन्धान और अध्ययन की व्यवस्था होगी। संस्कृति की दृष्टि से ही नहीं, भारतीय इतिहास और चिन्तन की दृष्टि से भी इस प्रयास का विशेष महत्त्व है। चार वर्ष हुए दिल्ली में प्राकृत ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए प्राकृत ग्रन्थ परिषद् की स्थापना हुई थी। मैं समझता हूँ, उस परिषद् का कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत नहीं कि वह प्रस्तावित अनुसन्धानशाला द्वारा किये जाने वाले कार्य का भी भार संभाल सके।

प्राकृत अनुसन्धानशाला (वैशाली, बिहार) का शिलान्यास करने के अवसर पर भाषण, २३ अप्रैल, १९५६

सौभाग्य से प्राकृत ग्रन्थ परिषद् से मेरा सम्बन्ध उसी समय से है जब उसकी स्थापना हुई थी। प्राकृत भाषा में लिखित ग्रन्थों की खोज और टीका सहित उनके प्रकाशन के सम्बन्ध में मेरा सदा यह विचार रहा है कि यह कार्य इतिहास, साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। इतिहासवेत्ताओं और जैन आचार्यों का इस ओर विशेष ध्यान गत तीस-चालीस वर्षों से गया है, परन्तु यह कार्य नियमित रूप से हाल ही में आरम्भ किया जा सका है। प्राकृत अनुसन्धानशाला में जो उच्च कोटि का कार्य और अनुसन्धान किया जाएगा, उससे प्राकृत ग्रन्थ परिषद् के कार्य को पथ-प्रदर्शन और हर प्रकार की सहायता प्राप्त होगी।

आज वैशाली में बैठ कर यह कल्पना करना भी कठिन जान पड़ता है कि ढाई हजार वर्ष पहले यह नगरी एक सम्पन्न और प्रभावशाली गणराज्य की राजधानी थी। विभिन्न भाषाओं में लिखे ग्रन्थों, स्तूपों आदि पर अंकित शिला-लेखों से ही इस धारणा की पुष्टि नहीं होती, बल्कि धीरे-धीरे जैसे लुप्त ग्रन्थों की खोज होती जा रही है इस सम्बन्ध में हमारी जानकारी में वृद्धि होती जा रही है। वैशाली, जो भगवान् महावीर की जन्मभूमि थी और सदियों तक उनके मतावलम्बियों तथा अनुयायियों की धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रही, आज जीर्ण-क्षीण अवस्था में हमारे सामने है। ढाई हजार वर्ष की उथल-पुथल के बाद भारत में फिर गणराज्य की स्थापना हुई है। आज इस यशस्वी भूमि के रजकण से हमें उत्प्रेरणा मिलती है। यह स्वाभाविक है कि प्राचीन इतिहास के जानकार वैशाली के प्रति श्रद्धांजलि भेंट करें और उन ऊँचे आदर्शों को जीवन में फिर से उतारने का प्रयत्न करें जो बौद्ध तथा जैन विचारधारा के अनुसार वैशाली के नागरिकों का पथ-प्रदर्शन करते थे।

वैशाली जिस राज्य की राजधानी थी वह यद्यपि देश भर में प्रभावशाली था पर बहुत बड़ा नहीं था। प्राचीन काल में वह देश के हृदय के समान था। यहाँ के गणराज्य की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी और यहाँ की परम्पराओं तथा विचारधारा ने दूरस्थित प्रदेशों को प्रभावित किया था। यहाँ के जैन और बौद्ध आचार्य, जो अपनी भ्रमणशीलता के लिए विख्यात थे, देश के सभी भागों में घूमते थे और महावीर तथा बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करते थे। भारत में ही नहीं, तिब्बत, नेपाल, ईरान, इण्डोनेशिया, अफगानिस्तान आदि एशिया के दूसरे देशों के साथ भी इन लोगों का सम्पर्क था।

उस समय देश में संस्कृत के अतिरिक्त दो और भाषाएँ प्रचलित थीं—पाली और प्राकृत। महात्मा बुद्ध और उनके अनुयायियों ने अधिकतर पाली को प्रश्रय दिया और महावीर स्वामी तथा उनके मतावलम्बियों ने प्राकृत को अपनाया। इन दोनों मतों के आचार्यों और अनुयायियों ने कालान्तर में जो कुछ लिखा, वह अधिकतर पाली और प्राकृत में ही उपलब्ध है। सौभाग्य से पाली भाषा के क्षेत्र में बहुत कुछ काम हो चुका है जिसके फलस्वरूप प्राचीनकालीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में हमारी जानकारी में काफी वृद्धि हुई है। सौ वर्ष के करीब हुए जब भारतीय और विदेशी विद्वानों के सहयोग से पाली ग्रन्थ परिषद् की स्थापना हुई थी। इस परिषद् ने अनेक ग्रन्थों

का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया है, किन्तु दुर्भाग्यवश प्राकृत के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। किन्हीं कारणों से हमारा ध्यान उस ओर अधिक नहीं गया और विदेशी विद्वानों ने भी प्राकृत साहित्य के महत्त्व को बीसवीं सदी के आरम्भ में ही समझा। मैं यह बताने की आवश्यकता नहीं समझता कि किन कारणों से प्राकृत के क्षेत्र में उतना कार्य नहीं किया जा सका जितना पाली साहित्य के सम्बन्ध में किया जा चुका है। यही कह देना पर्याप्त होगा कि इस अभाव को दूर करना और देश भर में बिखरे हुए प्राकृत ग्रन्थों को प्राप्त कर, सम्पादन के बाद उन्हें प्रकाशित करना प्राकृत अनुसन्धानशाला तथा ग्रन्थ परिषद् का उद्देश्य होगा।

प्राकृत साहित्य के महत्त्व और उसकी विशालता के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जहाँ पाली साहित्य की परम्परा अधिक से अधिक सात शताब्दियों तक चली, वहाँ प्राकृत की परम्परा करीब पन्द्रह शताब्दियों तक चलती रही। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इण्डोआर्यन परिवार की भारतीय भाषाओं का पाली की अपेक्षा प्राकृत से कहीं अधिक निकट का सम्बन्ध है। वास्तव में इस देश की आधुनिक भाषाएँ पूर्व मध्ययुग में प्रचलित विभिन्न प्राकृतों तथा अपभ्रंश की ही उत्तराधिकारिणी हैं। हिन्दी, बंगला, मराठी आदि किसी भी भाषा को लीजिये, उसका विकास किसी न किसी प्राकृत से ही हुआ है। विकास काल में कुछ ऐसे ग्रन्थों की रचना भी हुई जिनका वर्गीकरण बहुत कठिन है अर्थात् जिनके सम्बन्ध में सहसा यह कह देना कि उनकी भाषा प्राकृत है अथवा किसी आधुनिक भाषा का पुराना रूप, सरल काम नहीं। इस दृष्टि से देखा जाये तो आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति और पूर्ण विकास को समझने के लिए प्राकृत साहित्य का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है।

अपनी परम्परा के अनुसार जैन आचार्य एक स्थान में तीन-चार महीनों से अधिक नहीं ठहरते थे और बराबर भ्रमण करते रहते थे। उन्होंने जो उपदेश दिये और जिन ग्रन्थों की रचना की वे देश भर में बिखरे पड़े हैं। सौभाग्य से उनमें से अधिकांश हस्तलिखित आलेखों के रूप में आज भी सुरक्षित हैं। ये ग्रन्थ सौराष्ट्र-गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक में और उत्तर तथा पूर्व में अनेक स्थानों में पाये गये हैं। इन सबको एकत्र करना और आवश्यक अनुसन्धान के बाद आधुनिक ढंग से उनके प्रकाशन की व्यवस्था करना एक आवश्यक कार्य है।

जैन आचार्यों और विद्वानों की एक और विशेषता उनकी रचनाओं की व्यापकता है। प्रायः सभी की भाषा प्राकृत है, परन्तु उनकी साहित्यिक परिधि महावीर स्वामी के उपदेश और धार्मिक विषयों के विवेचन तक ही सीमित नहीं। जैन श्रमणों ने लोकभाषा को साहित्य का वाहन बनाया था। उन युगों की लोकभाषा प्राकृत थी। इस कारण प्राकृत भाषा में आज विपुल साहित्य मिल रहा है, शिलालेख मिल रहे हैं, सिक्के मिल रहे हैं। सुनते हैं कि इस भाषा में छोटे-बड़े, प्रत्येक विषय के मिला कर लगभग एक हजार ग्रन्थ हैं जिनमें महावीर के उपदेश सम्बन्धी धार्मिक ग्रन्थसूत्र, नियुक्तियाँ, चूर्णियाँ, भाष्य, महाभाष्य, टीका आदि के ३०० से ३५० ग्रन्थ हैं। धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त लौकिक

साहित्य भी जैसे काव्य, छन्द, नाटक, कोष, गणित, मुद्राशास्त्र, रत्नपरीक्षाशास्त्र, ऋतुविज्ञान, जातीय विज्ञान, भूगोल, ज्योतिष, शिल्प-कहानियाँ, चरित्र, कथानक, प्रवासकथा आदि मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों पर उत्तम-उत्तम ग्रन्थ जैन श्रमणों ने प्राकृत भाषा में लिखे हैं, और जो भी उन्होंने लिखा, बड़ी बारीक छानबीन के साथ विस्तार से लिखा है।

इस व्यापकता के कारण जैन साहित्य अथवा प्राकृत साहित्य का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जैसा मैंने अभी कहा, ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी से लेकर इधर आठवीं शताब्दी तक ग्रन्थों की रचना प्राकृत में होती रही। हमारे इतिहास के इस महत्वपूर्ण काल में देश के विभिन्न भागों में जो राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति रही है, उस पर इस साहित्य द्वारा काफी प्रकाश पड़ता है। प्राकृत साहित्य का अधिकांश भाग अभी भी इतिहास के साधारण विद्यार्थी की पहुँच से बाहर है और हमारी साहित्य-सम्बन्धी धारणाएँ प्राकृत साहित्य में दिये गये तथ्यों और विवरणों से अभी प्रभावित नहीं हो पायी हैं। इस बात से आशा होती है कि भारत के साहित्य में जो सबसे अधिक अन्धकारमय काल है अर्थात् जिस काल के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है अथवा अधिकतर अटकल पर आधारित है, उस काल के सम्बन्ध में प्राकृत साहित्य से प्रकाश पा, सम्भव है हमारे इतिहास की अनेकों गुत्थियाँ सुलझ जायें और टूटी हुई शृंखलाएँ जुड़ जायें।

इन सभी दृष्टियों से प्राकृत साहित्य की खोज तथा अवलोकन और प्राकृत ग्रन्थों के प्रकाशन का असाधारण महत्त्व है। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त डा० शूब्रिग आदि विदेशी विद्वानों का भी यही मत है। उनका कहना है कि प्राकृत साहित्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना भारत के साहित्य का ज्ञान सदा अधूरा रहेगा। यदि स्वाधीन होने के बाद भी हम प्राकृत के लुप्त और विस्मृतप्राय ग्रन्थों की पूरी खोज कर उन्हें साधारण ज्ञान की सरिता में न मिला सके तो यह आश्चर्य ही नहीं लज्जा की बात होगी।

भगवान् महावीर के सन्देश और उनके लौकिक जीवन के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का भी हमारे लिए ही नहीं समस्त संसार के लिए विशेष महत्त्व है। "अहिंसा परमो धर्मः" का सन्देश उनकी अनुभूति और तपश्चर्या का परिणाम था। महावीर के जीवन से मालूम होता है कि कठिन तपस्या करने के बाद भी वे शुष्क तापसी अथवा प्राणियों के हित-अहित से उदासीन नहीं हो गये थे। दूसरों के प्रति उनकी आत्मा स्नेहार्द्र और सहृदय रही। इसी सहानुभूतिपूर्ण स्वभाव के कारण जीवों के सुख-दुख के बारे में उन्होंने गहराई से सोचा है और इस विषय में सोचते हुए ही वे वनस्पति के जीवों तक पहुँचे हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि और बहुमूल्य अनुभव जिसके आधार पर वे अहिंसा के आदर्श पर पहुँचे, साधारण जिज्ञासा का ही विषय न रह कर वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसन्धान का विषय होना चाहिए।

भगवान् महावीर के जीवन से एक और तत्व हमें ग्रहण करना चाहिए। वह है उनकी समन्वय-दृष्टि। अपने विचारों को उदार रख दूसरों को सहानुभूतिपूर्वक उनकी दृष्टि से समझने की क्षमता और अपने में मिलाने की शक्ति ही समन्वय-दृष्टि है। महावीर

की समन्वयात्मक दृष्टि भारतीय धर्म तथा दर्शनशास्त्र के लिए बहुत बड़ी देन है। इस सिद्धान्त की गहराई और इसके उच्च व्यावहारिक पहलू को हम महावीर के जीवन से ही समझ सकते हैं।

इन सभी कारणों से मैं समझता हूँ, वैशाली में प्राकृत अनुसन्धानशाला की स्थापना बहुत ही सामयिक है। मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जो अध्ययन होगा और जो खोज की जाएगी, उसके परिणामस्वरूप जहाँ भारतीय इतिहास की टूटी हुई शृंखलाओं के जुड़ने की आशा है, वहाँ हम एक अत्यन्त प्रतापी और यशस्वी विभूति की जीवनकथा तथा विचार-धारा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अपने-आपको कृतकृत्य कर सकेंगे। मुझे विश्वास है कि यह प्राकृत अनुसन्धानशाला जिसके शिलान्यास का दायित्व आपने मुझे सौंपने की कृपा की है शीघ्र ही बन कर तैयार हो जाएगी। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि कालान्तर में इस शाला के कारण वैशाली फिर विद्या और संस्कृति का केन्द्र बन जाएगी। बिहार सरकार और दूसरे जिन लोगों ने इस अनुसन्धानशाला की स्थापना में आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता की है, वे हमारे धन्यवाद के अधिकारी हैं। आगे भी इस पुण्य कार्य में सभी का पूर्ण सहयोग रहेगा, ऐसी मेरी आशा है।

आधुनिक चिकित्सा सुलभ व सस्ती हो

आज मैं इस शुभ काम में सम्मिलित हो सका, इसको मैं अपने लिए सौभाग्य मानता हूँ। जैसा अभी कहा गया, आप जिन मेडिकल कालेज और कैंसर इंस्टीट्यूट की स्थापना करने जा रहे हैं, ये दोनों संस्थाएँ अपने ढंग की बहुत बड़ी और ऊँचे दर्जे की संस्थाएँ होने वाली हैं। मैंने सुना है कि उनमें विभिन्न विभाग होंगे जिनमें विद्यार्थियों को ऊँचे से ऊँचे प्रकार की शिक्षा मिलेगी और जहाँ अच्छे से अच्छे डाक्टर रखे जाएँगे जो शिक्षा देने के साथ-साथ गरीब से गरीब का और बुरे से बुरे रोग की चिकित्सा भी किया करेंगे। सभी मेडिकल कालेजों में यही स्थिति होती है कि जो वहाँ पढ़ाते हैं, वे रोगियों को भी देखते हैं और वहाँ के विद्यार्थी भी पढ़ने के साथ-साथ रोगियों को देखते हैं। इस प्रकार उनको साथ ही साथ व्यावहारिक ज्ञान भी मिलता जाता है। जिस संस्था में जितने अच्छे शिक्षक होंगे, उस संस्था से विद्यार्थी भी उतने ही अच्छे निकल सकते हैं। जहाँ जितनी अधिक सुविधा होगी, उन संस्थाओं से लोग अधिक से अधिक लाभ भी उठा सकते हैं।

राजकीय मेडिकल कालेज तथा पद्मपत सिंघानिया कैंसर इंस्टीट्यूट (कानपुर) के शिलान्यास के अवसर पर भाषण, २४ अप्रैल, १९५६

आजकल यह एक आश्चर्य की बात है पर बात सही है कि संसार विज्ञान में बहुत प्रगति कर रहा है, विशेषकर औषधि तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में। पिछले जो दो युद्ध हुए, उनमें जहाँ एक ओर अधिक से अधिक घातक यन्त्र तैयार हुए, वहाँ दूसरी ओर औषधियों के निर्माण में इतनी उन्नति हुई कि जो बहुत से रोग पहले असाध्य समझे जाते थे वे अब काबू में आ गये हैं। इससे फल यह निकलता है कि विज्ञान की प्रगति में कोई दोष नहीं। इस प्रगति से जो जैसा लाभ उठाना चाहते हैं, उठा सकते हैं। यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह उस विद्या से लाभ उठाये या उसे हानिकारक बनाये। यह आश्चर्य और दुःख की बात है कि जहाँ एक ओर इस विज्ञान द्वारा आज इतने लोगों को भयंकर से भयंकर रोगों से मुक्ति मिल रही है, वहाँ उसी विज्ञान द्वारा लोगों का जीवन संकटमय हो गया है।

हम चाहते हैं कि हमारे देश के वैज्ञानिक चाहे वे विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में काम करते हों, इस बात को सदा अपने ध्यान में रखें कि यदि विज्ञान का कुछ अर्थ हो सकता है तो वह सेवा होनी चाहिए न कि विनाश। और जब सभी लोग इस ध्येय को अपने सामने रखेंगे तो इस देश के वैज्ञानिकों द्वारा विज्ञान की जो प्रगति होगी, वह संसार तथा मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी होगी, विनाशकारी नहीं। परन्तु यदि हमने भी क्षणिक लाभ को महत्त्व देकर उसी ओर ध्यान दिया जिधर अन्य देशों के वैज्ञानिक दे रहे हैं, तो उसका परिणाम केवल हमारे लिए ही नहीं, मानवमात्र के लिए भयंकर तथा विनाशकारी सिद्ध हो सकता है।

मैं तो यह भी मानता हूँ कि आज के समय में औषधि तथा चिकित्सा-विभाग आवश्यक हैं परन्तु उनका उद्देश्य तो तभी पूरा होगा जब औषधियों की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। डाक्टरों के व्यवसाय का उद्देश्य यह होना चाहिए कि किसी को कोई रोग हो ही नहीं। इसी को आयुर्वेद कहते हैं। यह जीवन का वेद है, रोग का वेद नहीं।

मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि लखनऊ विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के अध्ययन की भी व्यवस्था रखी गयी है। मैं यह नहीं कहता कि इस अस्पताल को या इस बड़े इंस्टीट्यूट को छोड़कर आयुर्वेद की चिकित्सा जारी कर दीजिये। परन्तु यह आवश्यक है कि आपके राज्यपाल महोदय मन्त्रिमण्डल से यह आग्रह करें कि थोड़ा ध्यान इस ओर भी दिया जाये जिससे जो हमारे देश की चीज है, वह जीवित रहे। आज भी इस देश में जितने लोग देसी चिकित्सा से लाभ उठाते हैं उतने लोग इन बड़े-बड़े अस्पतालों से लाभ नहीं उठाते। इसमें किसी का दोष नहीं है। ये अस्पताल सब लोगों के लाभ के लिए बनाये जाते हैं। जितने लोग इनसे लाभ उठा रहे हैं, उस ओर भी ध्यान देना चाहिए।

आजकल विज्ञान की इतनी उन्नति हो रही है, विशेषकर चिकित्सा-शास्त्र की कि उसमें बहुत से रोगों की परीक्षा करनी पड़ती है। रोगों का ठीक निदान डाक्टर भी तभी कर सकते हैं। परन्तु इसमें एक दोष है। वह यह कि इस प्रकार की जाँच में व्यय बहुत पड़ जाता है। यह जाँच एक तो गरीब व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर है और दूसरे औषधियाँ जो विदेश से आती हैं वे बहुत मँहगी पड़ती हैं। इसलिए ध्यान इस ओर देना है कि इन

जाँचों को किस प्रकार कम व्यय से सब लोगों के लिए सुलभ बनाया जाये।

मैं स्वयं एक रोगी हूँ और जब कभी मुझे मेडिकल कालेज या इस प्रकार की किसी अन्य संस्था में बुलाया जाता है तो मैं समझता हूँ कि मेरा इतना अधिकार है कि मैं आप से कुछ कहूँ। देसी चिकित्सा-पद्धतियों में जाँच की आवश्यकता नहीं होती। उसमें नाड़ी देख-कर ही सब रोगों के बारे में निदान कर लिया जाता है। हो सकता है, आज का निदान उससे कहीं अधिक अच्छा, सुन्दर और सही होता हो। परन्तु यह अच्छा से अच्छा निदान १०० में से एक आदमी को मिलता है और उस पर भी दावे के साथ यह कोई नहीं कह सकता कि उस आधार पर जो दवा होगी, उससे रोगी अच्छा हो ही जाएगा। जब १०० में ९९ रोगी इस निदान से लाभ नहीं उठाते तो इससे देश का अधिक लाभ नहीं हो सकता। इससे देश को तभी लाभ होगा जब कम से कम ४५-५० प्रतिशत रोगी बिना व्यय के निदान पा सकें। डाक्टरों से मेरा निवेदन है कि वे पुरानी चिकित्सा-पद्धतियों को अवहेलना की दृष्टि से न देखें। उनके जो जानकार हैं, उनसे सीखने-समझने का प्रयास करें और देखें कि उससे कुछ लाभ मिल सकता है या नहीं। यदि कुछ भी लाभ नहीं निकल सकता तो कोई बात नहीं। परन्तु यदि हम उससे कोई लाभ उठा सकते हों तो उससे देश का भी लाभ है और जनकल्याण भी।

मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ अनुसन्धान का भी काम करेंगे और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी रखेंगे। परन्तु यदि इस ओर भी ध्यान दिया जाये तो मैं समझता हूँ कि जो अनुसन्धान किया जाएगा उससे बहुत सी ऐसी चीज़ें मालूम होंगी जिनसे लाभ हो सकता है। परन्तु कम से कम जब तक अनुसन्धान करके किसी चीज़ को गलत न सिद्ध करें, तब तक उसको छोड़ देना या यह कह देना कि वह विज्ञान के विरुद्ध है, एक अनुचित बात है। विज्ञान का अर्थ है सब चीज़ों को जाँचकर किसी परिणाम पर पहुँचना। जाँच किये बिना किसी चीज़ को ग़लत बताना विज्ञान की दृष्टि से ठीक नहीं। इसलिए आप सबसे मैं नम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि आप इस ओर भी ध्यान दें।

मैंने जो कुछ कहा, इसलिए नहीं कि मैं इस काम में नुकताचीनी करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह काम होना चाहिए, परन्तु साथ ही साथ मैं यह भी समझता हूँ कि आपका ध्यान और चीज़ों की ओर भी जाये। इसीलिए मैंने कुछ और बातों का भी उल्लेख किया। आप ऐसा न समझें कि आपने ही मुझे बुलाया और मैंने आपके ही विरुद्ध कहा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं यहाँ आ सका। आपने मुझे बुलाया और मान दिया, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

बुनियादी शिक्षा की प्रगति

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि शिक्षा मन्त्रालय ने बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में इस प्रदर्शनी का आयोजन किया। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा लोगों का ध्यान बुनियादी शिक्षा-प्रणाली की ओर आकर्षित होगा और उन्हें इसके सिद्धान्त तथा उद्देश्य समझने में सहायता मिलेगी। बुनियादी शिक्षा के बारे में लोगों के विचार अभी एकदम स्पष्ट नहीं हैं। इस प्रदर्शनी से इस शिक्षा-प्रणाली को ठीक-ठीक समझने में और इसके लक्ष्य को पूर्ण रूप से ग्रहण करने में सहायता मिलनी चाहिए। जो चीज़ें यहाँ प्रदर्शित की गयी हैं वे बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में पिछले १५ वर्षों से, विशेष रूप से स्वाधीनता के बाद से किये जाने वाले हमारे प्रयोगों के फलस्वरूप हैं।

१६३८ में गान्धी जी ने शिक्षा के क्षेत्र में इस नये सिद्धान्त का सूत्रपात किया। उस समय से इस प्रणाली के सम्बन्ध में मेरी जो कुछ जानकारी है, उसके आधार पर मैं समझता हूँ, बुनियादी शिक्षा को हम एक ऐसी प्रणाली कह सकते हैं जिसका ध्येय पढ़ाई और रचनात्मक काम अथवा दस्तकारी के माध्यम से बच्चों का शारीरिक और बौद्धिक विकास करना है। इस प्रणाली के अन्तर्गत बच्चे साधारण तौर से अक्षर-बोध प्राप्त करते हैं, किन्तु यह प्रयास दस्तकारी अथवा उनके अपने हाथ से बनायी हुई चीज़ों के माध्यम से किया जाता है। दस्तकारी के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा जो बुनियादी शिक्षा-प्रणाली की सर्वप्रथम विशेषता है, शरीर और मस्तिष्क अथवा बुद्धि के विकास का मार्ग सहज ही प्रशस्त करती है। दस्तकारी के द्वारा बच्चों के हाथ-पावों का ही उचित विकास नहीं होता बल्कि पढ़ाई का काम अधिक रोचक और कम कष्टदायक हो जाता है। रचनात्मक प्रवृत्ति से मस्तिष्क और सहज बुद्धि के विकास में सहायता मिलती है।

जब गान्धी जी ने इस नये विचार को देश के सामने रखा, उस समय उनके मन में एक ध्येय और भी था। बच्चे जो चीज़ें हाथ से बनाते हैं वे बेची भी जा सकती हैं और इस प्रकार जो धन प्राप्त हो उसके द्वारा शिक्षा पर होने वाले व्यय का कम से कम कुछ भाग पूरा किया जा सकता है। गान्धी जी का यह विश्वास था कि भारत जैसे महान् देश

अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा प्रदर्शनी (नयी दिल्ली) का उद्घाटन करते समय भाषण, २८ अप्रैल, १६५६

में इस प्रकार की व्यवस्था के बिना सबको शिक्षित करने का हमारा आदर्श चिरकाल तक स्वप्न मात्र रहेगा। महात्मा जी का विचार था कि उचित शिक्षा के साथ-साथ बुनियादी शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत देश में शिक्षा पर बराबर बढ़ते हुए व्यय का एक भाग दस्तकारी द्वारा पूरा किया जा सकता है।

१९३८ से ही देश के शिक्षासम्बन्धी क्षेत्रों में बुनियादी शिक्षा विवाद का विषय रहा है, यद्यपि केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदातृ परिषद् समय-समय पर इस प्रणाली पर विचार करती आयी है और इसका अनुमोदन करती रही। स्वाधीनता के बाद केन्द्रीय और राज्यों के शिक्षा विभाग इस प्रश्न का गम्भीर विवेचन करते रहे हैं और बुनियादी शिक्षा देश के सभी भागों में प्रयोग के रूप में चालू भी की गयी। अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के बावजूद यह परीक्षण बराबर जारी रहा और प्रतिवर्ष बुनियादी स्कूलों की संख्या और प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि होती रही।

जब हम वर्तमान स्थिति पर विचार करते हैं और अभी तक जो प्रगति हुई है उसे आंकने का यत्न करते हैं तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या हम प्रारम्भिक कठिनाइयों को पार कर चुके हैं और विवाद की स्थिति से ऊपर उठ चुके हैं? मुझे भय है कि इस प्रश्न का 'हां' में उत्तर देना सम्भव नहीं है, परन्तु इसके साथ ही 'नहीं' कहना भी उतना ही गलत होगा। पर्याप्त संख्या में अनुभवी और प्रशिक्षित अध्यापक प्राप्त न करना निस्सन्देह इस प्रणाली को लोकप्रिय बनाने के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई है। किन्तु हमारे प्रशासकों और शिक्षकों में से कुछ इस प्रणाली के औचित्य और व्यावहारिकता के सम्बन्ध में अभी भी सन्दिग्ध जान पड़ते हैं। यह ठीक है कि इस प्रणाली की विस्तृत कार्यविधि का अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ अथवा इसके कार्यक्रम ने निश्चित रूप धारण नहीं किया। हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियों में काफी भिन्नता है और इस दिशा में जो बड़े-बड़े परीक्षण किये गये हैं उन्हें या तो सीमित पैमाने पर किया गया है या असाधारण नियन्त्रित परिस्थितियों में। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि अभी तक जो अन्तिम परिणाम प्राप्त हुए हैं, वे ऐसे नहीं जिन्हें सारे देश के लिए मान लिया जाये। देश भर की शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना निश्चय ही एक कठिन कार्य है।

हमारे देश में अनिवार्य शिक्षा की समस्या की पेचीदगी को समझने वाले किसी भी व्यक्ति को इन कठिनाइयों के कारण, जिसका मैंने उल्लेख किया है, हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं। किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल प्रश्न यह है कि वे लोग जिन्हें देश की शिक्षा सम्बन्धी नीति को कार्यान्वित करने का काम सौंपा गया है और वास्तव में बच्चों को पढ़ाते हैं, उन्हें बुनियादी शिक्षा की व्यावहारिकता और उपादेयता पर पूरा भरोसा है या नहीं? यदि निजी अनुभव और आवश्यक ज्ञान के आधार पर उन्हें इस प्रणाली की व्यावहारिकता पर पूर्ण विश्वास हो गया है, तो मैं समझता हूँ कि बड़ी से बड़ी कठिनाइयां उनका मार्ग नहीं रोक सकेंगी और वे अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य की ओर बराबर बढ़ते जाएँगे। परन्तु दूसरी ओर यदि इस प्रणाली में उन लोगों की ही ढुलमुल आस्था है और वे ऊपर से दिये गये आदेशों का पालन करने मात्र के लिए इस कार्य में लगे हैं, तो उस दशा में

अधिक से अधिक धनराशि और बड़ी से बड़ी सुविधाएँ भी हमें निर्धारित लक्ष्य की ओर नहीं ले जा सकतीं। मैं जानता हूँ कि इस प्रश्न पर ही नहीं, दूसरे प्रश्नों पर भी मतभेद की गुंजाइश हो सकती है, किन्तु मेरी धारणा थी कि शिक्षा जैसे आधारभूत प्रश्न पर हम इस समय तक इस प्रकार के मतभेदों को दूर कर चुके होंगे और पुनर्निमाण के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त हो चुका होगा। एक लोकतन्त्री देश में शिक्षा का कितना ऊँचा स्थान होना चाहिए और राष्ट्रीय कार्यक्रम में उसे क्या प्राथमिकता मिलनी चाहिए, इस सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिए आवश्यक नहीं। मैं आशा करता हूँ कि अपने सीमित साधनों के साथ भी केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय तथा राज्यों के शिक्षा विभाग शिक्षा-प्रसार के जो यत्न कर रहे हैं, वे सफल होंगे और देर-सवेर हम अज्ञान और निरक्षरता का उन्मूलन करने में सफल होंगे।

यह प्रदर्शनी बुनियादी शिक्षा-प्रणाली को अधिक सुग्राह्य करने और लोकप्रिय बनाने में सहायक होगी और इस क्षेत्र में अभी तक जितनी उन्नति की गयी है उसका ब्योरा दे सकेगी, इसलिए मैं इस आयोजन का स्वागत करता हूँ। बच्चों की कला,दस्तकारी और उनकी प्रवृत्तियों का भी इस प्रदर्शनी से कुछ परिचय मिल सकेगा। जो चीजें यहाँ प्रदर्शित की गयी हैं उनमें बच्चों और उनके शिक्षकों द्वारा तैयार की गयी पुस्तकें भी सम्मिलित हैं। मुझे आशा है कि इस प्रदर्शनी में अभिभावक और शिक्षक ही नहीं, बच्चे भी पूरी रुचि लेंगे।

आज की माँग—बुनियादी शिक्षा

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि इस बार यह सम्मेलन आप यहाँ कर रहे हैं। सर्वोदय सम्मेलन अभी समाप्त हुआ है और आपका यह बुनियादी शिक्षा सम्मेलन उसके अंगस्वरूप रहेगा। तालीमी संघ का काम भी वही है जो सर्वोदय संघ का है। जब तक दोनों साथ-साथ नहीं चलेंगे अथवा दोनों समकक्ष होकर नहीं चलेंगे, तब तक काम नहीं होगा। इसलिए दोनों का एक साथ होना भी उचित ही है।

बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में आरम्भ से ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। शिक्षा-क्षेत्र में यह एक प्रकार से एक नयी योजना थी और लोगों को सभी नयी चीजों पर जल्दी विश्वास नहीं होता, विशेषकर ऐसे लोगों को जो पहले से किसी दूसरी चीज पर विश्वास जमाये बैठे हैं। सफेद कपड़े पर रंग सरलता से चढ़ सकता है। रंगे हुए कपड़े पर

तालीमी संघ के तेरहवें अधिवेशन (कांचीपुरम) में भाषण, ३० मई, १९५९

दूसरा रंग चढ़ाना बहुत कठिन है। अशिक्षितों को सिखा देना सरल है, पर शिक्षितों को सिखाना बहुत ही कठिन है। पर अब समय बदल रहा है और बहुत सी बातों में आशा के चिन्ह दीखने लगे हैं। अभी तो यह कहना कठिन है कि शिक्षित वर्ग तथा विशेषकर शिक्षा के काम में लगे हुए लोगों की ओर से जो विरोध हुआ था, वह बिलकुल दूर हो गया है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनका विरोध कम होता जा रहा है। सभी राज्यों में सरकार की ओर से होने वाला विरोध हट गया है और सरकार ने तालीमी संघ को कम से कम बुनियादी स्कूलों के लिए मान लिया है। परन्तु भविष्य के लिए सरकार ने अभी पूरी तरह से नहीं माना है।

तालीमी संघ का काम तब तक पूरा नहीं समझा जाएगा जब तक छोटे बच्चे की शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का काम इसके अधीन न आ जाये। हमारे सारे कार्यक्रम एक ही विचारधारा से अनुप्राणित होने चाहिएँ। बुनियादी शिक्षा के काम में लगे हुए लोगों पर भी एक भारी उत्तरदायित्व है। उत्तर बुनियादी स्कूल तक का काम तो हो गया है, पर मैं नहीं जानता कि तालीमी संघ की ओर से अभी तक विश्वविद्यालयिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी कोई विशेष काम किया गया है या नहीं। आज के वातावरण में क्या हमारे देश के लोग विश्वविद्यालयिक शिक्षा को बिलकुल छोड़ने के लिए तैयार होंगे? यह तो तभी हो सकता है जब हमारे समाज का रूप ही बदल जाये। मालूम नहीं यह कब तक होगा। आज देश की जो स्थिति है, उसके अनुसार जब तक हम बुनियादी के बाद माध्यमिक और इसके बाद विश्वविद्यालयिक शिक्षा का क्रम ऐसा नहीं बना लेते कि जिससे विद्यार्थी एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे में पहुँच सके, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।

तीन मंज़िले मकान में एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी मंज़िल पर जाने के लिए नीचे से ऊपर तक सीढ़ी होनी चाहिए। उसी प्रकार शिक्षा में भी मंज़िलें होनी चाहिएँ। और जैसे तीन मंज़िले मकान में कुछ लोग पहली मंज़िल में ही रह जाते हैं और वे आगे नहीं बढ़ते पर उनके आराम के सब सामान उसी मंज़िल में रहते हैं, वैसा ही यहाँ भी होना चाहिए। हमको यह समझ लेना चाहिए कि कुछ लोग पहली मंज़िल में रह जाएंगे, कुछ लोग दूसरी मंज़िल में और तीसरी में थोड़े-से लोग ही पहुँचेंगे। जो जिस मंज़िल में रह जाये, वहाँ तक वह जो कुछ जानना और सीखना चाहता हो वह उसे पूर्णरूप से मिलना चाहिए। वह अपना जीवन जिस प्रकार का बनाना चाहे, उसके लिए उसके हाथ में पूरे साधन आ जाने चाहिएँ। सभी व्यक्तियों को समाज और देश के लिए उपयोगी और काम करने वाला बनना चाहिए। यह समझना भी गलत होगा कि पहले मंज़िल के विद्यार्थी दूसरों से किसी भी बात में छोटे हैं। पहली मंज़िल में रहने वालों में न तो हीनता की भावना होनी चाहिए और न दूसरी मंज़िल में रहने वाले को घमण्ड। इसी प्रकार समाज में भी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हमारी मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन हो।

हमारे पूर्वजों ने हमारे समाज के संगठन में एक विशेषता रखी थी। प्रतिष्ठा

धन-सम्पत्ति पर ही आधारित नहीं होती थी। गरीब व्यक्ति ही सबसे अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। जब हमारी शिक्षा भी ऐसी होगी तभी वह पूरी हो सकेगी। इसलिए तालीमी संघ को अभी बहुत-कुछ करना है। उसे हमारी मनोवृत्ति बदलनी है और हमारे समाज के गठन में आमूल परिवर्तन लाना है। इसमें बहुत परिश्रम लगेगा। यह बड़े आनन्द की बात है कि अब सरकार का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस राज्य के शिक्षा मन्त्री ने आपको आश्वासन दिया है कि इस सम्बन्ध में उनसे जो कुछ हो सकेगा, वह करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि और राज्यों में भी इसी प्रकार का काम होगा। पंचवर्षीय योजना में बड़े-बड़े काम करने के साथ-साथ इस काम को भी छोटा काम नहीं समझा जाएगा। जैसा इसका नाम है, इसको बुनियादी काम समझा जाएगा।

आज तक तालीमी संघ को शिक्षकों का बहुत अभाव रहा है। मैं समझता हूँ कि यदि इस ओर ध्यान दिया जाये तो यह कमी दूर हो सकती है। एक ओर इसके विस्तार का प्रबन्ध किया जाना चाहिए तो दूसरी ओर इसको और भी अधिक व्यापक बनाना चाहिए। बुनियादी शिक्षा पर पूरा प्रयोग हो चुका है। अब तो उसको कार्यरूप देने का काम शेष है। किन्तु उत्तर बुनियादी विश्वविद्यालय के लिए अभी शायद कुछ और प्रयोग आवश्यक है। यह प्रयोग इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि उसको सारे देश के लोग स्वीकार कर सकें। सरकार तैयार हो या नहीं, तालीमी संघ को तो यह कार्य अवश्य ही करना है। तालीमी संघ का काम ऐसा वातावरण तैयार करना है जिससे सभी इस शिक्षा-पद्धति को मान्यता दें। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इसका कोई अधिक विरोध नहीं होगा।

भारत के यथार्थवादी लेखक—मुंशी प्रेमचन्द

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मुझे हिन्दी के अग्रणी साहित्यकार प्रेमचन्द जी की प्रसिद्ध कहानी 'पंच परमेश्वर' को नाटक के रूप में मंच पर देखने का अवसर मिला। 'पंच परमेश्वर' में हमारे देहाती जीवन का जैसा सच्चा चित्र खींचा गया है और इस देश के ग्रामीण वातावरण की जैसी यथार्थ तस्वीर पेश की गयी है, उससे आप सभी लोग परिचित हैं। यदि आप में से किसी को वह कहानी पढ़ने का अवसर न मिला हो तो वह कमी इस नाटक को देखने से पूर्ण हो जाएगी।

नयी दिल्ली में 'पंच परमेश्वर' नाटक के रूप में प्रस्तुत किये जाने के अवसर पर भाषण, ३ अगस्त, १९५६

भारत के प्रतिनिधि साहित्यकारों की कृतियों को इस प्रकार नाटक का रूप देने का विचार बहुत सुन्दर है क्योंकि जनता में ऐसे लेखकों तथा उनकी अमर कृतियों को लोकप्रिय बनाने का यही सबसे सरल उपाय है। किसी चीज को पढ़ने से मनुष्य जितना प्रभावित होता है, उससे कहीं अधिक प्रभाव उसी घटना को मंच पर नाटक के रूप में देखने से पड़ता है। और फिर 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानी का तो अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए क्योंकि इस कहानी में पंचायतों के महत्त्व, देहाती लोगों में भाईचारे की भावना और पंचों की न्यायप्रियता पर ज़ोर दिया गया है। आज जबकि भौतिक तथा औद्योगिक उन्नति के सभी साधनों को जुटाने के साथ-साथ स्वाधीन भारत की सरकार पंचायतों का फिर से गठन कर रही है और देहात-सुधार सम्बन्धी कई काम उनके सुपुर्द किये जा रहे हैं, 'पंच परमेश्वर' के प्रचार का महत्त्व उस समय की अपेक्षा जब कि वह प्रेमचन्द जी द्वारा लिखी गयी थी अब कहीं अधिक है।

इस अवसर पर प्रेमचन्द जी के सम्बन्ध में दो शब्द कहना असंगत न होगा। उन्होंने हिन्दी और उर्दू साहित्य की श्रीवृद्धि मात्र ही नहीं की, बलिक इन साहित्यों के स्तर को भी ऊँचा उठाया। जैसा कि आप सब लोग जानते हैं, उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी ऐसे हिन्दी लेखक थे जिन्होंने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को चित्रित करना अपना कर्त्तव्य समझा। प्रेमचन्द जी ने उपन्यास की रोचकता को कायम रखते हुए उसे वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को चित्रित करने का माध्यम बनाया। उनके उपन्यासों और कहानियों में जितने पात्र हैं वे सब जीते-जागते, हँसते-रोते हाड़-माँस के प्राणी हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने उपन्यास और कहानी का वायुमण्डल ही बदल डाला और काल्पनिक साहित्य, इतिहास और वस्तुस्थिति में एक नवीन सम्बन्ध स्थापित किया।

उपन्यासकार और कहानीकार के रूप भारत अथवा विश्व के साहित्य में प्रेमचन्द जी का क्या स्थान है, इस बात का विवेचन हमारे साहित्यकार और आलोचक ही कर सकते हैं। मैं तो एक पाठक के रूप में इतना ही कह सकता हूँ कि समाज में, राजनीति में, व्यावहारिक जीवन में अथवा साहित्य-जगत में मुझे कोई ऐसा पक्ष दिखायी नहीं देता जिसे प्रेमचन्द जी की लेखनी ने न अपनाया हो।

देश-भक्ति की भावना को उभारना, पराधीनता के विरुद्ध चलाये जाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना, दीन-दुखियों और गरीब देहातियों के प्रति समवेदना प्रकट करना, सामाजिक कुरीतियों का घोर विरोध करना, ये सभी बातें हमें प्रेमचन्द जी के उपन्यासों और उनकी कहानियों में मिलती हैं। हम उन्हें समाज-सुधारक, आत्माभिमानी, श्रमजीवी, सच्चा देशभक्त और दीनबन्धु सभी कुछ कह सकते हैं। ऐसे लेखक द्वारा लिखी गयी प्रत्येक कहानी और प्रत्येक कृति अधिक से अधिक प्रचार तथा लोकप्रियता की अधिकारिणी है। अपने युग के लेखकों के सामने उन्होंने जो आदर्श रखे और निजी जीवन में जिस प्रकार उन्होंने उन आदर्शों को निभाया, वह सब आज के लेखक समाज के लिए अनुसरणीय भी है।

मैं दिल्ली राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन को उनके इस प्रयास पर बधाई देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि वह हमारे प्राचीन तथा आधुनिक साहित्यकारों को, चाहे उन्होंने किसी भी भाषा में लिखा हो, इसी प्रकार जनता के सामने लाने का प्रयत्न करता रहेगा।

ग्राम-सुधार और ग्रामीण महिलाएँ

मैं वयस्क शिक्षा परिषद् और अखिल भारतीय ग्रामीण महिला संघ द्वारा आयोजित इस संगोष्ठी का स्वागत करता हूँ और मुझे प्रसन्नता है कि आपने इसके उद्घाटन के लिए मुझे निमन्त्रित किया। यह आयोजन ग्रामीण महिलाओं की समस्या और उनके कार्य पर विचार करने के लिए किया गया है। इसलिए यह अधिक स्वाभाविक होगा कि हम देहात में रहने वाली महिलाओं के कामकाज पर देहाती वातावरण में ही विचार करें।

हमारे देश में बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली जैसे बड़े-बड़े नगर हैं किन्तु देश के अधिकांश लोग (भारत की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या) देहातों में रहते हैं। हमारे देहात और उनमें रहने वाले स्त्री-पुरुष भारत के सच्चे प्रतिनिधि हैं। बहुत हद तक उनका सुख-दुख देश का सुख-दुख है और उनका कल्याण देश का कल्याण है। सरकारी अथवा किसी भी गैरसरकारी संस्था का कोई भी रचनात्मक कार्यक्रम तब तक सफल नहीं मानना चाहिए जब तक उससे देहात में बसने वाले लोगों को लाभ न हो। शिक्षा, ग्राम-सुधार, सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि राष्ट्र-निर्माण के ऐसे कार्य हैं जिनका सम्बन्ध शहरों की अपेक्षा ग्रामों से कहीं अधिक है। यही नहीं कि ग्रामीण लोग शहरियों की तुलना में संख्या में बहुत अधिक हैं, वे पिछड़े हुए भी हैं। उन्हें दूसरों के बराबर लाने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। हम जब तक देहाती लोगों की उन्नति, उनके रहन-सहन और उनकी शिक्षा-दीक्षा का विशेष ध्यान नहीं रखेंगे, तब तक राष्ट्र-निर्माण के हमारे सभी प्रयास अधूरे अथवा एकांगी रहेंगे। यही कारण है कि भारत के रचनात्मक कार्यक्रम में देहातों में चालू की जाने वाली सामुदायिक विकास योजनाओं का इतना अधिक महत्त्व है। यदि हम अपने देश से दरिद्रता और निरक्षरता बिलकुल समाप्त कर देना चाहते हैं तो हमें अपने देहाती भाइयों और बहनों का विशेष ध्यान रखना होगा और विकास की सभी योजनाओं में उन्हें अपने साथ रख कर आगे बढ़ना होगा।

पहली पंचवर्षीय योजना लागू होने के दो वर्ष बाद सामुदायिक विकास योजना के फल-

---

अखिल भारतीय ग्रामीण महिला संघ तथा भारतीय वयस्क शिक्षा परिषद् द्वारा आयोजित संगोष्ठी में भाषण, २ सितम्बर, १९५६

स्वरूप देश के सभी भागों में जो निर्माण-कार्य हुआ है, उसके सम्बन्ध में आप लोग बहुत-कुछ जानते होंगे। बहुत से राज्यों में जहाँ मुझे जाने का अवसर मिला मैंने देखा कि कुछ वर्षों में ही वहाँ के देहाती क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। सड़कें, कुएँ, पंचायत-घर, स्कूल, अस्पताल आदि बने हैं और लोग उत्साह तथा आगे बढ़ने की भावना से प्रेरित हुए हैं। यह शुभ लक्षण है। देहातों में जागृति देखकर सभी का उत्साह बढ़ता है और यह विश्वास होता है कि अब हम गरीब और अनपढ़ नहीं रहेंगे और दूसरे उन्नत देशों की भाँति भारत भी एक सम्पन्न देश बन कर रहेगा।

हमारे राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम में कुछ काम ऐसे हैं जिनमें सफलता के लिए महिलाओं में जागृति और उनका पूरा सहयोग अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ऐसे कामों में सबसे पहले शिक्षा, घरबार और गाँव की सफाई तथा अच्छा रहन-सहन आदि आता है। पढ़ाई-लिखाई के सम्बन्ध में जब तक महिलाओं में पूरा उत्साह नहीं होगा, ग्रामीण शिक्षा का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। यही बात हम सफाई और रहन-सहन के विषय में भी कह सकते हैं। इसलिए मैं सभी ऐसे कार्यक्रमों को देश के हित में बहुत आवश्यक समझता हूँ जिनका ध्येय देहाती भाई-बहनों की उन्नति के लिए कार्य करना है। अखिल भारतीय ग्रामीण महिला संघ और भारतीय वयस्क शिक्षा परिषद् ऐसी ही संस्थाओं में से हैं। समाज के किसी भी वर्ग से सम्बन्धित महिलाओं को जागृत करना और राष्ट्र-निर्माण के काम में उनका सहयोग प्राप्त करना एक बहुत बड़ा कार्य है। जब हमारे कार्य-क्षेत्र देहात हों और हमारा उद्देश्य देहाती रहन-सहन में सुधार करना हो तब तो ग्रामीण महिलाओं का सहयोग और भी आवश्यक हो जाता है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण जीवन में जो उत्तरदायित्व महिलाओं पर आते हैं वे शहर में रहने वाली महिलाओं के उत्तरदायित्वों से कहीं अधिक भारी और व्यापक होते हैं। ग्रामीण महिला गृहिणी के रूप में घर का कामकाज करने के अतिरिक्त खेत में किसान के रूप में और और छोटे उद्योग-धन्धों में साधारण कारीगर के रूप में भी काम करती है। प्रायः उसे पुरुषों की भाँति मजदूरी भी करनी होती है। ग्रामीण महिला का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है। इसीलिए देहातों में राष्ट्र-निर्माण के काम में ग्रामीण महिलाओं का सहयोग इतना ही आवश्यक है जितना ग्रामीण पुरुषों का।

मुझे आशा है, ये दोनों संस्थाएँ रचनात्मक कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देने में सहायक हो सकेंगी। आप लोगों का कार्यक्रम व्यवहार की दृष्टि से सरल और भरपूर भी है। मुझे विश्वास है कि इस कार्यक्रम को पूर्णरूप से कार्यान्वित करने से हमारी देहाती बहनों को लाभ होगा और इसके साथ ही देहातों की स्थिति में भी सुधार होगा। मैं इन दोनों संस्थाओं के कार्यकर्ताओं और कार्यकर्त्रियों को बधाई देता हूँ और उन्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि भारत सरकार और सामुदायिक योजना प्रशासन ही नहीं, बल्कि जन-साधारण भी इस शुभ कार्य में उनके साथ हैं और अधिक से अधिक उनकी सहायता करने को उत्सुक हैं। मैं आप सबकी सफलता की कामना करता हूँ और यह आशा प्रकट करता हूँ कि यह रचनात्मक कार्य बराबर आगे बढ़ता रहेगा।

बच्चे ही राष्ट्र के भाग्य-निर्माता

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आज इस शुभ दिन पर आपने बाल-मन्दिर के उद्घाटन के लिए मुझे यहाँ बुलाया। बाल मन्दिर कई वर्षों से अपना काम करता आ रहा है और आप लोग इसकी आज तक की सेवा से भलीभाँति परिचित हैं। आज तक जो काम उपयुक्त स्थान न मिलने के कारण कई स्थानों में बिखरा हुआ था, वह यहाँ एक सुन्दर भवन मिलने से और भी भली प्रकार हो सकेगा। इस काम में बहुत लोगों का सहयोग रहा है। बहुतेरों ने इसकी पैसे, अपने शारीरिक परिश्रम तथा उत्साह से सहायता की है। मैं आप सबकी ओर से उन सब लोगों को तथा सब संस्थाओं को, जिनमें मध्य प्रदेश की सरकार भी है, धन्यवाद देना चाहता हूँ।

बच्चों की शिक्षा का काम बड़े महत्त्व का काम है क्योंकि ये ही बच्चे कुछ दिनों के बाद जब सयाने होंगे तो सारे देश के काम का भार उनके ही कन्धों पर पड़ेगा। उनके अपने घरबार तथा बाल-बच्चे होंगे जिनको उन्हें संभालना होगा और साथ ही साथ इस देश को भी संभालना होगा। इसलिए बच्चों को सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए जो कुछ भी किया जाये, वह सदा स्तुत्य और योग्य है।

बच्चों को जन्म के पहले से ही कुछ न कुछ शिक्षा मिलने लगती है। अभिमन्यु को माँ के गर्भ में ही शिक्षा मिली थी। हमारे पुराणों में ऐसे और भी उदाहरण होंगे जब माता-पिता से शिक्षा पाकर बच्चे अपने समय में बहुत बड़े हुए। समय के हेर-फेर के कारण आज हमारे बच्चों को घर में उस प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती जैसी मिलनी चाहिए, और हमको उनकी शिक्षा के लिए शिक्षा संस्थाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। हमारे देश की प्रथा बड़े से बड़े काम को केन्द्रित करने की नहीं, बल्कि सबको मिला देने और बिखेर देने की है। इस प्रथा के फलस्वरूप पहले बड़े-बड़े शिक्षालयों और महाविद्यालयों की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि शिक्षा काम के द्वारा दी जाती थी जिससे बच्चों की मानसिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक उन्नति हो। यह शिक्षा सामान्यतया बच्चों को घरों में ही मिल जाया करती थी और जो इससे अधिक जानना और सीखना चाहते थे, उनके लिए ऋषियों के आश्रम खुले हुए थे जहाँ जाकर वे रहते और सब प्रकार की विद्या का

बाल मन्दिर भवन (वर्धा) का उद्घाटन करते समय भाषण, ११ सितम्बर, १९५९

अभ्यास करते थे। उन ऋषि-आश्रमों में केवल अक्षर-ज्ञान ही नहीं दिया जाता था, बल्कि वहाँ सब प्रकार की विद्या का अध्यापन हुआ करता था यहाँ तक कि धनुर्विद्या भी ऋषि-आश्रम में ही सिखायी जाती थी।

अभी बच्चों ने रामायण का दृश्य दिखाया। विश्वमित्र ने रामचन्द्र को अपने आश्रम में ले जाकर ही धनुर्विद्या सिखलायी और इसके बल पर उन्होंने केवल निशाचरों का ही वध नहीं किया बल्कि रावण को भी मारा। इसी प्रकार हम महाभारत में देखते हैं कि पाण्डवों को धनुर्विद्या की शिक्षा द्रोणाचार्य ने दी और श्रीकृष्ण को भी विद्या सीखने के लिए ऋषियों के आश्रमों में जाना पड़ा था। हमारे यहाँ की यही पुरानी रीति है। आज समय दूसरा हो गया है। आज की शिक्षाप्रणाली दूसरे प्रकार की है। इसलिए आज ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जो बच्चों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराने के साथ-साथ आज की आधुनिक विद्या का भी ज्ञान करायें तथा उनके चरित्र की नींव हमारी प्राचीन संस्कृति हो। इस लिए मैं इस कार्य को बहुत अधिक महत्त्व देता हूँ। मुझे इस प्रकार की संस्था देखने का जहाँ कहीं भी सुअवसर मिलता है अथवा उनके सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलती है, मैं उसको बहुत प्रसन्नता के साथ देखता और सुनता हूँ।

वर्धा की तो बात ही क्या है। यहाँ की सभी संस्थाओं का अपना महत्त्व है क्योंकि इन संस्थाओं का जन्मदाता कोई भी हो, प्रेरणा तो गान्धी जी की ही है। यहाँ जो कुछ काम होता है, हो रहा है या होगा सब कुछ उनकी प्रेरणा से ही होगा। जमनालाल जी का प्रेम इतना शक्तिवान था कि वह गान्धी जी को यहाँ खींचकर ले आया और उनके प्रेम की बदौलत ही आज वर्धा और सेवाग्राम की संस्थाएँ दिखायी पड़ती हैं। यहाँ की संस्थाओं के निर्माता त्यागी, यशस्वी और सभी प्रकार का अनुभव रखने वाले लोग होते रहे हैं और हैं। जाजू जी तथा किशोरलाल भाई जैसे लोग अब नहीं रहे और बहुतेरे दूसरे लोग जो यहाँ रहते थे वे भी यहाँ नहीं हैं। मगर तो भी ये संस्थाएँ चल रही हैं और मैं तो यह आशा करूंगा कि इन संस्थाओं को और भी अधिक बल प्राप्त होगा और ये अधिक तेजी तथा बड़े पैमाने पर काम कर सकेंगी। इसका एक नमूना यह बाल-मन्दिर है जिसने आज अपना बृहत् रूप धारण किया है और जिससे यह आशा की जाती है कि उसके कार्यक्षेत्र का और भी अधिक विकास होगा।

आज का दिन एक शुभ दिन है क्योंकि आज सन्त विनोबा का जन्म दिन है। इसलिए मुझे इस बात की और भी प्रसन्नता है कि मैं इस शुभ दिन पर इस शुभ काम में सम्मिलित हो सका। आज वह सारे देश की मनोवृत्ति बदल रहे हैं और गान्धी जी के बताये पथ पर उसको चलाने और लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गान्धी रूढ़िवादी नहीं थे। वे सब विषयों पर विचार करते थे और नये तथा पुराने विषयों में ऐसा समन्वय स्थापित करते थे जिससे नयी से नयी चीज को भी हम अपने ढाँचे में ढालकर अपनी पद्धति से चला सकें। आज संसार के सामने अनेकों प्रकार की उलझनें हैं। विनोबा जी उन सबको सुलझाने के लिए इसी प्रकार से प्रयत्न करते आ रहे हैं जैसे महात्मा गान्धी जी अपने जीवन भर करते रहे। आज के दिन हम सब मिलकर ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह

विनोबा जी को बहुत दिनों तक जीवित रखे जिससे आज की परम्परा और भी सुदृढ़ हो और बहुत जोरों से आगे बढ़े।

वनों का संरक्षण देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

वन्य अनुसन्धानशाला तथा सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं के स्वर्ण जयन्ती समारोह के उद्घाटनार्थ यहां आ सकने की मुझे बहुत प्रसन्नता है। लगभग दो वर्ष हुए जब चौथे विश्व वन्य सम्मेलन के उद्घाटन के लिए मैं यहाँ आया था। गत ५० वर्षों में वन्य-अनुसन्धान के कार्य में जो प्रगति हुई है और इसने तथा इसकी प्रयोगशालाओं ने संसार भर की इस प्रकार की संस्थाओं में जो प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है, उस पर आप गर्व कर सकते हैं। १९५४ में आपने विश्व वन्य महासम्मेलन के अधिवेशन की जैसी सुन्दर व्यवस्था की थी, वह भी आपके लिए श्रेयस्कर है।

संसार भर की वन्य अनुसन्धानशालाओं में आपका विशेष स्थान है। यह शाला राष्ट्रमण्डलीय देशों में अपनी तरह की सबसे पुरानी संस्था है। यह १८९८ में फारेस्ट रेंजरों के प्रशिक्षण के लिए एक कालेज के रूप में आरम्भ हुई और १९०६ में यहाँ पहली अनुसन्धानशाखा खोली गयी। उस समय से प्रशिक्षण और अनुसन्धान का कार्य साथ-साथ चल रहा है। इन दोनों कार्यों का मेल बहुत निराला है और मैं समझता हूं, इस कारण आपकी शाला का रूप तथा वातावरण एक वन्य विश्वविद्यालय जैसा है।

वनों से देश को बहुत से लाभ पहुंचते हैं। भूमि और नमी का संरक्षण, बाढ़ के प्रकोप तथा जलवायु के प्रभाव का नियन्त्रण और पानी द्वारा भूमि के कटाव की रोक जैसे लाभ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। वनों से जो वन्य उत्पादन प्राप्त होते हैं वे भी कम मूल्य-वान नहीं। इनमें से बहुत से जीवन-यापन की सुविधा की दृष्टि से आवश्यक हैं। यही नहीं, भारत की अधिकांश देहाती जनता ईंधन, चारे, खेती के काम में आने वाले औजारों और गृह-निर्माण के लिए वनों पर ही निर्भर करती है। दियासलाई, कागज, सूती कपड़ा, प्लाईवुड आदि बढ़ते हुए उद्योगों के लिए और राष्ट्र की प्रतिरक्षा तथा यातायात सम्बन्धी मांगों की पूर्ति के लिए भी वनों से प्राप्त होने वाली अनेक प्रकार की लकड़ी आवश्यक है। इसलिए देश की सम्पन्नता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे वनों की ठीक से देखरेख हो, उनका उचित विस्तार किया जाये और वनों की उन्नति तथा स्थायित्व को ध्यान में

भारतीय वन्य अनुसन्धानशाला (देहरादून) तथा सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं की स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर भाषण, ६ दिसम्बर, १९५६

रखते हुए वन्य उत्पादनों का समुचित उपयोग किया जाये। इन सब कामों के लिए यह आवश्यक है कि हमें वनों में उगने वाले विभिन्न प्रकार के पेड़ों के सम्बन्ध में उनकी देखरेख, व्यवस्था और उपयोग की सन्तोषजनक विधियों का पूरा ज्ञान हो। इस ज्ञान में वृद्धि करने के लिए पिछले ५० वर्षों से आपकी अनुसन्धानशाला ने बहुत-कुछ कार्य किया है, किन्तु अभी तक इस दिशा में बहुत-कुछ करना शेष है। मुझे विश्वास है कि जो कार्य अभी करना शेष है वह भी किया जा रहा है और सभी जातियों के पेड़ों के सम्बन्ध में जानकारी इकट्ठी की जा रही है।

मैं जानता हूं कि वन्य विद्या सम्बन्धी अनुसन्धान की गति आवश्यक रूप से धीमी होती है। एक ही जाति के पेड़ों के पूर्ण अध्ययन के लिए मानव जीवन की दो अवधियाँ चाहिएँ। तभी लाभप्रद परिणाम की आशा की जा सकती है। इसलिए इस सम्बन्ध में दूरदर्शितापूर्ण नीति से काम लेना होता है। मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुसन्धानशाला ने इस बात को सदा अपने सामने रखा है। हम उन सभी भूतपूर्व महानुभावों के आभारी हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अनुसन्धान की नींव डाली।

हमने अभी दूसरी पंचवर्षीय योजना को हाथ में लिया है और इस योजना में सभी राज्यों ने वन-विस्तार के भारी कार्यक्रम निर्धारित किये हैं जिससे लकड़ी और अन्य वन्य उत्पादन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आवश्यक संख्या में वन्य सेवा के लिए प्रशिक्षण-प्राप्त कर्मचारी तैयार किये जायें और इसके साथ ही वन्य उपयोगों और अनुसन्धान के लिए भी कर्मचारियों का प्रबन्ध किया जाये। मेरा विश्वास है कि आपकी शाला और सम्बन्धित शिक्षा संस्थाएँ इस मांग को पूरा करने में समर्थ होंगी।

इस शुभ अवसर पर जब आपकी अनुसन्धानशाला अपने जीवन के ५० वर्ष पूर्ण कर चुकी है, मैं इस शाला से सम्बन्धित सभी लोगों को और इसके भूतपूर्व स्नातकों को बधाई देता हूँ। मैं नहीं समझता कि ऐसी बहुत सी संस्थाएँ हो सकती हैं जो विगत वर्षों में अपनी राष्ट्रसेवा और सफलताओं से इतनी सन्तुष्ट हो सकें जितनी भारतीय वन्य अनुसन्धान-शाला है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि आप अभी तक की गयी उन्नति को केवल बनाये ही नहीं रखेंगे बल्कि यथासम्भव प्रशिक्षण और अनुसन्धान के स्तर को और ऊँचा उठाने का भी यत्न करेंगे।

स्त्रियाँ अपना उत्तरदायित्व समझें

शिक्षा संस्थाओं से जब कभी भी मुझे बुलावा आता है तो मैं वहाँ जाने से इन्कार नहीं कर पाता क्योंकि शिक्षा संस्थाओं से मेरा आरम्भ से ही कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है और शिक्षाशास्त्र में भी मेरी पहले से काफी रुचि रही है। अतएव मुझे जब आपका निमन्त्रण मिला, मैंने उसे बड़े हर्ष के साथ स्वीकार किया और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज मैं यहाँ आ सका।

आप सब बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं कि आप इस कन्या महाविद्यालय में शिक्षा पा रही हैं क्योंकि इस महाविद्यालय का इस राज्य में अपना एक विशेष महत्त्व है और इसका इतिहास नारी-जागृति तथा उन्नति का इतिहास है। इसकी स्थापना उच्च आदर्शों को लेकर एवं नारी-जागृति तथा राष्ट्रीय उन्नति की पुनीत भावनाओं से प्रेरित होकर आज से बहुत साल पहले एक ऐसे सच्चे समाज-सुधारक के द्वारा हुई थी जिनके हृदय में मुख्यतः नारी जाति के प्रति विशेष गौरव और महान् आदर था। आप सबको मालूम ही होगा कि हमारे देश में दो प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ विद्यमान हैं। एक तो वे जो अंग्रेजी शासकों द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित की गयी थीं और दूसरी वे जो स्वतन्त्र रूप से राष्ट्रप्रेमियों द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत होकर अपने देश की संस्कृति एवं सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुनस्संस्थापित करने के उद्देश्य से स्थापित की गयी थीं। आपका यह कन्या महाविद्यालय भी लगभग इन्हीं पवित्र भावनाओं से प्रेरित होकर बहुत साल पहले स्थापित किया गया था और आपके लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप में से कुछ आज इस विद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त कर जीवन के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने जा रही हैं। उच्च शिक्षा-प्राप्ति की उपाधि जो आपको मिल चुकी है, आपकी एक अमूल निधि है जिससे आपकी गुरुता और भी बढ़ती है।

आप में से जो आज प्रमाणपत्र लेकर जा रही हैं, वे इस विद्यालय के सीमित दायरे में से निकलकर जीवन के विशाल प्रांगण में कर्मठ कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं। आपके कन्धों पर जीवन का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है और मुझे पूरा भरोसा है कि आप अपनी शिक्षा और अनुभव के बल और आधार पर उसे योग्यतापूर्वक संभाल सकने में सफल

कन्या महाविद्यालय (जालन्धर) में दीक्षान्त भाषण, २६ सितम्बर, १९५२

हो सकेंगी। अब तक आपका विद्यार्थी जीवन रहा, अब आगे आपका व्यावहारिक एवं क्रियात्मक जीवन रहेगा और आपको अपने जीवन के कार्यक्षेत्र में अनेक समस्याओं का सामना करते हुए आगे बढ़ना है। मुझे आशा है कि आपने यहाँ जो शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की उससे आप शक्ति और स्फूर्ति ग्रहण कर स्वतन्त्र देश की दायित्वपूर्ण नागरिकाओं की भाँति उसे निबाह सकेंगी। यह सब आपके लिए तभी सम्भव होगा जब आप यह भलीभाँति समझ लेंगी कि आपको अपने जीवन में क्या करना है।

आप सब यह भलीभाँति जानती ही होंगी कि प्राचीन काल में हमारे देश में स्त्रियों का कितना महत्त्वपूर्ण व उत्कृष्ट स्थान रहा है और प्राचीन भारत की स्त्रियों ने बड़ी निपुणता तथा चतुरता के साथ बुद्धि और त्याग के बल पर गृह एवं अनेकानेक सामाजिक कार्यों में किस प्रकार भाग लिया और किस प्रकार वे समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक रहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे गणित-शास्त्र, नीति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, गार्हस्थ-शास्त्र आदि सभी विषयों में पारंगत थीं। सीता, सावित्री, गार्गी, लीलावती आदि स्त्री रत्नों के नाम लेते हुए आज भी हमारा मस्तक गर्व से ऊँचा हो उठता है। हमारे यहाँ की स्त्री-जाति का चरित्र प्राचीन काल से उन्नत और उनकी परम्परा उज्ज्वल थी। उनके चरित्र आज भी नारी-जाति के सम्मुख ज्वलन्त उदाहरण के स्वरूप उपस्थित किये जा सकते हैं। यह सब कहने का मेरा तात्पर्य यह है कि आप देवी हैं, धात्री हैं और आप में वह सृजनात्मक शक्ति है जिससे मानव समाज का निरन्तर विकास और कल्याण होता रहता है। आप अपनी सृजनात्मक शक्ति से घर में और बाहर काम करती हुई समाज की सर्वांगीण उन्नति में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। आपकी जितनी महान् शक्ति है उतना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व भी आपके कन्धों पर है।

इन बातों का ध्यान रखते हुए मैं लड़कियों की शिक्षा को अधिक महत्त्व का स्थान देता हूँ। हम चाहे अपने सामने कितने भी महान् व उच्च आदर्शों को लेकर कैसी भी राज्य-व्यवस्था क्यों न स्थापित कर लें, हमारी आर्थिक एवं सामाजिक विचारधारा कितनी भी समान एवं उदार क्यों न हो, पर जब तक हमारी अगली पीढ़ी का शारीरिक एवं मानसिक सौष्ठव व गठन बाल्यकाल में ही ठीक नहीं बनता, तब तक हम अपने देश में चिरस्थायी सुख और शान्ति स्थापित करने में सफल नहीं हो सकते। इसलिए मेरा यह विचार है कि दफ़्तर या कारखाने में काम करने की अपेक्षा स्त्रियों का कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य घर का कार्य है जिसे वे सुचारु रूप से चला सकती हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उन्हें कूपमण्डूक बनाया जाये या उन्हें घर की चारदीवारियों में कैद करके रखा जाये। वे अपने गार्हस्थ जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन के अनेक कार्यों में भाग ले सकती हैं और उन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं और करना भी चाहिए। इसके लिए वे स्वतन्त्र और समान अधिकारिणी हैं। पर साथ ही स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता का अर्थ तो यही हो सकता है कि वे अपना विकास करती हुई मानव समाज की सर्वांगीण उन्नति में अपनी प्रत्येक शक्ति का उत्तमोत्तम उपयोग करें जिससे समस्त मानव जाति का कल्याण हो।

भारतीय स्त्री-जाति की प्राचीन गौरव-गरिमा एवं उच्च परम्पराओं को ध्यान में रखकर न केवल आपको शिक्षित होना है बल्कि शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् पुरुषों के साथ सहगामिनी बनकर आपको सब दिशाओं में कदम बढ़ाना है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अब राष्ट्र के नव-निर्माण के कार्य में आपको भी उचित रीति से भाग लेना चाहिए। यह सब तभी सम्भव हो सकता है जब हम वर्तमान शिक्षा-पद्धति की कमियों एवं दोषों को दूर कर उसको अपने अनुकूल एवं उपयोगी बना सकेंगे। इस सम्बन्ध में भी देश में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित हैं। आधुनिक सुधारवादियों या जो अपने को प्रगतिशील कहते हैं, उनकी धारणा यह है कि बालक-बालिकाओं को एक-साथ शिक्षा दी जाये और दोनों की शिक्षा-प्रणाली एक-सी हो। उनका यह भी विचार है कि स्त्रियों को न केवल शिक्षा-पद्धति में ही बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी पुरुषों के बराबर के अधिकार मिलने चाहिएँ तथा उन्हें सम्पूर्ण सामाजिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्हें समाज के समस्त व्यवसाय और व्यापारों में समान रूप से भाग लेना चाहिए और शिक्षा-प्रणाली की रचना इन सबके अनुकूल होनी चाहिए। दूसरी ओर कट्टरपन्थियों के विचार इनके विपरीत हैं। इस प्रकार स्त्री-शिक्षा और अन्य बातों के सम्बन्ध में हमारे देश में वर्तमान समय में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित हैं। इन दोनों में से कौन सी विचाराधारा उपयुक्त हो सकती है और किसके द्वारा हमारी संस्कृति एवं सभ्यता फलफूल सकती है, इस पर हमें ध्यान देना आवश्यक है। जहाँ तक मेरा अपना विचार है, मैं समझता हूँ कि हमारे लिए इन दोनों के बीच के मार्ग को अपनाना श्रेयस्कर होगा।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति के आदर्श एवं उद्देश्यों में जो दोष पाये जाते हैं, उनके अतिरिक्त वह बहुत मँहगी सिद्ध हो रही है। प्रतिवर्ष हम अपने शिक्षालयों द्वारा हजारों विद्यार्थियों को तैयार करते हैं जिनमें से बहुतों को नौकरियाँ न मिलने पर जीविका चलाना बहुत कठिन हो जाता है। इस प्रकार हम अपने शिक्षालयों द्वारा जहाँ काफी संख्या में विद्यार्थी बेकार तैयार होते देखते हैं वहाँ फैशनपरस्त भी तैयार होते देखते हैं। हमारे साधारण गृहस्थ-घरों के लड़के-लड़कियाँ जब प्रारम्भ में आधुनिक शिक्षालयों में प्रवेश पाती हैं तो धीरे-धीरे वे भी वहाँ की फैशनपरस्ती की शिकार हो जाती हैं और सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य साड़ियाँ एवं भाँति-भाँति की साज-शृंगार की वस्तुओं की नकल करने लगती हैं जिससे अपने माँ-बाप या अभिभावकों को पर्याप्त मात्रा में व्यय कराने के संकट में डाल देती हैं। ऐसी शिक्षा प्राप्त कर जब वे स्कूल या कालेज छोड़कर जाती हैं तो उनका जीवन भार-स्वरूप होने का भय रहता है क्योंकि जीवन के कार्यक्षेत्र में वह अपव्ययी शिक्षा-पद्धति धनोपार्जन के उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकती। वह नौकरी की आशा भी पूरी नहीं कर सकती और अन्त में यह शिक्षा उनके लिए निकम्मी मालूम पड़ती है। इसलिए हमें सचेत होकर सोचना है कि क्या वर्तमान शिक्षा-पद्धति ही हमारे लिए उपयुक्त है या इसमें कुछ सुधार की आवश्यकता है। लकीर के फकीर बने रहना हमारी बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती।

अब हमारे सामने प्रश्न उठता है और यह विचारने की बात है कि हम शिक्षा-

प्रणाली में और तदनुसार पाठ्यक्रम में कौन-कौन से ऐसे परिवर्तन या संशोधन करें, जिनसे लड़के-लड़कियां शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन के कार्यक्षेत्र में सफल और स्वावलम्बी बन सकें ताकि नौकरी की तलाश में उनको इधर-उधर भटकना न पड़े। इस सम्बन्ध में हमारी दृष्टि सहज ही उस शिक्षा की ओर जाती है जिसके द्वारा विद्यार्थी केवल शिक्षित ही नहीं होता बल्कि शिक्षा समाप्त करने पर स्वावलम्बी बनकर कुछ कमाने का ढंग भी निकाल सकता है। शिक्षा के साथ-साथ परिश्रम व उनके महत्त्व व उपयोगिता की भी जानकारी करायी जाये तो वह शिक्षा लाभदायी सिद्ध हो सकती है। इसी नयी पद्धति का नाम महात्मा गान्धी जी ने नयी तालीम दिया था जिसके अनुसार किसी क्रियात्मक या रचनात्मक काम के द्वारा ही ज्ञान की वृद्धि और शरीर, मस्तिष्क या चरित्र तीनों की उन्नति करायी जा सकती है। हमारी शिक्षा संस्थाएँ इस ओर ध्यान देकर शिक्षालयों में स्वावलम्बन की मानसिक प्रवृत्ति का वातावरण पैदा कर सकती हैं। इस प्रकार बेकारी की समस्या थोड़ी-बहुत हल हो जाती है। हमारे बच्चों की वे शक्तियाँ भी जागृत हो जाती हैं जो अन्ततः मनुष्य की उन्नति की एकमात्र साधन है।

विशेषकर स्त्री का कार्यकुशल होना अत्यन्त आवश्यक है। गार्हस्थ जीवन के निर्वहण में उनका पुरुष के साथ पूरा-पूरा सहयोग होना चाहिए। स्त्रियों को घर चलाने आदि के काम में कुशल होना चाहिए और छोटे-छोटे काम-काज करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। पढ़-लिख कर सुशिक्षित होने के बाद, घर-गृहस्थी के कार्यों से दूर भागना या मुँह मोड़ना स्त्रियों के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकता। स्त्रियों के कार्यकुशल एवं स्वावलम्बी बनने में ही उनकी गौरव-प्रतिष्ठा और उनकी मान-मर्यादा है। स्वावलम्बी बनने का अर्थ कुछ लोग बहुत संकुचित कर देते हैं और मानने लगते हैं कि शिक्षा द्वारा स्त्रियों को नौकरियों के योग्य बना देना उनको स्वावलम्बी बना देना है। स्वावलम्बी होने का यथार्थ रूप तो यह है कि स्वावलम्बी स्त्री या पुरुष को दूसरे पर निर्भर रहने की आवश्यकता कम से कम पड़े। क्या घर का सारा काम-काज संभाल लेना इसका एक लक्षण नहीं है? क्या अपने बच्चे के पालन-पोषण यहाँ तक कि दूध के लिए भी धाई पर निर्भर रहना परा-वलम्बन की पराकाष्ठा नहीं है? इसलिए सच्चा स्वावलम्बन वही है जिसमें दूसरों पर निर्भर नहीं अथवा कम से कम रहना पड़े।

प्रकृति ने और ईश्वर ने मानव जाति को जीवित रखने का भार स्त्रियों पर डाला है और मनुष्य-सृजन पुरुष नहीं स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। स्त्रियों और समाज को इस गौरवपूर्ण और विशिष्ट दायित्व को समझ लेना चाहिए और चाहे जो भी शिक्षा-पद्धति हो उसमें इसकी गरिमा या अनिवार्यता को ध्यान में रखना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि स्त्री और पुरुष दोनों सभी काम करें। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था नहीं की। इसलिए उनको सबसे पहले अपना सबसे बड़ा उत्तरदायित्व मानवमात्र का सृजन संभालना सीखना है। वह सृजन का काम सन्तानोत्पत्ति के साथ समाप्त नहीं होता। वह तो जब तक स्त्री जीती-जागती रहती है मनुष्य को उन्नत बनाने में चलता ही रहता है। इन सब महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का पालन करने में लड़कियों को विद्यालयों में सुशिक्षित होकर अपने देश के

सर्वांगीण विकास में उचित रीति से सहायक सिद्ध होना है।

मैं आपको एक बार फिर से धन्यवाद देता हूँ कि आप और आपका यह महाविद्यालय इसी कर्त्तव्य-साधना, नारी-जाति की जागृति और सुधार के लिए तथा सामाजिक जीवन में सच्ची उन्नति एवं मानव-कल्याण के लिए अपना योग देने में संलग्न हैं। मानव-संस्कृति के विकास तथा नारी के उसमें उपयुक्त स्थान को ध्यान में रखते हुए ऐसा क्रियात्मक कार्य-क्रम बनाये रखें जिससे सत्य, अहिंसा तथा शान्तिपूर्ण ढंग से भारतीय जन-जीवन को परिष्कृत व परिमार्जित करने में आपका यह महाविद्यालय स्नेह और सहयोग का आनन्द मन्दिर समझा जाये।

आदर्श विश्वविद्यालय

मैं यह अपना बड़ा सौभाग्य मानता हूँ कि जिस तपोभूमि को महर्षि ने अपने तप और साधना से पावन किया था और जिसमें अपने मूल विचारों और आशाओं को मूर्तरूप देने के लिए गुरुदेव ने स्वयं अपनी प्यारी संस्था की स्थापना की थी आज मुझे उसमें आने का अवसर मिला है। गुरुदेव ने इस संस्था को बीजरूप में बोया था और अपनी शक्ति और अपनी अहर्निश सेवा रूपी जल द्वारा इसको सींचा था। हमारे दुर्भाग्य से आज वह अपने पार्थिव शरीर में नहीं हैं किन्तु आत्मा तो अमर है और वह नाना प्रकारों से संसार में सद्कृत्यों को प्रोत्साहन और सहायता देती रहती है। उनके पद से इस भूमि का कण-कण परिचित था। यहाँ की एक-एक कंकड़ी, एक-एक पौधा, एक-एक वृक्ष और यहाँ के बने हुए घरों का एक-एक कोना ऐसा है जिस पर उनकी छाप है और जो आज उनकी दिव्य ज्योति से आलोकित है। इसलिए मैं आपसे इसके सम्बन्ध में यदि कुछ कहूँ तो यह मेरी धृष्टता होगी। तो भी आज की परिस्थिति में शान्तिनिकेतन और विश्वभारती के इतिहास को एक बार पुनः आपके और दूसरों के सामने रख देना कदाचित अनावश्यक न हो।

आज से कई दशक पूर्व शान्तिनिकेतन आश्रम की स्थापना गुरुदेव के आराध्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने धार्मिक चिन्तन और मनन के लिए की थी। अपनी स्थापना के दिनों से अब तक यह तीन अवस्थाओं में से गुजरा है। कुछ समय तक तो यह मुख्यतया इस धार्मिक प्रयोजन के लिए ही रहा। पर इस शताब्दी के प्रारम्भिक दिनों में गुरुदेव ने यहाँ बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की जहाँ बालक ब्रह्मचर्य में निष्ठित होकर शिक्षा प्राप्त करते थे। १६२३ में यह अपनी तीसरी दशा में विकसित हुआ और यहाँ विश्वभारती

विश्वभारती विश्वविद्यालय (बोलपुर, प० बंगाल) में दीक्षान्त भाषण, २३ दिसम्बर, १६५२

की स्थापना हुई। आरम्भ से ही इसका जीवन प्रकृति के सौन्दर्य और धार्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि में विकसित होता रहा है और यह स्वाभाविक ही था कि विश्वभारती की स्थापना के समय उसकी रजिस्ट्री कराने के लिए तैयार किये गये स्मरणपत्र में उसके उद्देश्य धार्मिकता के अनुकूल निर्णीत किये गये। वे उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

१. विभिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से सत्य के विभिन्न स्वरूपों की अनुभूति प्राप्त करने की अवस्था में मानव मानस का अध्ययन।

२. प्राची की विभिन्न संस्कृतियों में जो मूलभूत एकता है उसके आधार पर उन संस्कृतियों का लगनपूर्वक अध्ययन और गवेषणा द्वारा उनमें एक-दूसरी के साथ अधिक निकट सम्पर्क स्थापित करना।

३. एशिया के जीवन और दर्शन की इस एकता को ध्यान में रख कर प्रतीची से सम्बन्ध बनाना।

४. बन्धुता के आधार पर सम्मिलित स्वाध्याय द्वारा प्रतीची और प्राची में एकता को पैदा करने का प्रयास करना और इस प्रकार अन्ततोगत्वा दोनों गोलार्धों में विचारों के अबाध आदान-प्रदान की स्थापना करके संसार में शान्ति की आधारभूत परिस्थितियों को सुदृढ़ करना।

५. और इस परम ध्येय को ध्यान में रख कर उक्त शान्तिनिकेतन में ऐसा सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित करना जहाँ सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति के लिए आवश्यक बाह्य आडम्बरशून्य सादगी, मैत्री, प्राची और प्रतीची दोनों ही के देशों के विचारकों और विद्वानों में वर्ण, राष्ट्रीयता, धर्म अथवा जातिजन्य सब प्रकार के कलह से मुक्त पारस्परिक स्निग्ध बन्धुता और सहयोग के वातावरण में तथा शान्तम् शिवम् अद्वैतम् परमात्मन् के निमित्त हिन्दुओं, बौद्धों, जैनों, मुसलमानों सिखों, कृस्तानों और अन्य सभ्य जातियों के धम, साहित्य, इतिहास, विज्ञान और कला का प्रतीची की संस्कृति के साथ अध्ययन और उनमें गवेषणा की जा सके।

इन उद्देश्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि गुरुदेव विश्वभारती द्वारा मुख्यतया तीन बातों की प्राप्ति करना चाहते थे। सर्वप्रथम तो उनका यह आग्रह था कि सत्य के विभिन्न स्वरूपों की मानव चेतना द्वारा जो अनुभूति अब तक हुई है या आजकल हो रही है उसी अनुभूति को नयी पीढ़ी को प्राप्त कराना सच्ची शिक्षा कहा जा सकता है और इसलिए प्रत्येक शिक्षालय को अपने विद्यार्थियों को यही अनुभूति कराने के लिए सहायता करनी चाहिए। दूसरी बात उनके मन में यह थी कि यद्यपि सत्य की यह अनुभूति विभिन्न देशों में विभिन्न रूपों में होती रही है किन्तु फिर भी प्राची और प्रतीची दोनों ही देशों की विभिन्न अनुभूतियों में बुनियादी एकता है। इसलिए वे यह चाहते थे कि इस संस्था द्वारा प्राची और प्रतीची के विभिन्न देशों की विभिन्न अनुभूतियों की मूलभूत एकता के आधार पर सब देशों की विभिन्न संस्कृतियों के लगनपूर्वक अध्ययन द्वारा और उनकी गवेषणा करके प्राची और प्रतीची विश्वासियों का पारस्परिक सांस्कृतिक सम्मिलन कराया

जाये, उन्हें एक-दूसरे को समझने के लिए और एक-दूसरे के विचारों और आदर्शों का सम्मान करने के लिए योग्य बनाया जाये जिससे वे एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर संसार में शान्ति के लिए आवश्यक आधारभूत परिस्थितियों को स्थापित कर सकें। और तीसरी बात उनके मन में यह थी कि यह सांस्कृतिक केन्द्र विश्व-चेतना की वाणी बन जाये अर्थात् इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, धार्मिकता, जातीयताजन्य मानव, मानव के बीच में जो मानसिक दीवारें हैं उनसे मुक्त होकर सब मानव यहाँ शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम्, परमात्मन् की छाया में मानवता के आधार पर एक-दूसरे की विचार भावनाओं और आदर्शों का आदान-प्रदान करें और इस प्रकार समस्त विश्व में एक ऐसी नवचेतना का निर्माण कर दें जो किन्हीं छोटे दायरों की कैदी न हो और जिसके लिए समस्त पृथ्वी मण्डल के मानव अपने ही हों। इसी विचार से उन्होंने इस विश्वविद्यालय का बीजमन्त्र "यत्र विश्वभवत्येक नीडम" रखा था।

इन आदर्शों की पूर्ति के लिए गुरुदेव यह आवश्यक समझते थे कि यहाँ शिक्षक और शिक्षार्थियों के पारस्परिक सम्बन्ध विशिष्ट प्रकार के हों और उनका रहन-सहन भी विशिष्ट प्रकार का हो। जैसा कि मैंने कहा है उनके मन में इस विश्वविद्यालय का ध्येय लगन से, तपस्या से और एकाग्रता से सत्य और पूर्ण सत्य की खोज था। यह प्रत्यक्ष है कि यदि यह खोज उचित रीति से की जाती है तो उसमें भाग लेने वाले चाहे वे शिक्षक हों या शिक्षार्थी, उनका एक विशिष्ट दृष्टिकोण होना चाहिए अर्थात् उन्हें इस खोज को अपने जीवन का परम व्रत मानना चाहिए। और इसे किसी प्रकार की आर्थिक लाभ-हानि की तुला में नहीं तोलना चाहिए। इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए गुरुदेव ने अपने एक अध्यापक मित्र को लिखा था कि "बालकों के अध्ययन का काल व्रत-पालन का काल हैं। मनुष्यत्व की प्राप्ति स्वार्थ नहीं, परमार्थ है, यह बात हमारे पितृ-पितामहों को मालूम थी। इस मनुष्यत्व की प्राप्ति की आधारभूत शिक्षा को वे लोग ब्रह्मचर्य-व्रत कहते थे। यह व्रत केवल पढ़ाई घोख लेने और परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने का नाम नहीं है। संयम से, भक्ति-श्रद्धा से, शुचिता से और एकाग्रनिष्ठा से संसार के लिए और संसार से अतीत ब्रह्म के साथ अनन्त योग-साधना के लिए प्रस्तुत होने की साधना को ही ब्रह्मचर्य-व्रत कहते हैं। यह एक धर्म-व्रत है। संसार में बहुत सी चीजें खरीद-बिक्री की सामग्री हैं, किन्तु धर्म इनसे भिन्न है। वह कुछ पण्य-द्रव्य नहीं है। इसे एक ओर से मंगलेच्छा के साथ दान करना होता है और दूसरी ओर से विनीत भक्ति के साथ ग्रहण करना होता है। इसीलिए प्राचीन भारत की शिक्षा पण्य-द्रव्य नहीं थी। आजकल जो लोग शिक्षा देते हैं वे शिक्षक हैं लेकिन उन दिनों जो लोग शिक्षा देते थे, वे गुरु होते थे। वे लोग शिक्षा के साथ एक ऐसी वस्तु देते थे जो गुरु और शिष्य के आध्यात्मिक सम्बन्ध से भिन्न किसी प्रकार का देना-पावना हो ही नहीं सकती।"

उनके इस लेख से स्पष्ट है कि वे यह मानते थे कि शिक्षक का यह धर्म है कि वह अपनी आन्तरिक ज्योति से शिक्षार्थी के मनस्तल को प्रकाशित कर दे और उसको सत्य की वह झाँकी दे दे जिससे उसका अपना जीवन सार्थक हो जाये। दूसरे शब्दों में शिक्षक को

ऐसी ज्योति-शिखा होना चाहिए जिससे नयी पीढ़ी के लोग न केवल ज्योतिर्मय हों वरन् स्वयं भी ज्योति-शिखा बन जायें। ऐसी ज्योति-शिखा बनने की प्रेरणा अध्यापक-गण में अपने आन्तरिक गुणों और प्रकृति के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है और वे तभी ऐसे बने रह सकते हैं जब उनके जीवन का यह आग्रह और आदर्श हो कि ऐसा बनने में ही उनके जीवन की चरम् सार्थकता है। स्पष्ट है कि ऐसा बनने के लिए उनका चरित्र पूर्णतया सात्विक और ब्रह्ममय होना चाहिए। गुरुदेव ने इसी बात की ओर संकेत करते हुए लिखा था कि "अध्यापक-गण मेरे अनुशासन में नहीं, बल्कि अपने भीतर के कल्याण-बीज को विकसित करके आग्रहपूर्वक और आनन्द के साथ इस ब्रह्मचर्याश्रम के जीवन के साथ अपने जीवन को एक कर सकेंगे। वे प्रतिदिन जिस प्रकार विद्यार्थियों की सेवा और प्रणाम् ग्रहण करेंगे, उसी प्रकार आत्म-त्याग और आत्म-संयम से अपने-आपको उनकी वास्तविक भक्ति का पात्र बना लेंगे। पक्षपात, अविचार, अधैर्य, अकारण रोष, अभिमान, अप्रसन्नता, चपलता, लघुचित्तता, छोटे-मोटे दोष इन सबका प्रतिदिन सारी शक्ति लगा कर वर्जन करते रहेंगे। स्वयं त्याग और संयम का अभ्यास न करने से विद्यार्थियों को दिया हुआ सब उपदेश निष्फल हो जाएगा और आश्रम की उज्ज्वलता बराबर म्लान होती रहेगी। हमें इस विषय में बहुत सावधान रहना होगा कि विद्यार्थी बाहर से भक्ति और भीतर से उपेक्षा करना न सीखें।

इसी बात को उन्होंने एक अन्य अवसर पर यों व्यक्त किया था कि "शिक्षा के सम्बन्ध में एक बड़े सत्य को हमने सीखा था। हमने जाना था कि मनुष्य मनुष्य से उसी प्रकार सीख सकता है, जिस प्रकार जल से जलाशय पूर्ण होता है, दीपशिखा जल उठती है और प्राण के द्वारा प्राण संचारित होता है। मनुष्य को काँट-छांट देने से वह मनुष्य नहीं रह जाता उस समय वह कार्यालय, न्यायालय या कल-कारखाने की सामग्री रह जाता है, उस स्थिति में वह मनुष्य न होकर मास्टर साहब बनना चाहता है, वह प्राणदान करने के अयोग्य हो जाता है, सिर्फ पाठ-दान करने लगता है और सबक रटाने का उस्ताद हो जाता है। गुरु और शिष्य के परिपूर्ण आत्मीयता के सम्बन्ध के भीतर ही शिक्षा-कर्म सजीव देह में रक्त-स्रोत की भाँति चला करता है। शिशुओं के पालन और शिक्षण का यथार्थ भार माता-पिता पर है। किन्तु माता-पिता में ऐसी योग्यता या सुविधा न रहने के कारण ही अन्य उपयुक्त व्यक्ति की सहायता अत्यन्त आवश्यक हो जाती है। ऐसी अवस्था में गुरु को माता-पिता हुए बिना काम नहीं चल सकता। जीवन की सर्वश्रेष्ठ वस्तु को हम धन देकर नहीं खरीद सकते, उसे हम स्नेह, प्रेम और भक्ति से ही आत्मसात् कर सकते हैं।" दुर्भाग्यवश वर्तमान वाणिज्य के युग में शिक्षा-क्षेत्र में भी धन का प्रवेश हो गया है और इस बारे में शंका की जा सकती है कि क्या आज यह सम्भव भी है कि शिक्षा-क्षेत्र से रुपये-पैसे को बहिष्कृत कर दिया जाये। किन्तु इस सत्य से तो किसी प्रकार इन्कार नहीं किया जा सकता कि आत्मा को जागृत करने के लिए यह आवश्यक है कि स्वयं गुरु आत्मदर्शी हो, वह उदर पूर्ति के लिए, जीवन यापन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, चाहे किसी प्रकार की दान-दक्षिणा, धन-धान्य क्यों न लेता हो किन्तु अपने शिक्षा-कार्य में वह

इसी प्रेरणा से रत हो कि इसी में उसके अपने जीवन की सार्थकता है, इसी में उसके अपने मनुष्यत्व की पूर्णता है और इसी में उसे सत्य की प्राप्ति हो सकती है, और इसी में उसे संसार की सब यातना और पीड़ाओं से, दुःख और दारिद्र्य से, अपमानों और चोटों से भी मुक्ति मिल सकती है। मैं यह नहीं कह सकता कि आज के शिक्षक इस सम्बन्ध में कहाँ तक अपने पथ पर अटल हैं और कहाँ तक उन्होंने इस पर चलने का व्रत लिया है और कहाँ तक उसके योग्य बनने की उन्होंने साधना की है। किन्तु गुरुदेव का यह विश्वास, यह भरोसा और आकांक्षा थी कि विश्वभारती में शिक्षकों का कार्य संभालने वाले ऐसी ही मानवता के दृढ़व्रती होंगे और इसी मानवता की अलख जगाने को ही शिक्षा समझेंगे और मानेंगे।

मानवता को सर्वोपरि धन मानने के कारण ही गुरुदेव का यह मत था कि मानवता के केन्द्र अर्थात् शिक्षा-आश्रमों में सबका जीवन अत्यन्त सरल और आडम्बरशून्य होना चाहिए। बाह्य उपकरणों को वह आत्मा की अभिव्यक्ति में किसी सीमा तक बाधा ही समझते थे क्योंकि उनका यह विचार था कि इन उपकरणों के कारण व्यक्ति को मानव जीवन के वास्तविक स्वरूपों को अपने जीवन द्वारा देखने और समझने में सुविधा नहीं मिलती। संसार कोई ड्राइंगरूम नहीं है और इसलिए जो लोग ड्राइंगरूम में ही बैठकर उसकी झाँकी लेना चाहते हैं वह वास्तविकता को नहीं जान सकते। इसी बात की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है कि "उपकरण की विरलता को लेकर अनुचित क्षोभ के साथ असन्तोष प्रकट करना चरित्रगत दुर्बलता का ही लक्षण है। आयोजन का कुछ कम रहना ही अच्छा है, थोड़े में निबाहने का अभ्यास होना चाहिए, बिना किसी आयास के सब प्रकार के प्रयोजनों की पूर्ति होते रहने से लड़कों का मन बहुत दुलरा जाता है, इससे उनके विकास में बाधा पहुँचती है। यह बात नहीं है कि बच्चे स्वयं बहुत कुछ चाहते हैं, वे तो आत्मतृप्त होते हैं, स्वयं अपने आप से ही सन्तुष्ट बने रहते हैं। हम लोग वयस्क लोगों की चाह का बोझ लाद कर उन्हें वस्तु का नशा करना सिखा देते हैं। शुरू से ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि विद्यार्थी सोचने लगे कि कितने थोड़े से काम चल सकता है। जहाँ बाहर की सहायता कम होती है वहीं शरीर और मन की चर्चा अच्छी तरह होती है, वहाँ मनुष्य की रचनात्मक शक्ति का उद्यम स्वयं जागृत होता है। जिनके भीतर ऐसा उद्यम नहीं जगता उन्हें प्रकृति कूड़े की भाँति बुहार कर फेंक देती है।"

इसके अतिरिक्त वे यह मानते थे कि सच्ची शिक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति प्रकृति से तादात्म्य कर ले क्योंकि वह स्वयं प्रकृति और जीवन के अनेक स्वरूपों के हृदय में रमने वाली चेतना का ही एक अंश है। प्रभात के बाल-सूर्य की अरुण आभा में, सरिता की कल-कल वाहिनी धारा में, पर्वतों के हिमकिरीट में और वृक्षों के पल्लवों और छाया में उसी चेतना की झाँकी दीखती है जो मानव हृदय को आलोकित कर रही है और इसलिए उनका यह विश्वास था कि मनुष्य तब तक अपने को नहीं पहचान सकता जब तक उसने प्रकृति के वक्ष में स्थित उस चेतना का दर्शन न कर लिया हो और उससे अपनी एकता न पहचान ली हो। इसलिए उन्होंने इस शिक्षा-संस्था को सुन्दर प्रकृति के हृदय में बसाया था और यहाँ उन्होंने कक्षाओं को प्रकोष्ठों की चारदीवारी में न बांधकर

विद्यार्थियों को पुस्तकों को घोखने की बात न कह कर प्रकृति से तादात्म्य करने का उपदेश दिया था। इतना ही क्यों वे यह मानते थे कि शिक्षा तब तक शिक्षा नहीं कहला सकती जब तक कि वह पूर्णांग न हो अर्थात् जब तक वह सत्य के प्रत्येक स्वरूप का दर्शन न कराती हो चाहे वह फिर स्वरूप मानव समाज में अथवा व्यक्तियों में व्यक्त हुआ हो, चाहे प्रकृति में व्यक्त होता हो और चाहे सौन्दर्य और सत्य की उपासना करने में व्यक्त होता हो। अतः उनका यह आग्रह था कि शिक्षा और शिक्षार्थियों की जन-जीवन से सहानुभूति, संलग्नता और सम्पर्कता रहनी चाहिए। उन्हें इस बात का खेद था कि विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग यह बात सोचते भी नहीं कि एक बड़ा भारी जन-सम्प्रदाय अलक्ष्य गति से बिना किसी प्रकार की आहट किये हुए चल रहा है। उनका तो यह कहना था कि "यदि हम लोग अवज्ञा करके उसकी ओर नहीं देखते तो क्या वह हमारे दृष्टि-पात के लिए स्थिर होकर बैठा रहेगा, नहीं, नये ज़माने की नयी शक्ति उनके भीतर परि-वर्तन का काम बराबर कर रही है। वह परिवर्तन किस रास्ते जा रहा है, कौन-कौन रूप धारण कर रहा है, इसे जाने बिना देश का जानना नहीं होता। यह हम नहीं कह सकते कि केवल देश को जान लेना ही अन्तिम लक्ष्य है, परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि चाहे जिस जगह हो जनसाधारण में जो कुछ क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ चलती हैं उन्हें अच्छी तरह जानने में ही एक बड़ी भारी सार्थकता है और पुस्तक को छोड़कर सजीव मनुष्य को प्रत्यक्ष पढ़ने की चेष्टा में ही एक शिक्षा है। उससे केवल जानना ही नहीं होता बल्कि जानने की शक्ति का एक ऐसा विकास होता है जो किसी भी कक्षा में पढ़ने से नहीं होता।"

शिक्षा सत्य का ही दूसरा स्वरूप है इसी विश्वास के कारण उनके मन में प्रदेश, धर्म, भाषा, वर्ण, जाति अथवा लिंग-जनित कोई संकुचित दीवारें नहीं थीं। यह ठीक है कि उन्हें देश से प्रेम था, भारत के इतिहास और संस्कृति से प्रेम था। उन्होंने लिखा है कि "इस विद्यालय के छात्रों को मैं विशेष रूप से स्वदेश के प्रति भक्ति-श्रद्धावान् बनाना चाहता हूँ जिस प्रकार माता-पिता में देवता का विशेष आविर्भाव होता है, उसी प्रकार देश के प्रति भी देवताबुद्धि होनी चाहिए। माता-पिता जिस प्रकार देवता हैं उसी प्रकार स्वदेश भी देवता है। इसे लघु-चित्त, अवज्ञा और घृणा यहाँ तक कि दूसरे देशों की तुलना में छोटा समझना जैसे हल्के भाव से देखने की आदत विद्यार्थियों में जड़ न जमाने पाये, इस ओर मैं विशेष रूप से दृष्टि रखना चाहता हूँ। अपनी स्वदेशीय प्रकृति के विरुद्ध चल कर हम कभी सार्थकता नहीं प्राप्त कर सकेंगे।"

किन्तु उनके स्वदेश-प्रेम का अर्थ किसी प्रकार अन्य जातियों अथवा देशों से घृणा, करना अथवा उनके प्रति उदासीन रहना नहीं था। इसके विपरीत उनका यह विश्वास था कि सत्य की खोज तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक कि इन संकुचित दीवारों से ऊपर उठ कर सारी मनुष्य जाति के लोग सत्य की खोज में पारस्परिक आत्मीयता और भ्रातृभाव से नहीं लग जाते। इसी विचार से उन्होंने इस सांस्कृतिक केन्द्र में एशिया, यूरोप और अमेरिका के उच्च कोटि के विचारकों और विद्वानों को निमन्त्रित किया जिससे यहाँ वे अपनी-अपनी अनुभूतियों से नयी पीढ़ी के हृदय को आलोकित कर दें और इस प्रकार इसे

पृथ्वीमण्डल में नव मानवता के निर्माण का केन्द्र बना दें। इसे नव मानवता की वाणी बना दें। इसे वे केवल पुस्तकीय शिक्षा का मन्दिर नहीं बनाना चाहते थे। वे तो बालक के मस्तिष्क में केवल पुस्तकों के भार लादने को बहुत भयंकर मानते थे। उन्होंने लिखा था कि "शिशु अवस्था में निर्जीव शिक्षा जैसा भयंकर भार और कुछ भी नहीं है, वह मनको जितना कुछ देती है उसकी अपेक्षा कहीं अधिक वस्तु पीस कर बाहर निकाल लेती है।" अतः उनका यह आग्रह था कि शिक्षा सजीव होनी चाहिए और वह तभी सजीव हो सकती है जब कि उसका पूर्ण सत्य, पूर्ण मानवता और विश्वात्मा से अविच्छिन्न सम्बन्ध हो। वे तो कहते थे कि "जैसे भी हो, हम सब ओर से मनुष्य को चाहते हैं क्योंकि वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि उसके बदले में प्रणाली की गोली निगलवा कर कोई भी वैद्यराज हमारी रक्षा नहीं कर सकेंगे।"

अतः आरम्भ से ही उन्होंने इस संस्था को नये मानव का रचना केन्द्र बनाया, ऐसे मानव की रचना का जिसमें मानवता से प्रेम हो, जो प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो, जो विश्व के हृदय में कल्याण-चेतना का अनन्य भक्त हो और जिसका विश्व से पूर्ण तादात्म्य हो। आज यह संस्था सरकार ने अपने कानून द्वारा स्वीकृत कर ली है और उसने इसकी आर्थिक सहायता का भार भी अपने सिर पर लिया है। किन्तु इस संस्था का मस्तिष्क, इसका शरीर, इसकी आत्मा और इसकी चेतना-शक्ति का निर्माण न तो राज्य के पैसे से हुआ है और न कानून के नियमों से। यह तो गुरुदेव की आत्मा का ही मूर्तिमान स्वरूप है। इसलिए मैं यह समझता हूँ कि हम सबका यह धर्म है कि हम इसके उस सत्य-स्वरूप की पूर्णतया रक्षा करें और इसको उसी दिशा में चलाने के लिए अनथक प्रयास करें जिसकी ओर उन्होंने इसे उन्मुख किया था। आज गुरुदेव हमको इसी धर्म को पूर्ण करने के लिए संकेत कर रहे हैं। हमारे ऊपर उनका यह भार है और उनकी स्मृति के प्रति हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उनकी थाती की, जो नव भारत की नव संस्कृति और नव चेतना का और भारत का ही क्यों, नव मानव की संस्कृति और चेतना का प्रतीक है, तन-मन-धन से सेवा और सहायता करते रहें। भगवान् आपको यह शक्ति और और यह बल दे, यह उत्साह और स्फूर्ति दे कि आप गुरुदेव के प्रति अपने इस भारी उत्तरदायित्व को सफलता से पूरा कर सकें।

शिक्षा के तीन उद्देश्य

जब से इस विश्वविद्यालय ने अपना नया रूप धारण किया है तब से यह पहला अवसर है कि मैं इसके आचार्यों और स्नातकों से अपनी कुछ बात कहने के लिए यहाँ आया हूँ। भारत में जिन विश्वविद्यालयों को इस दृष्टि से कि उनकी स्थापना को अभी पूरे ५० वर्ष भी नहीं हुए हैं नया कहा जा सकता है, उनमें वाराणसी विश्वविद्यालय को छोड़कर सम्भवतः यही विश्वविद्यालय सबसे पुराना है। किन्तु अभी कुछ ही दिन पहले इसने अपना वर्तमान रूप ग्रहण किया है। इस दृष्टि से यह इन सब नवीन विश्वविद्यालयों में नवीनतम विश्वविद्यालय माना जा सकता है। अभी इसकी परम्पराओं की, शृंखलाएँ इतनी कठोर नहीं हो गयी हैं कि यह नये पथ पर सरलता से अग्रसर न हो सके। अतः मैं इससे यह आशा करता हूँ कि यह अपनी शिक्षा का ढंग कुछ ऐसा रखेगा जिससे कि यह मानव जीवन की शिक्षा के सब प्रयोजनों को पूरा कर सके। मैं यह कई अवसरों पर और कई स्थानों पर कह चुका हूँ कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, चाहे वह प्राथमिक विद्यालयों की, माध्यमिक विद्यालयों की अथवा विश्वविद्यालयों की हो, उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करती प्रतीत नहीं होती। कम से कम यह बात तो है ही कि यह ऐसी नहीं है कि शिक्षा के उद्देश्यों को सन्तुलित रीति से पूरा कर सके। आपकी अनुमति से इस सम्बन्ध में मैं आपसे कुछ शब्द कहना चाहता हूँ।

मेरा यह मत है कि शिक्षा के तीन उद्देश्य होते हैं जिनमें से दो उद्देश्य तो व्यक्ति के अपने निजी जीवन से सम्बन्ध रखते हैं और तीसरा व्यक्ति के सामूहिक जीवन से सम्बन्धित है। प्रथमतः शिक्षा का यह प्रयोजन है कि वह व्यक्ति की ईश्वरप्रदत्त सहज विवेक-बुद्धि की सामर्थ्य और क्षमता को बढ़ाये। यह ठीक है कि मानव को विवेक-बुद्धि जन्म से ही प्रकृति या ईश्वर से मिली हुई होती है किन्तु अपनी नैसर्गिक अवस्था में इसकी सामर्थ्य और क्षमता अत्यन्त सीमित होती है। यदि कोई व्यक्ति केवल उसी के सहारे छोड़ दिया जाये तो अपनी देशकाल की सीमाओं के कारण वह उससे न तो अपना ही कोई लाभ उठा सकेगा और न अपने अन्य भाइयों का कोई भला कर सकेगा। किन्तु यदि उसकी विवेक-बुद्धि को पिछली पीढ़ियों की संचित अनुभूति से सम्पन्न कर दिया जाता है तो उसकी शक्ति और क्षमता बहुत

पटना विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोह में दीक्षान्त भाषण, ११ मार्च, १९५३

अधिक बढ़ जाती है क्योंकि उस अवस्था में उसे अपने और बाह्य चराचर जगत के बारे में ऐसी अनेक उपयोगी और आवश्यक बातें ज्ञात हो जाती हैं जिन्हें वह केवल अपनी विवेक या विचार-शक्ति से नहीं जान सकता था। दूसरे शब्दों में इस प्रक्रिया द्वारा उसकी विवेक-बुद्धि इतनी सक्षम और सामर्थ्यवान हो जाती है कि उसके सहारे वह अपने को और अपने चारों ओर के जड़ और सजीव जगत् को समझने और उसमें रह कर अपने जीवन को ठीक दिशा में चलाने के योग्य हो जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि हर नयी पीढ़ी को पिछली पीढ़ी की विवेक-बुद्धि एवं विचार-शक्ति को और अधिक सामर्थ्यवान बनाने की प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा जाता है।

शिक्षा का दूसरा प्रयोजन यह है कि वह प्रत्येक मानव को अपनी कर्मेन्द्रियों का ऐसा प्रयोग सिखाये जो उसे अपनी शारीरिक और अन्य प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य बना सके। इन कर्मेन्द्रियों के उचित प्रयोग के लिए तो ज्ञान की आवश्यकता होती है। कितना ही सबल व्यक्ति क्यों न हो, कितना ही स्फूर्तिमय कोई क्यों न हो, वह तब तक कुछ अधिक फलमय कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उस कार्य के सम्पादन के लिए उसकी कर्मेन्द्रियों को आवश्यक प्रशिक्षा न मिली हो अथवा उन्हें उसका अभ्यास न कराया गया हो।

शिक्षा का तीसरा प्रयोजन मेरे विचार में यह है कि व्यक्ति में अपने जैसे ही सब व्यक्तियों के साथ रहने और उनके साथ काम करने के लिए आवश्यक गुणों का उदय हो जाये। इच्छा से अथवा अनिच्छा से प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ तो रहना ही पड़ता है। संसार से दूर कोई भी अपनी अलग कुटिया नहीं बना सकता और न बना पाता है। एकाँकी जीवन कवि की सुन्दर कल्पना के अतिरिक्त न तो वास्तविक तथ्य है और न हो सकता है। व्यक्ति चाहे कुछ क्षण के लिए एकाकी रह सके किन्तु सर्वदा वह एकाकी रह ही नहीं सकता। अतः जब सामूहिक जीवन मानव जीवन का अनिवार्य तथ्य है तब यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को साथ रहने की कला आ जाये।

पिछली शताब्दियों में जब सामूहिक जीवन का क्षेत्र सीमित था और जब आर्थिक क्रियाएँ इतनी केन्द्रित नहीं हुई थीं, इन तीनों प्रयोजनों के लिए संगठित प्रयास करने की तथा उनमें प्रतिक्षण सन्तुलन बनाये रखने की विशेष आवश्यकता न थी। किन्तु आज तो सामूहिक जीवन का क्षेत्र भूमण्डल-व्यापी है और आर्थिक क्रियाओं का सीमातिरेक संकेन्द्रण हो गया है। अतः आज यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को विशेष प्रक्रिया द्वारा इन तीनों बातों से केवल पूर्ण परिचित ही न कराया जाये वरन् उसको कार्यरूप में अपनाने के योग्य भी बना दिया जाये।

अतः पिछली कुछ दशाब्दियों में सारे जगत् के लोगों को अतीत से दाय में मिली शिक्षा-व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव होता रहा है और विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते भी रहे हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि पिछले दिनों जगत् भर में शिक्षा के क्षेत्र में भी वैसी क्रान्ति होती रही है जैसी कि आर्थिक और राजनीतिक जगत् में हुई है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में और विशिष्ट-

तया इस बिहार राज्य में शिक्षा के बारे में वैसी कोई व्यापक क्रान्ति नहीं हुई। इस दिशा में लोगों का ध्यान तो गया है किन्तु कार्यक्षेत्र में उसका अभी कोई उल्लेखनीय फल दिखायी नहीं पड़ता।

यह ठीक है कि किसी सीमा तक हमारी शिक्षा संस्थाएँ शिक्षा के प्रथम प्रयोजन को पूरा करती हैं। इन संस्थाओं के सदस्यों को पिछली पीढ़ियों की संचित अनुभूति से किसी सीमा तक परिचित अवश्य कराया जाता है। किन्तु यह परिचय कराने का जो उद्देश्य है अर्थात् विवेक या विचार-बुद्धि को सजग, सक्षम और सामर्थ्यवान बनाना वह पूरा नहीं हो रहा है। हमारी नयी पीढ़ी के युवक-युवतियाँ विचारपुंज नहीं हो पाते। यह ठीक है कि इन शिक्षा संस्थाओं से भी यदा-कदा कुछ विरले व्यक्ति निकलते हैं जिनकी विवेक-बुद्धि और विचार-शक्ति पूर्ण रूपेण सजग और सामर्थ्यवान होती है किन्तु इन इने-गिने व्यक्तियों के नाम पर ही यह कहना ठीक न होगा कि ये संस्थाएँ मानव के मानस-पटों को खोल रही हैं और उन्हें ज्योतिर्मय कर रही हैं। मेरा यह विचार है कि इस दिशा में उसकी असफलता के अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ प्रमुख कारणों की ओर संकेत कर देना अनुचित न होगा।

उनमें से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण तो यह लगता है कि पिछली पीढ़ियों की जिस अनुभूति से हमारी शिक्षा संस्थाएँ हमारे युवक-युवतियों का परिचय करा रही हैं उसके बहुत बड़े भाग का इन युवक-युवतियों के अपने निजी दैनिक जीवन अथवा अपने चारों ओर के जगत् और अपने सामूहिक जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अतः अतीत की वे बातें इन युवक-युवतियों को कुछ अनपहचानी, कुछ अनुपयोगी, कुछ अछूती-सी लगती हैं और वे उनके मस्तिष्क का भार बन कर रह जाती हैं जिन्हें वे संस्था से निकलने के पश्चात् बहुत जल्दी ही भूल जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि जिस भाषा-माध्यम द्वारा इस अतीत की अनुभूति से उनका परिचय कराया जाता है वह भी उनके दैनिक और सामूहिक जीवन की वस्तु नहीं है और इसलिए पूरा प्रयास करने पर भी उनके लिए कुछ अपरिचित ही बनी रहती है। अतः अतीत की अनुभूति उनके विवेक-दीप को ज्योतिर्मय करने के लिए दियासलाई न होकर उस दीपक के तेल को सोखने वाला सोख्ता ही रहती है। जहाँ अतीत की अनुभूति उनकी बुद्धि की सामर्थ्य को सहस्र गुना शक्ति प्रदान करने वाला लीवर होनी चाहिए वहाँ वह हमारी बुद्धि और विवेक को पंगु और अपाहज करने वाला कोढ़ बन गयी है।

किन्तु बात इतनी ही नहीं है। शिक्षा के अन्य दो प्रयोजनों को पूरा करने का कार्य तो हमारी शिक्षा संस्थाएँ लगभग कर ही नहीं रही हैं। हमारे यहाँ सम्भवतः ऐसी कोई विरली ही संस्था होगी जहाँ इस बात का प्रयास किया जाता हो कि व्यक्ति को इतना कार्य-कुशल बना दिया जाये कि वह अपने हाथ के परिश्रम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक धन-सामग्री पैदा कर ले। व्यवसाय, कृषि, उद्योग इत्यादि-इत्यादि की व्यावहारिक प्रशिक्षा का प्रबन्ध तो हमारे यहाँ लगभग नहीं के बराबर है। हमारे प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों का तो इस व्यावहारिक अभ्यास से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हमारे

उच्च शिक्षालयों में से भी इने-गिनों को छोड़ कर अन्यों का उस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें से लगभग सभी अपने विद्यार्थियों को पिछली पीढ़ियों या वर्तमान पीढ़ी के प्रौढ़ लोगों के कुछ विचारों से परिचय कराने में संलग्न हैं। स्वभावत: यह परिणाम हो रहा है कि इन शिक्षालयों के स्नातक चाहे वाक्‌चतुर हों भी किन्तु कार्यकुशल नहीं होते। जब तक विदेशी साम्राज्य के दलाल की हैसियत से उन्हें अपना जीवन चलाना पड़ता था तब तक तो उनका वाक्चातुर्य उनके लिए लाभदायक था किन्तु अब जब हमें अपनी गाढ़ी मेहनत से नवभारत का निर्माण करना है उस समय तो इस वाक्चातुर्य का वैसा महत्त्व हो ही नहीं सकता। परिणाम यह हो रहा है कि हमारे यहाँ का वाक्चतुर स्नातक भी आज जीवन में अपने लिए स्थान बनाने में सफल होने में पर्याप्त कठिनाई और असफलता अनुभव कर रहा है।

इतना ही क्यों! वर्षों के परिश्रम को इस प्रकार अपने वैयक्तिक जीवन के लिए अनुपयोगी और फलहीन होते देख अनेक युवकों के मन में अपने भाग्य और अपने भाइयों के प्रति एक प्रकार का अन्ध रोष पैदा हो रहा है और वे समझ नहीं पा रहे हैं कि उन्हें अपनी कठिनाइयों से किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है। साथ ही हमारे शिक्षालयों में पढ़ने वाले युवक-युवतियाँ आज अतीत की उस अनुभूति का भी कोई परिचय नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं जिसका उन्हें वहाँ परिचय कराने का प्रबन्ध है। मैं समझता हूँ कि शिक्षा के स्तर में गिरावट की जो आज आम शिकायत है उसका बड़ा कारण यही है कि हमारे नवयुवकों और नवयुवतियों को उस शिक्षा-प्रणाली से लाभ नहीं पहुँचता जो हमारे यहाँ के हर प्रकार के शिक्षालयों में आज जारी है।

इस विष का प्रसार वैयक्तिक क्षेत्र में सीमित न रह कर आज हमारे सामूहिक क्षेत्र में भी फैल रहा है। हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था नयी पीढ़ी के लोगों को सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक गुणों का अभ्यास तो कराती नहीं। ऐसी स्थिति में नयी पीढ़ी के लोगों में यदि उन गुणों का अभाव हो जो सुन्दर और सफल सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। शिक्षा-व्यवस्था का यह ध्येय और प्रयोजन ही नहीं मालूम पड़ता कि वह नयी पीढ़ी के लोगों को सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक गुणों में दीक्षित करे।

सच तो यह है कि प्रयोजन की दृष्टि से हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था कुछ वैसी ही असन्तुलित और बेढंगी है जैसा कि मटकी जैसा पेट और ककड़ी जैसी बाँह और पाँव वाला शरीर होता। किसी कारण से क्यों न हो आज हमारी शिक्षा संस्थाओं का सारा प्रयास अपने विद्यार्थियों को ज्ञान के सीमित स्वरूप से परिचित करा देना ही है और व्यक्ति को कार्यकुशल और सहजीवी बनाने का नहीं है। अतः मैं समझता हूँ कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में अन्य सुधारों के साथ-साथ उसके उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करने की भी आवश्यकता है।

हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस संख्या में हमें विचारक सौर कार्य-कुशल लोग तैयार करने हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि हर युग और हर देश में विचारकों

और कर्मियों दोनों की ही आवश्यकता होती है किन्तु जिन परिस्थितियों में आज हमारा देश है उनमें हमें कोरे विचारकों की अपेक्षा कर्मियों की अधिक आवश्यकता है। अपने करोड़ों देशवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें शीघ्रातिशीघ्र अपना आर्थिक उत्पादन बढ़ाना है। किन्तु उसके बढ़ाने की शर्तों में यह भी सम्मिलित है कि हमारे यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा हो और वे आधुनिक आर्थिक और औद्योगिक संगठन और प्रक्रियाओं से परिचित हों। इन तीनों बातों के लिए ही हमें लाखों कर्मियों की आवश्यकता है। किन्तु इन सब कर्मियों को यह समझ लेना होगा कि केवल अपने कौशल के आधार पर उनको यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे अपने देश के अन्य भाइयों से बहुत अधिक पारिश्रमिक पायें। वरन् उन्हें तो इस कार्य में इस विचार और विश्वास से लगना है कि कष्ट सह कर भी उन्हें आगे की पीढ़ियों के जीवन को सम्पन्न बनाने के लिए साधन जुटाने हैं और प्रबन्ध करना है। अतः मेरा विचार है कि हमारी शिक्षा संस्थाओं में कार्यकुशलता पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए और उसमें व्यावसायिक प्रशिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध होना चाहिए। यदि हर नगर और हर जिले में इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षा केन्द्र बन जायें अथवा यदि वहाँ की वर्तमान शिक्षा संस्थाएँ अपना इस प्रकार कायाकल्प कर लें तो मैं समझता हूँ कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था का भोण्डापन बहुत-कुछ कम हो जाएगा।

साथ ही मैं समझता हूँ कि हमारी शिक्षा संस्थाओं में सामूहिक गुणों की दीक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिए। सामूहिक उद्योग की शिक्षा केवल क्रीड़ा क्षेत्र में ही न दी जाकर वह जीवन के अन्य भागों में भी दी जानी चाहिए। उसका एक प्रकार यह हो सकता है कि शिक्षालयों में ऐसी टीमें बनें जो सामुदायिक विकास के कार्यों में होड़ बद कर भाग लें और इस प्रकार केवल जन-जीवन से परिचित ही न हों वरन् उससे हिलमिल जायें।

इसमें तो कोई शंका ही नहीं कि विश्वविद्यालयों को विशिष्टतया विचार की जीवन-दायिनी ज्योति का केन्द्र होना चाहिए। जहाँ हर प्रकार की गवेषणा के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए। और विशेषतया उस प्रकार की गवेषणा की तो व्यवस्था होनी ही चाहिए जिससे वहाँ की प्रादेशिक समस्याओं का हल किया जासके। यद्यपि विश्वविद्यालय को दैनिक जीवन के कोलाहल से दूर रहना आवश्यक होता है तथापि उसका यह अर्थ नहीं कि वह जीवन से अपना सम्पर्क सर्वथा न रखे। वरन् उसकी सफलता तो तभी है जब वह अपने प्रदेश का ऐसा नेता हो जो वहाँ की सब समस्याओं को समझ-बूझ कर वहाँ के लोगों को उनके सफल हल बता सके। अपने इस उचित स्थान को हमारे विश्वविद्यालयों ने अभी नहीं अपनाया है किन्तु इसको अपनाये बिना वे अपने को सफल और सार्थक नहीं कर सकते।

मैं समझता हूँ कि आपको इस दिशा में अभी बहुत काम करना है। अपनी शैशव अवस्था के कारण आपका विश्वविद्यालय अभी गवेषणा के क्षेत्र में काफी नहीं बढ़ पाया है। मैं समझता हूँ कि आप इस बारे में भी सजग हैं और आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हैं।

कम से कम आपके अतीत का इतिहास आपसे इस बात की अपेक्षा करता है। आप

के प्रदेश में तो वह जगत्-विख्यात विश्वविद्यालय था जिसकी अमृतमयी धारा ने सहस्रों वर्षों तक सारे जगत् के लोगों के जीवन को उर्वर बनाया था। इसी प्रदेश से तो विचारक, कारीगर और सन्त सारे सभ्य जगत् को संस्कृति और मानवता का सन्देश देते थे। आपको उस अमर कीर्ति को पुनः पाना है। भगवान् करे कि आप में वह शक्ति, वह विवेक, वह दृढ़ता और कर्त्तव्य-परायणता हो जो इस विश्वविद्यालय को सुसंस्कृत जीवन का स्रोत बनाने के लिए आवश्यक है।

मैं इसके अतिरिक्त आपसे दो शब्द और कह देना चाहता हूँ। विश्वविद्यालय ने आपको इस योग्य बनाया है कि आप अपनी, देश की तथा मानवमात्र की सेवा कर सकें। विश्वविद्यालय चाहे जो कुछ भी करे, जब तक आप अपने को इस योग्य नहीं बना लेंगे और इस योग्य बनने के लिए पूरे प्रयत्न, पूरे परिश्रम और पूरे त्याग के लिए तैयार नहीं होंगे तब तक इस काम में आप सफल नहीं होंगे। अभी हम स्वतन्त्र हुए हैं और देश के सामने असंख्य प्रश्न उपस्थित हैं जिनको सुलझाना इस देश के लोगों का काम है। उनको सुलझाने में जब तक नवयुवकों की सहायता नहीं मिलेगी, तब तक उनका सुलझना कठिन ही नहीं असम्भव है। मेरे जैसे लोगों का समय तो बीत चुका और सच पूछिये तो मेरे जैसे लोगों को अब छुट्टी मिलनी चाहिए। मगर छुट्टी चाहने पर भी आज छुट्टी नहीं मिलती और इसका विशेष कारण यह है कि हम छुट्टी लेकर तभी बैठ सकते हैं जब हमको इसका पूर्ण विश्वास हो जाये कि जो काम महात्मा गान्धी के नेतृत्व में इस देश ने आरम्भ किया था उसको पूरा करने के लिए हमारे यहाँ के युवक और युवतियाँ तैयार हो गयी हैं और वे इस बोझ को संभालने के ही योग्य नहीं वल्कि उससे भी अधिक बोझ अपने ऊपर लेने के लिए तत्पर हैं।

हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं से होड़ नहीं

मैं अपने को आपके बीच आज फिर एक बार पाकर बहुत प्रसन्न हूँ। यों तो मेरा सम्बन्ध दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के साथ उसके जन्मकाल से ही किसी न किसी रूप में रहा है और मैंने उसको अंकुरित, पल्लवित तथा फलते-फूलते देखा है और सदा आशा और मनोकामना रखी है कि वह और भी उन्नत हो। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरी यह आशा और मनोकामना सदा पूरी होती आयी है क्योंकि यह सभा सुचारु रूप से

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) के इक्कीसवें पदवीदान-समारम्भ में दीक्षान्त भाषण, १८ अगस्त, १९५६

दक्षतापूर्वक अपना काम बहुत दूर-दूर तक दक्षिण के सभी अहिन्दी प्रदेशों में चलाती आ रही है। इसलिए उसकी उन्नति से मेरा प्रसन्न होना स्वाभाविक है। मैं उसके सभी संचालकों और कार्यकर्ताओं को धन्यवाद देता हूँ और आश्वासन दिलाना चाहता हूँ कि इस काम में जो कुछ भी सेवा मुझसे हो सकेगी, वह सदा उनको प्राप्त होती रहेगी।

महात्मा गान्धी बहुत ही दूरदर्शी थे और जिस प्रकार एक अच्छा पारखी हाँडी में से एक चावल निकाल कर देख लेता है और समझ लेता है कि सारी हाँडी के सभी चावल पक गये हैं या अधपके हैं, उसी प्रकार वह देश में किसी छोटी घटना को लेकर सारे देश की नब्ज पहचान लेते थे और उसके लिए जो कुछ भी वह उचित समझते थे, उस पर अमल करते थे। १६२२ में जब सत्याग्रह के लिए देश भर में पुकार थी और बारडोली को उसके लिए तैयार किया गया, यहाँ तक कि सत्याग्रह की तिथि भी निश्चित करके घोषित कर दी गयी और वायसराय के पास उन्होंने पत्र तक लिख डाला, उस अवसर पर उत्तर प्रदेश के एक गाँव में एक दुर्घटना के कारण उन्होंने समझ लिया कि अभी यह देश अहिंसा को नहीं समझ सका है और उस पर चलने के लिए अभी प्रस्तुत नहीं है जो सफलता के लिए अपेक्षित है और इसलिए अभी सत्याग्रह करना उचित नहीं होगा। उन्होंने सत्याग्रह का निश्चय ही बदल डाला।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ उनके जीवन में मिलेंगी जिनसे हम समझ सकते हैं कि किसी एक छोटी चीज़ को लेकर वह बड़े निर्णयों पर पहुँच जाते थे। यह भी हमने देखा है कि वह जो अनुमान करते थे, अन्त में जाकर वही ठीक निकलता था। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे, तब उनको वहाँ के बसने वाले सभी धर्मवाले, सभी भाषाओं के बोलनेवाले भारतीयों से मिलने और उनके द्वारा सत्याग्रह कराने का सुअवसर मिला। उससे वह समझ गये कि भारत में किसी न किसी भारतीय भाषा को राष्ट्रीय भाषा मानने की आवश्यकता पड़ेगी और वह भाषा हिन्दी ही हो सकेगी। उनकी यह धारणा दक्षिण अफ्रीका में वहाँ की परिस्थिति देखकर, जो एक प्रकार से सारे भारत की परिस्थिति का एक छोटा नमूना थी, बन गयी। भारतवर्ष में आकर जब उन्होंने सारे देश का पर्यटन किया तो उस धारणा की और भी पुष्टि हो गयी और इसलिए चम्पारन में रहते-रहते ही उन्होंने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का काम आरम्भ किया। वही उनकी प्रेरणा थी जिसने आगे चलकर हिन्दी प्रचार सभा को जन्म दिया।

संविधान-सभा में जब राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार हुआ तो सभी बातों का विचार करके संविधान-सभा ने निश्चय किया और वह निश्चय सर्वसम्मति से हुआ कि राष्ट्रीय और सार्वदेशिक कामों के लिए हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा मानी जाये। साथ ही संविधान में यह भी उल्लेख किया गया कि भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और उन सभी भाषाओं के अपने साहित्य, अपनी शब्दावलियाँ और अपनी-अपनी लेखनशैलियाँ हैं। इसलिए किसी व्यक्ति ने कभी भी अपने मस्तिष्क में यह विचार आने नहीं दिया कि हिन्दी किसी प्रादेशिक भाषा को हटाकर उसका स्थान ले लेगी। जितनी प्रादेशिक भाषाएँ हैं और जिनके नाम गिना दिये गये हैं, वे उन स्थानों में जहाँ

वे प्रचलित हैं सभी काम देंगी। वहाँ के सरकारी दफ्तरों का सारा कारबार, वहाँ के विधानमण्डल का सारा कारबार, वहाँ के न्यायालयों का सारा कारबार तथा शिक्षा का सारा कारबार उन्हीं भाषाओं में होगा और इसी सिद्धान्त के अनुसार अनेक राज्यों ने आज अपने यहाँ की प्रचलित भाषाओं को सरकारी भाषाएँ मान लिया है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि अब इस राज्य में भी तमिल को सरकारी कामों की भाषा स्वीकार करने का विचार हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि जिस प्रकार अन्य कतिपय राज्यों में वहाँ की भाषाएँ दफ्तरों में धीरे-धीरे अंग्रेजी का स्थान ले रही हैं, उसी प्रकार यहाँ भी तमिल भाषा अंग्रेजी का स्थान ले लेगी।

सच पूछिये तो हिन्दी की होड़ किसी प्रदेश की भाषा के साथ वहाँ के सरकारी दफ्तर में या अन्य किसी बात में न तो हो सकती है और न होगी ही। उन सब स्थानों में उन भाषाओं की होड़ तो अंग्रेजी के साथ है। अंग्रेजी को हटाकर उसका स्थान राज्यों के सभी कारबार में वहाँ की भाषाओं को लेना है और वे ले रही हैं। संविधान में केवल सार्वदेशिक कामों के लिए तथा भारत सरकार के दफ्तरों के कार्य के लिए अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को देने का निश्चय किया गया है। उसमें इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि किसी राज्य के लोगों को सार्वदेशिक कामों में हिन्दी के प्रयोग से कुछ हानि न हो और जब सब उसके लिए तैयार हो जायें, तभी उसको धीरे-धीरे चालू किया जाये। संविधान ने १५ वर्ष का समय भी दिया है, जिसमें अभी ६ वर्ष शेष हैं। इसलिए यद्यपि यह बात मैं बार-बार कह चुका हूँ, आज फिर दुहरा देना आवश्यक समझता हूँ कि किसी के हृदय में ऐसा सन्देह नहीं होना चाहिए कि किसी भी प्रादेशिक भाषा को दुर्बल बनाना या उसे अपने स्थान से हटाना है। सच पूछिये तो संविधान में यह भी कहा गया है कि सभी प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति की जाये, उनमें जो दोष हैं उनको दूर किया जाये और सब प्रकार से उन्हें इस योग्य बनाया जाये कि वे मनुष्य के सभी प्रकार के विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए सशक्त हो जायें। किसी भाषा के साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो, सबको समुचित प्रोत्साहन मिले और हिन्दी का प्रचार भी आवश्यक रूप से हो जिससे वह किसी को खले नहीं।

संविधान के अनुसार गत वर्ष एक ऐसा आयोग नियुक्त किया भी गया। उसने अपना काम पूरा कर दिया है और अब भारत सरकार को संविधान में बतायी गयी रीति से निश्चय करना है। जब उस प्रतिवेदन पर सांवैधानिक रूप से सरकार का निश्चय प्रकाशित किया जाएगा, तो मैं आशा करता हूँ कि यह काम और भी आगे बढ़ेगा और लोगों के हृदयों में जो सन्देह है, वह दूर हो जाएगा। यहाँ पर मेरे लिए इतना ही कहना यथेष्ट होना चाहिए कि प्रत्येक राज्य अपनी भाषा अथवा भाषाओं को प्रोत्साहन देने और हर प्रकार से मानव के सभी विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के योग्य बनाने के लिए स्वतन्त्र ही नहीं है, बल्कि एक प्रकार से बाध्य भी है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सभी भाषाएँ, जो आज प्रचलित हैं और जिनके नाम संविधान में दिये गये हैं, उन्नति करेंगी और अपने साहित्य भण्डार को समृद्ध बनाएँगी। इसमें हिन्दी से उनको किसी प्रकार की बाधा न तो पड़नी चाहिए और न पड़ेगी ही।

हिन्दी की होड़ केवल अंग्रेजी के साथ है, किसी भी प्रादेशिक भाषा के साथ नहीं और अंग्रेजी की होड़ केवल हिन्दी से ही नहीं बल्कि सभी प्रादेशिक भाषाओं से है। यदि हम इस बात पर इस दृष्टि से विचार करें तो किसी प्रकार का मतभेद नहीं रह जाएगा।

हम अंग्रेजी का भी बहिष्कार नहीं करना चाहते। अंग्रेजी एक बहुत ही उन्नत और समृद्ध भाषा है। उसका साहित्य बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह सारे संसार के लिए बहुत अंश में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। इसलिए न तो हम अंग्रेजी का बहिष्कार कर सकते हैं और न तिरस्कार ही। हमें उसको सीखना है और जानना है, जिससे हम इस युग की विद्या और विचार से परिचित होते रहें, अन्तर्राष्ट्रीय सभा-सम्मेलनों में भाग लेते रहें तथा संसार की अन्य गतिविधियों से सम्पर्क रखते हुए लाभ उठाते रहें। संसार में बहुतेरे ऐसे देश हैं जहाँ शिक्षित लोग अपनी-अपनी भाषा के अलावा दूसरी भाषाओं से भी परिचय रखते हैं। इस देश में हमारे लिए अन्तर्प्रादेशिक तथा सार्वदेशिक कामों के लिए प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त हिन्दी का जानना आवश्यक होगा, और इसलिए हमारे शिक्षालयों के शिक्षाक्रम में किसी-न-किसी रूप में और किसी-न-किसी श्रेणी में प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

हिन्दीभाषी राज्यों में जहाँ हिन्दी मातृभाषा के रूप में ही पढ़ी जाएगी, यह उचित होगा कि किसी एक दूसरी भाषा का और मेरे विचार से दक्षिण की किसी भाषा का अध्ययन-अध्यापन भी उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार से हिन्दी का अहिन्दी राज्यों में। इससे सारे देश में विचार-विनिमय का संयोग अधिक हो सकेगा और यह देश की एकता को दृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध होगा। साथ ही मैं यह भी चाहूँगा कि अंग्रेजी का अध्ययन भी जितने अधिक लोग कर सकें, अवश्य करें और उसके लिए आवश्यक साधन भी जुटाये जायें। अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में रखना एक चीज है और अपने काम के लिए उसका ज्ञान प्राप्त करना दूसरी चीज है। मैं चाहूँगा कि उसका ज्ञान विशेषकर ऐसे रूप में दिया जाये कि लोग उससे अपना काम निकाल सकें। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग ऐसे होंगे जो उसका गहरा अध्ययन करेंगे और उसके साहित्य का अधिक परिचय प्राप्त करेंगे। उनके लिए भी विश्वविद्यालयों में स्थान होना चाहिए।

इस प्रकार से, जहाँ तक मैं देख और समझ सकता हूँ, हमारे यहाँ के शिक्षार्थियों पर बहुत बोझ डाले बिना उनको इन तीनों भाषाओं का ज्ञान अपने-अपने काम और उपयोग के लिए दिया जा सकता है। किसी विदेशी भाषा के माध्यम होने के कारण शिक्षार्थियों पर जो बोझ पड़ता है, वह मातृभाषा को माध्यम बनाकर बहुत कम कर दिया जा सकता है, और उनके स्थान पर अहिन्दी राज्यों में यथासाध्य और यथावश्यक हिन्दी का ज्ञान और हिन्दी राज्यों में किसी एक दूसरी भारतीय भाषा का ज्ञान दिया जा सकता है। उसके साथ कारबारी अंग्रेजी भी सीख ली जा सकती है। मैं आशा करता हूँ कि आपकी संस्था के अनुभव से सारा देश लाभ उठाएगा। जिस प्रकार आपने हिन्दी का प्रचार इन अहिन्दी राज्यों में सफलतापूर्वक किया है, उससे आशा होती है कि संविधान ने जो स्थान

हिन्दी के लिए ठहराया है उसे अवधि के पूरे होते-होते कार्यरूप दिया जा सकेगा।

मैं जानता हूँ कि भारत सरकार एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चल रही है और वह कार्यक्रम इस तरह से बनाया गया है कि अवधि पूरी होते-होते हिन्दी में आधुनिक विषयों को व्यक्त करने की जो कमी है, वह भी दूर हो जाएगी और हिन्दी हर प्रकार से इस योग्य हो जाएगी कि संविधान के अनुसार सार्वदेशिक काम उसमें किये जा सकें। साथ ही इसका भी प्रयत्न हो रहा है कि अहिन्दीभाषी लोग, जिनका भारत सरकार के साथ सम्पर्क है अथवा होगा, हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लें जिसमें वह अपने काम कर सकें और हिन्दी न जानने के कारण किसी के साथ अन्याय न हो।

मैं यह भी चाहूँगा कि जहाँ तक सम्भव हो सके सब भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली एक हो। ऐसा होना स्वाभाविक भी होगा क्योंकि सभी भाषाएँ, विशेषकर संस्कृत से ही नये शब्द लेती हैं। इसके अतिरिक्त मैं यह भी चाहूँगा कि अहिन्दी राज्यों के लोग हिन्दी भाषा को अपनी भाषा मानकर उसकी उन्नति में ऐसी रुचि लें जिससे यह कहा जा सके कि हिन्दी की प्रगति में उनका भी हाथ रहा है। मैं समझता हूँ कि यह सरल भी है, क्योंकि भाषाओं के क्षेत्र में आदान-प्रदान बहुत सरलता से हुआ करता है और ऐसे समय में भी जब इस युग की सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम के लोग एक-दूसरे के साथ सम्पर्क रखा करते थे और विशेषकर तीर्थ-यात्रा के समय और व्यापार के लिए एक कोने से दूसरे कोने तक लोग बराबर आया-जाया करते थे। तो कोई कारण नहीं कि आज यातायात के इन सभी साधनों के रहते हुए यह काम द्रुत गति से क्यों न हो। आज हम यह भी क्यों न कहें कि तमिलभाषी अथवा तेलुगुभाषी लोग भी हिन्दी में कविता कर सकते हैं। कई तेलुगुभाषियों ने आज से २०० वर्ष पहले ही हिन्दी में कविता की थी जो आज भी प्रचलित है। मैं उस दिन का स्वप्न देख रहा हूँ जब बिहारी तमिल में कविता कर सकेगा और एक तमिलभाषी पंजाबी में।

सर्वोदय—हमारा आदर्श

मैं यहाँ अधिकतर सुनने और देखने के लिए ही आया था, कुछ कहने के लिए नहीं। मेरे मन में इस बात का सन्देह है कि मुझे यहाँ कुछ बोलने और कहने का अधिकार भी है या नहीं? कारण यह है कि आप जिस यज्ञ में लगे हुए हैं और आपने जिस यज्ञ का व्रत लिया है उसमें हमारा कोई योगदान नहीं है। क्रियात्मक रूप से मैंने उसमें कोई भाग भी नहीं लिया है। ऐसी अवस्था में यदि मैं आपके सामने कुछ कहूँ भी तो उसका कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि उसके पीछे कोई ऐसा कार्य नहीं जो आपको शक्ति दे सके। इसलिए मैं आपके सामने कुछ अधिक नहीं कहना चाहूँगा। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि आपने जो काम आरम्भ किया है वह एक बहुत बड़ा काम है। परन्तु काम जितना बड़ा होता है उसमें कठिनाइयाँ भी उतनी ही अधिक होती हैं। बड़ी कठिनाइयों को पार करके उन पर विजय प्राप्त करना ही पुरुषार्थ है। जितनी अधिक कठिनाई होगी आपको उसमें उतना अधिक बल लगाना पड़ेगा और बल लगाने के लिए आपको शक्ति का उपार्जन करना होगा। आप जितनी ही कठिनाई को जीतेंगे आपके पुरुषार्थ का उतना ही अधिक प्रदर्शन होता जाएगा। मैं आपसे केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप जिस काम में लगे हैं उसे जहाँ तक हो सके आगे बढ़ाते जायें।

सर्वोदय का काम कई प्रकार से और कई तरीकों से हो रहा है। महात्मा जी ने हमारे सामने जो कार्यक्रम रखा था उसको हम अभी तक पूरा नहीं कर पाये हैं। यह आशा की जाती थी कि जब हमारे हाथों में अधिकार आ जाएगा और हम अपने देश के शासन का भार अपने ऊपर उठा लेंगे तो इस कार्यक्रम को तेजी के साथ और बहुत दूर तक ले जाया जा सकेगा। परन्तु वह अभी तक पूरी नहीं हुई और मैं नहीं जानता कि वह कब और कहाँ पूरी हो सकेगी। बात यह है कि इस समय जो लोग सरकार में हैं उनकी अवस्था बहुत-कुछ उस व्यक्ति के समान है जो संकोच में पड़ कर कोई भी निर्णय नहीं कर पाता कि वह इधर रहे या उधर। उसके सामने जो प्रश्न आते हैं उनको हल करने के लिए उसमें कुछ उत्साह भी है और उसे सिद्धान्तरूप से कुछ मालूम भी है तो भी वह उनको कार्य-रूप नहीं दे पाता। वही संकोच आज हममें है जिसके कारण हमारी दृष्टि दूसरों की ओर

सर्वोदय सम्मेलन (चाण्डिल) में भाषण, ७ मार्च, १९५३

अधिक जाती है और अपनी ओर कम। हो सकता है कि दूसरों की स्पर्धा करना अच्छा हो और उसमें अच्छाई ही हो बुराई नहीं, परन्तु तो भी जो हमको दिया गया है अथवा जो हमको बताया गया है उस पर पूरी तरह से विचार किये बिना, पूरी तरह से उसको कार्यरूप दिये बिना अथवा अपने अनुभव से उसकी शक्ति का अनुमान लगाये बिना दूसरों की ओर ताकने में बुद्धिमत्ता नहीं है। परन्तु तो भी आज हममें से बहुतेरे लोग ऐसे हैं।

हमारे देश में जो लोग सरकार में हैं उनको बनी-बनायी चीज़ मिल गयी थी। उसको वे उसी प्रकार से उसी ढर्रे पर ले जा रहे हैं। जो हमारे आदर्श थे वे उन पर भी चलने का प्रयास कर रहे हैं तो भी यह मानना होगा कि वे उन पर नहीं चले। उन आदर्शों पर उनका विश्वास भी उतना नहीं जमता कि वे पूरे हृदय से उन पर चलने का प्रयास करें। देश में इस समय सर्वोदय समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है और यही उद्देश्य देश के सामने है। उसमें जितने कार्यकर्ता हैं उसके उद्देश्य को भली प्रकार समझते हैं और समझकर उस मार्ग पर चलते हैं। मुझे विश्वास है कि एक समय ऐसा आएगा जब इधर-उधर देखने वाले आपकी ओर झुकेंगे और आपके मार्ग पर चलेंगे। मैं सिद्धान्त रूप से यह मानता हूँ कि सर्वोदय के जो उद्देश्य हैं वे मनुष्य के लिए सबसे उत्तम उद्देश्य हो सकते हैं। जो व्यक्ति इस कार्य में लगे हुए हैं और इसको चला रहे हैं वे अपने काम से दूसरों का, जो भूले-भटके हैं, मार्ग प्रशस्त करेंगे।

बेरोज़गारों का सहारा—खादी

विगत ३०-३५ वर्षों से हम खादी सम्बन्धी कार्यक्रम को कार्यान्वित करते आ रहे हैं। इस कार्य की ओर हमने काफी ध्यान दिया है और हममें से कुछ ने तो पर्याप्त समय भी दिया है। सबसे बड़ी कठिनाई मिल के बने कपड़े से प्रतियोगिता की है। एक और कठिनाई यह भी है कि सदा इतनी खादी उपलब्ध नहीं होती जितनी कि उसकी माँग रहती है।

खादी का आर्थिक आधार भारतीय जीवन सम्बन्धी कुछ मौलिक तथ्य हैं। हमारा देश कृषि-प्रधान देश है जहाँ ७०-८० प्रतिशत लोग किसी न किसी रूप में खेती-बाड़ी से अपना निर्वाह करते हैं। यदि आप एक किसान के जीवन पर दृष्टि डालें, तो आप यह देखिएगा कि उसका खेत बड़ा हो या छोटा, वह और उसका परिवार साल भर बराबर खेती

खादी को प्रोत्साहन देने के लिए मन्त्रियों तथा उच्च अधिकारियों के सम्मेलन (राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली) में भाषण, २६ अगस्त, १९५३

के काम में ही व्यस्त नहीं रह सकता। उसे काफी समय बेकार रहना होता है। दूसरे रोजगार की खोज में वह अपना घर छोड़ कर नहीं जा सकता क्योंकि खेती के काम के यदाकदा निरीक्षण की आवश्यकता होती है। यदि बेकारी का वह सब समय जब किसान व्यस्त नहीं होता, खादी तैयार करने के काम में लगाया जाये तो देश भर को आवश्यकता के अनुसार खादी मिल सकती है।

ऐसी अवस्था में कोई भी कम मजदूरी का प्रश्न नहीं उठाएगा। क्योंकि यह काम तो ऐसे समय में किया जाएगा जो बिल्कुल खाली होगा। उस खाली समय में किसान कुछ न कुछ कमाएगा ही और वह कमाई ऐसी भी नहीं कि उसका कुछ भी मूल्य न हो। कम से कम वह अपने लिए तो इतना कपड़ा तैयार कर ही सकेगा जिससे उसको बाजार से न खरीदना पड़े। मैं आपको अपने निजी अनुभव से बता सकता हूँ कि एक घण्टा प्रतिदिन कातने से हमें इतना कपड़ा मिल सकता है जितना कि एक औसत हिन्दुस्तानी के लिए आवश्यक है अर्थात् १५ से २० गज कपड़ा प्रति व्यक्ति। इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो सस्ते-मँहगे कपड़े का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि खादी खाली समय में किये गये परिश्रम से प्राप्त हो जाएगी। खादी के सम्बन्ध में यह एक आधारभूत तथ्य है।

हम जानते हैं कि आदमी सदा काम नहीं करना चाहता। कभी-कभी उसे खाली बैठे रहना ही अच्छा लगता है। परन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद मैं सोचता हूँ कि खादी का प्रचार और विस्तार असम्भव नहीं है। अतीत में जब गान्धी जी ने खादी-आन्दोलन आरम्भ किया, उस समय हमारा देश के प्रशासन से कोई सम्बन्ध नहीं था और न ही हम सरकार से सहायता की अपेक्षा करते थे, फिर भी देश में एक ऐसा वर्ग था जो बराबर खादी का प्रचार करता रहा। वह वर्ग आजकल भी विद्यमान है। हम चाहते हैं कि जनता के अन्य वर्ग भी खादी अपनायें और हमें प्रोत्साहन दें। मुझे प्रसन्नता है कि वित्तमन्त्री महोदय ने हमें सरकारी सहायता देना स्वीकार कर लिया है।

एक प्रश्न यह उठाया गया है कि महिलाओं की साड़ियाँ बहुत महँगी पड़ती हैं। मेरे विचार में यह प्रश्न प्रासंगिक नहीं है। मैं नहीं सोचता कि महिलाओं को दिन भर इतना काम रहता है कि वे एक घण्टा कातने के लिए नहीं दे सकतीं। यदि वे अपना खाली समय कातने में लगायें तो साड़ी उन्हें बिना मूल्य के ही मिल जाएगी, केवल रूई के लिए ही व्यय करना पड़ेगा। मैं नहीं सोचता कि इससे सस्ती साड़ी उनको कहीं भी मिल सकेगी। जब वे अपने हाथ के कते सूत की साड़ी पहनने लगेंगी तो निस्सन्देह उन्हें वह पसन्द आएगी। प्रयास से वे इस कार्य में प्रवीण हो जाएंगी और उनकी कोमल स्निग्ध अंगुलियाँ निश्चय ही काफी खादी तैयार कर सकेंगी।

हममें से जो लोग खादी के सम्बन्ध में जानते हैं उन्हें पता है कि उन लोगों के लिए जिनकी आय का और कोई साधन नहीं, खादी का कितना अधिक महत्त्व है और इससे उन्हें कितनी सहायता पहुँचती है। मुझे याद है कि जब मैं स्वयं खादी के केन्द्रों में जाया करता था, वहाँ देहातों से फटे-पुराने कपड़े पहने हुए और सिर पर सूत के गट्ठे उठाये हुए बहुत सी स्त्रियाँ आया करती थीं। यदि कभी हम उनसे सूत नहीं खरीद पाते थे तो

वे बहुत उदास हो जाती थीं। खादी द्वारा उन गरीब लोगों को काफी सहायता पहुँचती थी। मेरा विचार है कि अब भी स्थिति ऐसी नहीं बदली कि यह सहायता अनावश्यक हो गयी हो।

इसलिए मैं अनुरोध करूँगा कि जब खादी की बात की जाये तो मिल-मालिकों अथवा मिल-मज़दूरों की बात न सोचें बल्कि गाँव के गरीब लोगों को ध्यान में रखें। बेरोज़गारी की समस्या से हम काफी चिन्तित हो उठते हैं और इसके भी कई कारण हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो और भी स्पष्ट हो जाएगा कि खादी द्वारा कितने अधिक लोगों को रोज़गार मिल सकता है। मिल में काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति २०० आदमियों का रोज़गार छीन लेता है। एक मिल-मज़दूर जितने करघे संभाल सकता है, उनसे जो कपड़ा तैयार होता है वह खड्डी पर १० या १२ आदमियों द्वारा तैयार किये गये कपड़े के बराबर होता है। आप इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि मिलों द्वारा कितनी बेरोज़गारी फैलती है।

मेरा यह अभिप्राय नहीं कि देश का औद्योगीकरण न हो। यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है जिसका निर्णय इसके अपने औचित्य पर निर्भर है। मैं आपके सामने एक ठोस तथ्य रख रहा हूँ जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता और जिसका प्रभाव इस देश के गरीब लोगों के दैनिक जीवन में बराबर अनुभव किया जा रहा है। इसलिए यह आवश्यक है कि जब हम खादी पर विचार करें तो इस बात को न भूलें कि इसके साथ बहुत से ऐसे लोगों का सम्बन्ध है जो बेरोज़गार हैं या जिन्हें पूरा रोज़गार नहीं मिलता। अतः यदि आप इसे इस दृष्टिकोण से देखेंगे तो आप मुझसे सहमत होंगे कि खादी को दी गयी सरकारी सहायता निरर्थक न होगी। आप इसे आर्थिक सहायता नहीं देते तो आपको इन सब पुरुषों और स्त्रियों के लिए जीविका का साधन ढूँढ़ना होगा। मेरे विचार में आर्थिक सहायता द्वारा उनके निर्वाह की व्यवस्था करना अधिक अच्छा होगा।

हमारा यह अनुभव है कि भूकम्प, बाढ़ आदि दैवी विपत्ति के समय विपत्तिग्रस्त क्षेत्रों में खादी के केन्द्र खोलने से लोगों को बहुत सहायता मिलती है। हाल ही में बिहार में जो बाढ़ आयी उसके सम्बन्ध में मुझे वहाँ से कई तार मिले हैं जिनमें यह अनुरोध किया गया है कि उनके पास जो धन है उसकी सहायता से बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में खादी केन्द्र खोले जायें।

खादी खरीदने का यह भी अर्थ नहीं कि आप किसी को कुछ दान दे रहे हैं। इससे लाखों आदमियों को रोज़गार मिलता है। खादी खरीदना धन नष्ट करना नहीं बल्कि उस कला को प्रोत्साहन देने में लगाना है। चीनी और इस्पात उद्योगों को आर्थिक सहायता पर सरकार करोड़ों रुपये व्यय करती रही है। परन्तु इस पर कभी आपत्ति नहीं की गयी क्योंकि तब इन उद्योगों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। मैं चाहता हूँ कि इसी प्रकार की आर्थिक सहायता खादी उद्योग को भी दी जाये क्योंकि यह उद्योग दूसरे संगठित उद्योगों की अपेक्षा उस अतिरिक्त सहायता का अधिक अधिकारी है।

मैं एक-दो सुझाव देना चाहता हूँ। आपमें से बहुत से उद्योग विभागों के अध्यक्ष

हैं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि हमारी सेना की वर्दी खादी की हो और न मैं यह कहना चाहूँगा कि पुलिस की वर्दी के लिए खादी का उपयोग किया जाये। हो सकता है कि इस काम के लिए पर्याप्त खादी उपलब्ध ही न हो सके। परन्तु मैं यह नहीं समझ सकता कि राष्ट्रपति भवन में और अन्य सरकारी विभागों, अस्पतालों आदि में परदों, तौलियों, झाड़नों आदि के लिए खादी का उपयोग क्यों न हो। मेरा यह सुझाव है कि सरकार पुलिस तथा सेना को छोड़ कर बाकी सब विभागों के लिए आदेश जारी करे कि वे ऐसी सब चीज़ें खादी भण्डार से ही खरीदा करें। यदि ऐसा किया गया तो खादी आन्दोलन को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा, केवल इसलिए नहीं कि सरकारी विभाग काफी खादी खरीद लेंगे बल्कि इसलिए भी कि जनता पर भी इस बात का गहरा प्रभाव पड़ेगा।

मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि खादी की बिक्री होती रही तो उसके उत्पादन में भी कमी नहीं आएगी। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि खादी का प्रचार किया जाये। यह कार्य बलपूर्वक अथवा दुराग्रह द्वारा नहीं बल्कि स्वेच्छापूर्ण सहयोग से और खादी के आधारभूत महत्त्वों को समझ कर ही हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस बात पर ध्यान दें और खादी को आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि एक राष्ट्रीय आवश्यकता मान कर और यह समझ कर कि इसके द्वारा लाखों गरीब लोगों को रोज़गार मिलता है, प्रोत्साहन दें।

हमारा उत्तरदायित्व

आज का दिन केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं बल्कि सभी देशों के लिए एक बहुत ही शुभ दिन मानना चाहिए क्योंकि आज ही के दिन महात्मा गान्धी जी ने जन्म लिया था और यह हमारे देश का सौभाग्य था कि उनका जन्म इस देश में हुआ। ८० वर्षों तक काम करके और एक प्रकार से अपना काम पूरा करके वह चले गये और जो काम वे अधूरा छोड़ गये उसका भार जो लोग बच गये हैं उन पर पड़ गया है।

आप जानते हैं कि महात्मा जी ने अपने जीवन में जितने काम किये वह सब एक सिद्धान्त के अधीन और एक सिद्धान्त के अनुसार थे। उनका कार्यक्रम जब-तब समय के अनुसार बदलता था और बदल सकता था पर वह जो भी कार्यक्रम बनाते थे, अपने सिद्धान्तों के अनुसार ही बनाते थे। उनके चले जाने के बाद जब हम सभी बातों पर विचार करके देखते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने मानव जीवन के और विशेष कर भारतवर्ष के

राजघाट (दिल्ली) पर सन्ध्याकालीन प्रार्थना के बाद भाषण, २ अक्तूबर, १९५३

लोगों के जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा और सभी विषयों पर केवल अपना मत ही प्रकट नहीं किया बल्कि जो-जो प्रश्न तथा समस्याएँ सामने आयीं, सभी को सुलझाने का कोई न कोई प्रयत्न उन्होंने बतलाया। उस समय देश स्वाधीन नहीं था, इसलिए उनका ध्यान बहुत करके स्वाभाविक रूप से स्वाधीनता-प्राप्ति की ओर गया और उसमें उनका समय भी बहुत लगा। स्वाधीनता के लिए जो संग्राम उन्होंने छेड़ा देश के लोगों ने भी उसी ओर अधिक ध्यान दिया और उसी में अधिक भाग लिया।

महात्मा गान्धी केवल एक राजनीतिक पुरुष नहीं थे। महात्मा गान्धी सचमुच में महात्मा थे और महात्मा का अर्थ आप यह समझें कि जिसकी अन्तरात्मा सभी बातों को समझती है। जीवन की किसी एक बात को लेकर नहीं बल्कि जो व्यक्ति सभी बातों का हल बताता है और अपने जीवन में उसको कार्यरूप में परिणत करके दिखलाता है, वही महात्मा होता है। इसलिए आज जब महात्मा जी नहीं रहे, और जब हमको किसी प्रश्न पर सोचना पड़ता है तो हमें यह चीज़ ध्यान में रखनी चाहिए कि हम उनके सिद्धान्त के अनुसार जो कार्यक्रम बना रहे हैं, वह उनकी दृष्टि से ठीक उतरता है या नहीं।

आज हम सबको एक बात मान लेनी पड़ेगी कि जब से हमने स्वराज्य प्राप्त किया और उसके थोड़े ही दिनों बाद महात्मा जी चले गये तो हमारे ऊपर कई प्रकार की विपत्तियाँ आयीं। हमारे सामने नित्य नये-नये प्रश्न तथा नयी-नयी समस्याएँ आती रहीं और हम अपनी बुद्धि के अनुसार उनका हल निकालते रहे। पर हमको यह भी मानना होगा कि हम उस प्रकार का व्यापक विचार नहीं कर सकते जितना महात्मा जी किया करते थे। हमलोग किसी एक चीज़ को लेकर उसमें बह जाते हैं और ऐसा समझने लग जाते हैं कि वही एक चीज़ है जिसको महात्मा जी चाहते थे और इसी कारण जो लोग गान्धी जी के साथ रहे हैं अथवा जिनको उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, बहुधा उनमें भी बहुत बातों में मतभेद हो जाता है। हरेक अपने विचार से अपने स्थान पर ठीक है।

हम गान्धी जी की सारी सीख केवल एक ही चीज़ में सीमित कर देते हैं और जो दूसरे विषय हैं उनसे अपना मतभेद स्पष्ट रूप से प्रकट किया करते हैं। उनके जीवन-काल में उनका जीवन किस प्रकार का था उस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। इसलिए मैं तो यही चाहता हूँ कि जो मौलिक चीज़ें हैं उनको यदि हम ठीक रूप से समझ जाएँगे तो हमारे लिए उन समस्याओं को हल करने का मार्ग भी शायद ठीक रूप से निकल सके। दुर्भाग्य से जब गान्धी जी के लिए ऐसा समय आया कि जब वह अपनी आवाज़ केवल इसी देश में ही नहीं बल्कि संसार के सभी देशों तक पहुँचा सकते थे और अपना सन्देश दे सकते थे, ठीक उसी समय वह हमसे छीन लिये गये। परन्तु उन्होंने लिखकर, कहकर और उससे भी अधिक अपने जीवन में बरत कर जो कुछ दिखला दिया है वह हमारी सभी समस्याओं को हल करने के लिए काफी है यदि हम ठीक रूप से समझें और काम करें।

सभी युद्धों में जो बड़ी क्षति देश, विदेश और सब लोगों को पहुँचा करती है वह

यही है कि लोगों में चरित्रहीनता आ जाती है। उनमें कितने प्रकार के दोष आ जाते हैं। उन दोषों से वे लोग भी जो स्वयं युद्ध में न पड़े हों परन्तु किसी न किसी रूप से उनका उससे कोई सम्बन्ध हो, अपने को नहीं बचा सकते। विगत महायुद्ध का एक बहुत बुरा प्रभाव सभी देशों पर पड़ा है। संसार भर के लोग इस बात को मानते हैं कि आज हमारा नैतिक स्तर पहले की अपेक्षा निम्न कोटि का हो गया है और उससे हम इस देश में भी नहीं बचे हैं। मैं यह नहीं कहता कि वह केवल युद्ध का ही परिणाम है, हमारी अपनी कमजोरियाँ भी हैं तथा अन्य दूसरे बाहरी कारणों का भी प्रभाव पड़ा है।

महात्मा गान्धी जी ने अपनी तपस्या के बल से हमारा पथप्रदर्शन किया और हमें बहुत ऊँचे तक उठा दिया था। उनकी तपस्या के बल से ही हममें एक प्रकार की स्फूर्ति, एक नया जीवन, सच्चरित्रता और त्याग की शक्ति आ गयी थी और उसी के बल पर हम आगे बढ़े। पर यह दुःख की बात है कि उनके चले जाते ही हम बहुत नीचे फिसल गये और ऐसा मालूम होता है कि फिसलते-फिसलते अब हम शायद गिर भी गये हैं और कुछ देर में हम चित भी हो जायें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि हम गान्धी जी की शिक्षा को समझने का प्रयत्न करें और उसके अनुसार चलना चाहें तो हम उनके मौलिक सिद्धान्त 'सत्य' को ग्रहण करें और उसे कभी भी छोड़ें नहीं। एक इसी चीज़ को लेकर हममें जितने दोष हैं हम उनको दूर कर सकते हैं। हम कमज़ोर तो पहले से ही थे और हममें उतनी शक्ति नहीं आ पायी थी कि हम अधिक भार सह सकें, इसलिए उनके जाते ही हम फिसल पड़े।

आज सबसे अधिक आवश्यक यही है कि हम अपने चरित्र को सुधारें। चरित्र का हमारे जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है, हम उसका प्रभाव अपने सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन, घरेलू जीवन, व्यक्तिगत जीवन, सभी स्थानों पर देख रहे हैं। हमारे सामने इस प्रकार के कारण सदा उपस्थित होते ही रहते हैं जो हमको बचाने के बदले नीचे गढ़े की ओर ले जाते हैं और यही कारण है कि आज विद्यार्थियों में देखिये तो सभी स्थानों में उद्दण्डता तथा उच्छृंखलता पाइएगा। समाज में शिष्टता नाम की कोई वस्तु ही नहीं रह गयी है। यदि हम घर की स्थिति पर ध्यान दें तो वहाँ भी जिस प्रकार का प्रेम तथा जिस प्रकार की सद्भावना पहले एक-दूसरे के प्रति हुआ करती थी, उसमें भी अब कमी आ रही है। यह किसी के कहने-सुनने की बात नहीं है। यह तो प्रत्येक आदमी अपनी आँखों से देख सकता है अथवा उससे भी अधिक वह अपने में ही देखना चाहे तो देख सकता है कि पहले वह कहाँ था और आज कहाँ है।

मैं चाहता हूँ कि जब इस देश के लोग गान्धी जी के जन्म-दिन अथवा किसी अन्य अवसर पर कोई उत्सव मनाते हैं या उनका स्मरण करते हैं तो उसका उद्देश्य यही होना चाहिए कि जिस प्रकार उन्होंने हमें निडर बनाया, जिस प्रकार से उन्होंने हममें केवल देश प्रेम ही नहीं बल्कि मानव-मात्र के लिए प्रेम उपजाया और जिस प्रकार से उन्होंने हममें त्याग-शक्ति फूँकी, हम उस चीज का स्मरण करें और देखें तथा समझें कि यह सब उसी सत्य पर निष्ठा रखने के कारण हममें आया।

इस समय देश के सामने बहुतेरे प्रश्न हैं और किसी न किसी प्रकार सबका निबटारा करना है। गान्धी जी का कहना था कि धनी लोग इस बात को समझें कि उनके पास जो धन है वे उसके थातीदार ही हैं, मालिक नहीं और वह धन केवल उनके लिए ही नहीं सबके लिए है। वह सबके लिए ही व्यय किया जाये। उन्होंने हम सब लोगों को समझाने में सफलता पायी और आज उसी एक विचार को लेकर विनोबा जी ने सारे देश में एक नयी हलचल पैदा कर दी है। आज लोग बीघों भूमि दान में दे रहे हैं और वह भी प्रसन्नता से। यह उस कार्यक्रम का एक छोटा-सा नमूना है। उन्हें जिस प्रकार से सफलता मिल रही है, यदि ऐसे ही मिलती गयी तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह उस ध्येय को जिसके अनुसार धन अपने ही लिए ही नहीं बल्कि सबके लिए समझना चाहिए, अवश्य प्राप्त कर सकेंगे।

आज बहुतेरे लोग चर्खा चलाना और खादी पहनना भी छोड़ चुके हैं और बहुतेरे छोड़ते जा रहे हैं। इसलिए जब ऐसे दिन पर चर्खा कातने का कार्यक्रम रखा जाता है तो उसका अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि सब लोग उस दिन बैठकर थोड़ी देर के लिए चर्खा चला लें बल्कि उसका अर्थ यह है कि चर्खे के पीछे जो भावना है, उसको समझें और उसके अनुसार काम करते रहें। जैसा मैंने कहा, गान्धी जी ने जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला था। वह एक नये समाज का संगठन करना चाहते थे। उन्होंने उस समाज का रूप भी हमारे सामने रख दिया था। मालूम नहीं हम इस देश में उस प्रकार का समाज स्थापित कर भी सकेंगे या नहीं। आज का समय कुछ उसके विपरीत ही है।

गान्धी जी जिस समाज का स्वप्न देखते थे शायद हम उस ओर नहीं जा रहे हैं। विनोबा जी के आन्दोलन से कुछ-कुछ लगता है कि हम भी उस ओर जा सकते हैं पर और जितनी चीज़ें हमारे देश में हो रही हैं वे विपरीत देखने में आ रही हैं और हम उनकी ओर ही जा रहे हैं। मैं तो यही चाहूँगा कि आप इन सब चीज़ों को भली प्रकार देखें और समझें। सब चीज़ों पर विचार करने का गान्धी जी का अपना एक उद्देश्य था। वे इस प्रकार के समाज का गठन करने के लिए उसके अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहते थे। उनका कार्यक्रम भी उसके ही अनुकूल होता था। यदि हम उस प्रकार का वातावरण पैदा कर सकें और उस कार्यक्रम के अनुसार चल सकें तो हम उस प्रकार का समाज स्थापित कर सकते हैं। परन्तु यदि हम उसके विपरीत ही चले तो उसका परिणाम वह नहीं हो सकता जैसा वे चाहते थे।

हमारे सामने यह प्रश्न आता है और हमको उस पर विचार करना चाहिए। हो सकता है कि परिस्थिति इतनी प्रतिकूल हो कि हम चाहे कुछ भी करें उससे हम उस परिस्थिति को नहीं बदल सकते। परन्तु उसका अर्थ यह भी तो नहीं हो सकता कि हम प्रयास करना ही छोड़ दें। मेरा तो विश्वास है कि यदि हम थोड़ा-सा भी उस मार्ग पर चलेंगे और उस ध्येय को अपने सामने रखेंगे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, परसों नहीं तो कुछ दिनों के बाद हमारे देश के लोग उस पर ध्यान देंगे और दूसरे देशों के लोग भी हमारा साथ देंगे।

इसलिए जो गान्धी जी की विचारधारा के माननेवाले हैं, उनसे जब मेरी बातें होती

हैं तो मैं उनसे यही कहता हूँ कि प्रतिकूल परिस्थिति भी कभी न कभी उनके अनुकूल ही हो जाएगी। कौन कह सकता था कि हम इतनी जल्दी या इतनी आसानी से स्वराज्य पा सकेंगे। उस समय हमारा ध्येय यही था कि चाहे जिस प्रकार हो, हमें स्वराज्य लेना है और हम उस ध्येय तक पहुँचे। हमको समझना चाहिए कि आज की परिस्थिति न तो उतनी प्रतिकूल है और न कभी हो सकती है जितनी कि गान्धी जी के दिनों में थी जब उन्होंने काम आरम्भ किया। आज भले ही चारों ओर कठिनाइयाँ और संकट देखने में आयें पर तो भी हमें उसी विश्वास के साथ आगे बढ़ना है।

मैं आशा करता हूँ कि आपने चर्खा चलाकर आज जो काम आरम्भ किया है तथा विनोबा जी सारे देश में भूदान यज्ञ का जो काम कर रहे हैं और अब उन्होंने कूपदान की जो बात उठायी है इसमें सभी स्थानों के लोग अपना-अपना सहयोग देकर इस कार्य को आगे बढ़ाते जाएँगे जो बाद को एक बड़ी नदी का रूप धारण कर लेगा। ईश्वर की कृपा हुई तो उस नदी में एक दिन बाढ़ भी आ सकती है। उस बाढ़ की आशा से हमें इन छोटे-छोटे नालों में अपनी-अपनी बूंद डालने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

महात्मा गान्धी समाज-केन्द्र

आपकी बस्ती में 'महात्मा गान्धी समाज केन्द्र' का उद्घाटन करना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। यह केन्द्र अमेरिका के फोर्ड प्रतिष्ठान द्वारा दिये गये अनुदान की सहायता से खोला जा रहा है। आप लोग निस्सन्देह अपने आपको सौभाग्यशाली समझ सकते हैं, केवल इसलिए नहीं कि इस प्रकार का पहला केन्द्र आपकी बस्ती में खोला जा रहा है, बल्कि इसलिए कि पूज्य बापू महीनों यहाँ रहे हैं। यह भूमि बापू के प्रवचन रूपी अमृत से सींची गयी है। हमारे स्वाधीन होने से पूर्व और उसके बाद बापू ने यहाँ जो अनेकों प्रार्थनासभाएँ की और उनमें जो प्रवचन दिये, वे आज भी हमारे कानों में गूंज रहे हैं। आप इस बात पर ठीक ही गर्व कर सकते हैं कि गान्धीजी के वे अमर उपदेश जिनका प्रभाव इस देश के लोगों पर ही नहीं बल्कि विदेशों के लोगों पर भी पड़ा, आपकी इस पुण्य भूमि से ही प्रसारित किये गये थे।

महात्मा गान्धी को जो थोड़ी-सी बातें सबसे अधिक प्रिय थीं उनमें हरिजन कहे जाने वाले लोगों का उद्धार भी था। राजनीतिक क्षेत्र में आने से पहले ही गान्धी जी ने

'महात्मा गान्धी समाज केन्द्र' के उद्घाटन के अवसर पर हरिजन बस्ती (नयी दिल्ली) में भाषण, ५ अप्रैल, १९५४

पिछड़े हुए लोगों, विशेष रूप से हरिजनों के उत्थान का काम अपने ऊपर लिया था। स्वभाव से वे केवल सिद्धान्तवादी नहीं थे। उन्हें सिद्धान्त से व्यवहार कहीं अधिक प्रिय था। इसलिए उन्होंने जैसे ही इस ओर कदम उठाया उन्होंने अपने सिद्धान्त और दृढ़ धारणा को व्यावहारिक रूप देना आरम्भ कर दिया। हरिजनों से मिलकर और उनकी बातें सुनकर उनको प्रसन्नता होती थी और वे उन्हीं के बीच रहना चाहते थे।

हमारे देश ने संसार को गौतम बुद्ध सरीखे कई सुधारक दिये हैं जिनके जीवन का एकमात्र ध्येय मानव समाज की सेवा और पीड़ित जनों का कल्याण करना था। भारत अपना सिर ऊँचा करके गर्व से कह सकता है कि आज के युग में महात्मा गान्धी भी उसी लड़ी के एक मोती थे।

यह केन्द्र उसी महान् आत्मा के नाम पर खोला जा रहा है। आप लोगों को ही नहीं, बल्कि इस संस्था से समस्त देश को उत्प्रेरणा मिलनी चाहिए। यहाँ रहने वाले हरिजन भाइयों का कर्त्तव्य है कि गान्धी जी की शिक्षा को ग्रहण करते हुए वे स्वच्छ रहना सीखें, शिक्षा को अपनायें और किसी भी प्रकार के हीन भाव को अपने पास न आने दें। हमारे देश ने जो संविधान स्वीकार किया है और जिसके अनुसार देश के राजकाज आदि का काम चलेगा, उसमें यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि प्रत्येक भारतीय एक समान है। यहाँ कोई छोटा और बड़ा नहीं, सभी एक जैसे हैं और जीवन में आगे बढ़ने का सभी को एक जैसा अवसर मिलना चाहिए।

आज की स्थिति को देखते हुए केवल ऐसा कह देने से ही काम नहीं चलेगा, इसलिए संविधान में इस बात की भी व्यवस्था कर दी गयी है कि सभी लोगों के एक स्तर पर आ जाने तक पिछड़ी हुई जातियों और हरिजनों को आगे बढ़ने की विशेष सुविधाएँ दी जायें। मुझे पूरी आशा है कि सदियों की पराधीनता के बाद हमारे देश में जो स्वतन्त्रता का सूर्य उदय हुआ है उसकी रुपहली किरणों से देश का कोना-कोना आलोकित होगा और उसके प्रकाश में किसी भी प्रकार के धर्म, जन्म, जाति आदि के भेदभाव के बिना भारत का प्रत्येक नर और नारी नयी प्रेरणा और नया जीवन पा सकेगा।

इस केन्द्र में आप लोगों को जो सुविधाएँ दी जाएँगी उन्हें आप अपनी चहुँमुखी उन्नति का आधार बना सकते हैं। बच्चों के लिए शिक्षा तथा खेलकूद का प्रबन्ध होगा, रोगियों के स्वास्थ्य-लाभ के लिए अस्पताल होगा और सभी वयस्कों के मेल-मिलाप और मनोरंजन के हेतु अच्छी व्यवस्था रहेगी। इसके अतिरिक्त खाली समय का सदुपयोग करने के लिए और आपके समाज की आर्थिक उन्नति के लिए घरेलू उद्योगों की शिक्षा का भी प्रबन्ध होगा। इन सब सुविधाओं से पूरा-पूरा लाभ उठाना आप लोगों का काम है। आपके लिए अपने जीवन को सुखी बनाने और एक सच्चे नागरिक बनने का यह सुवर्ण अवसर है।

जैसा मैंने अभी कहा, देश भर में यह अपने प्रकार का पहला केन्द्र है। आशा है कि इसी प्रकार के और भी बहुत से केन्द्र दूसरे स्थानों में खोले जाएँगे। परन्तु आप इस बात को न भूलिये कि आपका केन्द्र एक प्रकार का परीक्षण है जिसकी सफलता अथवा असफलता का प्रभाव इस सारी योजना पर पड़ेगा। इसलिए आप लोगों पर भारी उत्तर-

दायित्व आता है कि आप इसे सफल बनायें जिससे आप लोगों को भी लाभ पहुंचे और अधिकारियों को भी यथेष्ट प्रोत्साहन मिले। मुझे आशा है कि आप लोग इस उत्तरदायित्व को समझेंगे ही नहीं बल्कि पूरी तरह से निभाएँगे भी।

इस केन्द्र का उद्घाटन करने से पहले मैं आप सबको बधाई देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि बापू की अमर वाणी से, जिसे दिन-प्रति-दिन सुनने का आप लोगों का सौभाग्य रहा है, प्ररणा लेकर आप अपने जीवन को उन्नत करेंगे और इस प्रकार समाज-सुधार तथा हरिजन-उद्धार का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस शुभ कार्य में मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आप लोगों के साथ हैं।

कानूनों पर ही आश्रित न रहें

बहुत दिनों के बाद इस क्षेत्र में इतने लोगों से और ऐसी सभा में जहाँ सभी राज्यों के लोग आये हुए हैं, आज मुझे दो शब्द कहने का अवसर मिला है। इस प्रकार की सभाओं में बोलने का अभ्यास कई वर्षों से बिलकुल छूट गया है और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं आजकल जो सभी स्थानों में कहा करता हूँ वह कहूँ या जिस प्रकार की बातें पहले कहा करता था उस प्रकार की बातें कहूँ। उन दिनों के और आज के कहने के ढंग में तथा और विषयों में भी बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है यद्यपि मौलिक विचारों में कोई अन्तर नहीं है।

मैं यह मानता हूँ कि अब जबकि इस देश के राजकाज का अधिकार लोगों के अपने हाथों में आ गया है तो हमको उस अधिकार को समझकर बरतना है और जब मुझ से कहीं यह शिकायत की जाती है कि आज की सरकार यह नहीं करती अथवा वह नहीं करती, तो मैं लोगों से यही कहा करता हूँ कि जिस देश के लोग जैसे होते हैं वहाँ के लोगों की यदि अपनी सरकार हो तो वह सरकार भी उन लोगों जैसी होगी, और यदि सरकार में कोई दोष है तो जिन लोगों ने उस सरकार को बनाया है, शायद उन्हीं लोगों में दोष होगा जो सरकार के कामों में प्रतिबिम्बित होता है। मैं जब यह कहता हूँ तो बहुधा लोग यह भी कह बैठते हैं कि यह सब सरकार की गलती को छिपाने और उसका दोष लोगों के सिर मढ़ने का एक उपाय है। बात भी कुछ हद तक ठीक है। परन्तु साथ ही हमको यह भी मानना होगा कि यहाँ लोकतन्त्र है और अपना शासक चुनने का अधिकार जनता के हाथ में है। वह यदि उस अधिकार को भली प्रकार काम में लायेगी, तो कोई भी सरकार उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम अधिक दिनों तक नहीं कर सकती। लोकतन्त्र की अपनी यह

विनोबा जी की प्रार्थनासभा (बोधगया) में भाषण, २० अप्रैल, १९५४

विशेषता है कि यदि वह ठीक प्रकार से चलाया जाये तो वह जनता की अभिलाषाओं को प्रतिबिम्बित कर सकता है।

इस देश में बहुत दिनों के बाद या यदि यह कहा जाये कि यह प्रणाली पहली बार चालू हुई है तो वह भी गलत नहीं होगा क्योंकि हमारे पुराने गणराज्य आज के गणराज्य की तुलना में बहुत छोटे थे। उनका विस्तार बहुत कम था और लोगों पर दूर तक प्रभाव भी नहीं पड़ता था। उस समय का समाज भी दूसरे प्रकार का था। उस समय के साधन आज के दूसरे प्रकार के साधनों की तुलना में बहुत ही पिछड़े हुए थे। आज का भारत गणराज्य संसार का सबसे बड़ा गणराज्य है और यह प्रयोग बहुत बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इसलिए इसमें भूलें हो सकती हैं और ऐसे दोष भी देखने में आ सकते हैं जिनको दूर करना आवश्यक है। आज के जो झगड़े हैं, मैं एक प्रकार से उनमें तटस्थ रहा हूँ। लोगों ने चुनकर मुझे एक पद पर बैठा दिया है। उस पद पर रहते समय मेरा यह धर्म है कि मैं अपने को दलगत राजनीति से तटस्थ रखूँ। इसलिए एक तटस्थ व्यक्ति के रूप में मैं जो कुछ देखता और सुनता हूँ वह आपको बता देना चाहता हूँ।

यह शुभ चिन्ह है कि बहुत से झगड़े रहते हुए भी हमारे देश में चुनाव का काम एक प्रकार से निर्विघ्न हुआ। चुनावकाल में इस प्रकार की कोई अशान्ति देखने में नहीं आयी जिससे हमको गणराज्य से निराशा हो। पिछले ५-६ वर्षों में जो काम हुआ है उस पर यदि दृष्टि-पात किया जाये तो मालूम होगा कि बहुत-सी ऐसी कठिनाइयों के रहते हुए भी जो हमको गिरा सकती थीं, हमने अपने को किसी प्रकार से खड़ा रखा है और देश पीछे नहीं गया बल्कि कुछ आगे ही बढ़ा है। इससे आशा होती है कि इस गणराज्य की शैशवावस्था समाप्त होने और अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् देश का काम और भी अच्छा होगा।

गणराज्य के संविधान के अनुसार हमने जो काम किया है वह तो एक नकली चीज है। नकली इस अर्थ में कि हमने दूसरे देशों के अनुभव के आधार पर ही अपने लिए उस संविधान को मान लिया है क्योंकि हमारी शिक्षा-दीक्षा उसी प्रकार के विचारों में हुई है। हमने जो कुछ सीखा उसी प्रकार के ग्रन्थों या शिक्षकों से सीखा तो हम शायद इसके अति-रिक्त दूसरा संविधान बना भी नहीं सकते थे। परन्तु मैं यह मानता हूँ कि उसमें भी उतनी ही शक्ति है कि यदि हम चाहें तो उस संविधान को सर्वोदय की ओर मोड़ा जा सकता है।

आज मैंने सुना कि हम शासनमुक्त होना चाहते हैं। मेरा भी यही विचार है। आज सभी देशों में ऐसा प्रयत्न चल रहा है कि शासनतन्त्र का अधिक से अधिक विस्तार किया जाये और जहाँ तक हो सके सभी चीजों को उसके अधीन कर लिया जाये। हम जिन देशों को अधिनायकवादी कह कर कलंकित करते हैं उनके सम्बन्ध में तो यह निश्चित है ही कि प्रशासन मानव जीवन के हर पहलू पर उसी प्रकार अपना आधिपत्य रखना चाहता है जिस प्रकार एक व्यक्ति किसी यन्त्र को चलाते समय उसके हर पुर्जे पर अपना नियन्त्रण रखता है। परन्तु जो देश इस नीति को स्वीकार नहीं करते आज उनका भी झुकाव इसी ओर है। वे चाहते हैं कि शासनाधिकार अधिक विस्तृत हो जिससे मनुष्य के जीवन पर अधिक से अधिक नियन्त्रण रखा जा सके। इस देश में भी हम इस चीज को देख रहे हैं।

मनुष्य पर शासनाधिकार बढ़ता जा रहा है। इसका प्रमाण यह है कि आजकल राज्यीय विधानमण्डलों और केन्द्रीय संसद् में कानून दिन-प्रति-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं और इसका पता नहीं कि कानून कहाँ तक बनेंगे। विधानमण्डलों के सदस्यों, शासकवर्ग तथा बहुतेरे लोगों का यह विश्वास है कि कानून बना देने से ही सब काम पूरे हो जाएँगे। दहेज प्रथा तथा जमीन्दारी उन्मूलन और अस्पृश्यता निवारण जैसे सभी मामों के लिए आज कानून बनाने पर ही अधिक जोर दिया जाता है। जहाँ कारखाने हैं वहाँ कारखाने के मालिकों तथा मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध सुधारने के लिए भी कानून आवश्यक समझे जाते हैं। यहीं तक नहीं बीमारी से बचने के लिए भी लोगों को कानून द्वारा बाध्य किया जाने लगा है और अभी न मालूम हम कितनी ऐसी चीजों को कानून के द्वारा ठीक करना चाहेंगे।

यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि जो लोग शासन से मुक्ति चाहते हैं वे ही शासन के क्षेत्र को बढ़ाने में लगे हैं। यह बात हमारे देश में ही नहीं बल्कि सभी स्थानों पर फैलती जा रही है। शासक चाहे देशी हों या विदेशी, हैं तो वे शासक ही और शेष लोग शासित। इस प्रकार शासक और शासित का भेदभाव तो बना ही रहेगा। बहुत सी तो ऐसी चीजें हैं जिन पर शासन का अधिकार होना ही चाहिए और कुछ चीजें ऐसी हैं जिनको हम स्वयमेव अपने ऊपर लाद रहे हैं। अन्य देशों के लोगों में भी शासन-मुक्ति के विचार पैदा हो रहे हैं। किसी दार्शनिक ने कहा है कि सबसे अच्छा शासन वही है जिसमें मनुष्य पर कम से कम नियन्त्रण होता है। परन्तु आज सभी देशों में सरकार के अधिकारों को बढ़ाने और व्यक्तियों के स्वतन्त्र विचारों को एक-से ही ढांचे में ढालने की बात आवश्यक समझी जाने लगी है।

हम इस देश को यदि इससे बचाना और इसे सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं तो एक ही उपाय हो सकता है और वह है व्यक्ति का अपने ऊपर शासन। कोई समाज बिना शासन के तो चल नहीं सकता। किसी न किसी प्रकार का शासन तो चाहिए ही। प्रश्न इतना ही रहता है कि वह शासन दूसरे का हो या अपना। दूसरे का शासन तभी हटेगा जब अपना शासन भलीभाँति चलने लगेगा। यह चीज केवल देशी या विदेशी सरकार की ही नहीं है। यह तो व्यक्ति और समूह की बात है कि व्यक्ति पर किसी दूसरे व्यक्ति का अथवा समूह का शासन होना चाहिए या नहीं।

मैंने सुना कि आज आप अपना जीवन-दान दे रहे हैं। इस कार्य के लिए आप अशासित और दूषित जीवन नहीं दें बल्कि अधिक से अधिक शासित और स्वस्थ जीवन दें। सच्चा गणराज्य वही होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध, सुशिक्षित और स्वस्थ होकर अपने को ऐसा शासित रखेगा कि उसको दूसरे के शासन की आवश्यकता ही न पड़े और यदि ऐसा हो जाये तो पृथ्वी पर स्वर्ग आ जाएगा। पृथ्वी पर स्वर्ग लाना कुछ सरल काम नहीं है। इसलिए उसके लिए बहुत तपस्या की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का दोष न देखकर स्वयं अपने ही दोषपर विचार करेगा कि जिस कारण उसका अपना बिगाड़ हो रहा है उसमें कितना दोष उसका है। जब हम यह सोचेंगे तो हम दूसरे पर दोष

हरिद्वार में गंगा नहर शताब्दी महोत्सव का उद्घाटन करते हुए

नयी दिल्ली स्थित तालकटोरा उद्यान में भारत कृषक समाज के द्वितीय वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुए

ाष्ट्रपति भवन में श्री जवाहरलाल नेहरू को भारत-रत्न के सम्मान से विभूषित करते हुए

लगाने का साहस ही नहीं कर सकेंगे। हम दूसरे के दोष को तो देखने लगते हैं पर अपने दोष को भूल जाते हैं।

मनुष्य यदि सचाई से अपना जीवन व्यतीत करे तो वह अपने दोष को सबसे अधिक समझ सकता है क्योंकि उसके अन्तर में दूसरा कोई व्यक्ति उतने हद तक नहीं पहुँच सकता जितना कि वह स्वयं। यदि दोष देखना है तो सबसे पहले अपना ही दोष देखना चाहिए और अपने दोष का पता लगाना सरल भी होता है। परन्तु हमारा कुछ ऐसा स्वभाव ही हो गया है कि हम दूसरे के दोष को देखने में तो लग जाते हैं पर जो सरल काम है उसे नहीं करते अर्थात् अपने दोषों की ओर ध्यान नहीं जाता। किसी भी देश की सरकार के प्रतिनिधि ठीक वैसे ही होंगे जैसी वहाँ की जनता होगी। यदि हम देश की सरकार के चुने हुए प्रतिनिधियों को सुधारना चाहते हैं तो सबसे पहले हम अपने को सुधारें। जब हम इस प्रकार से चलेंगे तभी हमारा गणराज्य भी सुचारु रूप से चल सकेगा।

अन्धकार से प्रकाश की ओर

मैं गत वर्ष भी सर्वोदय सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था और इस बार भी मैं यहाँ आ सका, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। यह काम पिछले तीन वर्षों से अथवा उससे कुछ अधिक समय पूर्व से आरम्भ हुआ है। मैं आजकल एक ऐसे स्थान पर रहता हूँ और एक ऐसे वातावरण में काम कर रहा हूँ जो यहाँ के वातावरण से बहुत-कुछ भिन्न है।

मुझे जब कभी अवसर मिलता है तो मैं यहाँ आकर कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता हूँ। इसी विचार से अधिक नहीं तो वर्ष में कुछ समय के लिए यहाँ आ जाता हूँ और इस वातावरण से काफी दूर रहते हुए भी जो कुछ हो रहा है उसको देख लेता हूँ। पर मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं उसको भलीभाँति देख पाता हूँ क्योंकि जैसा मैंने कहा, एक प्रकार से मैं अपने को इससे अलग ही मानता हूँ। जब मैं इस प्रकार के कार्यों में रचनात्मक रूप से भाग नहीं लेता तो इससे अधिक दावा करना भी गलत है।

आज से तीन वर्ष पूर्व मेरे मस्तिष्क और हृदय पर एक प्रकार का अन्धकार-सा छाया हुआ था। यह बात भलीभाँति समझ में नहीं आती थी कि हम किस ओर जा रहे हैं और हम कहाँ पहुँचेंगे। मैं देखता था कि हम लोगों के और विशेषकर ऐसे लोगों के हृदयों में जिनको पूज्य महात्मा जी के चरणों में रहने का तथा उनके साथ काम करने का थोड़ा-सा भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था, बहुत-सी चीजें खटकती रहती थीं। हम लोगों की

सर्वोदय सम्मेलन (बोधगया) में भाषण, २० अप्रैल, १९५४

इच्छा एक ओर जाने की होती थी पर जो कुछ काम हम करते थे वह विपरीत ही मालूम होता था। हमें जिधर जाना चाहिए था, हम उसकी विपरीत दिशा में ही जा रहे थे, परन्तु सोचते यह थे कि हम ठीक दिशा पर ही चल रहे हैं। उस समय हमारी मानसिक स्थिति इसी प्रकार की थी।

उन्हीं दिनों मैंने मनोस्थिति पर एक लेख भी लिखा था जो अब तक प्रकाशित नहीं हुआ और अब शायद होगा भी नहीं। मैंने उस लेख को अपने सन्तोष के लिए तथा विचारों को साफ करने के लिए लिखा था। अभी जब मैं शंकरराव देव जी का भाषण सुन रहा था तो उसमें 'असमंजस' शब्द आया और मैंने भी अपने लेख का शीर्षक असमंजस ही रखा था। परन्तु इन तीन वर्षों में जो बातें हुईं उनसे अब असमंजस कम मालूम होता है। अभी मैं यह नहीं कह सकता कि वह असमंजस दूर हो गया है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जो लोग सर्वोदय सम्मेलन में लगे हुए हैं उनका असमंजस दूर हो गया है। परन्तु मेरा अथवा दूसरे कामों में लगे हुए लोगों का भी असमंजस दूर हो गया है, यह कहना कठिन है।

कुछ दिन पहले दिल्ली में एक प्रदर्शनी हो रही थी। मैंने उसका भी निरीक्षण किया। एक वर्ष पहले यदि कोई मुझसे यह पूछता कि इस प्रकार की कोई चीज सफलतापूर्वक संगठित की जा सकती है या नहीं तो मैं कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकता था। परन्तु डेढ़ वर्ष के परिश्रम और लोगों की सहायता का यह फल हुआ कि वह काम अब सफलतापूर्वक हो रहा है। आज से डेढ़ साल पहले यदि आप मुझसे इन ग्रामोद्योगों और गृह उद्योगों के सम्बन्ध में लोगों के विचारों के सम्बन्ध में पूछते तो मैं यही कहता कि कुछ लोग तो इनको व्यर्थ की चीज समझते हैं और कुछ लोग यह मानते हैं कि क्योंकि इनको महात्मा गान्धी चलाते आये थे इसलिए किसी न किसी प्रकार उनको ढोना ही है। इन सब चीजों में संरक्षण की भावना तो देखने में आती थी पर लोगों में इस आन्दोलन के प्रति श्रद्धा और इसके प्रति सच्चा विश्वास दिखायी नहीं पड़ता था।

दिल्ली में हुई प्रदर्शनी के बाद और विशेषकर उसके सम्बन्ध में जो बातें श्री जेराजानी जी ने कहीं, उनसे अब मेरे विचार में वह स्थिति नहीं रही बल्कि अब अन्य बहुतेरे लोग भी जो पहले दूसरे विचार के थे इस चीज पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे हैं। वे किसी पर कृपा करने की दृष्टि से अथवा यह समझ कर नहीं कि इस कार्यक्रम को किसी भी प्रकार से प्रोत्साहन देना है, बल्कि श्रद्धापूर्वक करना चाहते हैं और करेंगे। उसके बाद जब मैं यहाँ आया तो यहाँ का वातावरण और भूदान यज्ञ के सम्बन्ध में आपने आज तक जो कुछ प्राप्त किया है और एक कदम और आगे बढ़कर आपने लोगों से जीवनदान देने के लिए संकल्प लेना आरम्भ किया है, यह सब कुछ देखकर मेरी धारणा और भी दृढ़ हो गयी है। अब मैं इतना कह सकता हूँ कि मेरा 'असमंजस' कम हो गया है और मैं आशा करता हूँ कि यदि इसी प्रकार काम चला तो वह 'असमंजस' दूसरों के हृदयों में भी दिन-प्रति-दिन घटता ही जाएगा।

हमें, विशेषकर उन लोगों को जो महात्मा गान्धी के कार्यक्रमों में विश्वास करते हैं यह विचार करना है कि आज पूज्य विनोबा जी जिस कार्य को मूर्त रूप देकर चला रहे हैं

वह क्या चीज है। यदि हम उनके कार्यक्रम का आंशिक रूप से अनुसरण करें तो वह काम पूरा नहीं होगा। प्रत्येक चीज का पूरा चित्र होता है। यदि हम पूरे चित्र में से किसी अंग को विकृत कर दें तो वह चित्र पूरा नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी तो वह चित्र, चित्र ही नहीं रह जाता। शरीर में अनेक अंग होते हैं और सभी को मिलाकर शरीर बनता है। यदि उनमें परस्पर विरोध रहे अथवा हम किसी को महत्त्व दें और दूसरों को नहीं, तब पूरा शरीर नहीं बन सकता। अब तक जितने लोग महात्मा जी के कार्यक्रम को मानने वाले समझे जाते रहे हैं, मेरा विचार है कि वे कुछ रूढ़िवादी थे और वे एक-एक विषय को लेकर एक-एक चीज पर ही जोर देते थे। इस कारण मेरा असमंजस और अधिक दृढ़ होता जाता था। मैं सर्वोदय सम्मेलन की बात नहीं कर रहा हूँ। अब लोगों का सर्वोदय सम्मेलन के बाहर भी ध्यान जाने लगा है। यदि कुछ थोड़े से लोग भी इस कार्यक्रम को मूर्त रूप देने लगें तो मैं समझूँगा कि उनके कार्यक्रम का ठीक रूप से अनुसरण किया जा रहा है और असमंजस दूर हो गया है। अब मालूम होता है कि हम लोग उस ओर जा रहे हैं। दो वर्ष पहले यह बात नहीं थी।

आपने अपने प्रस्ताव में संसार का उल्लेख किया है। आजकल संसार जिधर जा रहा है वह तो सब लोगों को भलीभाँति मालूम ही है और जो लोग उसमें सबसे आगे बढ़े हुए है उन लोगों ने भी इस पर विचार करना आरम्भ कर दिया है कि इसका अन्त क्या होने वाला है। हम जिस मार्ग से चल रहे हैं उसका अन्त विनाश ही है, तो फिर उस पर चलने से क्या लाभ। जो चीजें हमारे सामने आदर्श-रूप में आया करती थीं उनके प्रति अब शंका और सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए आज की स्थिति में हमारे सामने यह माँग है कि जो चित्र महात्मा गान्धी जी ने प्रस्तुत किया था और जिसको आज पूज्य विनोबा जी पूरा कर रहे हैं उसको हमें केवल इसी देश के लिए नहीं वरन् औरों के लिए भी सामने रखना चाहिए। मैं तो यह भी मानता हूँ कि यदि हम इस काम में अपने देश में सफल हो गये तो स्वयं इसमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाएगी कि यह औरों को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। यह कोई भौतिक शक्ति तो है नहीं कि जो अधिक तैयार कर सकेगा, वही जीतेगा। यह तो दूसरे प्रकार की शक्ति है और इसको हम इस देश में पैदा कर सकते हैं।

मुझे आशा है कि आपका काम काफी वेग के साथ आगे बढ़ेगा और जैसा अभी भाई शंकर राव जी ने बताया, यदि आप इसको गान्धी जी के सिद्धान्तों के अनुसार चलायें तो यह पूरी तरह से सफल हो सकता है। यदि इसकी नींव दृढ़ हो तो इसका परिणाम भी अच्छा होगा और उसका प्रभाव हम पर ही नहीं सारे संसार पर पड़ेगा। इसलिए इस देश के लोगों का अपने लिए और संसार के लिए यह एक बड़ा कर्त्तव्य हो जाता है और इसको ध्यान में रखकर काम को आगे बढ़ाना है।

खादी का भविष्य

डेढ़ वर्ष पूर्व जब मैं यहाँ आया था, तब मैंने आपसे कहा था कि जिस काम में आप लोग लगे हैं, उसे करते जायें। उस समय उसमें कोई ऐसी उत्साहवर्धक बात देखने में नहीं आ रही थी जिस पर अधिक भरोसा किया जाता। परन्तु यह विश्वास था कि एक समय आएगा जब लोगों का विचार और ध्यान इस काम की ओर जाएगा और वे इसके महत्त्व को समझ सकेंगे।

बहुत-सी बातों को देखकर मेरा अनुमान है कि अब विचारधारा कुछ बदल रही है और जिस काम को सेवाग्राम में आरम्भ किया गया था उसकी ओर अब लोगों का ध्यान अधिक जाने लगा है। इस सम्बन्ध में अभी अधिक कहना कठिन है परन्तु इतनी बात अवश्य है कि जो एक अन्धकार था उसके स्थान पर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश दीखने लगा है। बापू ने आरम्भ से ही खादी पर बल दिया और उन्होंने कहा था कि खादी सब ग्रामोद्योगों का केन्द्र है। नक्षत्र-मण्डल में जो स्थान चन्द्रमा और सूर्य का है, सभी छोटे-मोटे उद्योगों में वही स्थान खादी तथा चर्खे का है। आज से दो-तीन वर्ष पूर्व, खादी का क्या होगा अथवा खादी बढ़ेगी या नहीं, इस प्रकार के अनेक विचार और दुविधाएँ मन में आती थीं। इसका कारण यह था कि भारत में केवल केन्द्र में ही नहीं वरन् सभी राज्यों में राजकाज का कार्य वे ही लोग संभाले हुए हैं जो बापू के साथ रह चुके थे और उनके कार्यक्रम को कुछ न कुछ जानते हैं। उनसे आशा की जाती थी कि वे इन चीजों को ध्यान में रखेंगे और उनको सभी प्रकार से प्रोत्साहन देंगे, परन्तु कई वर्षों तक उन्होंने कोई ऐसा कदम नहीं उठाया जिससे यह आशा हो कि इस सम्बन्ध में कुछ विशेष काम हो रहा है। और न जन-साधारण में भी ऐसी कोई धारणा या भावना दिखायी देती थी।

इधर साल-डेढ़ साल से इस स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है और खादी के लिए पहले जहाँ एक प्रकार की उपेक्षा थी उसके स्थान पर आज कुछ अच्छे विचार और सद्-भावना देखने में आ रही है। उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि अब लोगों का खादी की उपयोगिता के प्रति विश्वास बढ़ने लगा है। इससे मैं समझता हूँ कि खादी के लिए मार्ग प्रशस्त हो रहा है। भारत सरकार भी जोर लगा कर सब कुछ कर रही है।

सेवाग्राम (वर्धा) में आश्रमवासियों के सम्मुख प्रवचन, २५ अप्रैल, १९५४

पंचवर्षीय योजना में भी ग्रामोद्योगों का थोड़ा-बहुत उल्लेख है। सरकार इस कार्य को ऐसा रूप देना चाहती है जिससे लोगों में भी इसके प्रति आस्था बढ़े। सरकार इसमें धन से सहायता कर रही है। सरकार खादी बनवाने में, उसके प्रचार में तथा लोगों को शिक्षा देकर खादी के लिए तैयार करने में भी सहायता दे रही है।

इससे पूर्व भारत सरकार यह नहीं जानती थी कि खादी उसकी आवश्यकता के अनुरूप बन भी सकेगी या नहीं क्योंकि उसे बहुत अधिक कपड़े की आवश्यकता होती है। वह नहीं जानती थी कि चर्खा संघ इतना बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले सकता है। चर्खा संघ ने तथा खादी में रुचि लेने वाले अन्य लोगों ने जब इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान दिया कि पाँच वर्षों में आवश्यकता के अनुकूल खादी तैयार की जा सकेगी तो उसको मालूम हो गया। उस समय मैंने श्री जेराजानी भाई से कहा कि दिल्ली में खादी की एक अच्छी प्रदर्शनी की जानी चाहिए जिससे सब लोग खादी को देख सकें और समझ सकें कि उसमें क्या है। लोगों को खादी के सम्बन्ध में इतनी कम जानकारी है कि वे उस सम्बन्ध में कभी सोच भी नहीं पाते। वहाँ जब ऐसी बात चल रही थी, उस समय एक सरकारी अधिकारी ने, जो एक बड़े पद पर हैं, कहा कि आप खादी की बातें तो कर रहे हैं परन्तु यदि हमको खादी पहननी पड़े तो क्या आप उतनी खादी दे सकेंगे ? पीछे जब उन्होंने खादी भण्डार में जाकर देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने खादी लेना आरम्भ कर दिया। प्रदर्शनी से लोगों को और भी प्रसन्नता हुई और उन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। जो लोग पहले खादी को जानते ही नहीं थे या जो समझते थे कि खादी चल ही नहीं सकती और लोग केवल गान्धी जी के एक विचार के नाते उसको ढो रहे हैं, उनका भी अब यह कहना है कि उसमें कुछ तथ्य है और उससे काम चल सकता है। दूसरी ओर विनोबा जी के काम का भी काफी प्रभाव पड़ा है।

तालीमी संघ की बात कुछ दूसरी प्रकार की रही है, परन्तु मैं समझता हूँ कि इसमें भी कुछ उन्नति हुई है। १९३७ में जब प्रान्तों में पहले-पहल कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई उस समय यहाँ बापू ने एक सम्मेलन बुलाया था। उसमें बहुत से शिक्षा-शास्त्री आये थे जिनमें मन्त्री तथा शिक्षा विभाग के अधिकारी भी थे। वहाँ जब बातें हुईं तो मालूम हुआ कि यह विचार केवल बापू जी का ही नहीं है बल्कि पश्चिम के और विशेषकर अमेरिका के शिक्षा-शास्त्रियों का भी ऐसा ही विचार है। हम लोगों में से जिनको इसका ज्ञान नहीं था उनको भी इस सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय हो गया। काम आरम्भ हुआ, परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ ही समय पश्चात् कांग्रेस मन्त्रिमण्डल भंग हो गये। इसलिए जो थोड़ा-बहुत काम आरम्भ हुआ था वह वहीं का वहीं रह गया।

विभिन्न प्रान्तों के शिक्षा-शास्त्रियों ने बुनियादी शिक्षा को अपने-अपने विचार के अनुसार अलग-अलग रूप दे दिया और बुनियादी शिक्षा जैसी बापू जी चाहते थे वैसी नहीं रही। बिहार में वह कार्य एक दूसरे ढंग से ही आरम्भ हुआ। उन्होंने आरम्भ में काफी काम नहीं फैलाया क्योंकि उसके लिए शिक्षकों की आवश्यकता थी और जब तक अच्छे शिक्षक तैयार नहीं हो जाते तब तक उसमें सफलता नहीं मिल सकती

थी। उन्होंने ३०-४० विद्यालय खोले और काम इतनी अच्छी तरह से आरम्भ किया कि जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल टूट गया और परामर्शदाताओं ने राजकाज संभाला तो उन्होंने भी उस काम को पसन्द किया और उसको जारी रखा। ७ वर्ष का परीक्षणात्मक काम पूरा हुआ और उसका परिणाम भी उत्साहवर्द्धक रहा। काफी कठिनाइयाँ होते हुए भी वहाँ बहुत सफलता मिली। बुनियादी स्कूलों से जो बच्चे शिक्षा प्राप्त करके निकले, वे अच्छे निकले और अन्य बच्चों में भी उत्साह बढ़ा। स्कूलों में जो व्यय हुआ उसका ६० प्रतिशत बच्चों ने अपने उत्पादक काम की आय से पूरा कर दिखाया।

इस प्रकार बापू का वह विचार कि विद्यार्थियों के काम से ही उनकी शिक्षा का व्यय निकल सकता है, सार्थक सिद्ध हुआ। बापू ने यह योजना इसलिए निकाली थी कि भारतवर्ष जैसे गरीब देश में यदि प्राथमिक शिक्षा का भी प्रसार किया जाये तो काफी व्यय करने की आवश्यकता होगी। १६१५ में जब श्री गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विचार रखा तो उसी समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इतना धन कहाँ से आएगा। पीछे इस ओर बापू ने ध्यान दिया और मार्गदर्शन किया पर शिक्षा-शास्त्रियों ने इस पर विश्वास नहीं किया और दुर्भाग्यवश आज तक उनका विचार पूर्ण रूप से बदला नहीं है। अभी भी वे यही समझते हैं कि इस प्रकार की शिक्षा है तो अच्छी, पर इसमें व्यय अधिक है। इसीलिए यह काम आगे नहीं बढ़ा। परन्तु इधर कुछ समय पूर्व से लोगों के विचारों में परिवर्तन हुआ है और हमारे केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री तथा उनके मन्त्रालय ने भी यह बात स्वीकार कर ली है कि सारे देश में बुनियादी शिक्षा का ही प्रसार होना चाहिए।

इस समय सबसे भारी समस्या बेकारी की समस्या है। लाखों-करोड़ों लोग बेरोजगार हैं। साधारणतया लोग कह देते हैं कि कारखाने खोले जायें जिससे काफी लोगों को उसमें काम दिया जा सके और इस प्रकार बेकारी की समस्या दूर हो जाएगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि वहाँ कुछ ही हजार व्यक्ति हाथ से काम करने वाले लाखों व्यक्तियों के बराबर काम करने लगेंगे और इस प्रकार समस्या का कोई उचित समाधान नहीं होगा। आपने सर्वेक्षण का जो कार्य किया, उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता है। मैं भी समझता हूँ कि गाँव के लोगों में पूरी बेकारी नहीं है। पूरी बेकारी पढ़े-लिखे लोगों में है जो नौकरी के अतिरिक्त और कोई दूसरा काम नहीं करना चाहते। पढ़ने-लिखने के बाद वे उस काम को या तो कर नहीं सकते या करना नहीं चाहते। जो उनके बाप-दादा करते थे गाँव में जो लोग बेकार हैं, वे पूरे बेकार नहीं हैं। उनकी बेकारी अर्ध-बेकारी है। कृषि प्रधान देश में ऐसा ही होता है। खेती का काम इस प्रकार का होता है कि कुछ आज करना पड़ा तो कुछ पाँच दिन के बाद। बीच में वे लोग बेकार रह गये। वे गाँव छोड़कर बाहर जा नहीं सकते क्योंकि बीच-बीच में काम होता रहता है। उनको तो इस प्रकार का काम चाहिए जिसे वे गाँव में ही बैठकर कर सकें। लोगों के सामने पढ़े-लिखे लोगों की बेकारी की बात आयी है और उस पर विचार भी किया जा रहा है। गाँवों की आंशिक बेकारी के लिए तो ग्रामोद्योगों को छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं।

इसलिए उस समय मैंने आपसे कहा था कि आप लोग जो काम कर रहे हैं उसे करते जाइये। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आज मैं कह सकता हूँ कि अब थोड़ा-बहुत प्रकाश दिखायी पड़ने लगा है। इस काम को आप लोग कई वर्षों से करते आये हैं। दूसरों ने नहीं किया है। यदि हम अपनी त्रुटियों को दूर करते जायें तो मैं समझता हूँ कि काम आगे बढ़ेगा और तेजी से बढ़ेगा। यह समय दो विचारधाराओं के संघर्ष का समय है और ऐसे समय में कठिनाइयों का होना भी स्वाभाविक ही है। आपका प्रबन्ध सुन्दर होना चाहिए और मैं आशा करता हूँ कि आपका मार्ग प्रशस्त होता जाएगा। अभी तो आरम्भ ही है। इसको बढ़ाने के लिए आप में उत्साह होना चाहिए। महात्मा गान्धी रचनात्मक कार्यों के द्वारा ही बेकारी दूर करना तथा नये समाज का संगठन करना चाहते थे। हमें उसे पूरा करना है। यह काम जैसे-जैसे बढ़ेगा लोगों का ध्यान उधर जाएगा। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ? मेरी कामना है कि आपका काम दिन-प्रति-दिन फलता-फूलता रहे और आप अपने उद्देश्य में सफल हों।

ग्रामोद्योगों का विकास

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपके सौजन्य से मुझे खादी और ग्रामोद्योगों के बारे में कुछ कहने का अवसर मिल रहा है। ऐसे अवसरों का मैं स्वागत करता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि हमारे देश की जैसी आर्थिक व्यवस्था है और उद्योगों सम्बन्धी जैसी रूपरेखा यहाँ सदियों से चली आ रही है, उसे देखते हुए हमारे जीवन में इन छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों का बहुत अधिक महत्त्व है।

हम लोगों में यदि ऐसी धारणा न होती कि आधुनिक युग में भौतिक प्रगति का प्रतीक औद्योगीकरण ही है, घरेलू उद्योगों के लिए स्थान नहीं तो इस बात को इतना जोर देकर बताने की आवश्यकता न पड़ती। यह धारणा भ्रमपूर्ण और निराधार है। यह स्पष्ट है कि भारत जैसे देश में जहाँ ८० प्रतिशत लोग गाँवों में बसते हैं और ७० प्रतिशत से अधिक जीवन निर्वाह के लिए खेती और खेती से सम्बन्ध रखने वाले धन्धों पर ही निर्भर करते हैं। औद्योगीकरण बेकारी की समस्या को हल करने की अपेक्षा अधिक जटिल बना देता है। इसका प्रमाण यह है कि इस देश में औद्योगीकरण यद्यपि तेजी से किया जा रहा है और आज हम बहुत-सी चीजों में स्वावलम्बी हो चुके हैं तो भी हमारी

अखिल भारतीय खादी तथा ग्रामोद्योग मण्डल द्वारा आयोजित सम्मेलन (पूना) में भाषण, १७ नवम्बर, १९५४

बेकारी की समस्या हल नहीं हुई बल्कि बढ़ती हुई दीखती है।

ऐसे देश में छोटे-छोटे उद्योगों का और विशेषकर ऐसे उद्योगों का जो सरलता से घरों में और दूसरे धन्धों के साथ किये जा सकते हैं, एक विशेष महत्त्व है। यदि हम इस तथ्य को समझे बिना अपनी सारी शक्ति औद्योगीकरण में ही लगाने का निश्चय करें और यह आशा करें कि इससे बेकारी की समस्या हल हो जाएगी तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में हमें निराश होना पड़ेगा। जब तक बेकारी दूर नहीं होगी तब तक गरीबी भी दूर नहीं हो सकती क्योंकि देश में चाहे जितना भी धन हो वह उन्हीं लोगों में बँट सकता है जो धन्धा करते हैं न कि उन लोगों में जो बेकार हैं। और यदि कोई गरीब हैं तो वे बेकार अथवा अर्ध-बेकार लोग ही हैं। इसलिए देश की सम्पन्नता और ग्रामीण जनता के हित में इस भ्रम का निराकरण करना आवश्यक है और ग्रामोद्योगों की उन्नति करने के हेतु भरसक प्रयत्न किये जाने चाहिएँ।

इस दिशा में इन दिनों जो सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया है, वह है भारत सरकार द्वारा खादी और ग्रामोद्योग मण्डल की स्थापना। सरकार ने इस मण्डल को स्थापित करके ग्रामोद्योगों के महत्त्व को ही स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्हें मान्यता देकर उन उद्योगों को उन्नत करने का दायित्व अपने ऊपर लिया है। जहाँ तक नीति-निर्धारण का प्रश्न है, यह मान लिया गया है कि देश के सामाजिक और आर्थिक आयोजन में ग्रामोद्योगों को स्थान मिलना चाहिए और इसके लिए सरकार यथासम्भव साधन जुटाने की भी व्यवस्था कर रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में मैं अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं समझता। आप लोग तो जानते ही हैं कि खादी और दूसरे घरेलू उद्योगों को उन्नत करने के सम्बन्ध में सरकार ने इस योजना में अपना उद्देश्य स्पष्ट और असन्दिग्ध शब्दों में व्यक्त कर दिया है। जहाँ तक दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रश्न है, सरकार उसकी रूपरेखा भी ग्रामोद्योगों के प्रतिनिधियों से बातचीत करने के बाद ही तैयार करना चाहती है। वास्तव में समस्या बड़े उद्योगों और ग्रामोद्योगों में सामंजस्य स्थापित करने की है। सभी उद्योगों का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और आर्थिक दृष्टि से देश को समृद्ध करना है। हमें देखना यह है कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारी उद्योगों और घरेलू धन्धों को देश के आर्थिक जीवन में क्या स्थान दिया जाये।

मैं मानता हूँ कि ग्रामोद्योग तभी पनप सकते हैं जब उनके लिए पूरी सुविधाएं हों और एक विशेष प्रकार का वातावरण पैदा किया जाये। जहाँ तक सुविधाओं का सम्बन्ध है, योजना आयोग और भारत सरकार ने यह सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया है कि इन उद्योगों को ऐसी सुविधाएँ दी जायें जिनसे खादी और दूसरे धन्धों को प्रोत्साहन मिले और साथ ही बड़े उद्योगों पर भी बुरा प्रभाव न पड़े। इसलिए मैं समझता हूँ कि हमारी समस्या ठीक प्रकार की सुविधाएँ सुझाने की है। प्रत्यक्ष सहायता के रूप में सरकार ने अभी तक जो कुछ किया है उससे खादी को कुछ न कुछ प्रोत्साहन मिला है। खादी के लिए एक क्षेत्र सुरक्षित कर देने के प्रश्न पर भी विचार किया गया है जिससे खादी और मिल के बने कपड़े के बीच प्रतिस्पर्धा न रहे। मैं समझता हूँ कि केवल खादी के लिए ही नहीं, दूसरे गृह-

उद्योग भी ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र सुरक्षित कर देने चाहिएँ और जिन वस्तुओं का उत्पादन केवल ग्रामोद्योगों द्वारा ही हो, उनके लिए हर प्रकार के बड़े कारखानों की स्थापना रोक दी जाये और यदि आवश्यक समझा जाये तो कानून का भी सहारा लिया जाये।

ग्रामोद्योगों को जब तक सरकार की ओर से प्रोत्साहन नहीं मिलेगा और बड़े-बड़े कारखानों के साथ उनकी प्रतिस्पर्धा होने दी जाएगी तब तक उनका पनपना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज तो उनको प्रोत्साहन मिलने की अपेक्षा बड़े-बड़े कारखानों को माल ढोने के लिए रेल-भाड़े की तथा अनेक प्रकार की दूसरी सुविधाएँ अधिक मिल रही हैं और ग्रामोद्योग एक-एक करके नष्ट होते जा रहे हैं। इस नीति में केवल परिवर्तन ही नहीं किया जाना चाहिए बल्कि इसको दूसरी ओर मोड़ देना चाहिए और छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ। उनके लिए केवल आर्थिक सहायता ही काफी नहीं है। मैं जानता हूँ कि सरकार ने बड़े-बड़े कारखानों की सहायता के लिए करोड़ों रुपयों की सहायता दी है अथवा उनको बचाने के लिए कर के रूप में जनता पर अर्बों का बोझ लादा है। उदाहरण के लिए चीनी को ही लीजिये। चीनी के कारखानों को विदेशी कारखानों से सफल प्रतिस्पर्धा करने के लिए जनता को न मालूम कितने करोड़ों रुपये देने पड़े हैं। इसी प्रकार विदेशी लोहे से भी सफल प्रतिस्पर्धा करने के लिए जनता को कितने ही वर्षों तक प्रति वर्ष करोड़ों रुपये देने पड़े हैं।

ग्रामोद्योगों से जब करोड़ों व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है और उनको रोजी मिलती है तो कोई कारण नहीं कि उनको उसी प्रकार की और उसी पैमाने पर सहायता क्यों न दी जाये। यह तर्क एक थोथा तर्क है कि जिस वस्तु को हम कारखानों में कम लागत पर पैदा कर सकते हैं उसको गृह-उद्योगों द्वारा पैदा करके मँहगी क्यों बनायें? यदि आप इस प्रकार इनको मँहगी बनाने से हिचकते हैं तो करोड़ों को बेरोजगार बना कर भूखों मरने का कारण पैदा कर देते हैं। इसलिए जब एक ओर बेकारी और भुखमरी है और दूसरी ओर कुछ वस्तुओं का मूल्य कुछ बढ़ जाना है तो किसी भी समझदार व्यक्ति के सामने यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि वह बेकारी और और भुखमरी को पसन्द करेगा अथवा मँहगाई को। इस विषय में उन क्षेत्रों का चुनाव करने में साहस से काम लेना चाहिए जिनमें उत्पादन का अधिकार केवल ग्रामोद्योगों को ही रहे और जिनमें कारखानों द्वारा तैयार किया गया माल न तो विदेश से आने पाये और न देश में ही पैदा होने दिया जाये। ग्रामोद्योगों का यही अर्थशास्त्र है। मुझे आशा है कि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि जनसाधारण के लिए छोटे उद्योग रोजगार का सबसे बड़ा सहारा हैं, अधिकारी-गण इन्हें पूरी सहायता देने में कोई कसर न उठा रखेंगे।

उद्योगों का एकमात्र लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि ही नहीं हो सकती। हमारा लक्ष्य जनसाधारण की सम्पन्नता और अधिक से अधिक लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था करने का होना चाहिए। यह सभी जानते हैं कि खादी और घरेलू धन्धों से लाखों व्यक्तियों का निर्वाह होता है। इसलिए छोटे उद्योगों को बनाये रखना और जहाँ तक हो सके इन्हें उन्नत करना हमारा सर्वप्रथम उद्देश्य होना चाहिए। मैं मानता हूँ कि भारी मशीनों के

उपयोग से उत्पादन में एकदम वृद्धि की जा सकती है, परन्तु यदि इस वृद्धि का अर्थ ग्रामोद्योगों का विनाश हुआ तो इससे हमें हानि ही होगी, लाभ नहीं। इस बात को सभी समझने लगे हैं और सरकार भी स्वीकार करती है। इसलिए हमें आशंकित होने की आवश्यकता नहीं।

यह समझ लेने के बाद कि सरकार की नीति ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने की है, हमें यह सोचना चाहिए कि हम आर्थिक और कला की दृष्टि से इन्हें किस प्रकार अधिक उन्नत कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में मैं आपको यह परामर्श दूंगा कि आप दूसरे देशों के उद्योगों का अध्ययन करें। अन्य देशों में घरेलू उद्योग-धन्धों को इतना विकसित कर लिया गया है कि वे अपने पाँव पर खड़े हैं। यह ठीक है कि इस प्रकार के भी धन्धे हो सकते हैं जिनमें बिजली की सहायता लेना लाभदायक हो। वह दिन दूर नहीं जब हमारे देश के बहुतेरे देहातों में बिजली मिलने लगेगी। हमारी जलविद्युत् योजनाएँ जैसे ही चालू होंगी, उन देहातों में बिजली की कमी नहीं रहेगी। बिजली की शक्ति से हम समय और श्रम, दोनों की बचत कर सकेंगे और इसके साथ ही चीज़ों की किस्म को भी पहले से अच्छा बना सकेंगे। हमें केवल यह ध्यान रखना पड़ेगा कि बिजली के प्रयोग से रोज़गारों में लगे लोगों की संख्या में कमी न आने पाये और उत्पादन में आवश्यकता से अधिक वृद्धि न हो जाये। हाथ की बनी चीज़ों में एक विशेष सौन्दर्य होता है और उनमें कला के दर्शन होते हैं। बिजली द्वारा कला पर आघात नहीं होना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए जहाँ भी आवश्यक हो ग्रामोद्योगों में बिजली का प्रयोग किया जा सकता है। हमारा अभिप्राय यह है कि हम लोग ग्रामोद्योगों को इतना ऊँचा उठा सकें और उनके उत्पादन के लिए ऐसी माँग पैदा कर सकें कि ये उद्योग जल्द से जल्द स्वावलम्बी बन सकें जिससे अधिकारियों द्वारा दी जाने वाली विशेष सुविधाओं और रियायतों के बिना भी ये धन्धे खड़े रह सकें। मेरा विश्वास है, आप लोग मुझसे सहमत होंगे कि खादी तथा ग्रामोद्योग मण्डल का यही लक्ष्य होना चाहिए।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप लोग उत्साह से काम कर रहे हैं और जैसा कि आपके वार्षिक विवरण से पता चलता है आपके मण्डल ने ग्रामोद्योगों का उत्पादन बढ़ाने और उन्हें अधिक लोकप्रिय बनाने में काफी प्रगति की है। आपको इस बात से प्रेरणा मिलनी चाहिए कि जिस काम में आप लगे हैं उसकी नींव सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और स्वावलम्बन हैं। इस दिशा में आप जितना भी आगे बढ़ते हैं उसी अनुपात से जनता को, विशेष रूप से देहात में रहने वाले लोगों को काम मिलता है और उनका निर्वाह होता है। आज जब कि बेरोज़गारी एक भयानक समस्या बनती दिखायी दे रही है, राष्ट्र के लिए लोगों को काम पर लगाने से बढ़कर अधिक हितकर और क्या हो सकता है। यह विश्वास आपका सहारा होना चाहिए और बापू की पुण्य स्मृति से आपको प्रेरणा मिलनी चाहिए। यद्यपि ग्रामोद्योग हमारे देश में सदियों से चले आ रहे थे, उन्हें राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था में स्थान देना और उनके प्रति जनसाधारण में आदर की भावना पैदा करना बापू का ही काम था। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि ग्रामोद्योगों का आधार भावुकता हो सकता है,

परन्तु फिर भी किसी भी सत्कार्य में जिसमें देश की भलाई हो भावुकता से यदि उत्साह श्रौर बल मिलता हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए। वास्तव में हमें यह समझ लेना चाहिए कि ग्रामोद्योगों के विकास का श्राधार श्रार्थिक ही हो सकता है।

सन्त विनोबा भावे

श्राज एक श्रत्यन्त शुभ दिन है। श्राज के दिन हमारे देश में सन्त विनोबा जैसे एक महापुरुष का जन्म हुश्रा। वह श्राज जिस काम में लगे हुए हैं उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन तुकड़ोजी महाराज श्रपने भजन में कर चुके हैं। थोड़े ही दिन हुए जब मैं उनसे मिला था। वह उड़ीसा के गाँवों में श्रौर विशेषकर कोरापुट जिले में जो एक बहुत ही पिछड़ा हुश्रा जिला समझा जाता है, भ्रमण कर रहे हैं श्रौर श्रभी कुछ दिन वहीं रहेंगे।

उनका कहना है कि वहाँ श्रब उन्हें लोगों को भूदान के लिए कहना नहीं पड़ता श्रौर न वे कुछ कहना चाहते हैं। वे भूदान से श्रागे बढ़कर ग्रामदान तक चले गये हैं श्रौर श्रब लोगों से ग्रामदान का श्राग्रह करते हैं। ग्रामदान का श्रर्थ उन्होंने यह बतलाया कि एक ग्राम में जितने लोग हों, सब मिल-जुल कर सारे गाँव की भूमि उनको दान में दे दें। उसमें जिनके पास कम श्रथवा श्रधिक भूमि है वे तो दे ही दें श्रौर जिनके पास भूमि नहीं है वे भी उसमें सम्मिलित हों क्योंकि भूमि गाँव के सभी लोगों में ही बाँट दी जाती है। उन्होंने बताया कि यह काम लोगों को ही सौंप दिया गया है श्रर्थात् वह श्रब भूमि लेते नहीं, बल्कि गाँव वालों को कह देते हैं कि जिस प्रकार वह चाहते हैं उस प्रकार भूमि परस्पर बाँट कर उन्हें केवल हिसाब बता दो। श्रब तक उनको चार सौ से श्रधिक ग्राम मिल चुके हैं। इन ग्रामों के सभी निवासियों ने मिल-जुल कर भूमि दान में दी श्रौर फिर परस्पर मिल-जुलकर बाँट ली।

सम्पत्तिदान के सम्बन्ध में भी वह कहते थे कि यदि वह लोगों से रुपये लेंगे तो हिसाब-किताब रखने के लिए उन्हें एक बड़ा दफ्तर खोलना पड़ेगा। इसलिए वह गाँवों में जाते हैं श्रौर जिस व्यक्ति से सम्पत्ति का दान मिलता है उससे कहते हैं कि वह उनकी श्रोर से थातीदार बनकर उस सम्पत्ति को श्रपने पास ही रखे श्रौर श्रपनी श्रोर से उसका उपयोग उस काम में करे जिसमें विनोबा जी स्वयं करते श्रौर उन्हें केवल हिसाब दे दे। इस प्रकार श्रब न तो उनको पैसे छूने की श्रावश्यकता पड़ेगी श्रौर न हिसाब रखने की,

श्राचार्य विनोबा भावे के जन्मदिन पर राजघाट (दिल्ली) की प्रार्थनासभा में भाषण, ११ सितम्बर, १९५५

और न किसी को यह कहने का अवसर मिलेगा कि उसने इतने रुपये दिये, उसका कैसे बँटवारा हुआ, क्या हिसाब रखा गया और उस धन से उन्होंने क्या किया ? जो व्यक्ति पैसे देते हैं वे स्वयं ही व्यय करते हैं परन्तु व्यय उसी प्रकार से करते हैं जिस प्रकार से विनोबा जी व्यय करते।

आप यह समझें कि जो बात गान्धी जी चाहते थे कि पूंजीपति धन का थातीदार बन कर अपना धन अपने पास रखे अर्थात् उसे अपना न समझ कर सारे देश का या मानवमात्र का समझे और उसे ऐसे काम में व्यय करे जिससे देश या समाज का लाभ हो, विनोबा जी उसी सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप दे रहे हैं। उनका आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। अभी वह देखने में शायद छोटा मालूम पड़े, यद्यपि वह छोटा नहीं है। जिसमें ३०-३५ लाख एकड़ भूमि मिल चुकी है, वह छोटी चीज़ नहीं है। उसका भविष्य कितना उज्ज्वल है, हम इसका अनुमान भी नहीं कर सकते। यह एक ऐसा आन्दोलन है कि यदि यह पूरी तरह से सफल हुआ तो इससे संसार का रूप ही बदल सकता है और आज के झगड़े, फसाद, भेदभाव तथा घृणा के स्थान पर हम सच्चा प्रेम और सद्भावना देख सकेंगे। इसीलिए विनोबा जी स्वयं इस चीज़ को इतना महत्त्व देते हैं। दूसरे लोग जो उनके साथ काम करते हैं, उन्हें भी इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल मालूम होता है। यदि इस देश ने यह काम सफल करके दिखलाया तो केवल अपने देश का ही नहीं बल्कि मानवमात्र का उद्धार हो जाएगा। यही समझकर हमें इस काम में लग जाना और इसको करना है।

विनोबा जी भूदान का काम १९५७ तक करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि उसके बाद यह काम बन्द हो जाएगा। वह १९५७ में उसकी पूर्णाहुति करेंगे अर्थात् जो लक्ष्य उन्होंने अपने सामने रखा था वह उसको प्राप्त कर लेंगे और फिर आगे बढ़ेंगे। देश के लोगों से आशा की जाती है कि वे उनके इस काम में पूरा सहयोग देंगे।

गान्धी जी का मार्ग

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि आपने मुझे गान्धी भवन के उद्घाटन का मौका दिया। महात्मा गान्धी ने अपनी जिन्दगी में जो कुछ किया वह सिर्फ हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के लिए है। हम उनकी यादगार में कोई इमारत खड़ी करके या और किसी तरह से अपने काम में बल हासिल करना चाहते हैं, इसलिए हम उनके नाम में स्मारक के रूप में जहाँ-तहाँ कुछ बना रहे हैं।

गान्धी भवन (हैदराबाद) का उद्घाटन करते हुए भाषण, ८ जुलाई, १९५६

आज सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं, हिन्दुस्तान के बाहर भी जहाँ-तहाँ गान्धी जी के स्मारक के रूप में इमारतें बनायी जा रही हैं। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हैदराबाद के निवासियों को भी ऐसा ख्याल हुआ कि यहाँ इस प्रकार का स्मारक बनाया जाये। यह सिर्फ एक इमारत ही न रहे बल्कि जैसे सरदार पटेल ने कहा था यह एक जानदार स्मारक हो। इसका अर्थ यह है कि वह केवल ईंट-पत्थर का न हो बल्कि महात्मा गान्धी ने जो हमें सिखाया और बताया था तथा उनके जो विचार थे उनका कोई जीता-जागता रूप यहाँ देखने में आये। महात्मा गान्धी ने अपने जीवन में कई बार कहा था कि किसी आदमी के लिए उसका शरीर कोई कीमत नहीं रखता, वह तो मिट्टी का पुतला है और फिर मिट्टी में मिल जाता है। मगर उसके पास कोई चीज रह जाती है तो एक तरफ उसकी आत्मा और दूसरी तरफ उसके किये हुए अच्छे या बुरे काम। इसलिए उन अच्छे कामों का नमूना हमारे सामने होना चाहिए और आपने यह बहुत अच्छा सोचा कि रचनात्मक काम के बारे में गान्धी जी के जो विचार थे, जिन-जिन चीजों में उनको खास दिलचस्पी थी उन चीजों को लेकर आप इस स्मारक में काम करें और जो-जो संस्थाएँ इस तरह के काम में लगी हों यहाँ आप उनको भी जगह दें।

इस भवन में रचनात्मक काम करने वालों के अलग-अलग दफ्तरों के लिए अलग-अलग स्थान रखा गया है। मैं आशा करता हूँ कि आपका काम दिन-प्रति दिन बढ़ेगा और गान्धी जी का जो चित्र यहाँ बना रखा है, उसकी ओर आपका ध्यान जाएगा। गान्धी जी ने हमें जो कुछ सिखाया उसकी तरफ भी आपका ध्यान जाएगा। अपनी जिन्दगी में उन्होंने कई बार कहा था कि यदि चरखा चलाने वाले को उस पर विश्वास न हो और उसको वह ठीक से समझ नहीं पाता और केवल उनके कहने से या देखा-देखी चरखा चलाता या खद्दर पहनता है तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि इसका अर्थ तो केवल इतना ही हो सकता है कि जब तक लोग उनको मानते रहेंगे इस काम को करते रहेंगे और जिस दिन वह आंखों से ओझल होंगे उस दिन यह काम बन्द हो जाएगा। इसलिए वह कहते थे कि ठीक समझ करके करना चाहते हो तो करो और नहीं तो चरखे को जला दो, उसकी कोई खास जरूरत नहीं है। ये बातें सिर्फ चरखे के बारे में ही नहीं बल्कि उनके सारे रचनात्मक कार्यों के सम्बन्ध में हैं। उन्होंने जो रचनात्मक कार्यक्रम बनाया था वह एक खास मकसद हासिल करने के ख्याल से बनाया था। उन्होंने अपनी आँखों के सामने समाज का एक ढांचा रखा था और वे चाहते थे कि समाज की पुनर्रचना उस नये ढाँचे के मुताबिक की जाये।

अभी हम उस रास्ते पर नहीं चल सके हैं। मैं इस बात को दुख से मगर सचाई के साथ मानता हूँ कि समाज का जो रूप गान्धी जी ने अपनी आँखों के सामने रखा था हम उसके मुताबिक नहीं चल रहे हैं। हमारे सामने एक दूसरा ढांचा है और हम उस पर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उसमें से कौन बेहतर है और कौन बुरा। मैं तो इतना ही कह देना काफी समझता हूँ कि हम जिस रास्ते पर चलकर आज आगे बढ़ना चाहते हैं, वह रास्ता वह नहीं जो हमें उस जगह पर ले जाये जहाँ गान्धी जी हमको ले जाना चाहते थे। हम अगर उसके ठीक विपरीत रास्ते पर नहीं तो कम से

कम कुछ अगल-बगल या कुछ दूसरी तरफ तो जरूर जा रहे हैं। हो सकता है कि हमारी आँखें आहिस्ता-आहिस्ता खुलें और फिर हम सीधे रास्ते पर आ जायें। आज देश में जो रचनात्मक काम हो रहा है उसकी मैं बड़ी कीमत इस लिए लगाता हूँ कि फिर कभी हम उस रास्ते पर आ सकेंगे। और अगर हमने इस काम को भी छोड़ दिया तो फिर इधर लौटने की कोई उम्मीद नजर नहीं आती। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हम इस रचनात्मक काम को पूरे बल और ताकत के साथ आगे बढ़ाते जायें।

बहुत जमाना हुआ जब एक अंग्रेज यहाँ आया था। वह बड़ा विद्वान् था। उनकी किताबें अब भी चल रही हैं। गान्धी जी उस समय खादी और ग्रामोद्योग की बात चला रहे थे। आप जानते हैं कि पश्चिमी-देशों में कोई भी चीज ऐसी नहीं जो बिना यन्त्र के हो। वहाँ सब काम मशीनों के द्वारा किये जाते हैं, यहाँ तक कि मेज पर खाना परोसने का काम भी खुद ब खुद हो जाता है और आदमी को लाकर रखने की खास जरूरत नहीं पड़ती। वहाँ के आदमी ने आकर यह देखा कि हमारे यहाँ के लोग घर में बैठे-बैठे रूई का सूत बना लेते हैं, उस सूत से कपड़ा बुनते हैं और उसी से घर में कपड़ा सी लेते हैं। उसने यह भी देखा कि यहाँ के लोग इसी प्रकार खेती के काम में भी धान को कूट-पीस-कर चावल बना लेते हैं, रोटी और तरह-तरह की चीजें घर में ही बना लेते हैं और खा लेते हैं। हमारी इन सब चीजों को देखकर उसने कहा कि हम इन चीजों को अपने यहाँ कायम रखें, अगर पूरी तरह से नहीं तो कम से कम नमूने के तौर पर तो कायम रखें ही। एक दिन आएगा जब दुनिया सब मशीनों को छोड़ फिर इसी चक्की का उपयोग करेगी और इसी चरखे पर सूत कातेगी। यह बात मैंने २५-३० बरस पहले की कही है।

पिछले ढाई हजार बरसों में साइन्स की बहुत तरक्की हुई है और पिछले १०-१५ वर्षों में तो बहुत ही हुई है। पिछली लड़ाई के बाद से लोगों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा है। लोगों को इस बात का फिक्र है कि अगर साइन्स की तरक्की ऐसी होती गयी और अगर इन्सान इन्सान नहीं रह गया तो सारी दुनिया में जो तमद्दुन है वह सब उलट-पुलट हो जाएगी। लोगों के दिलों में यह डर होने लगा है कि आखिर जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं वह हमें कहाँ ले जाएगा और हम किस घाट पर उतरने वाले हैं। आज जितनी तेजी के साथ लोगों के ख्यालों में तब्दीली हो रही है उससे इन्सान यह महसूस करने लगा है कि वह जो चाहे कर सकता है और करा सकता है। मगर वह करने और कराने की ताकत क्या है? वह एक दिन के अन्दर कोई एक शहर ही नहीं संकड़ों इलाकों को बर्बाद कर सकता है। अभी तक किसी आदमी के हाथ में बर्बाद करने की ताकत के अलावा पैदा करने की ताकत नहीं आयी है। हो सकता है कभी वह ताकत भी आ जाये। पर आज बर्बाद करने की ताकत है, पैदा करने की ताकत नहीं।

गान्धी जी जिस समाज का स्वप्न देखा करते थे वह एक ऐसा समाज था जिसमें सब लोग खुशहाल होंगे और किसी को किसी दूसरे को सताने की जरूरत नहीं पड़ेगी और इन्सान इन्सान रहेगा। वह न तो शैतान बनने की कोशिश करेगा और न खुदा बनने की। वह चाहते थे कि मनुष्य के लिए चारों तरफ से जो हदें बांधी गयी हैं, उन्हीं के अन्दर

रहकर जितनी हो सकती है वह अपनी उन्नति करे पर उन हदों के बाहर न जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज साइन्स की काफी तरक्की हो गयी है, पर किस ओर? आज रोगों की परीक्षा के तरीकों में बहुत कुछ तरक्की हो गयी है और साथ ही साथ रोगों में भी तरक्की होती जा रही है। इस दौड़ का एक ही नतीजा हो सकता है कि हजारों की तादाद में रोगियों की संख्या बढ़ती जाये। जहाँ सिर्फ नाड़ी देखकर ही सब कुछ पहचाना जाता था, वहाँ आज कम से कम पाँच-सात लेबोरेटरीज की जरूरत पड़ती है।

इसी तरह से जहाँ घर में चरखा चला कर हम अपना कपड़ा बना सकते थे, वहाँ आज हमको रूई दुनिया के एक कोने से लानी पड़ती है। उसे लाने के लिए जहाज, रेल आदि हर तरह के वाहनों की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा उसे एक कारखाने से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे में भेजना पड़ता है और उसके बाद एक दुकान से दूसरी, दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी में। तब कहीं हमारे घर में कपड़ा आता है। जिसको हम पहले आसानी से घर पर तैयार कर लिया करते थे, उसमें अब कितनी देर होती है। मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ हुआ है, सब गलत हुआ है क्योंकि ऐसा कहने से लोग समझते हैं कि यह पिछड़ा हुआ आदमी है। हम तो यह चाहते हैं कि साइन्स के द्वारा आज हमें जितनी-जितनी अच्छी चीजें मिली हैं उनमें से हम एक को भी न छोड़ें और उनसे जो लाभ उठा सकते हैं जरूर लाभ उठायें। मगर इसके पहले हम यह सोच-समझ लें कि इस चीज की कीमत क्या है और यह हमें कहाँ तक ले जाएगी और किस ओर। यदि हम इतना समझ-बूझ कर करेंगे तो इन्सान इन्सान रह सकता है। मैं तो यही चाहता हूँ कि जो रचनात्मक कार्यक्रम गान्धी जी ने बताया वह बहुत अनुभव के बाद इन सब चीजों को परख तथा समझ कर ही उन्होंने निकाला था।

गान्धी जी ने स्वराज्य का आन्दोलन जिस दिन शुरू किया और कहा कि बगैर हथियार उठाये हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र बनाना है, उस दिन इस बात को कोई भी पूरी तरह से नहीं समझता था। इस पर किसी को पूरा विश्वास ही नहीं होता था, यहाँ तक कि हम लोगों में से भी जो उनके निकट के कहे जाते हैं कुछ ऐसे थे जो समझते थे कि यह कैसे होगा। हममें से कुछ यह मानते थे कि अंग्रेजों को कुछ ज्यादा तकलीफ होगी और उसके कारण वे हमारी कुछ माँगों को मान लेंगे पर वे यह नहीं मानते थे कि स्वराज्य मिल जाएगा। हमें जिस तरह से स्वराज्य मिला उसके लिए उनके दिलों में सोलहों आना विश्वास नहीं था। मगर वह चीज हो गयी, चाहे उसके कारण कोई भी हों। कुछ तो दुनिया की हालत ऐसी थी, कुछ अंग्रेजों के तौर-तरीके ऐसे थे और कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आयीं कि उन सब चीजों से मिल-जुल कर हम स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने समाज का जो स्वरूप अपने सामने रखा था अगर वे उस काम को भी पूरा कर पाते तो जिस तरह आज हम स्वराज्य के बारे में समझ रहे हैं उसी तरह इसके बारे में भी समझते कि जो चीज अनहोनी थी वह हो गयी। मगर दुख और अफसोस की बात यह है कि उनकी जिन्दगी में यह नहीं हो सका। खैर, जो लोग अब हैं उनका यह काम है कि वे समझ-बूझ कर इस चीज को कायम रखें। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उस आदर्श को कायम रखने का तरीका रच-

नात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाना है और इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इसके द्वारा कोई न कोई रास्ता निकल आएगा।

विनोबा भावे ने जिस दिन आपके इस राज्य में भूदान का काम शुरू किया था उस वक्त कौन कह सकता था कि वह इतना बढ़ेगा और इतने अधिक महत्त्व का काम हो जाएगा। मगर वह हुआ, यह हम सबको मालूम है। आज उसके मुकाबले, मैं समझता हूँ, कहीं कोई मिसाल नहीं है। जो चीज़ अनहोनी-सी थी वह चीज़ हो गयी है। इसी तरह से और भी कोई चीज़ निकल आ सकती है जिस पर चलने से हम उनके बताये रास्ते पर पहुँच सकते हैं। उस चीज़ को कायम रखने में मेरी ओर से भी कुछ मदद हो जाये तो मैं समझूँगा कि मेरी जिन्दगी सफल है। मैं आशा करता हूँ कि आप इस भवन को कायम करके उनके बुनियादी और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को अपने सामने रख सकेंगे।

भगवान् बुद्ध का सन्देश

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण की २,५०० वीं जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं अपने देशवासियों और समस्त विश्व मानव समाज का अभिनन्दन करता हूँ और उन्हें अपनी शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ। आज का दिन संसार के लिए बहुत महत्त्व का है क्योंकि आज हमारा ध्यान मानवता के इतिहास के अत्यन्त गौरवपूर्ण सन्देश की ओर आकर्षित होता है। आधुनिक गतिविधि तथा विचारधारा भगवान् बुद्ध के सन्देश के कुछ प्रतिकूल जान पड़ती है, परन्तु फिर भी उस सन्देश की व्यापकता तथा सहिष्णुता, उसका उच्च आदर्श और उसमें निहित विश्वशान्ति की आकांक्षा के कारण आज मानव उसकी ओर बरबस आकृष्ट हो रहा है। मानव सदा जिन सांसारिक गुत्थियों से जूझता आया है और जिनसे उसे भविष्य में भी संघर्ष करना ही पड़ेगा, उस सन्देश में उन्हें सुलझाने का सहज और व्यावहारिक मार्ग सुझाया गया है।

भगवान् बुद्ध के विनीत प्रशंसक के नाते समस्त मनुष्य जाति और सब राष्ट्रों का ध्यान मैं उनके उपदेश, विशेष रूप से उनके अष्टांगिक मार्ग पर आधारित व्यवहार-दर्शन की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। हिंसा और संघर्ष के बादल जितने आज छाए हैं, उतने पहले कभी नहीं छाये थे और बुद्ध के प्रेम, सहिष्णुता तथा शान्ति के सन्देश की जितनी आवश्यकता आज है उतनी शायद पहले कभी नहीं रही होगी।

भगवान् बुद्ध की शिक्षा व्यावहारिक थी और वह सभी स्थितियों में रहने वाले जन-साधारण के लिए अभीष्ट थी। सभी क्षेत्रों में कट्टरता अथवा अतिशयता को छोड़ मध्यम मार्ग का अवलम्बन करने का उनका सिद्धान्त संसार के लिए एक बहुत बड़ी देन है। मध्यम मार्ग द्वारा शान्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। यह सिद्धान्त उन सभी जटिल समस्याओं को सुलझाने का सरल उपाय है जिनसे मानव, संसार के प्रत्येक भूभाग में सृष्टि के ऊषा-काल से जूझता आया है। आधुनिक युग में विज्ञान की प्रगति और मानव की क्षमताओं में चहुँमुखी उन्नति होने के कारण मनुष्यों और राष्ट्रों के बीच जो समस्याएँ पैदा हो गयी हैं, प्राचीन काल में वे कल्पनातीत रही होंगी।

इस दृष्टि से देखा जाये तो आज की स्थिति में, जबकि अणु-शक्ति ने मानव के हाथों

बुद्ध जयन्ती के अवसर पर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित भाषण, २३ मई, १९५६

में शुभ अथवा अशुभ के लिए असीम बल दे दिया है, भगवान् बुद्ध का जीवन-दर्शन और उनका सन्देश हमारे लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। पुरातन कह कर हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते, बल्कि आज प्रत्येक विवेकपूर्ण व्यक्ति के लिए वह सन्देश जीवन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

यह अक्षरशः सत्य है कि मानव समाज आज दोराहे पर है। हमें यह निर्णय करना होगा कि हमें वैज्ञानिक उन्नति को मानव के लिए वरदान बना कर एक साथ मिलजुल कर रहना है अथवा अपने दृष्टिकोण को संकुचित कर निजी अस्तित्व के लिए विध्वंसक शस्त्रास्त्रों पर निर्भर रहना है। शस्त्रास्त्र पर निर्भर रहने का अर्थ पारस्परिक संघर्ष ही हो सकता है और दुर्भाग्य से इस प्रकार के कई संघर्ष हम अपने जीवन में देख चुके हैं। इस मार्ग पर चलने का अर्थ विनाश और सम्भवतः मानव समाज का अन्त ही हो सकता है। भगवान् बुद्ध द्वारा दिखाये हुए शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के मार्ग पर चल कर ही हम विनाश-कारी युद्ध और उससे होने वाली व्यापक हानि से बच सकते हैं। सौभाग्य से इस बात को बहुत से लोग समझने लगे हैं। सभी देशों के विवेकशील लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि अब वह समय आ गया है जब भगवान् बुद्ध का सन्देश जीवन में अधिक से अधिक उतारा जाना चाहिए। विश्व को निश्चित विनाश से बचाने का यही एकमात्र उपाय है। मैं आशा करता हूँ कि भगवान् बुद्ध की जयन्ती सम्बन्धी यह महोत्सव इस विचार को पुष्ट करेगा और इसके द्वारा उचित जनमत की नींव रखी जाएगी जिससे बुद्ध के सन्देश की बुद्धिमत्ता और व्यावहारिकता पर गम्भीर विचार किया जा सके।

भगवान् बुद्ध ने एक साधारण मनुष्य की भाँति जन्म लिया और पूर्ण व्रत तथा सतत प्रयास के बल पर निर्वाण प्राप्त किया। सिद्धार्थ का जन्म हमारे देश के इतिहास में, सम्भवतः संसार के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण घटना है। बुद्ध देव भारतभूमि पर ही रहे और यहीं उन्होंने उपदेश दिया। हमारा देश उस महान् आत्मा के संसर्ग से आलोकित हुआ। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि अन्य अवतारों की भाँति भगवान् बुद्ध समस्त विश्व की विभूति हैं और उनका सन्देश सच्चे अर्थों में सार्वभौम है।

इस पवित्र महोत्सव के अवसर पर मैं इसमें भाग लेने के लिए विदेशों से पधारे हुए सज्जनों का हृदय से स्वागत करता हूँ। महात्मा बुद्ध के प्रति सम्मिलित रूप से श्रद्धांजलि भेंट करते हुए हम सब उनके उस सन्देश से उत्प्रेरित होंगे जो सभी के लिए एक जैसी प्रेरणा का स्रोत है। उस सन्देश के मूल तत्वों की सचाई के दर्शन कर संसार के विभिन्न राष्ट्र एक-दूसरे के और अधिक निकट आ सकेंगे, यही मेरी आशा और कामना है।

पंचशील

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण को आज २,५०० वर्ष हो गये हैं और हम उसी पुनीत तथा सारगर्भित घटना की जयन्ती मनाने जा रहे हैं। इस दीर्घ अवधि में तथागत के उपदेश और प्राणिमात्र के लिए उनके सन्देश को समय की कसौटी पर कसा जा चुका है। जब हम प्राचीनकालीन परिस्थिति पर विहंगम दृष्टि डालते हैं और आधुनिक परिस्थितियों से उसकी तुलना करते हैं तो इतिहास के गतिशील पटल पर सभी कुछ बदलता हुआ दिखायी देता है। जो थोड़े से तत्व स्थिर अथवा स्थायी जान पड़ते हैं, उनमें भगवान् बुद्ध के उपदेश का प्रमुख स्थान है। भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन होते हुए भी आज अधिकांश लोग स्वाभाविक रूप से बुद्ध के विश्व-शान्ति और सहिष्णुता के सन्देश की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसी कारण संसार के लिए इस बुद्ध जयन्ती महोत्सव का विशेष महत्त्व है।

भगवान् बुद्ध की शिक्षा में हमें वे तत्व मिलते हैं जिन्हें साधारणतः हम आधुनिक युग की देन या आधुनिक विचारधारा का फल कहा करते हैं। तथागत सच्चे अर्थों में बुद्धिवादी थे और उनके चिन्तन में प्रज्ञा का बहुत ऊँचा स्थान था। वास्तव में बुद्ध ने जिस मार्ग का प्रतिपादन किया उसे प्रज्ञा या मानवीय बुद्धि का मार्ग कह सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने प्रयत्न से तथा बुद्धि के बल पर ही अपना संस्कार या शुद्धि करे, भगवान् बुद्ध का यही उपदेश है। इस उच्च आदर्श को प्राप्त करने के लिए उन्होंने शील अथवा आचरण के नियमों की व्यवस्था की। इस प्रकार आचरण के आठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिन्हें बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का नाम दिया। इन आठ सिद्धान्तों में भी पाँच सिद्धान्तों का विशेष महत्त्व है अर्थात् हिंसा न करना, चोरी न करना, काम आदि में मिथ्याचार न करना, मृषा वचन न बोलना तथा मादक द्रव्यों का सेवन न करना। यही पाँच नियम बाद में पंचशील कहलाये। बुद्ध के अनुसार व्यक्ति इन्हीं नियमों पर प्रतिष्ठित होकर चित्त की प्रज्ञा की भावना कर निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। वास्तव में यदि देखा जाये तो ये शील संसार के मानव-मात्र के लिए सार्वभौम कर्त्तव्य की भाँति ग्रहण किये जा सकते हैं और कोई भी शिष्ट व्यक्ति किसी भी दशा में इनका विरोध नहीं कर सकता।

बुद्ध जयन्ती के अवसर पर रामलीला मैदान में भाषण, २४ मई, १९५६

भगवान बुद्ध के उपदेश की एक और विशेषता यह थी कि उन्होंने जो कुछ कहा वह निजी अनुभव के बल पर और व्यवहार की कसौटी पर परख कर ही कहा। इसीलिए व्यावहारिकता उनके उपदेश का प्रमुख गुण है। उन्होंने प्राणिमात्र को भव-बन्धनों से मुक्त हो निर्वाण का मार्ग बताया, किन्तु उसके साथ ही इस बात का भी अनुरोध किया कि प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण उसके अपने हाथ में है। दूसरा तो केवल मार्ग ही बता सकता है, चलना मनुष्य को स्वयं ही होगा। वे कहते हैं कि बुद्ध तो केवल आख्याता या उपदेश देने वाले बन सकते हैं, कर्म करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। यह भी कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति को आत्मदीप होना चाहिए अर्थात् चारों ओर घिरे हुए अन्धकार में अपने ही मन का दीपक जलाकर मार्ग ढूंढ़ना चाहिए। इसे ही प्रज्ञा का मार्ग कहते हैं और इस मार्ग पर चलने में पंचशील अथवा अष्टांगिक मार्ग से पूरी सहायता मिल सकती है।

भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश और प्रयत्नों का केन्द्रबिन्दु मानव को माना है। बुद्धि को भी इतना अधिक महत्त्व इसीलिए दिया गया है क्योंकि वह मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है। इसके कारण मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ माना गया है। तथागत ने निज के उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया कि सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर मानव का कितना विकास हो सकता है और वह ऊँचाई तक कैसे पहुंच सकता है। उपदेश में और भिक्षुओं से अपनी बातचीत में भगवान् बुद्ध ने अपने आपको मानव से बढ़कर और कुछ भी नहीं माना। उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में बताया कि वे देव अथवा किसी भी प्रकार की अलौकिक विभूति नहीं हैं बल्कि वे भी दूसरे लोगों की भाँति मनुष्यमात्र ही हैं। अपने व्यक्तित्व और आध्यात्मिकता का आधार उन्होंने सतत प्रयत्न अर्थात् शील के मार्ग पर आचरण करने की क्षमता को माना है।

बौद्ध धर्म में कर्म का बहुत महत्त्व है। भगवान् बुद्ध ने कर्म को अटल और कार्य-कारण की शृंखला को अटूट माना है। परन्तु मानव निजी बुद्धि के बल पर अष्टांगिक मार्ग के अनुसरण द्वारा सत्कर्म करने में और बुरे कर्मों से बचने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। बुद्ध के अनुसार जीवन का आरम्भ जन्म के साथ नहीं होता और न मृत्यु के साथ इसका अन्त ही होता है। प्राणी को असंख्य योनियों में से गुजरना होता है। निर्वाण की प्राप्ति ही इस क्रम का अन्त कर सकती है। संसार में पाप और पुण्य की समस्या मानव के साथ सदा से लगी हुई है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह पाप को पहचान कर उससे दूर रहे और पुण्य या धर्म का आश्रय ले। इस प्रकार धर्म और अष्टांगिक मार्ग के द्वारा बुद्ध ने श्रेष्ठ और उच्चतर निर्माण के लिए मानव का आवाहन किया, देवताओं के स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए नहीं। यह दृष्टिकोण एकदम आधुनिक जान पड़ता है। बुद्ध ने एक ओर तो जीवन को दुखमय कहा है और दूसरी ओर इस दुख के कारण को वश में करके निर्वाण के महान् सुख को पूर्ण करने के मार्ग का उपदेश दिया है।

पारस्परिक प्रेम, अहिंसा और शान्ति पर भगवान् बुद्ध ने कितना अधिक बल दिया, यह सभी जानते हैं। इन सभी को उन्होंने अपने शील में ऊँचा स्थान दिया है। मेरा विचार है कि प्राचीन काल में बौद्ध धर्म का विस्तार और उसकी मान्यता का सबसे बड़ा कारण

उनके शील ही थे। उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर असंख्य लोगों ने शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त किया। इन नियमों का भारतीय विचारधारा और परम्परा पर विशेष प्रभाव पड़ा है और आज भी इसे हम अपनी संस्कृति का उत्कृष्ट अंग मानते हैं और उन शीलों पर आचरण करने की चेष्टा कर रहे हैं।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि धर्म, संस्कृति, सामाजिक निर्माण, कला, दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में भगवान् बुद्ध के उपदेश तथा आदर्श से प्रेरित होकर हमारे देश ने निर्माण के क्षेत्र में कितना अधिक कार्य किया। पाली त्रिपिटक का साहित्य और बौद्ध धर्म का विशाल संस्कृत साहित्य जो आज तक सुरक्षित है, भारतवर्ष की निधि तो है ही, किन्तु उनका एशिया के दूसरे देशों में भी भारी विस्तार हुआ और उसके प्रभाव से अन्य देशों में मानवीय संस्कृति का अत्यन्त उज्ज्वल विकास हुआ। किसी समय भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग में तक्षशिला, उज्जयिनी, नालन्दा, विक्रमशिला आदि के विश्वविद्यालय एशिया के साहित्य और दर्शन के निर्माण का कार्य कर रहे थे। उनका सम्बन्ध चीन, कोरिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, मंगोलिया, जावा, सुमात्रा, बर्मा आदि देशों के साथ जुड़ा हुआ था। इनमें से कई देशों की भाषाओं में बौद्ध साहित्य के कई हजार ग्रन्थ सुरक्षित हैं, जब कि मूल ग्रन्थ अधिकतर इस देश में भी नहीं बच सके। अशोक के समय से लेकर गुप्त राज्यवंश के स्वर्ण युग तक, लगभग ८ सदियों तक, भारतीय कला में बौद्ध धर्म की प्रेरणा का बहुत ऊँचा स्थान था। इस बौद्ध कला का सूत्र अफगानिस्तान, पूर्वी एशिया, मध्य एशिया, चीन, श्रीलंका आदि देशों की कला-कृतियों का आधार और प्रेरणा-स्रोत बना। मानव जाति के एक बड़े भाग को इन कलात्मक कृतियों से सांस्कृतिक प्रेरणा प्राप्त हुई। हमारे देश में आज भी कला का जो उत्थान हो रहा है, उसमें अजन्ता से बहुत बड़ा मार्ग-प्रदर्शन मिला है।

अपने तपोबल और अनुभवों के आधार पर भगवान् बुद्ध जिन मार्मिक निष्कर्षों पर पहुँचे, उनको विश्व की विचारधारा में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और मानव समाज के हित की दृष्टि से उनका असाधारण महत्त्व है। उनकी मौलिकता और विचार-स्वातन्त्र्य एकदम अनुपम है, यद्यपि बुद्ध इस देश के परम्परागत विचार तथा विश्वास से भी स्वाभाविक रूप से प्रभावित हुए। पुनर्जन्म का सिद्धान्त और कर्म को जीवन में ऊँचा स्थान देना उस प्रभाव के उदाहरण हैं। प्राचीन भारतीय विचारधारा के प्रति तथागत की क्या प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने पूर्ववर्ती धारणाओं की उपेक्षा कर स्वयं स्वतन्त्र मार्ग खोजने पर इतना बल क्यों दिया, यह बात उस समय के इतिहास और देश की परिस्थितियों से पूरी तरह अवगत होकर ही समझ में आ सकती है। उस काल की प्रचलित दोषपूर्ण धारणाओं और विचार की शिथिलता को दूर करना किसी भी सुधारक अथवा विचारक का कर्त्तव्य था। बुद्ध की महानता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि यद्यपि उन्होंने विशिष्ट काल और देश की घटनाओं और विचारधाराओं की प्रतिक्रिया के रूप में आध्यात्मिक तत्वों की खोज की और उस खोज के आधार पर उपदेश दिया, परन्तु वह आज २,५०० वर्ष बीत चुकने पर भी समस्त संसार के लिए स्फूर्ति और सत्प्रेरणा का स्रोत स्वीकार किया जाता है।

भगवान् बुद्ध का उपदेश, बौद्ध धर्म की भावनाएँ और उनके फलस्वरूप संस्कृति, कला, साहित्य आदि के क्षेत्र में जो चेतना पैदा हुई, वे सब प्रवृत्तियाँ हमारे राष्ट्रीय जीवन की अंग बन गयीं और आज भी हैं। आज भगवान् बुद्ध की कल्याणकारी भावना की हमारे देश के लिए ही नहीं बल्कि संसार भर के लिए आवश्यकता है। जिस प्रकार बोधिसत्व का आदर्श लोक-कल्याण और मानव-सेवा माना गया था और दूसरों के दुख के निवारण को मोक्ष से भी अधिक महत्त्व दिया गया था, आज भी इस बात की आवश्यकता है कि संसार के जननायक उसी प्रकार मानव-कल्याण और दुख तथा अभाव के निराकरण को सर्वोपरि लक्ष्य मानकर क्रियाशील हों।

बुद्ध ने सब दुखों और कष्टों का मूल कारण तन्हा अथवा तृष्णा को माना है। उनके मतानुसार यदि मानव शील और संयम द्वारा तृष्णा अथवा लिप्सा की भावना से ऊपर उठ अपरिग्रह या ऐच्छिक त्याग को अपना सके तो दुख आप ही आप दूर हो जाएँगे। अपरिग्रह का सिद्धान्त हमारे देश के लिए नया नहीं। जब से भारतीय चिन्तन का प्रारम्भ हुआ तभी से त्याग को ऊँचा आदर्श माना गया है। भगवान् बुद्ध ने विलक्षण तर्क और प्रज्ञा द्वारा इस सिद्धान्त का आधार और अधिक दृढ़ कर दिया। आज भी हमारे देश में आचार्य विनाबा भावे जैसे सन्त विद्यमान हैं जिन्होंने उस परम्परा को जीवित रखा है। सर्वोदय, भूमिदान आदि के प्रचार का आधार अपरिग्रह की भावना के अतिरिक्त और क्या हो सकता हैं। समाज अथवा देश के हित में स्वेच्छा से किसी चीज का त्याग करना ही अपरिग्रह है।

भगवान् बुद्ध का व्यावहारिक जीवन और सब भूतों के प्रति उनकी मैत्री और प्रेम की भावना संसार के लिए सदा एक उच्च आदर्श बनी रहेगी। उनका यह नियम था कि वैर वैर से नहीं मिटता, बल्कि शान्ति से ही मिटता है। इस उपदेश की शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्राचीन दृष्टान्त सम्राट् अशोक का जीवन है। उन्होंने कलिंग देश के युद्ध से खिन्न होकर बुद्ध के इस उपदेश के मूल्य को ठीक प्रकार समझा और न केवल अपने जीवन में बल्कि अपनी समस्त राष्ट्रीय नीति में भी एक बड़ा परिवर्तन कर डाला। अशोक ने सदा के लिए युद्ध को त्याग दिया और धर्म-विजय को ही सबसे बड़ी विजय माना। आज मनुष्य जाति युद्ध की जिस विभीषिका के समीप आ पहुँची है उसकी तुलना में सैकड़ों-हजारों कलिंग युद्ध भी नगण्य हैं।

मानव-समाज आज चौराहे पर खड़ा है। उसने भौतिक-विज्ञान का इतना अनुसन्धान किया है कि आज वह गर्व के साथ कह सकता है कि उसने बहुत विषयों में प्राकृतिक बन्धनों को तोड़ डाला है और उसके सामने केवल प्रगति का विशाल और अनन्त मार्ग ही नहीं खुल गया है, वरन् उसमें उस पर चलकर अनन्तशक्ति-उपार्जन की भी क्षमता आ गयी है। उसने भौतिक सुख के पदार्थ विपुल और प्रचुर मात्रा में हस्तगत कर लिये हैं। उसी शक्ति ने मनुष्य के हाथों में सर्वनाश के साधन भी दे दिये हैं। इसी कारण आज संसार में सभी झगड़े और सभी प्रकार के संघर्ष पैदा हो रहे हैं। जिस प्रकार अग्नि में घी डालकर उसे बुझाया नहीं जा सकता, उसी प्रकार हिंसा से हिंसा नहीं मिट सकती। भगवान् बुद्ध के

उक्त नियम पर चलकर संसार युद्ध से बच सकता है और शान्ति का सुख भोग सकता है।

स्वतन्त्र भारत ने इन सब विचारों और आदर्शों से प्रभावित होकर ही अशोक-चक्र को राज्य-चिन्ह के रूप में ग्रहण किया है। निस्सन्देह हमारा आदर्श वही है, भले ही हम आज की परिस्थितियों में सहसा उसे अपने जीवन में उतारने में समर्थ न हों। इसका अर्थ यही है कि हम भगवान् के बताये शीलों को आज की परिस्थिति के अनुसार बरतेंगे और अपनी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधि तथा नीति में उन्हीं सिद्धान्तों से अनुप्राणित होंगे। हमारी यह उत्कट इच्छा है कि एक दिन हम भी उसी उत्साह और नैतिक बल का परिचय दे सकें जिसका कलिंग-युद्ध के बाद अशोक ने दिया था। हम इस प्रयास में सफल होते हैं या नहीं, इसकी चिन्ता न कर अन्य शान्तिप्रिय राष्ट्रों का भी कर्त्तव्य है कि वे इस आदर्श को अपनायें। मुझे आशा है और भगवान् से यह प्रार्थना है कि निश्शस्त्रीकरण की दिशा में विभिन्न राष्ट्रों द्वारा किये जाने वाले प्रत्यन सफल हों जिससे यह कहा जा सके कि बुद्ध के उपदेश और अशोक के आदर्श से संसार विमुख नहीं हुआ। आज यह आदर्श चाहे कितना ही दुर्लभ दिखायी देता हो परन्तु मेरा विश्वास है कि एक न एक दिन इसका सुखद परिणाम और संघर्ष से होने वाला सर्वनाश हमें इस आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए बाध्य करेगा।

इस अणुयुग में मानव समाज को यह निर्णय करना है कि वह वैर को वैर से मिटाना चाहता है अथवा मैत्री द्वारा। क्या ईश्वर भारत को यह बल देगा कि वह पूर्णतया निश्शस्त्र होकर इस बात का प्रमाण दे कि वह सैन्य बल पर बिलकुल भरोसा नहीं करता। जिस दिन उसमें यह शक्ति आ जाएगी वह अजेय हो जाएगा। जब तक उसमें यह शक्ति नहीं आती वह इस चक्कर से अपने को निकाल नहीं सकता और पंचशील का स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल, ज्योतिमय रूप संसार के सामने प्रदर्शित नहीं कर सकता। पर भारत ऐसा करे या न करे, क्या दूसरे शक्तिशाली देश और राष्ट्र भी इस सार्वकालिक सन्देश के मर्म और महत्त्व को समझने में असमर्थ ही रहेंगे?

आशा की धुंधली-सी किरण कुछ-कुछ देखने में आ रही है। बहुतेरे देश पंचशील की ओर झुक रहे हैं। अनेकों ने इसे अपना भी लिया है। शक्तिशाली देशों में भी शस्त्रास्त्र का नितान्त वर्जन नहीं तो कम करने की चर्चा तो चल रही है। वह दिन कब आएगा जब वे इस मर्म को समझेंगे और सभी देशों को अवसर प्रदान करेंगे कि नयी अर्जित शक्ति का उपयोग केवल सुख और शान्ति के लिए हो न कि विनाश के लिए। यदि यह जयन्ती समारोह इस ओर कुछ भी ध्यान आकृष्ट कर सके तो यह कहा जा सकेगा कि इसने सफलता प्राप्त की है।

बौद्ध कला प्रदर्शनी

मैं ललित कला अकादेमी के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस बौद्ध कला प्रदर्शनी के उद्घाटन के लिए निमन्त्रित किया। बौद्ध विनय, उनके धार्मिक सिद्धान्त, बौद्ध धर्म के विकास और एशिया के दूरस्थ देशों में उनके मत के प्रसार आदि के सम्बन्ध में जितना अधिक कोई सोचता है उतना ही अधिक उसे ज्ञान होता है। कला के ये उत्कृष्ट नमूने, जो केवल भारत के ही प्रत्येक भाग में नहीं बल्कि दक्षिणपूर्वी एशिया के देशों और प्रशान्त महासागर के द्वीपों से लेकर मंगोलिया के विस्तृत मैदानों तक में पाये जाते हैं, महात्मा बुद्ध के जीवन और उनके सन्देश से उत्प्रेरित रचनात्मक क्रान्ति के द्योतक हैं।

उस समय के भित्ति चित्र तथा शिल्प कला के नमूनों से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि कलाकारों को बौद्ध धर्म से प्रेरणा मिली थी। भित्ति चित्र हो अथवा शिल्पकृति, इन कलाकृतियों का अधिकांश उपयोग भगवान् बुद्ध के ज्ञान तथा उनके जीवन की कथाओं को अंकित करने के लिए ही किया गया था। कलाकारों को बुद्ध के पूर्व जन्म अर्थात् जातक कथाओं और उनके सम्बन्ध में फैली अन्य किम्वदन्तियों से ही प्रधानतया प्रेरणा मिली थी।

विभिन्न स्तूपों, चैत्य कोष्ठों, पत्थर तथा धातु की विभिन्न मुद्राओं में भगवान् की अनेक मूर्तियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि इन सबकी प्रेरणा का स्रोत सब देशों में एक होते हुए भी बौद्ध कला पर स्थानीय परम्परा तथा कला शैली का प्रभाव पड़ा है। बौद्ध कला की आधारभूत एकता अथवा सार्वभौमिकता और विभिन्न प्रदेशों में वास्तविक अभिव्यक्ति की विभिन्नता बौद्ध-कालीन कला के प्रधान लक्षण हैं जो बौद्धमत की समन्वयात्मक भावना के ठीक अनुकूल हैं।

ईसा के जन्म से पूर्व तथा उसके पश्चात् कई शताब्दियों तक भारत में बौद्ध कला तथा संस्कृति का अलौकिक विकास हुआ। जैसे-जैसे भगवान् बुद्ध का सन्देश देश-देशान्तरों में फैलता गया भिक्षुक लोग वहाँ अपने साथ केवल भगवान् की शिक्षा तथा विहारों के वातावरण को ही नहीं ले गये बल्कि यह प्रेरणा भी ले गये जिसने तूलिका और छेनी के द्वारा अपने-आपको अभिव्यक्त किया। भारत में अजन्ता, नागार्जुनकोण्ड, सांची, भारहुत तथा अम-

बौद्ध कला प्रदर्शनी (दिल्ली) में उद्घाटन भाषण, १० नवम्बर, १९५६

रावती, जावा में बोरबुदूर और अफगानिस्तान में बामियान के महान् स्मारकों तथा कलाकृतियों को जब हम देखते हैं अथवा उनके सम्बन्ध में पढ़ते हैं तो आश्चर्य होता है कि किस अद्भुत विभूति ने इन कृतियों की कल्पना की होगी और इन्हें मूर्त रूप देने के लिए कितने व्यक्तियों ने कितने वर्षों तक सतत श्रम किया होगा।

इन महान् कलाकृतियों का सम्पर्क प्रेरणादायक होता है। प्रेक्षक के हृदय में यह विचार आये बिना नहीं रहता कि शारीरिक शक्ति और मानवीय अवयव-मात्र इन पर्वतों को काट कर कला का रूप नहीं दे सकते थे। निस्सन्देह आध्यात्मिक बल और तज्जन्य प्रेरणा के द्वारा ही यह सम्भव हुआ होगा कि छेनी पत्थर को काटे और गुफाओं के भीतर इनकी भित्तियों को चित्रपट का रूप देकर तूलिका को आमन्त्रित करे। आस्था पर्वतों को हिला सकती है, ऐसा मानने अथवा न मानने में मानव स्वतन्त्र है, किन्तु पर्वतीय गुफाओं तथा भित्ति कला के उत्कृष्ट नमूनों को देखकर मैं समझता हूँ कि मानव इस बात में सन्देह नहीं कर सकता कि आस्था पर्वतों को अवश्य काट सकती है और कलाकार चट्टानों को लकड़ी के समान हल्का और नरम बना सकता है।

भिक्षुओं की श्रद्धा तथा भक्ति के उद्गारस्वरूप प्रस्फुटित बौद्ध कला की सैकड़ों वर्ष पुरानी कृतियाँ पूर्वी भूभाग के इतिहास पर भी प्रकाश डालती हैं। मुझे सन्देह है कि विभिन्न देशों में पाये जाने वाले इन बौद्ध स्मारकों के बिना हमें इन देशों के इतिहास, इनके पारस्परिक सम्बन्ध और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का पूर्ण ज्ञान हो पाता। भारत जैसे देश के लिए दुर्भाग्य से जिसका प्राचीन इतिहास हमें पूरा नहीं मिलता, ये स्मारक तथा पुरातत्व अवशेष इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने वाले इतिवृत्ति के समान हैं। सम्भव है कला के इस उपयोग को लौकिक कहा जाये, किन्तु मुझे विश्वास है इतिहास से कला का नाता जोड़ने का प्रयास ऐसा नहीं कि उसकी उपेक्षा की जा सके।

भगवान् बुद्ध तथा उनकी जीवन-गाथा का स्मरण होते ही इतिहास का विशाल पटल हमारी आँखों के सामने खुलने लगता है। अनेकों पराक्रमी राजाओं जिन्होंने स्वर्ण का सिंहासन छोड़ भगवे वस्त्र धारण किये, अनेकों भिक्षुओं जिन्होंने परिव्रजन के व्रत का पालन कर समस्त जीवन धर्म-प्रचार के लिए अर्पित किया और सहस्रों विलक्षण कलाकारों का जो पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी आन्तरिक भावनाओं को कला का रूप देने में ही लगे रहे, दृश्य हमारे सामने आने लगता है। उस समय आधुनिक जीवन की श्रेष्ठतम वस्तुएँ गौण ही नहीं सारहीन दिखायी देती हैं। जब हम इन महान् कलापूर्ण स्मारकों को देखते हैं तो यह विचार आता है कि उन कलाकारों और निर्माताओं से आधुनिक मानव अध्यवसाय, एकाग्रता तथा कला के प्रति अनुराग का पाठ आज भी सीख सकता है। बौद्ध मत के प्रचार और उससे प्रेरित कला के विकास के साथ-साथ भारतीय राष्ट्र की असाधारण विलक्षणता का भी पूरा विकास हुआ। निस्सन्देह वे लोग महान् थे और उनके द्वारा निर्मित कलाकृतियाँ भी उसी कोटि की हैं। अनेक शताब्दियाँ बीत चुकने के बाद वे प्राचीन विभूतियाँ आज भी उतनी ही महान् हैं।

पारस्परिक प्रेम तथा अहिंसा

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण की २,५०० वीं जयन्ती के सम्बन्ध में कुछ समय से जो समारोह हो रहे हैं उनके फलस्वरूप सारे विश्व में, विशेषकर बौद्ध जगत् में और भारत में भगवान् बुद्ध के दिव्य सन्देश तथा बौद्ध मत की विभिन्न धाराओं का व्यापक प्रचार हुआ है। यह सौभाग्य की बात है कि यह सुअवसर ऐसे समय आया है जब सारा विश्व हिंसा की भावना और पारस्परिक युद्ध के भय से त्रस्त है। हिंसा और युद्ध के निराकरण के लिए मानव ने व्यवहार में अभी तक चाहे कुछ किया हो अथवा न किया हो, यह धारणा बराबर दृढ़ होती जा रही है कि पारस्परिक प्रेम और अहिंसा के बिना संसार विनाश की ओर जा रहा है। सभी यह अनुभव भी करते हैं कि समय-समय पर होने वाली युद्ध-रूपी विनाश-लीला से बचने का एकमात्र उपाय अहिंसा का अधिक से अधिक प्रचार करना और पारस्परिक मतभेदों को युद्ध के स्थान पर बातचीत द्वारा सुलझाया जाना है।

यह वही प्रवृत्ति है जिसकी ओर भगवान् बुद्ध ने ढाई हजार वर्ष हुए संकेत ही नहीं किया था बल्कि जिस विचारधारा का उन्होंने अपने जीवन में प्राणिमात्र के हित के लिए शिक्षा द्वारा सक्रिय रूप से प्रचार भी किया था। यही कारण है कि २५ शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी तथागत का सन्देश आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल जान पड़ता है। इससे जहाँ यह सिद्ध होता है कि भगवान् के उपदेश में शाश्वत सत्य का समावेश था, वहाँ यह भी प्रमाणित होता है कि मानव जाति और राष्ट्रों की आवश्यकता तथा उनकी समस्याएँ आज भी वही हैं जो दो या तीन हजार वर्ष पहले थीं। प्रश्न उठता है कि पारस्परिक सद्भावना, मैत्री, सहिष्णुता तथा प्रेम की दृष्टि से मानव समाज पहले की अपेक्षा आज कितना आगे बढ़ा है। इस प्रश्न का हमें सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। भौतिक सम्पन्नता तथा विज्ञान के विकास की दृष्टि से मानव निस्सन्देह काफी आगे बढ़ा है, किन्तु दुर्भाग्य से उसी मात्रा में आध्यात्मिक तत्व के दर्शन न होने से इस उन्नति को एकांगी ही कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में विज्ञान की प्रगति लाभदायक होने की अपेक्षा विनाशकारी हो सकती है और वास्तव में हो रही है।

ज्ञात होता है कि यह स्थिति अब चरम सीमा को पहुँच गयी है। विज्ञान ने मानव

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपलक्ष्य में सार्वजनिक सभा (नयी दिल्ली) में भाषण, २४ नवम्बर, १९५६

के हाथ में ऐसे भयानक शस्त्रास्त्र सौंप दिये हैं जिनसे सृष्टि का अस्तित्व ही संकट में पड़ सकता है। महात्मा बुद्ध के सन्देश को स्मरण करने और व्यक्तिगत तथा समष्टिगत रूप से उसको जीवन में उतारने का इससे अधिक उपयुक्त अवसर और कोई नहीं हो सकता। आध्यात्मिक दृष्टिकोण आज इतना व्यापक दिखायी देता है कि भौतिक विचारधारा उसका एक अंगमात्र बनकर रह गयी है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाये बिना अर्थात् सत्य, प्रेम, अहिंसा आदि आधारभूत मानवीय गुणों का सहारा लिये बिना निश्चय ही मानव अपना समस्त सुख, समृद्धि और सम्पन्नता गँवा सकता है। इसलिए निजी हित की दृष्टि से अब यह आवश्यक हो गया है कि मानव समाज अहिंसा आदि गुणों को जीवन में ऊँचा स्थान दे।

भगवान् बुद्ध ने अपने शील में इन सभी गुणों पर यथोचित बल दिया है और व्यवहार की दृष्टि से उनका विवेचन किया है। बुद्ध जयन्ती समारोह द्वारा संसार के राष्ट्रों को सुख तथा शान्ति देने वाले भगवान् के सन्देश को स्मरण करने और उसका चिन्तन करने का जो अवसर मिला है, मैं समझता हूँ कि यह मानव जाति का सौभाग्य है। मेरी यह धारणा है कि निजी सुख और शान्ति के हित में मानव उस सन्देश की ओर अधिकाधिक ध्यान देगा। यह प्रसन्नता की बात है कि कई एक राष्ट्रों ने पंचशील के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धान्त पर आचरण द्वारा पारस्परिक मतभेद निस्सन्देह कम किया जा सकता है और राष्ट्र बलप्रयोग अथवा युद्ध से मुक्त हो सकते हैं।

भगवान् बुद्ध का समस्त जीवन, उनके सारगर्भित प्रवचन और उनका सन्देश प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपलब्ध है। कोई भी व्यक्ति उनसे लाभ उठा सकता है और अपनी आत्मा को उन्नत कर सकता है। हमारे देश में, जहाँ भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया और प्रथम उपदेश दिया, महात्मा बुद्ध का जनता के हृदयों में ऊँचे से ऊँचा स्थान है। प्राचीन परम्परा के अनुसार भारत के लोगों ने उन्हें कालान्तर में ईश्वरीय अवतार का पद दिया था और इस देश से बौद्ध मत के लुप्त हो जाने के बाद भी विष्णु के रूप में उनकी पूजा बराबर होती रही। भगवान् बुद्ध की विचारधारा तथा उनके सदुपदेश का हिन्दू विचारधारा पर गहरा प्रभाव पड़ा है और बौद्ध शील आज भी हिन्दू धर्म का एक अंग है।

मैं विनम्रतापूर्वक एक और बात कहना चाहूँगा। भगवान् बुद्ध ने इसी भूमि में निर्वाण प्राप्त किया और यहीं उन्होंने धर्म-प्रचार की व्यवस्था की। सदियों तक इस देश की अधिकांश जनता बौद्ध मत की अनुयायी रही और यहाँ के प्रतापी नरेशों और धर्मरत भिक्षुओं के अध्यवसाय से बौद्ध मत का अनेक देश-देशान्तरों में प्रसार हुआ। किन्तु संयोग से अथवा कुछ ऐतिहासिक कारणों से बौद्ध मत प्रायः भारत से लुप्त हो गया। यह सब होते हुए मैं कह सकता हूँ कि दो हजार वर्ष की इस समस्त अवधि में भगवान् बुद्ध के प्रति यहाँ के लोगों की आस्था तथा श्रद्धा बराबर रही। विश्व के इतिहास में शायद और कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा। मुझे कोई भी दूसरा देश ऐसा दिखायी नहीं देता जहाँ कोई अवतार हुआ हो और समस्त जनता कुछ समय तक उसकी अनुयायी रह कर किसी अन्य मत को अपना चुकी हो परन्तु फिर भी उस देश में उस अवतार का वही आदर और उसके

प्रति वही आस्था की भावना बनी रही हो जैसी भारत में भगवान् बुद्ध के प्रति हजारों वर्षों से रही है। हो सकता है कि यह सहिष्णुता और यह उदारता इस देश को स्वयं भगवान् बुद्ध की ही देन हो।

इस समय मानव एक संध्याकालीन समय से होकर गुजर रहा है। भौतिक विज्ञान एक पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानव ने भौतिक सम्पन्नता को ही सुख का एकमात्र साधन मान लिया है। पर यह एक मृगमरीचिका है और जब तक समाज में भौतिक पदार्थों के प्रति उपेक्षा की भावना उत्पन्न नहीं होगी, तब तक वह अशान्ति और हिंसा से बच नहीं सकता। इस प्रकार मानव समाज के कल्याण के लिए भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय वांछनीय और अनिवार्य है। उसका अध्यात्म के साथ अटूट गठबन्धन होना चाहिए। यदि मानव इस गठबन्धन को न बांध सका तो उसके सामने विनाश ही विनाश रह जाता है और यदि वह इस कार्य में सफल हुआ और इस गठ-बन्धन को स्थायी बना सका तो प्रकृति पर आधिपत्य पाकर वह अनन्त वैभव और सुख का अधिकारी बन सकता है। कुछ शुभ लक्षण ऐसे भी देखने में आ रहे हैं, क्योंकि संसार में अने-कानेक विचारशील मनीषी इस विनाश और सुख-निर्माण के बीच के असमंजस को देख रहे हैं और मानव को चेतावनी भी दे रहे हैं। ऐसी अवस्था में भगवान् बुद्ध की शिक्षा एक महान् वरदान है। हम भगवान् बुद्ध की शिक्षा से प्रेरणा और सीख लेकर सुख और शान्ति के पथ का वरण करें, यही मेरी प्रार्थना है। इसी में इस महान् पुण्य जयन्ती समारोह की सफ-लता निहित है।

सामुदायिक विकास

भारत विशेषकर गांवों में ही बसता है और यद्यपि इन दिनों शहरी जनसंख्या बड़ी तेजी के साथ बढ़ रही है, पर यह आज भी सच है कि भारत बहुत करके गांवों में ही बसता है। गांवों और गांव वालों की उन्नति के लिए जो कुछ भी किया जाये उसका केवल स्वागत ही नहीं होना चाहिए बल्कि उसको प्रोत्साहन देने के लिए सरकार और लोगों को प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। महात्मा गान्धी इसीलिए गांवों के विकास पर बहुत जोर दिया करते थे। यह एक बड़ा शुभ विचार है कि आज उनके जन्म दिन पर इस सामुदायिक विकास योजना का प्रारम्भ किया जा रहा है।

इस देश में 'सामुदायिक विकास' और 'सामुदायिक योजना' नये शब्द हैं पर यह विचार बहुत पुराना है। इसका मौलिक तात्पर्य किसी एक दिशा में उन्नति के विपरीत चहुंमुखी उन्नति से है। 'अधिक अन्न उपजाओ' सम्बन्धी कार्यक्रम से तथा विभिन्न राज्य सरकारों और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा देहात-सुधार के क्षेत्र में किये गये कार्य के हमारे अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि देहाती जीवन के सभी पहलू एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं और यदि एक-एक पहलू को अलग-अलग लिया जाये तो स्थायी परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता। इसका यह अभिप्राय नहीं कि विशिष्ट समस्याओं को महत्त्व न दिया जाये परन्तु उनसे सम्बन्धित आयोजन किसी विस्तृत योजना के ही अंग होने चाहिएं और वे समस्याएं उस योजना के अन्तर्गत आ जायें।

इस काम में सफलता तभी मिल सकती है जब सरकारी व्यवस्था, गैरसरकारी नेतृत्व और जनता के उत्साह में परस्पर सहयोग हो और खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पशु सुधार, तथा बेकारी दूर करना इत्यादि सभी प्रकार के काम एक-साथ हाथ में लिये जायें। महात्मा गान्धी की प्रेरणा से उनके अनुयायियों ने देश के अनेक भागों में इस प्रकार के काम बहुत निस्स्वार्थ भाव से किये हैं और दूसरी संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने भी इस दिशा में बहुत-कुछ किया है। लेकिन पर्याप्त धन और यथेष्ट मात्रा में विशिष्ट काम करने वाले न मिलने के कारण उनका विस्तार न तो उतनी दूर तक हुआ और न उतनी तेजी के साथ

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्घाटन के अवसर पर नयी दिल्ली से प्रसारित भाषण, २ अक्तूबर, १९५२

हुआ जितना हम चाहते थे। भारत और अमेरिका के बीच जनवरी, १९५२ में हुए प्राविधिक सहयोग समझौते से इस दिशा में उन्नति की नवीन सम्भावनाएँ पैदा हो गयी हैं।

मेरा बराबर यह विश्वास रहा है कि भारतीय किसान खेती के काम में कुछ नौसिखिया नहीं और उसे इसका पीढ़ियों का अनुभव है। बिहार के किसानों ने पिछले २० वर्षों में जिस तेजी के साथ नये प्रकार के गन्ने की खेती अपना ली है उससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि भारतीय किसान लकीर का फकीर नहीं जो नये सुधरे हुए तरीकों को अपनाना नहीं चाहता। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उसे इस बात का सन्तोष और विश्वास दिला दिया जाये कि किसी नयी पद्धति से या किसी नयी किस्म की चीज उपजाने से उत्पादन अधिक होगा।

देश के सामने खाद्यान्नों का प्रश्न अत्यन्त महत्त्व का है। भारत पिछले महायुद्ध के पहले भी बर्मा से १५ लाख टन चावल लिया करता था। देश के बँटवारे से अन्न की कमी और भी बढ़ गयी है क्योंकि पश्चिम पंजाब और सिन्ध जो अपनी आवश्यकता से अधिक अन्न पैदा करते थे पाकिस्तान में चले गये हैं। जनसंख्या बढ़ने के कारण अन्न की माँग प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। इस कमी की पूर्ति के लिए सरकार को विदेशों से बहुत अन्न मँगाना पड़ा है और १९५१ में ४७ लाख टन अन्न बाहर से आया।

योजना आयोग, सरकार और सभी विचारशील लोग अन्न का उत्पादन बढ़ाने के तरीके के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार करते रहे हैं ताकि हमारी आवश्यकता और उत्पादन के बीच जो बड़ी खाई है वह भरी जा सके। बड़ी-बड़ी नदियों को बांधने की योजनाओं को जिनमें से कुछ पर काम आरम्भ कर दिया गया है और कुछ अभी विचाराधीन हैं, पूरा करने में समय लगेगा और हम उनसे तुरन्त फल पाने की आशा नहीं कर सकते। आज की कमी को पूरा करने के लिए हमको कुँओं, तालाबों, नलकूपों, छोटी नदियों और नालों जैसी सिंचाई की छोटी-मोटी योजनाओं द्वारा पानी के अच्छे उपयोग और बाँध बनाने पर जिससे वर्षा का पानी आवश्यकता के अनुसार उपयोग में लाया जा सके, अधिक भरोसा करना पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि इन छोटी योजनाओं के लिए काफी गुंजाइश है और इस बात में सन्देह नहीं कि यदि उनको सन्तोषप्रद ढंग से चलाया गया तो हम अपने खाद्य-पदार्थों की कमी को दूर करने में सफल होंगे।

इसलिए मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि इन सामुदायिक योजनाओं में जिनके अन्तर्गत प्रत्येक योजना में ३०० गाँव और प्रायः १,५०,००० एकड़ भूमि होगी, प्रायः एक-तिहाई व्यय सिंचाई की इन्हीं छोटी योजनाओं पर किया जाएगा। इस कार्य में यदि समितियों से पूरा सहयोग मिले और उन क्षेत्रों में रहने वाले परिश्रम करें तो इस काम के लिए जो राशि दी जाएगी उससे अपेक्षाकृत कहीं अधिक काम हो सकेगा। आशा है कि इन योजनाओं को सफल बनाने में लोग स्वेच्छा से श्रमदान करेंगे और इन योजनाओं से कहीं अधिक कार्य हो सकेगा।

पानी के बाद खाद का प्रश्न उठता है। यह चाहे कृत्रिम अथवा कूड़ाकरकट-गोबर आदि से बना हुआ हो सकता है अथवा इन दोनों प्रकार के खादों के मेल से बन सकता है।

कृत्रिम खाद का प्रबन्ध एक समझौते द्वारा किया गया है जिसके अनुसार १,०८,००० टन खाद मिलेगा। इसके अतिरिक्त सिन्दरी के कारखाने में तैयार किया गया खाद भी मिल सकेगा। परन्तु अधिक ध्यान देहाती खाद और जानवरों के मलमूत्र और दूसरे कूड़ेकरकट पर देना पड़ेगा जिनका अभी उतना उपयोग नहीं हो रहा है जितना होना चाहिए। हमारे किसानों के लिए अच्छे सुधरे हुए बीज, सुधरे हुए खेती के तरीकों और सुधरे हुए खेती के औजारों का उपयोग भी सुलभ बनाना चाहिए जिससे उत्पादन बढ़ सके।

इन सब दिशाओं में अनुसन्धान से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनसे लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाएगा। सामुदायिक विकास कार्यक्रम में इस बात पर जोर दिया गया है कि गाँवों में काम करने के लिए उसी प्रकार की संस्थाएँ स्थापित की जायें जैसी अमेरिका तथा अन्य देशों में 'एक्सटेन्शन' अथवा 'एडवाइजरी सर्विसेज' के नाम से काम करती हैं। उनके अनुसार कुछ योजना केन्द्रों में खेती, पशुपालन, सहकारिता आदि विषयों के विशेषज्ञ रखे जाएँगे और इनके अतिरिक्त ग्रामसेवकों की नियुक्ति की जाएगी जिनको कृषि शास्त्र तथा पशुपालन आदि विषयों का पूर्ण ज्ञान रहेगा। ये ग्रामसेवक ही गाँव के लोगों तक इस योजना का सन्देश पहुँचाएँगे। ग्रामसेवक का उद्देश्य यह होगा कि वह लोगों को अनुप्राणित करे और उनमें उत्साह पैदा करे जिससे वे अपने जीवन को अधिक उन्नत कर सकें और उसके लिए जिन चीजों की जरूरत है उनको भी पैदा कर सकें।

एक सामुदायिक योजना के क्षेत्र में प्रायः दो लाख व्यक्ति होंगे जिसका अर्थ यह है कि उनमें से ५० हजार लोग ऐसे होंगे जो काम में लगाये जा सकते हैं। हमारे यहाँ खेती का काम वर्ष में थोड़े ही दिन हुआ करता है। देश के ४/५ भाग में जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं है खेती का काम ३-४ महीने तक रहता है और जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ भी अधिक से अधिक ६ से ८ महीने तक। इसलिए यह मान लेना कि ये ५० हजार लोग प्रायः छः महीने बेकार रहेंगे ठीक ही होगा। खेती का काम पूरे वर्ष लगातार नहीं रहता। बीच का समय ऐसे ही कामों में लगाया जा सकता है जो बीच-बीच में बिना किसी प्रकार की हानि के छोड़े जा सकते हों। मुझे आशा है कि खेती की उन्नति के साथ-साथ इस प्रश्न पर भी पूरी तरह से ध्यान दिया जाएगा जिससे खाली समय का उपयोग किया जा सके। लोग सारे बचे हुए समय का यदि एक-चौथाई भी स्वेच्छापूर्वक अपने सुधार के काम में लगा सकें तो गाँव की स्थिति में आमूल परिवर्तन हो जाएगा।

कोई भी जाति तब तक पूरी उन्नति नहीं कर सकती जब तक उसकी शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए पूरा प्रबन्ध न हो। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ देने पर पूरा जोर दिया जा रहा है। इन योजनाओं में स्वास्थ्य के लिए भी अच्छी व्यवस्था की जा रही है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत अस्पतालों तथा चलते-फिरते दवाखानों की व्यवस्था की जाएगी। आशा की जाती है कि शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का धीरे-धीरे विस्तार किया जाता रहेगा।

हमें जो काम करना है वह कठिन अवश्य है। परन्तु यदि हम सच्चा प्रयत्न करें तो जो छोटा-सा बीज आज हम बो रहे हैं वह समय पाकर एक बड़ा विशाल वृक्ष हो सकता है।

इसलिए सब लोगों से मेरा अनुरोध है कि वे इस प्रयत्न को सफल बनाने में जो कुछ उनसे हो सकता है करें। इन योजनाओं के लिए जो क्षेत्र चुने गये हैं उनको समझना चाहिए कि वे बड़े भाग्यशाली हैं। साथ ही उनको अपने उत्तरदायित्व का भी अनुभव करना चाहिए क्योंकि इन योजनाओं की सफलता पर ही उनका भविष्य निर्भर रहेगा। सरकारी सहायता तथा अमेरिका से मिलने वाली सहायता इस कार्य में सहायक होंगी लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक जनता इस काम को अपना न समझे और यह संकल्प न कर ले कि वह इसे सफल बनाकर ही रहेगी तब तक सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता।

इसको एक महान् सेवा का काम मानकर उत्साह के साथ हाथ में लेना चाहिए। महात्मा गान्धी सार्वजनिक कल्याण के सभी कामों को यज्ञ समझते थे। उसी यज्ञ की भावना के साथ हमें इस काम को भी हाथ में लेना और पूरा करना है। आशा है कि सरकार और लोग इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में एक-दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग से कार्य करेंगे।

संचार-साधन ही उन्नति के सच्चे प्रतीक

यह हमारा सौभाग्य है कि अभी हाल ही में भारतीय रेलों की शताब्दी मनाने के बाद आज हम डाक और तार विभाग की शताब्दी मना रहे हैं। ऐसे समारोहों के समय ही अतीत पर दृष्टिपात करने और भविष्य के सम्बन्ध में आयोजन करने का अवसर मिलता है। वास्तव में यह सौभाग्य की बात है कि यह महत्त्वपूर्ण अवसर ऐसे समय आया है जब हमारी पंचवर्षीय योजना चालू हुई है। दोषरहित आयोजन के लिए अतीत का ठीक-ठीक लेखा-जोखा आंकना अत्यन्त आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि इस शताब्दी और इस सम्बन्ध में की गयी इस प्रदर्शनी से बढ़कर डाक और तार विभाग की प्रगति आंकने का और कोई साधन हो सकता है।

साधारणतः हम जब वैज्ञानिक प्रगति और जीवन के आधुनिक उपकरणों के सम्बन्ध में सोचते हैं, तो इस दृष्टि से भारत को एक नवीन देश समझ लेते हैं। इस धारणा की इस बात से और भी पुष्टि होती है कि हमें स्वाधीन हुए अभी ६ वर्ष ही हुए हैं। वास्तव में यह धारणा भ्रमपूर्ण है और इस भ्रम के निवारण के लिए भारत में डाक-तार विभाग के विकास और प्रगति के बारे में जान लेना अच्छा है।

डाक और तार विभाग की शताब्दी प्रदर्शनी (नयी दिल्ली) के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, १ नवम्बर, १९५३

सौ वर्ष हुए कलकत्ता से, जो उस समय भारत की राजधानी थी, देश के हर कोने में तार भेजने की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ था। वास्तव में इस दिशा में प्रारम्भिक कार्य १४ वर्ष पहले ही हो चुका था। १८३९ में एक अंग्रेज सज्जन ने सरकारी सहायता के बिना अपने आप ही कलकत्ता से डायमण्ड हार्बर की ओर २१ मील लम्बी तार की लाइन बना डाली थी। परन्तु सार्वजनिक उपयोग के लिए तार की पहली लाइन जो कलकत्ता और डायमण्ड हार्बर के बीच डाली गयी, १८५१ में तैयार हुई। इसके बाद के दो वर्षों को परीक्षण काल कहा जा सकता है। १८५३ के अन्त में परीक्षण-काल समाप्त हो गया और तार विभाग के देशव्यापीय प्रसार का आयोजन किया गया। सबसे पहले नवम्बर, १८५३ में कलकत्ता और आगरा के बीच तार की लाइन बनी। तब से आज तक तार व्यवस्था का बराबर विस्तार होता रहा है।

संसार में ऐसे देश बहुत नहीं होंगे जिनके संचार के साधनों का इतिहास इतना पुराना हो। भारत में डाक-तार सम्बन्धी सेवाएँ आरम्भ से ही सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत चलायी गयीं। यह सभी स्वीकार करते हैं कि भारतीय डाक और तार सेवा संसार में सबसे पुरानी सरकार-नियन्त्रित सार्वजनिक सेवा है। इस बात पर हम सभी उचित रूप से गर्व कर सकते हैं।

भारतीय डाक और तार विभाग ने गदरपूर्व काल से जिस प्रकार क्रमिक उन्नति की है वह किसी भी प्रशासन के लिए श्रेयस्कर है। प्रायः यह कहा जाता है कि हमारे अंग्रेज शासकों ने यह कार्य निजी हित की दृष्टि से किया अर्थात् भारत पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ बनाने के लिए किया। कुछ भी हो, निर्माताओं के वास्तविक अभिप्राय की बात को छोड़कर हमें यह मानना ही होगा कि तार की व्यवस्था प्रगति और आधुनिकीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इन सौ वर्षों में भारत ने इतनी प्रगति की है कि उसकी तार की लाइनें दो देशों को छोड़कर संसार भर में सबसे लम्बी हैं। संसार की सबसे ऊँची लाइन भी इसी देश में है, जो सिक्किम में खम्बगांग में स्थित है और जिसकी ऊँचाई १७,५०० फुट है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से डाक और तार के क्षेत्रों में बहुत उन्नति हुई है। इस उन्नति का लक्ष्य ग्राम रहा है। ग्रामों में हजारों नये डाकघर स्थापित किये गये हैं। इस समय २,००० या इससे अधिक की जनसंख्या वाले प्रत्येक ग्राम में डाकघर हैं। संचार मन्त्रालय का लक्ष्य यह है कि प्रत्येक भारतवासी चाहे वह कहीं का रहने वाला हो, निकट-तम डाकघर से तीन मील से अधिक दूर न रहे।

संचार के दूसरे क्षेत्रों-टेलीफोन, बेतार आदि में भी प्रशंसनीय प्रगति हुई है। टेलीफोन एक्सचेंजों को आपसे आप कार्य करनेवाले अर्थात् ऑटोमेटिक बनाया जा रहा है। यह कार्य कलकत्ता में भी आरम्भ कर दिया गया है। दिल्ली, बम्बई, मद्रास आदि अनेक नगरों में ऑटोमेटिक एक्सचेंज पहले से ही काम कर रहे हैं। कलकत्ता के बाद यह कार्य लखनऊ, पटना, जयपुर, अजमेर, ग्वालियर और कोयमुत्तूर में किया जाएगा। कल-कत्ता, बम्बई, मद्रास और दिल्ली में बेतार के शक्तिशाली सम्प्रेषक यन्त्र लगाने की भी

योजना है और तटीय बेतार केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया जाएगा।

हमारे देश का विदेशों के साथ भी समुद्री तार अथवा बेतार के द्वारा सम्बन्ध है। आज प्रायः संसार के सभी कोनों से हम तार इत्यादि पा सकते हैं और कुछ देशों के साथ तो यह सम्बन्ध भी हो गया है कि वहाँ से लिखित वस्तु ही नहीं बल्कि चित्र भी आन की आन में रेडियो द्वारा हमारे पास आ जाते हैं और बाहर भेजे जा सकते हैं। बेतार के चौमुखी विस्तार पर ५७ लाख रुपये व्यय होंगे। बंगलोर स्थित भारतीय टेलीफोन उद्योग फैक्टरी द्वारा टेलीफोन सम्बन्धी साज-समान के निर्माण का काम आरम्भ हो चुका है। चित्तरंजन में टेलीफोन के तार की फैक्टरी भी तैयार होने वाली है और टेलीप्रिण्टर बनाने का कारखाना भी शीघ्र ही स्थापित किया जाएगा।

उन्नति का यह लेखा बहुत सन्तोषजनक है। फिर भी हमें अभी बहुत-कुछ करना शेष है। मुझे प्रसन्नता है कि डाक-तार विभाग इस बात को समझता है और उसे अभी तक प्राप्त की गयी सफलताओं से ही सन्तोष नहीं। इस विभाग का ध्यान उसकी अपनी पंचवर्षीय योजना पर केन्द्रित है। इस योजना के आधार विस्तार और आधुनिकीकरण हैं। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस कार्य के लिए ४८ करोड़ रुपये स्वीकृत किये गये हैं। विस्तार-कार्य में ये योजनाएँ सम्मिलित हैं: ५,००० अथवा इससे अधिक की जन-संख्या वाले प्रत्येक ग्राम में तारघर खोलना, प्रत्येक सबडिवीजन के मुख्यालय में और प्रत्येक थाने में चाहे वह कितना ही बड़ा हो, तारघर खोलना। प्रत्येक जिले के मुख्यालय में और ३०,००० या इससे ऊपर की जनसंख्या वाले प्रत्येक शहर में १९५६ तक एक-एक टेलीफोन एक्सचेंज की व्यवस्था की जाएगी। प्रत्येक सबडिवीजन के मुख्यालय में और २०,००० अथवा इससे ऊपर की जनसंख्या वाले प्रत्येक शहर में ट्रंक टेलीफोन की व्यवस्था की जाएगी। बहुत से सार्वजनिक फोन केन्द्र खोले जाएँगे। डाक-तार विभाग ने कर्मचारियों के कल्याण के लिए भी कार्य करने का संकल्प किया है। विभाग ने उनके रहन सहन को और काम काज की स्थिति को सुधारने और १९५६ तक कर्मचारियों को एक निश्चित संख्या में सरकारी मकान देने का भी निश्चय किया है।

संचार के आधुनिक साधनों के महत्त्व के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तार, टेलीफोन और बेतार के परिणामस्वरूप देश और काल लुप्तप्राय हो गये हैं और यह बात ही आधुनिक युग का सबसे बड़ा लक्षण है। भारत जैसे देश में जहाँ ३५ करोड़ से ऊपर लोग बसते हैं, जिनमें से बहुत से हिमाच्छादित पर्वतों पर, अभेद्य जंगलों में और दूरस्थ झुलसते रेगिस्तान में रहते हैं, संचार के आधुनिक साधन ही वास्तव में उन्नति के सच्चे प्रतीक हैं। इसलिए मैं कहूंगा कि डाक-तार की उन्नति केवल एक विभाग की रुचि की वस्तु नहीं है। इससे प्रत्येक भारतीय का सम्बन्ध है, बल्कि यह कहना चाहिए कि इस महान् देश में जनतन्त्र की सफलता एक हद तक संचार के साधनों के विस्तार पर ही आश्रित है।

नहरों से सिंचाई

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि गंगा नहर शताब्दी महोत्सव के उद्घाटन के लिए मैं यहाँ आ सका। यह नहर भारत की वर्तमान नहरों में शायद सबसे पुरानी है। इस नहर से इस क्षेत्र के लोगों को जो अनेक लाभ पहुँचे हैं और अनाज तथा बिजली के उत्पादन से यहाँ जिस सम्पन्नता के युग का आरम्भ हुआ है, उसके कारण नदियों की उपयोगिता में जन-साधारण का परम्परागत विश्वास और भी दृढ़ हुआ है।

इस देश में नदियों को सदा ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है। आज भी हम नदियों को सिंचाई का और इसके द्वारा धनधान्य की उत्पत्ति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं और उन्हें यातायात का साधन भी समझते हैं। आधुनिक विज्ञान ने नदियों की उपयोगिता में कुछ और वृद्धि कर दी है जिसमें सबसे प्रमुख जलप्रपात द्वारा विद्युत् शक्ति का उत्पादन है।

हमारे देश में नदियों का जाल बिछा हुआ है। मैं समझता हूँ कि सिंचाई की दृष्टि से संसार में भारत का स्थान दूसरा है। केवल एक देश ही हमसे आगे बढ़ा है। भारत की जनता के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण है कि नहरों की इस शृंखला का श्रीगणेश इस देश में गंगा की नहर से हुआ। पुनीत पावन गंगा जो एक प्रकार से हमारे प्राचीन साहित्य और पौराणिक विचारधारा का आधार रही है और जो आज भी भारतीय साहित्य तथा भारतीयों के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों पर छायी हुई है, हमारे इतिहास में एक विशेष स्थान रखती है। अब से हज़ारों वर्ष पूर्व भी यहाँ के लोग गंगा को पावनता का स्रोत और वरदानदात्री मानते थे। इसीलिए आज यदि वास्तव में भारत के सबसे बड़े राज्य के एक भाग ने अपनी सम्पन्नता गंगा की नहर से प्राप्त की है, तो हम यही कह सकते हैं कि पुरातन विचारधारा इतिहास के रूप में प्रगट हुई है। यह तथ्य चाहे एक संयोग-मात्र ही हो, किन्तु हम सबके लिए निश्चय ही इसका महत्त्व है।

सम्भव है कुछ लोग सोचें कि सौ वर्ष पुरानी किसी घटना को इस प्रकार सामने लाकर उत्सव के रूप में मनाने का क्या अभिप्राय है। ऐसी शंका का आधार मानव स्वभाव से अनभिज्ञ और प्रेरणा के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत को ग्रहण न करने की इच्छा ही हो सकता

गंगा नहर शताब्दी महोत्सव (हरिद्वार) के अवसर पर उद्घाटन-भाषण, १० दिसम्बर, १९५४

है। बीती बातों पर विवेकपूर्ण विचार का अपना ही महत्त्व है। इसके द्वारा ही क्रमागत उन्नति सम्भव है। इसीलिए अतीत की सफलताओं को भावी प्रगति की नींव माना जाता है। आप मुझसे सहमत होंगे कि गंगा नहर मानव-कल्याण और वैज्ञानिक विकास, दोनों ही दृष्टियों से एक महान् सफलता है। आज जबकि हम इस सफलता की शताब्दी मना रहे हैं तो अनिवार्य रूप से इससे हमें स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है।

इस अवसर पर हमें उन इंजीनियरों के प्रति भी आभार प्रगट करना चाहिए जिनके परिश्रम और सतत प्रयास के कारण ही यह योजना फलीभूत हो सकी। आज हमें कर्नल कोटले और उनके साथी विदेशी महानुभावों का स्मरण होता है जिन्होंने निजी प्रयत्नों से इस कठिन कार्य को सम्पन्न किया और एक ऐसी नहर का निर्माण किया जो कालान्तर में देश की सिंचाई व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु बन गयी। उन्हीं लोगों के प्रयत्न से रुड़की का थामसन इंजीनियरिंग कालेज तैयार हुआ जिसे हाल ही में इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय का रूप दिया गया है। स्वतन्त्र भारत इंजीनियरिंग के क्षेत्र में इनके मूल्यवान कार्य के लिए इन महानु-भावों के प्रति आभार प्रगट करता है।

आपके मुख्य इंजीनियर महोदय ने जो विवरण अभी पढ़ा है उससे भी यह पता लगता है कि स्वतन्त्रता के बाद सिंचाई सम्बन्धी सुविधाओं का भारत में कितना विस्तार हुआ है। पिछले सात वर्षों में उत्तर प्रदेश ने इस दिशा में जिस गति से प्रगति की है उसे देखकर घोर निराशावादी व्यक्ति भी अपने विचार बदले बिना नहीं रहेगा। आपका उदाह-रण दूसरे राज्यों को प्रेरणा देगा जिससे वे भी आपका अनुकरण कर सकें। जैसा कि विव-रण में कहा गया है, १६०० तक इस प्रदेश में सिंचाई की योजनाओं द्वारा २० लाख एकड़ भूमि ही सींची जाती थी। १६४६ में यह संख्या बढ़कर ६०·२५ लाख एकड़ हो गयी। १६५३-५४ में सिंचाई सम्बन्धी बहुत सी योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने के कारण जिनमें नहरें, नलकूप, तालाब इत्यादि सम्मिलित हैं, यह संख्या बढ़कर ८१ लाख हो गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य इस संख्या को १०४ लाख एकड़ तक ले जाना है। मैं इस प्रगति के लिए राज्य की सरकार को बधाई देना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि पंचवर्षीय योजना में निर्धारित उक्त लक्ष्य को प्राप्त करना अब कठिन नहीं होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि आपके राज्य की सरकार तथा केन्द्रीय सरकार ने सिंचाई की बड़ी योजनाओं पर बल देते हुए छोटी योजनाओं की अवहेलना नहीं की है। इन योजनाओं द्वारा कम व्यय से और थोड़े समय में सिंचाई सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। मनुष्य के कामकाज के दूसरे क्षेत्रों की भाँति सिंचाई के क्षेत्र में भी छोटी और बड़ी योज-नाओं में परस्पर विरोध नहीं। सच तो यह है कि ये योजनाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं। आपने इस बात को ध्यान में रखा है और छोटी योजनाओं को बड़ी योजनाओं के समान ही प्राथमिकता दी है। इसीलिए आप सात वर्ष के अल्पकाल में अपने राज्य के सिंचित क्षेत्र में २० लाख एकड़ भूमि की वृद्धि कर सके हैं।

यह नहर और पावनमयी गंगा जो इसका पोषण करती है, आपके राज्य के लोगों के लिए और अधिक कल्याणकारी हो और यह शताब्दी महोत्सव इस राज्य की सरकार

और प्रजा को मानव-कल्याण तथा रचनात्मक कार्यों की ओर और अधिक प्रेरित करे, भगवान् से यही मेरी प्रार्थना है।

मोकामाघाट में गंगा का पुल

आज यहाँ गंगा के पुल का शिलान्यास करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। बिहार में गंगा पर यह पहला पुल होगा और मैं भली प्रकार जानता हूँ कि इस राज्य के लोगों के लिए यह कितना बड़ा वरदान है और इसके द्वारा कितनी बड़ी आवश्यकता की पूर्ति होगी। मैं इसी राज्य का रहने वाला हूँ और अपने सार्वजनिक जीवन में मुझे बराबर इस राज्य के सभी भागों का दौरा करने का अवसर मिला है। इसलिए मैं निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि इस पुल के निर्माण से बिहार के लोगों को विशेष रूप से और देश के लोगों को साधारण रूप से अनेक सुविधाएँ प्राप्त होंगी।

बिहार के मध्य से होकर गंगा प्राचीन काल से बहती आ रही है और आरम्भ से ही इसके कारण यह राज्य दो भागों में विभक्त रहा है जो मिथिला और मगध के नाम से प्रसिद्ध थे। प्राचीन काल में जबकि यातायात के साधन इतने उन्नत नहीं थे और लोगों को प्रायः महीनों तक लम्बी यात्रा करनी पड़ती थी और जब भारत के सभी भूभागों में आत्म-निर्भरता अर्थ-व्यवस्था का आधार थी, उस समय सम्भव है इस प्रदेश में गंगा पर पुल का अभाव इतना न खलता हो। परन्तु आज के युग में विज्ञान के आविष्कार स्थान तथा दूरी पर विजय पा चुके हैं और यातायात के गतिमय साधनों का बहुत महत्त्व है। इसलिए उत्तर तथा दक्षिण बिहार के बीच सीधा रेल तथा सड़क मार्ग न होना निश्चय ही बहुत बड़ी असुविधा है।

बिहार के इन दोनों भूभागों की अर्थ-व्यवस्था ऐसी है कि अपने पूर्ण विकास के लिए एक भाग दूसरे पर निर्भर करता है। उत्तर बिहार कृषि-प्रधान क्षेत्र है और वहाँ गन्ना तथा खाद्यान्न भारी परिमाण में होते हैं, किन्तु दक्षिण बिहार कोयला, लोहा, ताँबा, अभरक, सीमेण्ट आदि खनिज पदार्थों के लिए प्रसिद्ध है। इन्हीं पदार्थों द्वारा आधुनिक उद्योगों की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। यातायात के साधन दोषपूर्ण होने के कारण उत्तर बिहार के विकास पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि धनबाद से दिल्ली कोयला पहुँचाना गंगा के उस पार उत्तरी बिहार के जिलों में पहुँचाने की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है?

गंगा-पुल का शिलान्यास (मोकामाघाट) करते समय भाषण, २६ फरवरी, १९५६

इस शताब्दी के आरम्भ में इन असुविधाओं का अनुभव किया जाने लगा और तभी मोकामाघाट के निकट नाव द्वारा यात्री और सामान इधर-उधर ढोने के स्थान पर गंगा पर पुल बनाने की चर्चा होने लगी। गंगा के दोनों ओर दो विभिन्न रेल कम्पनियों की गाड़ियाँ चलती थीं। इन कम्पनियों का दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से व्यापारिक था। इसलिए लोगों की सुविधा अथवा देश के यातायात साधनों के विकास की अपेक्षा वे अपने लाभ और साझेदारों के लाभ को अधिक ऊँचा स्थान देती थीं। यही कारण है कि पुल के सम्बन्ध में यद्यपि ४० वर्ष तक सोच-विचार होता रहा किन्तु दूसरे विश्व युद्ध तक कोई निर्णय नहीं किया जा सका। जब कभी यह प्रश्न रेल अधिकारियों के सामने आया, इस पर रेल कम्पनियों के साझेदारों के लाभ-हानि की दृष्टि से ही विचार किया गया। बाद में सरकार ने यद्यपि अधिकांश रेलों को खरीद लिया और वही उनका संचालन करने लगी, किन्तु अभी सरकार ने भूतपूर्व बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे नहीं खरीदी थी। इस कम्पनी के अंग्रेज साझेदारों की हानि के भय से रेलवे बोर्ड कोई साहसपूर्ण कार्यवाही नहीं कर सका।

स्वतन्त्र भारत में आज इस प्रकार के विचार एकदम पुराने जान पड़ते हैं। यह ठीक है कि राष्ट्र के हित में यह आवश्यक है कि रेलों को व्यापारिक ढंग से ही चलाया जाये, परन्तु यातायात के साधनों का समुचित विकास निस्सन्देह एक सर्वोपरि आवश्यकता है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गंगा के पुल सम्बन्धी इस योजना को रेल मन्त्रालय ने उचित प्राथमिकता दी है। हमारे पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश में गंगा ६०० मील तक बहती है और उस राज्य में इस नदी पर छः पुल हैं, किन्तु बिहार में २५० मील तक बहने वाली इस नदी पर यही पहला पुल होगा।

मेरा अभिप्राय उक्त दो राज्यों में किसी प्रकार तुलना करने का नहीं है, केवल इतना ही कहना अभीष्ट है कि गंगा के द्वारा बिहार राज्य दो भागों में बँट गया है जिसके कारण लोगों को यातायात सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी हैं। इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि इस अभाव के कारण ही बहुत हद तक उत्तर बिहार अभी तक औद्योगिक मामलों में काफी पिछड़ा हुआ रहा है यद्यपि वहाँ के लोग परिश्रमी हैं और भूमि असाधारण रूप से उपजाऊ है।

इस नये पुल से पश्चिम बंगाल का उसके उत्तरी जिलों और असम से भी सीधा रेल सम्बन्ध हो जाएगा। भारत के विभाजन के बाद और भूतपूर्व बंगाल रेलवे बन्द हो जाने के कारण उत्तर और दक्षिण बिहार के बीच और कलकत्ता और उत्तर बंगाल तथा असम के बीच सम्बन्ध स्थापित करना बहुत ही आवश्यक हो गया था। सात वर्ष हुए असम रेल लिंक के निर्माण द्वारा इन भूभागों को जोड़ने की दिशा में पहला पग उठाया गया था। इस पुल के निर्माण को उसी दिशा में दूसरा पग कहा जा सकता है। पूर्व भारत की यातायात व्यवस्था में इस पुल का स्थान निस्सन्देह बहुत महत्त्वपूर्ण होगा।

भारत कृषक समाज

देश भर के किसान भाइयों के इस समारोह को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। जब मुझसे इस समारोह के उद्घाटन के लिए कहा गया तो मैंने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। भारत का किसान वह व्यक्ति है जो सदियों से इस देश की रीढ़ रहा है और अब भी है और मैं समझता हूँ कि आगे भी रहेगा। इसके दो कारण हैं। एक तो, उत्पादकों की श्रेणी में किसानों का सर्वप्रथम स्थान है और दूसरे, उनकी देश में भारी संख्या है।

किसान का काम इतने महत्त्व का है कि सारे राष्ट्र को उस पर निर्भर करना पड़ता है। मानव की सबसे पहली आवश्यकता उदर-पूर्ति के लिए अनाज की उपलब्धि है और यह कार्य किसान के ही बल-बूते का है। इसके बाद कपड़े की आवश्यकता होती है। इसके लिए भी रूई किसान ही पैदा करता है और यदि वह चाहे तो चर्खा चलाकर उस समय का उपयोग कर सकता है जो यों ही नष्ट जाता है और इस प्रकार कपड़े के लिए सूत भी तैयार कर सकता है। किसानों के कल्याण का अर्थ देश की जनता के एक बहुत बड़े भाग का कल्याण समझना चाहिए। हमारे देहातों की उन्नति और उनका यथोचित विकास वास्तव में बहुत दूर तक किसानों की उन्नति से बढ़कर और कुछ नहीं। यही कारण है कि देहात-सुधार के सभी कामों की सफलता का मापदण्ड किसान की स्थिति को ही समझा जाता है।

यह प्रसन्नता की बात है कि इस संगठन में केवल खेतिहर लोग ही सम्मिलित नहीं हैं बल्कि उन सब संस्थाओं और वर्गों के प्रतिनिधि भी हैं जिनका खेती से सम्बन्ध है और जिनका दैनिक जीवन में किसानों से सम्बन्ध पड़ता है। हमारे किसान भाइयों का काम कुछ इस प्रकार का है कि अधिकतर उन्हें खेती या उसकी देखभाल के सम्बन्ध में गाँवों में ही रहना पड़ता है। इसलिए ऐसे अवसर जब उनका सम्पर्क दूसरे क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों से हो सके, उन्हीं के लिए नहीं बल्कि दूसरे लोगों के लिए भी मूल्यवान है। एक-दूसरे से मिलना और विचार-विनिमय करना दृष्टिकोण को अधिक विस्तृत बनाने का सर्वो-

भारत कृषक समाज के वार्षिकोत्सव (नयी दिल्ली) के अवसर पर उद्घाटन-भाषण, २ अप्रैल, १९५९

त्तम साधन है। इन दिनों जब कि राष्ट्रीय निर्माण और विकास के कार्य के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनायी और चालू की जा रही हैं, इस प्रकार के सम्पर्क और एक-दूसरे के विचार जानने का विशेष महत्त्व है। इसलिए मैं इस आयोजन का हृदय से स्वागत करता हूँ और इसके संयोजकों को बधाई देता हूँ।

मैं समझता हूँ कि दूसरी बातों के जानने के साथ-साथ एक बात ऐसी है जिसका ज्ञान सहज और सुग्राह्य रूप से किसानों तक पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षित समाज की धारणा यह है कि हमारे देश के किसान रूढ़िवादी हैं और वे अपनी पुरानी रीति-नीति को जल्दी नहीं बदलते, इसलिए उनमें नये विचार अथवा नयी प्रक्रियाओं का प्रचार बहुत कठिन होता है। मैं समझता हूँ कि यह एक अत्यन्त भ्रामक विचार है। यह सच है कि हमारे देश के किसान जब तक किसी बात को भलीभाँति जान नहीं लेते, स्वीकार नहीं करते पर यदि एक बार उन्होंने समझ लिया कि किसी प्रक्रिया व प्रयोग से लाभ हो सकता है और उस पर उनका विश्वास जम जाये तो उसे स्वीकार ही नहीं करते बल्कि जैसा डा० पंजाब राव देशमुख ने कहा है कि जापानी रीति को केवल धान के सिलसिले में ही नहीं बल्कि अन्य फसलों में भी उसका नया प्रयोग करके उन्होंने स्वयं लाभ उठाया है और देश को लाभ पहुँचाया है।

आवश्यकता इस बात की है कि खेती के साथ-साथ गोवंश की भी उन्नति होनी चाहिए क्योंकि हमारी खेती उसी पर निर्भर है। गाय हमको दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि के रूप में पुष्टिकर भोजन देती है। इसके अतिरिक्त खेतों के लिए अच्छी से अच्छी खाद देती है जिसको हम अपने अज्ञान से या तो बिलकुल नष्ट कर देते हैं या उससे जितना लाभ उठा सकते हैं, नहीं उठाते। वह बछड़े देती है जो हल जोतते हैं और गाड़ियों को खींचते हैं। यहाँ तक कि मरने पर वह बहुमूल्य चमड़ा भी दे जाती है और यदि अन्य वस्तुओं का भी ठीक उपयोग करें तो अन्य आवश्यक चीजें भी उसके मृत शरीर से हम पा सकते हैं। मेरा विश्वास है कि यदि हम गो-पालन ठीक से करें तो एक बार फिर इस देश में दूध की नदियाँ बहने लग सकती हैं। इसके लिए कुछ रूढ़ियों को छोड़ना होगा और गाय के लिए समग्र सेवा-भाव को ग्रहण करना होगा, अर्थात् उसको अच्छा पुष्टिकर भोजन देने से लेकर नस्ल-सुधार और मरने पर उसके शरीर से जो कुछ भी लाभ उठाया जा सकता है उसको प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न होना चाहिए। जब तक कृषि-सुधार और गोसंवर्धन के कार्य साथ-साथ नहीं किये जाएंगे तब तक खाद्य समस्या पूरी तरह हल नहीं हो सकेगी। खाद्यपदार्थों में अन्न आवश्यक है पर दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि अर्थात् गोरस भी किसी रूप में कम आवश्यक नहीं।

देश की कृषि अनुसन्धानशालाओं को जो खेती और पशुओं की नस्ल-सुधार आदि का काम बराबर कर रही हैं, उस काम के परिणामों का किसानों में पूरी तरह प्रचार करना चाहिए। तभी देश को इन वैज्ञानिक खोजों का पूरा-पूरा लाभ मिल सकता है। पश्चिमी देशों के परीक्षणों से खेती के क्षेत्र में इन अनुसन्धानों और वैज्ञानिक खोजों का महत्त्व और उत्पादन पर प्रभाव भली प्रकार प्रमाणित हो चुका है। पूर्व में जापान ने वैज्ञानिक

प्रणाली के अनुसार खेती करनी आरम्भ की और इसके फलस्वरूप वहाँ के उत्पादन में कई गुना वृद्धि हो गयी।

इस प्रकार अपने निर्वाह के लिए काफी खाद्यपदार्थ पैदा करने के लिए जिसमें अनाज और गोरस दोनों हैं, किसानों को नयी खोजों से लाभ उठाकर नयी पद्धतियाँ अपनानी चाहिएँ। इस सम्बन्ध में आपके समाज का यह सुझाव कि किसानों को पूसा कृषि अनुसन्धानशाला और राज्यों में स्थित अनुसन्धानशालाओं में कुछ दिन रहने का अवसर दिया जाये, अत्यन्त प्रशंसनीय है। मेरा विश्वास है कि किसानों और हमारे अनुसन्धानकर्ताओं के बीच इस प्रकार के मेलजोल का फल बहुत ही लाभदायक होगा और इस प्रकार किसान लोग सभी वैज्ञानिक खोजों को समझ और देख-भाल कर काम में ला सकते हैं।

भारत कृषक समाज इन सभी खेती और किसान-सम्बन्धी कार्यों में बहुत-कुछ कर सकता है। यह किसानों का अपना संगठन है और अपने कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में वे इस संगठन से पथप्रदर्शन और व्यावहारिक सहायता की आशा कर सकते हैं। आधुनिक युग ने देश के अन्य लोगों की भाँति किसानों के सामने भी अनेक समस्याएँ पैदा कर दी हैं। उन्हें अपनी परम्परागत पद्धतियों और आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालियों में सामंजस्य स्थापित करना है जिससे प्रगति और व्यावहारिकता, दोनों की ही आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। ऐसे समय में पथप्रदर्शन का असाधारण महत्त्व है। मैं समझता हूँ कि इस दिशा में भारत कृषक समाज की स्थापना से एक भारी कमी की पूर्ति हुई है। यह समाज जिसका सर्वप्रथम उद्देश्य किसानों की स्थिति को उन्नत करना, उनके रहन-सहन को अधिक समृद्ध बनाना और उनके जीवन-स्तर को ऊपर उठाना है, भारत सेवक समाज की भाँति एक गैरसरकारी संस्था है।

भारत कृषक समाज ने जिस कार्यभार को संभालने का निश्चय किया है वह विस्तृत और कठिन होते हुए भी अत्यधिक रोचक और रचनात्मक है। इस दिशा में हमारे सामने इतना अधिक काम है कि अनेक कार्यकर्ता अपनी-अपनी योग्यता और सुविधानुसार इसमें हाथ बँटा सकते हैं और इस प्रकार देश के किसानों और समस्त राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

सहकारिता

दिल्ली राज्य केन्द्रीय सहकारी स्टोर के उद्घाटन के लिए आज यहाँ आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह स्टोर दिल्ली नगर और देहात में खोले जाने वाले अनेकों स्टोरों का प्रधान केन्द्र होगा। इस स्टोर के संस्थापक केन्द्रीय कृषि मन्त्रालय और दिल्ली राज्य की सरकार हैं। मुझे विश्वास है कि यह संस्था अपनी कार्य-प्रणाली और जन-साधारण की सेवा द्वारा सहकारिता के क्षेत्र में एक आदर्श प्रस्तुत कर सकेगी।

आधुनिक आर्थिक आयोजन में सहकारिता का क्या स्थान है और इसके क्या लाभ हैं, यह प्रायः सभी लोग जानते हैं और मुझे इसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। हमारी योजनाओं में सहकारिता पर विशेष बल दिया गया है और राज्यों की सरकारों से अनुरोध किया गया है कि जहाँ तक हो सके वे इस आन्दोलन को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, विशेषकर उपभोक्ता वस्तुओं और खेती के क्षेत्रों में चलायें और उसे सफल बनायें। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के केन्द्रीय सहकारी स्टोर खोलने की विशेष व्यवस्था की गयी है। यह स्टोर जो आज खोला जा रहा है, देश में अपने ढंग का तीसरा स्टोर है। इस प्रकार के दो स्टोर बम्बई और मद्रास में खोले जा चुके हैं।

उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन, जिसका आज यहाँ श्रीगणेश किया जा रहा है, जन-साधारण को उचित दामों पर अच्छी चीजें उपलब्ध कराने का उत्तम साधन है। उपभोक्ता, इस स्टोर से दूसरी सुविधाओं की भी आशा कर सकते हैं। एक विश्वस्त स्टोर से, जिसका संचालन और जिसकी व्यवस्था लाभ के लिए नहीं की गयी है, सामान खरीदने के अतिरिक्त आवश्यक चीजें उपभोक्ताओं के घर पर भी पहुँचायी जा सकती हैं। मुझे मालूम हुआ है कि केन्द्रीय सहकारी स्टोर ने ऐसी व्यवस्था पहले से ही कर ली है। मैं इस बात की कल्पना कर सकता हूँ कि यह जन-साधारण के लिए, विशेष रूप से दिल्ली जैसे शहर के लोगों के लिए कितना बड़ा वरदान होगा क्योंकि जीविका का प्रश्न हल करने के बाद यहाँ के साधारण गृहस्थी के लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपने वेतन को लाभदायक मितव्ययतापूर्ण ढंग से कैसे व्यय करे। दिल्ली जैसे विकासोन्मुख नगर के लिए, जहाँ दूर-दूर नित्य नयी बस्तियाँ बसायी जा रही हैं दैनिक जीवन की आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त करना एक समस्या है।

दिल्ली राज्य केन्द्रीय सहकारी स्टोर के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, ४ सितम्बर, १९५९

इस संस्था से दिल्ली राज्य की देहाती जनता को जो लाभ होगा, उसके सम्बन्ध में भी मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। वे अपना उत्पादन शहर तक ले जाये बिना और आर्थिक दबाव से विवश हुए बिना इस संस्था को बेच सकेंगे। जहाँ तक मैं जनता हूँ दिल्ली में घरेलू उद्योगों का उत्पादन बाजार तक पहुँचाने और बेचने की व्यवस्था अभी तक नहीं थी। यही नहीं, देहातों में रहने वाले उपभोक्ता को बीज से लेकर साबुन तक की सभी आवश्यक चीजें खरीदने के लिए शहर जाना पड़ता था और इस प्रकार समय, पैसा और शक्ति का अपव्यय होता था। किन्तु अब वह अपने घर के निकट ही ग्रामीण सरकारी स्टोरों से सभी आवश्यक चीजें ले सकेगा। इस प्रकार उत्पादन और उपभोक्ता का परस्पर प्रत्यक्ष सम्पर्क हो जाएगा और इस सम्पर्क से दोनों ही लाभ उठा सकेंगे।

इस प्रकार के सहकारी स्टोर खोलने से इनके संचालकों पर एक भारी उत्तरदायित्व आता है। दिल्ली में इस प्रकार के स्टोर खोले जाने का यह पहला अवसर नहीं है। पिछले वर्षों में भी इस प्रकार के कई स्टोर खोले गये थे, परन्तु मुझे पता लगा है कि उनमें से बहुत से खुलने के कुछ देर बाद ही बन्द हो गये। इस असफलता का प्रमुख कारण यह था कि छोटे स्टोरों में चीजों के वितरण का सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं था। यह काम एक बड़ा स्टोर ही कर सकता है। मुझे विश्वास है, आपने यह कमी दूर कर दी होगी। आपके स्टोर की सफलता पर और इसके द्वारा जन-साधारण की जैसी सेवा होगी उस पर ही दिल्ली राज्य में सहकारिता की सफलता निर्भर करेगी। इस क्षेत्र में साधारणतः हमें काफी अनुभव है और हम यह भी जानते हैं कि सहकारिता की सम्भावनाएँ असीम हैं। इसलिए मेरा विश्वास है कि आप लोग इस बात के लिए बराबर सावधान रहेंगे कि लोगों को इस स्टोर से अधिक से अधिक लाभ पहुँचे और सहकारिता आन्दोलन की उपयोगिता की पुष्टि हो।

गो-सेवा

भारतीय पंचांग में गोपाष्टमी एक महत्त्वपूर्ण दिन है जो प्रतिवर्ष हमें हमारी आर्थिक व्यवस्था में गो-धन के महत्त्व का स्मरण कराता है। देश के जीवन में गोधन के ऊँचे स्थान को ध्यान में रख कर ही हमारे पूर्वजों ने इस दिन को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाने का निश्चय किया था। गोधन की पूजा प्राचीन काल से इस दिन की विशेषता रही है। दुर्भाग्य से कालान्तर में हम इस पर्व के वास्तविक उद्देश्य को भूल गये और गाय की पूजा-मात्र से सन्तुष्ट होने लगे। इस पर्व के महत्त्व के विषय में जनता को ठीक रूप से

गोसंवर्धन दिवस के अवसर पर नयी दिल्ली से प्रसारित भाषण, ६ नवम्बर, १९५६

अवगत कराने और पशुपालन में जनसाधारण की रुचि पैदा करने के उद्देश्य से स्वाधीनता के बाद गोपाष्टमी को राष्ट्रव्यापी उत्सव के रूप में मनाने का निश्चय किया गया।

१९५०-५१ के अनुमान के अनुसार गोधन के द्वारा राष्ट्र की आय ९६० करोड़ रुपये थी। यही कारण है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत रखे गये विकास कार्यक्रम में पशुपालन और नस्ल-सुधार को इतना ऊँचा स्थान दिया गया है। जबकि पहली योजना में इस मद पर २२ करोड़ व्यय करने की व्यवस्था थी, दूसरी योजना में पशुपालन और दुग्धशाला आदि के लिए ५६ करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गयी है। यदि हम देहातों में रहने वाली देश की अधिकांश जनता को पूर्ण लाभ पहुँचाना चाहते हैं तो हमें पशुपालन और पशुओं के नस्ल-सुधार के काम को अधिक महत्व देना पड़ेगा।

साधारणतया हमारे देश में गाय को आदर की दृष्टि से देखा जाता है, किन्तु इस आदर का आधार धार्मिक भावना है, जीवन में गाय की व्यावहारिक उपादेयता नहीं। धार्मिक भावना से इसका सम्बन्ध जोड़ने में भी मुझे कोई हानि नहीं दिखायी देती, किन्तु केवल इसी विचार से गो-सेवा का व्रत लेना और व्यावहारिक उपयोगिता को कोई स्थान न देना गोपाष्टमी की प्राचीन परम्परा के लिए घातक है। यदि हम इस पर्व के मनाने को सार्थक करना चाहते हैं तो हमें गाय की देखरेख और पशुपालन को एक व्यवसाय का रूप देना होगा अथवा इसका आधार आर्थिक मानना होगा और इसकी व्यवस्था लोगों के आर्थिक कल्याण की दृष्टि से करनी होगी। भावुकता में बुद्धि का पुट मिलाने से हम गोपाष्टमी-पर्व की सार्थकता में ही वृद्धि नहीं करेंगे बल्कि अपनी धार्मिक भावना की भी अधिक रक्षा कर सकेंगे।

हमारे देश के प्रायः सभी भागों में पिंजरापोल और गोशालाएं धर्मार्थ संस्थाओं के रूप में चलायी जाती हैं। इस कार्य में प्रायः आर्थिक दृष्टिकोण को स्थान नहीं दिया जाता। हमें इस कार्य-प्रणाली को बदलना होगा और गाय तथा दूसरे घरेलू पशुओं की देखरेख आदि के लिए हम जो कुछ भी करते हैं उसका आधार आर्थिक बनाना होगा। मैं नहीं समझता कि यह काम किसी भी प्रकार से असम्भव या कठिन है। हमें इसे वैज्ञानिक ढंग से करना होगा जिससे सभी चीजों का पूर्ण उपयोग हो सके और कोई भी चीज नष्ट या व्यर्थ न जाने पाये। गो-धन से हमें जो चीजें प्राप्त होती हैं उनमें सबसे पहले बैल आते हैं, जो भार ढोने और हल जोतने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। खाद और बहुमूल्य चमड़े का साधन भी पशुधन ही है। लेकिन सबसे बढ़ कर गाय से हमें दूध के रूप में पौष्टिक खाद्य प्राप्त होता है। इसलिए हमारा उद्देश्य गो-धन की उचित देखरेख और पशुओं की नस्ल में सुधार करने का होना चाहिए जिससे हमें ये सब चीजें उत्तम कोटि की और अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकें।

मैं केन्द्रीय गोसंवर्धन परिषद् के प्रयत्नों की सराहना करूंगा कि उन्होंने जन-साधारण का ध्यान गो-धन के सुधार की दिशा में आकृष्ट करने का निश्चय किया है। यदि हम पशु-पालन और पशु-सुधार के कार्य का आधार आर्थिक बना सकें तो निश्चय ही गोसंवर्धन परिषद् को अपने काम में यथाशीघ्र सफलता मिलेगी।

आदिमजातियों का विकास

मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता है कि आप लोग जो आदिमजातियों के हित में अपने-अपने तरीकों से कार्य करने में रत रहे हैं और जिन्हें आदिमजातियों की सेवा करने का प्रयास करने वालों के सामने आने वाली समस्याओं से अब तक काफी परिचय हो गया है, आज इस सम्मेलन में इस विचार से समवेत हुए हैं कि इस महान् समस्या पर सम्मिलित रूप से विचार किया जा सके और आदिमजातीय लोगों की सेवा के लिए एक समन्वित योजना तैयार की जा सके।

भारत के संविधान ने देश की सरकार का यह अनिवार्य कर्त्तव्य विहित कर दिया है कि वह इस समस्या पर विशिष्ट ध्यान दे। अपने इस अनिवार्य कर्त्तव्य का पालन करने के लिए सरकार ने इस कार्य की देख-भाल के हेतु एक विशिष्ट पदाधिकारी नियुक्त किया है। आप सब लोग श्री लक्ष्मीदास श्रीकान्त को जानते हैं। आदिमजातियों के हितार्थ कार्य करना उनके जीवन का उद्देश्य है और अब तक रहा है। किन्तु यह समस्या इतनी उलझी हुई और जटिल है कि इसके लिए अनेक विचारवान व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है और इसलिए आज आप यहां एकत्रित हुए हैं जिससे आप इस समस्या के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने तथा इसको शीघ्र सुलझाने के लिए प्रभावी कार्यक्रम तैयार करने में अपना महत्त्वपूर्ण अंशदान कर सकें।

भारत में अनुसूचित आदिमजातियों के नाम से ज्ञात लोगों की जनसंख्या लगभग २ करोड़ है। वे समस्त देश में फैले हुए हैं। किन्तु उनकी जनसंख्या का बड़ा भाग बिहार, बम्बई, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, मध्यभारत, मद्रास और राजस्थान के राज्यों में है। उनसे सम्बन्धित अनेक समस्याएं हैं जिनका सहानुभूतिपूर्ण और समझ-बूझ से हल करना आवश्यक है। वे देश की अन्य जनसंख्या से बहुत बातों में भिन्न हैं। उदाहरणार्थ उनकी भाषाएं विभिन्न हैं, उनके रीति-रिवाज भिन्न हैं, उनके रहन-सहन का तरीका अलग है और साधारणतया यह कहा जा सकता है कि वे इन विभेदों के कारण अन्य लोगों से सहज में ही अलग पहचाने जा सकते हैं। परस्पर भी वे लोग एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। विभिन्नताओं के कारण उनकी समस्या को सुलझाना कठिन हो जाता है।

संसद् भवन में आदिमजाति सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, ७ जून, १९५२

वे देश के अनेक भागों में जंगल भरे पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं और इसलिए उन तक पहुँचना सरल बात नहीं है। इस कारण भी वे समाज के अन्य लोगों से न्यूनाधिक अलग बने रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि वे लोग शिक्षा में अन्य लोगों से पिछड़े हुए हैं और उनकी आर्थिक स्थिति भी खराब है। कुछ स्थानों में तो उन्होंने खेतीबाड़ी आरम्भ कर दी है किन्तु अनेक स्थानों में वे अभी स्थायी दृष्टि से कृषक नहीं हो गये हैं। वे जो कुछ खेती-बाड़ी करते हैं वह भी बहुत ही पुराने युग की सी है। उनके यहाँ कातने-बुनने की किस्म के कुछ कुटीर उद्योग हैं और कुछ आदिमजातियाँ तो बुनावट में बड़े ही सुन्दर डिजाइन डाल लेती हैं। ये साफ-सुथरे और खूबसूरत बने हुए घरों में रहते हैं। उनका रहन-सहन सादा है किन्तु साथ ही बहुत ही कलात्मक भी है। जिन प्रदेशों में जाड़ा-बुखार होता है उनके अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में उनका स्वास्थ्य उनके सादा जीवन और खुली हवा में रहने के कारण अच्छा होता है।

सामान्यतः जीवन की आधुनिक सुविधाओं में से उन्हें कोई भी प्राप्त नहीं है। संसार के विभिन्न देशों में ईसाई धर्मप्रचारकों तथा संस्थाओं ने उनमें काफी काम किया है। उन्होंने उनमें शिक्षा का प्रसार किया है और उनकी रहन-सहन की स्थिति में भी सुधार करने में काफी सहायता की है। ईसाई धर्मप्रचारक अच्छी संख्या में उन्हें ईसाई बनाने में भी सफल हुए हैं। आस-पास की जनसंख्या में घुलमिल जाने की एक अन्य अज्ञात और सम्भवतः अदृष्ट क्रिया भी बराबर चलती रही है और विशेषतया जिन प्रदेशों में वे रहते हैं उनके छोर वाले क्षेत्रों में आज भी ऐसे लोग बसे हुए हैं जिनमें से अनेक किसी न किसी समय वहाँ की आदिमजातियों की जनसंख्या के भाग अवश्य रहे होंगे। किन्तु वे लोग उस प्रदेश के समाज में इस प्रकार आत्मसात् हो गये और घुलमिल गये हैं कि अब यह सम्भव नहीं कि उन लोगों को वहाँ के अन्य लोगों से अलग पहचाना जा सके।

मेरा अपना यह विश्वास है कि आदिमजातियों और अन्य भारतीयों के बीच बहुत काफी रक्त-अभिमिश्रण हुआ है और यदि कोई यह कहे कि उदाहरणार्थ तथाकथित बिहार के हिन्दुओं की उच्च जातियों में से अनेकों में ऐसा अभिमिश्रण नहीं हुआ है तो वह सचमुच में ही अनुचित साहस करने का दोषी होगा। ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो अपने स्वार्थ के लिए इन लोगों के शिक्षा में पिछड़े होने के कारण इनका शोषण करने में रुकते नहीं। अतः हमें जिस समस्या को बड़े पैमाने पर हल करना है वह यही है कि हम ऐसी सुविधाएँ पैदा करें जिनसे ये आदिमजातियाँ शिक्षा और आर्थिक विकास के क्षेत्र में अन्य लोगों के स्तर पर आने में समर्थ हो सकें।

प्रश्न यह उठता है कि हम उनके लिए किस प्रकार की उन्नति और प्रगति चाहते हैं। क्या यह वांछनीय नहीं है कि उन्हें ऐसी सुविधाएँ प्रदान की जायें जिनसे वे अपनी रीति-रिवाजों, रहन-सहन और संस्कृति को बनाये रख कर भी अपना आर्थिक और अन्य प्रकार का विकास कर सकें? चाहे जो कोई भी तरीका अपनाया जाये, एक बात तो मान ही लेनी है और हर हालत में उस पर चलना है। वह यह है कि धर्म, भाषा, रहन-सहन, अथवा रीति-रिवाजों की दृष्टि से उन पर किसी चीज को लादने का विचार या अभिप्राय

न तो हो सकता है और न होना ही चाहिए। यह बात बिलकुल न्यायसंगत नहीं हो सकती कि हम उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी उन पर लावें।

मेरा अपना विचार है कि हमें उनकी शिक्षा और उनके आर्थिक जीवन में साधारण दृष्टि से सुधार के लिए उन्हें सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिएँ और यह बात उन पर छोड़ दी जाये कि वे अपने चारों ओर के समाज से घुलमिल जाना या आत्मसात् हो जाना चाहते हैं अथवा अपना अलग आदिमजातीय अस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं। अपने यहाँ की रहन-सहन की विभिन्नताओं के कारण भारत में आदिमजातियों के लिए इस बात के लिए पर्याप्त अवसर है कि यदि वे ऐसा चाहें तो वे अपना पृथक् सामाजिक अस्तित्व बनायें रखें। किन्तु यदि उनको ऐसा लगे कि उनके अपने ही हित की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि वे इस प्रकार घुलमिल जायें तो दूसरे लोगों की ओर से बिना किसी महत् प्रयास के वे स्वयं ही ऐसा कर लेंगे। उनकी सेवा किसी विशिष्ट वर्ग, धर्म अथवा अन्य समूह में उन्हें मिला देने के किसी भी विचार से प्रभावित न हो कर ही की जाये। इसी रीति से हम उनके विश्वासपात्र बन सकते हैं और यह तो आवश्यक ही है कि उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए और शिक्षा की दृष्टि से उनमें सुधार करने के लिए सर्वप्रथम उनका विश्बास प्राप्त किया जाये।

संविधान के अनुसार हमें उनकी विशिष्ट देखभाल करनी है और उनकी सहायता के लिए धन व्यय करना है। जैसा कि मैंने कहा, यह समस्या एक राज्य से दूसरे राज्य में विभिन्न न होगी वरन् एक राज्य के ही एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भी विभिन्न होगी और विभिन्न स्थानों में इसको सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के हल निकालने होंगे। अतः यह सम्भव नहीं कि साधारण बातों के अतिरिक्त अन्य बातों के लिए भी कोई एक ही कार्यक्रम बना दिया जाये जो सबको स्वीकार्य हो और जो सबके लिए वांछनीय हो। मैं साधारण बातों के सम्बन्ध में निम्न कार्यक्रम आपके सामने रखना चाहता हूँ जो इस समस्या के अध्ययन के पश्चात् और उनमें जो काम किया जा रहा है उस काम के साथ सम्पर्क रहने के कारण बनाया गया है :

१. सर्वप्रथम और सर्वोपरि जो बात हमें करनी है, वह यह है कि हम निम्नतम श्रेणी से लेकर उच्चतम श्रेणी तक की शिक्षा के प्रसार को प्रोत्साहन दें। इस बारे में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा वे पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में होंगी अन्यथा इस बारे में होंगी कि वे पाठ्य-पुस्तकें किस भाषा में लिखी जायें। व्यक्तिगत दृष्टि से मेरा यह विचार है कि निम्नतम कक्षाओं में तो वह केवल बालक की मातृभाषा ही हो सकती है। यदि उसमें ऐसी पुस्तकें नहीं हैं तो वे तैयार की जानी चाहिएँ। यदि कोई लिपि नहीं है तो किसी प्रचलित लिपि को अपना लेना चाहिए। अन्य बालकों की भाँति ही आदिमजातियों के बालकों को भी दो लिपियों से परिचित करना होगा। एक लिपि तो उस भाषा की होगी जो उनके चारों ओर बोली जाती है और दूसरी हिन्दी लिपि। संविधान के अनुसार भारत की लिपि हिन्दी होने वाली है। सम्भवतः यह वांछनीय

होगा कि सब आदिमजातियों की भाषा के लिए हिन्दी लिपि को ही अपना लिया जाये क्योंकि आदिमजातीय लोगों को अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिए किसी न किसी अवस्था में हिन्दी तो सीखनी ही होगी और उनकी अपनी किसी लिपि के अभाव में यह कहीं अच्छा है कि उनकी भाषा उस लिपि को अपनाये जो सर्वाधिक व्यापक लिपि होने वाली है और जो वास्तव में आज भी देश में सर्वाधिक व्यापक लिपि है। मेरा यह भी विचार है कि उनके लिए बुनियादी शिक्षा बहुत उपयुक्त होगी और जहाँ कहीं भी शिक्षा का कोई कार्यक्रम आरम्भ किया जाना है वहाँ बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम से आरम्भ करना श्रेयस्कर होगा। उनमें से गरीब लोगों को इन शिक्षा संस्थाओं से लाभ उठाने के लिए समर्थ बनाने की दृष्टि से यह उचित है कि उनको न केवल निःशुल्क शिक्षा दी जाये और किताबें ही बिना मूल्य के दी जायें, वरन् यह भी आवश्यक है कि उन्हें छात्रावासों में भी स्थान दिये जायें और जहाँ तक सम्भव हो उनको बड़ी मात्रा में छात्रवृत्तियाँ दी जायें क्योंकि इस क्षेत्र में भी उनको अभी बहुत कुछ कमी पूरी करनी है।

२. मैं यह समझता हूँ कि उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उनको भूमि पर बसाने के प्रयास करने चाहिएँ। कुछ स्थानों पर तो उन्होंने स्थायी दृष्टि से खेतीबाड़ी करनी आरम्भ कर दी है। उनको इस सम्बन्ध में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और यह बात यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो कर ही देनी चाहिए कि अन्य लोग वह भूमि उनसे धोखे से न ले लें जिस पर वे बसे हुए हैं और जिस पर वे खेतीबाड़ी कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि कुछ स्थानों में भूमि को छीनना या तो निषिद्ध है या सीमित कर दिया गया है। साधारणतया यही कानून होना चाहिए। हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं बहुत अधिक कठोर प्रतिबन्धों से उनके हृदय से भूमि के स्वामित्व की भावना ही दूर न हो जाये। उनको अपने वन्य जीवन से बहुत मोह है और उन्हें वनों से बहुत लाभ भी है। राष्ट्रीय निधि के रूप में वनों की आवश्यकता है और उन्हें बनाये रखने की आवश्यकता है। किन्तु जहाँ यह ठीक है वहीं इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें उन सुविधाओं से वंचित न कर दिया जाये जिनका कि वे अब तक उपभोग करते रहे हैं और जिनसे उनको काफी सहायता मिलती है। अनेक ऐसी आदिमजातियाँ हैं जो स्थायी रूप से अब तक कृषि में नहीं लगी हैं और जो बढ़िया कृषि कर लेती हैं। इस बात का प्रयास करना चाहिए कि उन्हें भूमि पर बसा दिया जाये और बढ़िया खेती को प्रोत्साहन दिया जाये। इसके लिए उन्हें केवल प्रोत्साहन देना ही पर्याप्त न होगा बलिक प्रमाण की भी आवश्यकता होगी जिससे वे लोग यह देख सकें कि अपेक्षाकृत स्थायी कृषि ही अधिक लाभदायक हो सकती है। वित्तीय और अन्य लाभकारी आवश्यकता देकर उनको इस प्रकार के स्थायी जीवन में लगने के लिए तैयार करने का प्रयास करना चाहिए।

३. सरकार को उन्हें लोक सेवाओं की ऐसी नौकरियाँ देने के लिए कदम उठाने चाहिएँ जिनके लिए उनमें से न्यूनतम योग्यता वाले उम्मीदवार प्राप्त हैं।

४. उनकी कलात्मक अभिरुचि और उनकी स्वाभाविक क्षमता से लाभ उठाकर राज्य को उन्हें ऐसे धन्धों में लगाकर प्रोत्साहन देना चाहिए जो उनके योग्य हों। यदि उन्हें शिक्षा

और प्रोत्साहन दिया गया तो कोई कारण नहीं कि वे अन्य लोगों से किसी धन्धे में पीछे रहें। शिक्षा के विषयक्रम में उनको धन्धों की आवश्यक शिक्षा देने के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। उच्च शिक्षा की दिशा में भी उनको प्रोत्साहन देना चाहिए।

५. अपनी सामाजिक और अन्य समस्याओं को हल करने के लिए उनके अपने आदिमजातीय संगठन हैं। इन संगठनों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे विभिन्न राज्यों द्वारा आरम्भ और पोषित की जाने वाली पंचायतों के साथ-साथ चलें। उनकी जनसंख्या देश के विशिष्ट भाग में बहुत केन्द्रित है इसलिए ये पंचायतें अधिकतर ऐसी होंगी जिनके वे ही लोग कार्यकर्ता होंगे और यह बिलकुल सम्भव है कि वे लोग कानून के अधीन रह कर उन्हें अपने विचारों के अनुकूल ही चलाएंगे। मेरा विचार है कि ऐसा करने के लिए भी उनको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

६. इन सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि ऐसे प्रयत्न करने चाहिएं जिनसे उनके मन में यह भावना पैदा हो कि वे राष्ट्र के आवश्यक और अविच्छिन्न अंग हैं और देश के किसी भी अन्य समुदाय या वर्ग की भाँति उनको भी अपना कर्त्तव्य पूरा करना है।

यह सम्मेलन इस व्यापक समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने जा रहा है और मुझे यह मालूम हुआ है कि इस बात पर विशेषरूप से विचार किया जाएगा कि सरकार जो अनुदान दे रही है उसका सर्वोत्तम रूप से किस प्रकार से उपयोग किया जाये। मैं यह बात इस सम्मेलन के सदस्यों पर छोड़ता हूँ कि वे इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें और सुझाव दें कि उन सबको सर्वोत्तम सेवा कैसे की जा सकती है।

पिछड़े वर्गों की उन्नति

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हम एक ऐसा आयोग नियुक्त करने जा रहे हैं जो उन लोगों की सूची तैयार करेगा जिन्हें हम कुछ विशेष सुविधाएँ देना चाहते हैं। हमारा उद्देश्य उन लोगों की उन्नति करने का है। प्रत्येक देश में लोग कई वर्गों में बंटे हुए होते हैं। उनमें से कुछ आगे रहते हैं और कुछ पिछड़े हुए रह जाते हैं। इसलिए हमारे संविधान में इस बात का आरम्भ में ही ध्यान रखा गया कि यथासम्भव देश के सब लोगों का विकास हो और सबको समान अवसर तथा सुविधाएँ देने की व्यवस्था की जाये।

हम एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमें जाति-पाँति अथवा वर्ग के आधार पर भेद-भाव न हो। आज इस देश में ऐसा भेद-भाव विद्यमान है। इन भेद-भावों

राष्ट्रपति भवन में पिछड़े वर्ग आयोग के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, १८ मार्च, १९५३

को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि हम सबको एक समान स्तर पर ले आयें। हम लोग इसी प्रयत्न में लगे हुए हैं। भारत के संविधान में कुछ लोगों को अनुसूचित आदिम-जातियाँ और कुछ लोगों को अनुसूचित जातियाँ घोषित किया गया है। इन दोनों के अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा भी है जो पिछड़ा वर्ग कहलाता है। इस वर्ग के लोगों को भी कई प्रकार की सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ और तभी उनका विकास हो सकेगा। इसी कार्य के लिए यह आयोग नियुक्त किया जा रहा है।

यों तो सारे देश में गरीबी है। अन्य देशों की तुलना में हमारा देश बहुत सी-बातों में बहुत पिछड़ा हुआ है। हमारा उद्देश्य उन सबको एक समान स्तर पर ला देना है। सरकार ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों की तो सूचियाँ तैयार करवायी परन्तु पिछड़े वर्ग के लोगों की सूची तैयार नहीं हो सकी। इसलिए हमारे पास कई स्थानों से इस आशय के प्रार्थनापत्र आये कि तैयार की गयी सूची में अमुक व्यक्तियों को स्थान प्राप्त नहीं हुआ है और उनको या तो इन सूचियों में सम्मिलित किया जाये अथवा उनकी एक अलग सूची तैयार करवायी जाये। अधिकांश प्रार्थनापत्र इसी आशय के आये कि उन लोगों को इन सूचियों में ही सम्मिलित कर लिया जाये। सरकार ने जो सूचियाँ तैयार की हैं उनसे मालूम होता है कि भारत में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या ५,१३,५०,००० है और अनुसूचित आदिमजातियों की जनसंख्या १,६१,३६,००० है। पिछड़े वर्गों के लोगों की सूची तैयार करने का काम अब इस आयोग को सौंपा गया है।

सरकार ने अभी हाल ही में एक सूची उन लोगों की तैयार की जिन्हें भारत सरकार की ओर से छात्रवृत्तियाँ आदि दी जाती हैं। इस सम्बन्ध में भारत सरकार न सब राज्यों से अनुसूचित जातियों तथा आदिमजातियों की सूचियाँ मँगायी जिससे इस बात का निर्णय किया जा सके कि ये छात्रवृत्तियाँ किस-किस जाति के लोगों को दी जायें। राज्यों से जो सूचियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे मालूम होता है कि पिछड़े वर्ग के लोगों की कुल जनसंख्या ७,८६,१५,००० है। इस प्रकार देश की ३६ करोड़ की जनसंख्या में से १४ करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जो इन सूचियों के अनुसार अब तक पिछड़े हुए समझे जाते हैं। इनमें से कुछ पिछड़े वर्ग के, कुछ अनुसूचित जातियों के तथा कुछ अनुसूचित आदिमजातियों के हैं। भारत में जितनी जातियाँ हैं, उनकी संख्या सुनकर आप आश्चर्यचकित हो जाएँगे। अब तक सरकार के पास १,३३१ जातियों के नाम आये हैं। इनके लिए यह अनुरोध किया गया है कि इनकी गणना पिछड़े वर्ग के लोगों में की जाये। इससे हम समझ सकते हैं कि इस आयोग के सामने कितना बड़ा काम है। हमारा उद्देश्य यह है कि इन सबको एक समान स्तर पर लाकर इन जातियों की संख्या जितनी कम कर दी जाये, उतना ही अच्छा है।

जैसा अभी-अभी काका साहब कालेलकर ने कहा, यह भेदभाव देश से जितनी जल्दी मिटाया जा सके उतना ही हमारे हित में होगा। हमारे यहाँ अनुसूचित जातियों के जितने लोग हैं और उनकी जितनी जातियाँ हैं, वे सब मिलाकर यदि एक अनुसूचित जाति के अन्तर्गत रखी जायें तो यह एक बहुत बड़ा काम होगा। इसी प्रकार यदि विभिन्न आदिमजातियों के लोगों को भी एक ही अनुसूचित आदिमजाति के अन्तर्गत ला दिया जाये तो यह भी विकास

की ओर एक बहुत बड़ा कदम होगा। इनके अतिरिक्त विभिन्न पिछड़े वर्गों के लोगों को भी मिलाकर एक जाति का रूप देना देश के लिए हितकर होगा। तब हमारा काम बहुत सरल हो जाएगा।

मैं चाहता हूँ कि यह आयोग अपने सामने इसी उद्देश्य को रखे कि इन सब जातियों के लोगों को मिलाकर उनके पारस्परिक भेद को यथासम्भव शीघ्र दूर कर दिया जाये। तभी इस देश की उन्नति हो सकेगी। किसी भी जाति के लोगों को यह कहने का अवसर नहीं मिलना चाहिए कि उनको पूरी सुविधा तथा पूरे अवसर न मिलने के कारण ही उनका विकास नहीं हो सका है। सबको बराबर की सुविधाएँ मिलें और समान अवसर प्राप्त हों। इसमें कुछ समय अवश्य लगेगा। हमारा प्रयत्न यह होगा कि जो पिछड़े हुए हैं वे आर्थिक दृष्टि से दूसरों के समान स्तर पर आ जायें जिससे कोई पिछड़ा हुआ न रहे।

मैं आशा करता हूँ कि आयोग अपने उद्देश्य को पूरा करने में किसी भी प्रकार की कसर न उठा रखेगा। इसके अध्यक्ष पद पर काका साहब कालेलकर को नियुक्त करके, मैं समझता हूँ, हमने ठीक ही किया है। मुझे आशा है कि यह आयोग जब अपना प्रतिवेदन देगा तो सरकार उसको पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने का प्रयास करेगी। इस कार्य को हम सबको मिलकर करना है। मेरी कामना है कि यह आयोग अपने उद्देश्य में सफल हो।

आदिवासी और सामूहिक कृषि

मैं आपके यहाँ बहुत उत्सुकता के साथ इसलिए आया हूँ कि मैं अपनी आँखों से यह देख सकूँ कि यहाँ क्या-क्या हो रहा है और क्या करने का विचार है। स्वागताध्यक्ष जी ने अपने भाषण में अभी दिग्दर्शन कराया कि यहाँ क्या तो आप करने जा रहे हैं, क्या-क्या सरकार की ओर से किया जा रहा है और किन चीज़ों की कमी है। मैं इन सब चीज़ों के सम्बन्ध में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जहाँ तक मुझे मालूम है, आपकी राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार दोनों इस बात के लिए तत्पर हैं कि आदिवासियों की उन्नति के लिए यथेष्ट और प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किये जायें।

जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ और हमको स्वतन्त्र संविधान बनाने का अवसर मिला तो हमने उस संविधान में इस बात का ध्यान रखा कि जो पिछड़े हुए लोग हैं, उनको आगे बढ़ाना और दूसरों के समान स्तर पर ला देना हमारा पहला कर्त्तव्य है। इसीलिए

आदिवासी सम्मेलन (राजेन्द्रगाँव, विन्ध्य प्रदेश) के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, ३० मार्च, १९५३

संविधान में कुछ ऐसी विशेष धाराएँ रखी गयीं जिनके अनुसार पिछड़े हुए लोगों को आगे बढ़ाने का भार हमारे ऊपर आया। पिछड़े हुए लोगों में तीन प्रकार के लोग हैं। कुछ लोग तो वे हैं जो अछूत माने जाते हैं। अस्पृश्यता दूर करने के लिए महात्मा गान्धी ने इतना बड़ा प्रयत्न किया और आज ईश्वर की दया से वह बहुत सीमा तक कम होती भी जा रही है और आशा की जाती है कि दूर हो जाएगी। दूसरे लोग, जो पिछड़े हुए समझे जाते हैं, आदिमजाति के लोग हैं। ये सारे भारतवर्ष में अलग-अलग स्थानों में फैले हुए हैं, विशेषकर पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में। इनकी संख्या देश में प्रायः दो करोड़ है। ३६ करोड़ में यदि २ करोड़ व्यक्ति इस प्रकार पीछे रह जायें तो वह हमें शोभा नहीं देता। उनकी उन्नति करना हमारा परमावश्यक काम है। उनके अतिरिक्त कुछ वे लोग हैं जो इन दोनों से अलग परन्तु वे भी किसी कारणवश औरों की तुलना में पीछे हैं। इन सबके लिए हमारे संविधान में अलग-अलग व्यवस्था की गयी है।

जहाँ तक आदिवासियों का प्रश्न है उनके लिए विधानमण्डलों और संसद् में स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। इन स्थानों के लिए वे अपने प्रतिनिधि चुनते हैं जो वहाँ जाकर उनके सुख-दुख को रख सकते हैं और वहाँ से उनकी भलाई के लिए कुछ करवा सकते हैं। आज दिल्ली में जो संसद् है और सभी राज्यों में जो विधानमण्डल हैं, उन सबके सदस्यों में आदिवासियों के प्रतिनिधि भी हैं और उनको वही अधिकार प्राप्त हैं जो और किसी दूसरे प्रतिनिधि को। इसके अतिरिक्त आदिवासियों के सम्बन्ध में विशेषकर असम में जहाँ उनकी संख्या बहुत अधिक है और जो अन्य स्थानों के आदिवासियों से कुछ भिन्न भी हैं, उनको कुछ विशेष सुविधाएँ दी गयी हैं। अन्य स्थानों में जैसी वहाँ स्थिति है, उस स्थिति के अनुसार प्रबन्ध करने के लिए आदेश दे दिये गये हैं। मैं समझता हूँ कि प्रायः सभी राज्यों में जहाँ-जहाँ आदिवासी हैं, उनके बच्चों के लिए प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी है। यह चीज़ आपके इस राज्य में भी होगी। इसके अतिरिक्त उन बहुतेरे आदिवासियों को जो आगे पढ़ना चाहते हैं, छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं और आज बहुतेरे आदिवासी विद्यार्थी सरकार से छात्रवृत्ति पाकर जहाँ-जहाँ उनको सुविधा है, वहाँ पढ़ रहे हैं। उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए भी प्रयत्न किये जा रहे हैं। खेती के सम्बन्ध में आदिवासियों में परस्पर भी बहुत भिन्नता है।

गौण्ड लोग खेती का काम करते हैं और उन्होंने खेती के काम को भली प्रकार सीख लिया है। बंगा जाति के लोग दूसरे प्रकार से खेती करते हैं। वह एक स्थान से दूसरे स्थानों को जाते रहते हैं। एक खेत में खेती करके उसकी फसल आदि को लेकर फिर उस खेत को जलाकर वे आगे बढ़ जाते हैं। इससे भूमि को बहुत हानि होती है। जंगल को भी हानि होती है। वे जितना परिश्रम करते हैं उसका उनको पूरा फल नहीं मिलता। सरकार ने उन लोगों को यह समझाने-बुझाने का निश्चय किया है कि वे कहीं एक स्थान में रहकर खेती-बाड़ी करें तो उनको थोड़ी-सी भूमि से ही अधिक अन्न प्राप्त हो सकता है और वे अधिक सुख से रह सकते हैं। आज सारे देश में खेती की उन्नति के लिए जहाँ-जहाँ पानी का अभाव है, वहाँ अधिक पानी पहुँचाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। लोगों को गढ़े खोदकर तथा

उनमें कूड़ा-कचरा आदि डालकर खाद तैयार करना सिखाया जा रहा है, जिससे खेती की उन्नति की जा सके। लोगों को अच्छे बीज देकर अधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह सब कुछ आदिवासियों को भी बताया जा रहा है।

अभी यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि सरकार ने यहाँ पर एक हज़ार एकड़ भूमि में उनको बसाने का निश्चय किया है। उनकी हर प्रकार से सहायता की जाएगी। यों तो हम लोग खेती करते हैं और अपने तथा अपने बाल-बच्चों के लिए अन्न पैदा करते हैं पर हमारे देश के किसानों के पास बहुत थोड़ी भूमि है और थोड़ी भूमि में अधिक पैदा नहीं किया जा सकता। इसलिए सोचा यह गया है कि यदि कई किसान मिल कर अपनी खेती सामूहिक रूप से एकसाथ करें तो उससे उनको अधिक लाभ होगा। मान लो कि एक किसान के पास दो बैल हैं परन्तु उसके पास भूमि इतनी है कि वह दो बैलों से नहीं जोती-बोयी जा सकती। ऐसी स्थिति में उस भूमि में खेती पूरे रूप से नहीं हो सकती क्योंकि वह चार बैल रख नहीं सकता और दो बैलों से उसका काम पूरा नहीं होता। तो यदि दो किसान परस्पर मिलजुल कर खेती करें तो उन सबकी समस्या का समाधान हो जाता है। दो व्यक्ति मिलजुल कर खेती के आसपास पानी की भी व्यवस्था कर सकते हैं। इस प्रकार यदि कई आदमी मिलकर एक साथ खेती करें तो उनको खेती में व्यय भी कम करना पड़े और आय अधिक हो। इसलिए यहाँ सामूहिक रूप से खेती करने का प्रयास किया जा रहा है और यदि इसमें भलीभाँति सफल हुए तो इस चीज़ का औरों में भी प्रसार होगा और विशेषकर आदिवासी लोग जो अभी तक इस प्रकार खेती नहीं करते, इस चीज़ को अधिक सरलता से सीख लेंगे और उसके अनुसार काम करेंगे। और यदि वे इस पद्धति को अपनाएँगे तो मुझे आशा है कि इससे उनको बहुत लाभ होगा।

इधर मैं कई दिनों से ऐसे क्षेत्रों का भ्रमण कर रहा हूँ जहाँ आदिवासी बहुत हैं। मैं जिस स्थान पर गया था वहाँ के निवासी—बैगा जाति के लोग—कहने लगे कि उनको जंगल जलाकर अपने ढंग से ही खेती करने दी जाये। मैंने उनको समझाया कि जिस प्रकार की खेती वे आज तक करते आये हैं, उससे न उन्हें ही लाभ होता है और न दूसरों को। आज उनको समझाने की आवश्यकता है क्योंकि वे लोग बहुत दिनों से एक प्रकार से ही काम करते आये हैं, दूसरे तरीके नहीं जानते। उनको समझाने-बुझाने से जो भूमि नष्ट हो जाती है वह बचेगी और इससे न केवल उनका बल्कि देश का भी कल्याण होगा। आज हमें इस पर भी ध्यान देना है। देश में इस काम को आगे बढ़ाने के लिए राज्य सरकार तथा भारत सरकार दोनों आर्थिक सहायता दे रही हैं। पानी के अभाव वाले स्थानों के लिए पानी की व्यवस्था करने पर भी विचार किया जा रहा है।

आपके इस राज्य में मैंने सुना कि पुराने तालाब बहुत हैं। इनका जीर्णोद्धार करके यदि इन्हें इस योग्य बना दिया जाये कि इनके पानी का खेतों में उपयोग किया जा सके तो उससे खेती के विकास में बहुत सुविधा होगी। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसे तालाबों का जीर्णोद्धार करने, नयी नहरें निकालने तथा नदियों को बांधने का काम बड़े पैमाने पर आरम्भ किया गया है और जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा काम आगे बढ़ता

जाएगा। आप लोग इस काम को अपना काम समझें। ये सब काम देश के लाभ के लिए हैं। आप लोगों का भी हित इसी में है। जब तक अंग्रेजी राज्य था तब तक यह बात नहीं थी। अब अंग्रेजी राज्य मिट गया और अंग्रेज इस देश से चले गये।

आज जितनी योजनाओं पर काम हो रहा है उन सबको सफल बनाने के लिए जनता को पूरा सहयोग देना चाहिए। सरकार अपनी ओर से धन दे सकती है परन्तु इसके प्रति उत्साह तो लोगों के हृदय में ही होना चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि देश को बनाना और बिगाड़ना हमारे हाथ में ही है। इसलिए सबको मिलकर इसको बनाना हम सबका धर्म है। इसी को रचनात्मक काम कहते हैं। इसके लिए अनेक प्रकार की संस्थाएँ अपने-अपने ढंग से बहुत पहले से काम करती आयी हैं। सरकार भी उनकी सहायता करने में जुट रही है और अब जनता को भी अपना सहयोग देना चाहिए। जिन-जिन क्षेत्रों में मैं गया वहाँ मैंने लोगों में बड़ा उत्साह पाया और देखा कि लोग अपने हार्दिक उल्लास के साथ ऐसे कामों में लगे हुए हैं। कहीं-कहीं लोगों ने अपने परिश्रम से सैकड़ों मील लम्बे मार्गों का निर्माण किया है। कई स्थानों पर लोगों ने स्कूलों तथा अस्पतालों के लिए बड़े-बड़े भवन बनाये हैं। पुराने तालाबों को खोदकर और नहरें बनाकर अच्छे जलाशय बना दिये गये हैं। आज लोग बड़े उत्साह के साथ इन योजनाओं के काम में लगे हुए हैं।

मैं आशा करता हूँ कि इस क्षेत्र के लोग भी इस काम को अपना काम समझकर उसी उत्साह के साथ इसमें लग जाएँगे। भारतवर्ष के सब लोगों को चाहे वे किसी भी प्रदेश अथवा किसी भी श्रेणी के हों, देश की उन्नति में लग जाना चाहिए। यदि सब इसी भावना से प्रेरित होकर इसमें लग जायें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश बहुत शीघ्र उन्नत हो जाएगा। इस बात के चिन्ह दिखायी देने लगे हैं और सब स्थानों पर इस प्रकार का काम हो रहा है। इससे आशा होती है कि हम अपने गिरे हुए लोगों की स्थिति को बदलकर इस देश को एक उन्नत देश बना सकेंगे।

मैं आदिवासियों को यह आश्वासन देना चाहता हूँ कि हम सभी लोग उनकी उन्नति और विकास के लिए पूरे तन-मन-धन के साथ लगे हुए हैं। उनके कष्ट सदा के लिए दूर होंगे और उनको सभी प्रकार की सुविधाएँ तथा अवसर प्राप्त होंगे, जिससे वे अपना विकास कर सकें। आप अपने यहाँ जो सामूहिक खेती का काम करने जा रहे हैं, इसका बड़ा महत्त्व है। सभी इसमें सम्मिलित हों और इसके महत्त्व को समझकर इस काम को पूरा करें।

भारत सेवक समाज

अखिल हैदराबाद राज्य भारत सेवक समाज के दूसरे वार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। यह सन्तोष और हर्ष का विषय है कि आपके राज्य में भारत सेवक समाज एक जीवित संस्था है। इस संस्था ने तीन वर्षों में महत्त्वपूर्ण काम किया है। आपने लोगों की सहायता तथा सहयोग से सड़कें बनायीं, स्कूल और अस्पताल खोले और विपत्ति में पड़े लोगों की सहायता की। ये सभी काम बहुत आवश्यक हैं।

यों तो हमारी पंचवर्षीय योजना का सारा कार्यक्रम ही बड़े महत्त्व का है, किन्तु उसके अन्तर्गत भारत सेवक समाज की स्थापना को मैं विशेष महत्त्व देता हूँ। इसका कारण यह है कि यह संस्था बिलकुल गैर-सरकारी है। सरकार का इससे केवल इतना ही सम्बन्ध है कि उसके सुझाव से इस संस्था की उत्पत्ति हुई। मेरा गैर-सरकारी संस्थाओं से काफी सम्बन्ध रहा है और यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि जन साधारण का सहयोग जितनी शीघ्र और सरलता से एक गैर-सरकारी संस्था प्राप्त कर सकती है और सार्वजनिक क्षेत्र में आगे बढ़ सकती है, सरकारी विभाग उतनी सरलता और गति से काम नहीं कर सकता। जब एक देश शताब्दियों की पराधीनता के बाद स्वतन्त्र हुआ हो और जहाँ लोगों में उत्साह पैदा करना हो और उनको कर्त्तव्य से परिचित कराकर आगे बढ़ने का मार्ग बताना हो, वहाँ भारत सेवक समाज जैसी संस्था राष्ट्र-निर्माण के काम का बहुत ही आवश्यक अंग बन जाती है।

हमें अपने देश में एक जन-कल्याण राज्य की स्थापना करनी है। ऐसे राज्य में लोगों का हित और कल्याण प्रत्येक कार्यक्रम की अन्तिम कसौटी है। हमें बीमारी और दरिद्रता को मार भगाना है और अभाव पर विजय पानी है। हम चाहते हैं कि स्वतन्त्र भारत के सभी नागरिकों को, चाहे वे देश के किसी भी भाग में रहते हों और उनका किसी भी धर्म अथवा जाति से सम्बन्ध हो, आगे बढ़ने का समान अवसर मिले और नागरिक के रूप में सबका एक जैसा अधिकार हो। जिन्हें आजकल पिछड़े हुए वर्ग या दलित जातियाँ

अखिल हैदराबाद राज्य भारत सेवक समाज के दूसरे वार्षिक सम्मेलन (कोत्तगुड़ेम) के उद्घाटन के अवसर पर भाषण, ४ जुलाई, १९५५

कहा जाता है वे उन्नत हों, दूसरे लोगों के साथ आ मिलें जिससे इस देश में कोई भी पिछड़ा हुआ या दलित न कहा जा सके।

जन-साधारण में इन बातों का प्रचार करने और लोगों को इन्हें समझाने में भारत सेवक समाज बहुत कुछ कर सकता है। जैसा कि मैंने अभी कहा, यह कार्य ऐसा है जिसमें एक गैर-सरकारी संस्था होने के कारण आपको सहज ही सफलता मिल सकती है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब हमारी योजनाएँ कार्यान्वित की जा चुकेंगी और इस देश में सच्चा जन-कल्याण राज्य स्थापित हो चुकेगा तो जनता में स्फूर्ति और उत्साह भरने तथा उन्हें जागरूक करने का श्रेय निश्चय ही भारत सेवक समाज को मिलेगा।

हैदराबाद राज्य भारत सेवक समाज तथा खम्माम जिला भारत सेवक समाज ने अभी तक जो रचनात्मक कार्य किया है, उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। इस काम के महत्त्व को केवल मीलों और पाठशालाओं तथा अस्पतालों की संख्या से ही नहीं आँका जा सकता। वास्तव में इसका महत्त्व बहुत ही अधिक है। यह काम इस राज्य की जनता के लिए मशाल का काम देगा। यह ऐसी मशाल है जिसे सभी लोग पहचानते हैं और समझते हैं कि यह उन्होंने ही बनायी है। अज्ञान और दरिद्रता रूपी अन्धकार को दूर करने की जो सामर्थ्य इस मशाल में है वह दूसरों की दी हुई बिजली या किसी अन्य प्रकार के प्रकाश में कहाँ?

मानव को अपने हाथों से बनायी हुई चीज पर जो गौरव और उत्साह होता है वह दूसरों के द्वारा बनायी हुई चीज पर नहीं हो सकता। इसलिए मेरा आग्रह है कि आप राष्ट्र-निर्माण के इस काम को बराबर आगे बढ़ाते जायें। मुझे पूरा विश्वास है कि आपको अपने प्रयत्नों में सफलता मिलेगी और भारत सेवक समाज शीघ्र ही एक राष्ट्र-व्यापी संस्था बन नवीन भारत के निर्माण का सच्चा साधन बन सकेगा।

भारत-रत्न जवाहरलाल नेहरू

आज सायंकाल हम लोग अपने प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की यूरोप के विभिन्न देशों की यात्रा से वापसी पर हर्ष प्रकट करने के लिए एकत्रित हुए हैं। मैं आप महानुभावों का आभारी हूँ कि आपने अल्प सूचना पर मेरा निमन्त्रण स्वीकार करने की कृपा की। हमारे प्रधान मन्त्री जिन-जिन देशों में गये, वहाँ की सरकारों और जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। हम उनके समाचार बड़ी उत्सुकता से पढ़ते रहे हैं। हमारे

राष्ट्रपति भवन में प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू को भारत-रत्न की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित करने के अवसर पर भाषण, १५ जुलाई, १९५५

प्रधान मन्त्री के कथनानुसार इससे प्रमाणित होता है कि संसार के महान् राष्ट्रों के हृदयों में हमारे देश के प्रति कितना आदर है।

हमारा देश प्राचीन है परन्तु हमारा गणराज्य शिशु-तुल्य है। हमारी गतिविधियों तथा संसार में शान्ति स्थापित करने और बनाये रखने की हमारी नीति के प्रति संसार की भावना और उसके फलस्वरूप हमारे देश की मान-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में जानकर हमें स्वभावतः सन्तोष होता है। हमारी धारणा यह है कि संसार के सभी राष्ट्रों की सम्पन्नता और कल्याण के लिए शान्ति आवश्यक है, विशेष रूप से आज के युग में जब विज्ञान इतनी उन्नति कर चुका है और विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हो चुका है। आज मानव समाज के लिए केवल दो ही मार्ग हैं—युद्ध का परित्याग या मानवता का सर्वनाश। शान्ति के पक्ष का समर्थन करते हुए निश्चय ही हम नम्रतापूर्वक विश्व के करोड़ों नर-नारियों की उत्कट इच्छा को अभिव्यक्त करते हैं। इसलिए यदि हमारे प्रधान मन्त्री का, जो हमारी इस युग की नीति के प्रधान निर्माता हैं, सभी स्थानों पर भव्य स्वागत किया गया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

मैं इस बात पर विचार करता रहा हूँ कि भारतवासी श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति किस प्रकार आभार प्रकट करें जिससे सब लोग यह जान सकें कि समस्त राष्ट्र उनके महान् प्रयत्न का समर्थक है। राष्ट्र के प्रति उनकी जीवन भर की सेवाएँ हमारे आधुनिक इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं और उनके महान् जीवन की यह अर्वाचीन गतिविधि अर्थात् विश्व-शान्ति के लिए उनका वीरतापूर्ण प्रयास उनकी प्रतिभा को चार चाँद लगाता है, अथवा हम कह सकते हैं कि यह सोने में सुहागा के समान है।

मैं समझता हूँ कि इससे बढ़कर मैं और कुछ नहीं कर सकता कि उन्हें भारत-रत्न की उपाधि प्रदान करूँ जो हमारे देश का सर्वोच्च सम्मान है। यह कहा जा सकता है कि ऐसा करते हुए, कम से कम इस अवसर पर, मैं वैधानिक पद्धति का अनुसरण नहीं कर रहा हूँ क्योंकि यह कार्य मैंने अपने निर्णय पर प्रधान मन्त्री के परामर्श के बिना किया है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरा मन्त्रिमण्डल और अन्य मन्त्रीगण ही नहीं बल्कि समस्त राष्ट्र इस निर्णय का पूर्ण उत्साह के साथ समर्थन करेगा।

मैं आप सब महानुभावों से निवेदन करूँगा कि आप उनके स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने में मेरे साथ सम्मिलित हों जिससे वे इस देश और सारे विश्व की और अधिक सेवा कर सकें।

योगासन और उनका महत्त्व

मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि मैं योग प्रसार समिति के निमन्त्रण पर आज यहाँ आ सका और योग की पद्धति के अनुसार जनसाधारण की स्वास्थ्य-उन्नति के सम्बन्ध में आप जो कुछ कर रहे हैं, उसे देख सका।

साधारणतः लोग योग को एक दर्शन-शास्त्र समझ केवल अध्ययन अथवा चिन्तन का विषय मानते हैं और उनका ध्यान इसके व्यावहारिक पहलू की ओर प्रायः कम जाता है। वास्तव में योग एक ऐसा शास्त्र है जिसमें हमारे पूर्वजों ने सिद्धान्त और व्यवहार को सम्मिश्रित कर स्वास्थ्य-सुधार की एक ऐसी पद्धति को जन्म दिया जिसे हम सम्पूर्ण व्यायाम कह सकते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि योग के सम्बन्ध में मुझे सम्यक् ज्ञान है, किन्तु जो कुछ भी मैं जानता हूँ उससे मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है कि शारीरिक व्यायाम की यह सर्वोत्तम प्रणाली है और कई दृष्टियों से यह और सभी प्रणालियों से एकदम निराली है।

योग की एक विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूप से सर्वांगीण है और शरीर विज्ञान के सिद्धान्तों पर आश्रित है। इसके अन्तर्गत शरीर के प्रत्येक अवयव को सचेत और स्वस्थ रखने की व्यवस्था है। वैज्ञानिक होने के साथ-साथ यह प्रणाली प्राकृतिक भी है। शरीर, मन अथवा मस्तिष्क दोनों को स्वस्थ तथा नैसर्गिक अवस्था में रखने का यह सरल और सीधा साधन है।

प्राचीन काल में, आज से एक हजार या इससे भी अधिक वर्ष पहले, भारतीय समाज में योग का प्रचार अधिक था। सम्भवतः उस काल में लोगों के दीर्घजीवी होने और स्वस्थ रहने का यह भी एक कारण था। दुर्भाग्यवश, कालान्तर में हम अपनी इस प्राचीन सांस्कृतिक बपौती से दूर हट गये और अन्य उपयोगी परम्पराओं के साथ योग को भी भूल गये। यह हर्ष का विषय है कि कुछ उत्साही महानुभावों के प्रयत्नों के फलस्वरूप योग के सम्बन्ध में हमारे समाज में फिर चेतना आ रही है।

योग को अपनाने अथवा प्रोत्साहन देने का कारण केवल यही नहीं कि इसका सम्बन्ध प्राचीन भारत से है, बल्कि इस प्रणाली की अपनी उपादेयता है। आज की परिस्थि-तियों में जबकि जीवन बहुत जटिल बन गया है और लोगों की प्रवृत्ति बड़े नगरों में बसने

योग आश्रम (नयी दिल्ली) के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण, ५ नवम्बर, १९५५

की ओर है, स्वास्थ्य-सम्बन्धी किसी भी बात की अवहेलना करना ठीक नहीं। मैं समझता हूं कि योग की व्यायाम-प्रणाली के व्यापक प्रचार द्वारा जन-साधारण को बहुत लाभ हो सकता है। इस प्रणाली की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसके अनुसार व्यायाम करने के लिए केवल एक चटाई अथवा दरी काफी है और किसी भी प्रकार के अन्य साज-सामान की आवश्यकता नहीं। योग द्वारा निर्दिष्ट आसन खुली हवा में कहीं भी किये जा सकते हैं। इस दृष्टि से भी मेरे विचार में यह प्रणाली हमारे देश के जन-साधारण के लिए बहुत उपयुक्त है।

यह सन्तोष की बात है कि दिल्ली राज्य के शिक्षा विभाग और केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने इस प्रणाली को अपनी मान्यता दे दी है जिससे व्यायाम और खेल-कूद की दूसरी प्रणालियों के साथ-साथ पाठशालाओं में योग को भी स्थान मिल सकेगा। पंचवर्षीय योजना में भी योग को उन्नत करने और इस प्रणाली का प्रचार करने की बात कही गयी है। इसके फलस्वरूप योग प्रसार समिति जैसी संस्थाओं पर एक भारी दायित्व आ गया है। यह कार्य योजनानुसार ठीक तौर से चल सके, इसके लिए दक्ष और शिक्षाप्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। सौभाग्य से योग प्रसार समिति इस दायित्व से परिचित है और उसने प्रशिक्षण वर्ग खोलने की पहले ही से व्यवस्था कर ली है। मुझे आशा है कि शिक्षा-प्राप्त कर्मचारी निस्स्वार्थ भाव से जनता की सेवा करेंगे और इस प्रकार इस बहुमूल्य स्वास्थ्य प्रणाली के प्रसार तथा प्रचार द्वारा वे सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सकेंगे।

मैंने अब तक जो कुछ कहा वह केवल यौगिक व्यायाम प्रणाली के सम्बन्ध में कहा। योग से और कई व्यापक लाभ भी हो सकते हैं। मैंने अपने भाषण में केवल एक पहलू पर इसलिए जोर दिया कि आजकल की परिस्थिति में लोग इसको अधिक समझेंगे और इस ओर उनका अधिक ध्यान जाएगा। परन्तु आज भारतवर्ष को ही नहीं संसार को भी जिस चीज की आवश्यकता है, वह योग के द्वारा मिल सकती है। वह है चित्त की शुद्धि तथा मन की शान्ति। जब तक चित्त और मन शान्त न हो तब तक मनुष्य का जीवन पूरी तरह से सफल नहीं हो सकता। इसके लिए योग ही सबसे सुन्दर साधन है। परन्तु आज लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जाता। एक चीज को अच्छी तरह से समझकर हम चलेंगे तो उसका प्रभाव दूसरी चीजों पर पड़े बिना रह नहीं सकता। मैं आशा करता हूं कि जो लोग इसके प्रचार और प्रसार-कार्य में लगेंगे, उनका ध्यान इसके सब पहलुओं पर जाएगा और वे सब लोगों को जोर देकर बताएँगे।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, जिनका जन्म आज के दिन १०० वर्ष पूर्व हुआ था, भारत के इतिहास में प्रमुख राष्ट्र-निर्माता माने जाएँगे। राष्ट्रीयता का जो अर्थ आज हम समझते हैं, उसका उनके समय में इस देश में विकास नहीं हुआ था। राष्ट्र के हित को सर्वोपरि मानना उस समय नियम नहीं बल्कि अपवाद था। वास्तव में आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व यदि कोई सुशिक्षित व्यक्ति अच्छी सरकारी नौकरी को ठुकरा कर सार्वजनिक कार्य में लीन होन की बात करता था तो लोग उसे सनकी समझते रहे होंगे। किन्तु लोकमान्य तिलक की बौद्धिक प्रखरता और उनकी ज्वलन्त देशभक्ति ने उन्हें कभी सन्देह में नहीं पड़ने दिया और उनके लिए आरम्भ से ही सार्वजनिक सेवा का मार्ग नियत किया। बाद में आने वाले कांग्रेस नेताओं को जिन बातों से प्रेरणा मिली उनमें लोकमान्य तिलक का अपना उदाहरण, उनके विचार और उनके लेख प्रमुख थे। कांग्रेस ने अपनी विचारधारा ही उनसे नहीं ली, बल्कि अपना प्रमुख नारा—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—भी उन्हीं से लिया।

उनके अदम्य साहस और आरम्भ से ही विचार-स्वातन्त्र्य के कारण लोकमान्य तिलक की जीवनी हमारे स्वाधीनता-संग्राम की भूमिका बन गयी। दुर्भाग्यवश उनका देहावसान ऐसे समय हुआ जब महात्मा गान्धी देश को प्रथम असहयोग आन्दोलन के लिए तैयार कर चुके थे। यद्यपि उनका निधन ऐसे संकट काल में हुआ, तथापि लोकमान्य तिलक ने अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में अपने कार्य द्वारा भारतीय जनता में, विशेषकर मध्यम वर्ग के लोगों में जो जागृति पैदा की थी वह हमारी शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत था।

भारत का भावी इतिहासवेत्ता लोकमान्य तिलक के तेजस्वी व्यक्तित्व में ऐसे महान् नेता की झलक देखेगा जिसने सबसे पहले पूर्ण स्वराज्य ही नहीं बल्कि क्रान्ति की भी कल्पना की। कुछ वर्षों के सार्वजनिक कार्य के बाद ही उन्हें विश्वास हो गया था कि हमारी जितनी भी कमजोरियाँ हैं उनका एकमात्र उपाय विदेशी शासन से भारत का छुटकारा अर्थात् स्वाधीनता-प्राप्ति है। अपने समस्त राजनीतिक जीवन में उन्होंने इस ध्येय को अपने सामने

तिलक जन्म शताब्दी महोत्सव के अवसर पर प्रसारित भाषण, २३ जुलाई, १९५६

रखा और सदा इससे प्रेरणा ग्रहण की। उनमें अपनी धारणाओं के लिए अंग्रेजी सरकार के हाथों कष्ट उठाने का साहस था।

एक मुकदमे में उन्होंने अपने बचाव में जो युक्तिपूर्ण वक्तव्य दिया वह उनकी वकालत-सम्बन्धी प्रतिभा और देशभक्ति का अनुपम नमूना है। तत्कालीन परिस्थितियों में स्वेच्छा से जेल-यात्रा करने अथवा निष्कासन-प्रतिबन्ध सहन करने और इन्हें एक सच्चे देशभक्त द्वारा पुरस्कार के रूप में ग्रहण किये जाने का उन्होंने जो उदाहरण उपस्थित किया, उसका अनेक लोगों ने उनके जीवन काल में और विशेष रूप से उनके देहान्त के बाद अनुसरण किया। इसलिए उनसे हमें विरासत में वे चीजें मिलीं जिन पर चल कर स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक निर्माण का कार्य कर सके। लोकमान्य तिलक के स्वप्न को यथार्थ और सच्चा देख आज हमें बहुत प्रसन्नता होती है।

यद्यपि लोकमान्य तिलक जीवन भर सार्वजनिक कार्य में व्यस्त रहे और अपने समाचार-पत्रों के सम्पादन में बराबर लगे रहे, तथापि वे गहन अध्ययन के लिए किसी प्रकार समय निकाल लेते थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और उनकी कृति 'गीता रहस्य' जिसे उन्होंने कारावास के समय लिखा था, आज भी गीता पर लिखी गयी टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ है। इतना ही नहीं, वे यदा-कदा भारत-विज्ञान, ज्योतिष-शास्त्र, खगोल विद्या और वेदाध्ययन आदि के लिए भी समय निकाल लेते थे और इन सभी विषयों में उन्होंने महत्त्व-पूर्ण शोध-कार्य किये हैं। अनुसन्धान और विद्या के क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ किया वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि वे राजनीतिक नेता न होते तो अपने मौलिक पाण्डित्यपूर्ण कार्य के लिए वे पण्डित समाज में अमर होते।

आज उस महान् भारतीय की जन्म शताब्दी के अवसर पर हमारे विचार उन्हीं की ओर जा रहे हैं। हमें उनसे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने और साहसपूर्वक कार्य करने की कला सीखनी चाहिए। इस शुभ अवसर पर मैं अपने समस्त देशवासियों का अभिनन्दन करता हूँ और उनके सामने यह सुझाव रखता हूँ कि वे लोकमान्य तिलक की जीवनी को पढ़ें और उससे प्रेरणा ग्रहण करें।

प्रलोभन से बचें

मैं अपने लिए इसे बड़ा सौभाग्य मानता हूँ कि मैं आज के इस समारोह में सम्मिलित हो सका। कुछ दिन पहले जब लोकनायक बापूजी अरणे ने मेरे पास लिखा कि मैं यवतमाल आकर लोकमान्य तिलक की मूर्ति का अनावरण करूँ तो मैंने अपने लिए इसे बड़ा सम्मान माना। उसके साथ-साथ बापूजी ने यह सूचना भी दी कि यदि मैं यहाँ आऊँगा तो मुझे यह भी सौभाग्य मिलेगा कि एक बार फिर उनके दर्शन कर सकूँगा। इन सब कारणों से मेरे हृदय में एक क्षण के लिए भी ऐसा विचार नहीं आया कि इस निमन्त्रण को स्वीकार करने अथवा न करने के विषय में सोचूँ। मैंने उसे एक आदेश मानकर शिरोधार्य कर लिया। थोड़े समय की अनिश्चितता अवश्य रही क्योंकि मैंने लिखा था कि इधर जब आ सकूँगा तो यहाँ आ जाऊँगा। मुझे प्रसन्नता है कि वह दिन आ गया और मैं यहाँ आकर इस शुभ कार्य में भाग ले सका।

लोकमान्य तिलक की मूर्ति का अनावरण करना मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। लोकमान्य ने केवल इस देश को जगाया ही नहीं बल्कि उन्होंने कांग्रेस रूपी जिस भवन की नींव डाली वह आज स्वतन्त्रता के रूप में हम सबको मिला है। अपनी बुद्धि, अपना शरीर और धन जो कुछ मनुष्य के पास हो सकता है सब कुछ देकर उन्होंने देश को जागृत किया और हमें स्वराज्य के लिए तैयार किया। जिस समय हम यह नहीं समझ पाये थे कि उस स्वराज्य के लिए और भी कितने त्याग की आवश्यकता होगी उस समय उन्होंने हमें केवल यही मन्त्र नहीं दिया कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' बल्कि उन्होंने यह भी बताया कि हो सकता है कि ब्रिटिश राज्य के जेलखानों में रहकर हम देश की अधिक सेवा कर सकेंगे। यही कहकर उन्होंने कड़े कारावास का दण्ड हँसते-हँसते हर्ष के साथ झेला और सारे देश के सामने एक उदाहरण रखा जिसका इस देश के लोगों ने हज़ारों और लाखों की संख्या में अनुकरण किया और अनुकरण करते-करते अन्त में हमने स्वराज्य भी पा लिया।

आप लोग लोकमान्य के काम के ढंग से और बहुत निकट के दर्शन से मेरी अपेक्षा

यवतमाल में लोकमान्य तिलक की मूर्ति का अनावरण करते समय भाषण, १२ सितम्बर, १९५६

कहीं अधिक परिचित हैं। मुझे तो उनके सम्पर्क में आने का थोड़ा-सा ही सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आप में से बहुतेरे ऐसे होंगे जिनको उनके पीछे-पीछे चलकर काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। मुझे इस बात की और भी प्रसन्नता है और ईश्वर को धन्यवाद है कि ऐसे लोगों में एक प्रमुख व्यक्ति लोकनायक बापूजी अणे आज भी ईश्वर की दया से एक भयंकर रोग से मुक्त होकर इस सभा में उपस्थित हो सके हैं। मुझे आशा है कि हमें उनका उपदेश बहुत दिनों तक मिलता रहेगा और वह हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे।

इसलिए अब जब कि हमें स्वराज्य भोगने का अवसर मिला है जिसके लिए हम संग्राम कर रहे थे, हमें उसे सार्थक बनाना है। हम स्वराज्य को अभी पूरी तरह से सार्थक नहीं बना सके हैं। यहाँ से विदेशी राज्य उठ गया और अब इस देश के जन-साधारण मिलकर इस देश पर राज्य कर रहे हैं और प्रत्येक भारतवासी आज इस गौरव का अनुभव कर रहा है कि यह देश अब किसी पराये के अधिकार में नहीं है बल्कि अपना देश है। प्रत्येक भारतवासी अब यह भी अनुभव करता है कि इसको बनाने या बिगाड़ने का श्रेय सब कुछ उस पर है।

अभी ६ वर्ष ही पूरे हुए हैं जब हमारे हाथों में अधिकार आया और उस समय से आज तक अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आती रहीं और देश भाँति-भाँति की कठिनाइयों का सामना करता रहा है। ईश्वर की दया और हमारे बड़े लोगों की तपस्या के फलस्वरूप हम उन सब कठिनाइयों को किसी न किसी प्रकार झेलते और पार करते आये हैं। अब समय आ गया है जब हमें सब बातों पर रचनात्मक रूप से विचार करके काम करना है जिससे हमारे देश की दरिद्रता दूर हो, शिक्षा का अभाव दूर हो तथा सभी लोग भर-पेट खाकर, कपड़ा पहन कर, चैन की नींद सोकर सुख का जीवन बिता सकें। अभी हमारे सामने बहुत से दोष हैं जिनको दूर करना है। उसके लिए सच्चे सेवकों की आवश्यकता है जो देश के काम में उसी लगन, उसी प्रकार के त्याग और उसी प्रकार की दूरदर्शिता से लग जायें जिसका उदाहरण लोकमान्य ने अपने जीवन से हमें दिया है।

मुझे तो कभी-कभी यह विचार आता है कि हम लोगों को इस समय जो काम करना है वह अंग्रेजों के समय से अधिक कठिन है। उस समय हम सब विदेशी राज्य के विरुद्ध संगठित होकर काम करते थे और हमारे सामने दूसरा कोई प्रलोभन नहीं था। जब महात्मा गान्धी ने हमें सत्याग्रह के लिए आमन्त्रित किया तो किसी के सामने और कोई प्रलोभन नहीं था। उन्होंने यहाँ तक स्पष्ट कर दिया था कि यदि कोई व्यक्ति जेलखाने जाये तो वह इस बात की आशा न रखे कि उसके परिवार के भरण-पोषण का भार किसी दूसरे पर रहेगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि मुकदमा चलने पर कोई यह आशा न रखे कि दूसरा कोई पैसे देकर या अन्य प्रकार से सहायता करेगा। उस समय यदि कोई प्रलोभन था तो जेल जाने का प्रलोभन था, लाठी खाने का प्रलोभन था। इसलिए उस समय मंजे हुए लोग ही आते थे। वे तैयार होकर आते और इस काम में जुट जाते थे। उनके साथ सबकी सहानुभूति रहती थी।

आज के काम में अनेकों प्रकार के प्रलोभन हैं और बहुत लोग जब-तब यह भी समझ

बैठते हैं कि त्याग का युग तो गया अब भोग का युग आया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। काम करने वालों तथा देशप्रेमियों के लिए त्याग का समय कभी नहीं जाता और भोग का समय कभी नहीं आता। आज के काम में अधिक त्याग भावना की आवश्यकता है क्योंकि पहले तो कोई चीज मिलने वाली थी ही नहीं तो प्रलोभन क्या होता। यदि सामने थाल परोस कर सुन्दर भोजन रख दिया जाये और आशा यह की जाये कि कोई भी वस्तु उठाकर मुँह में न रखी जाये तो ऐसे प्रलोभन से बचना कठिन है। ईश्वर को धन्यवाद है कि इस प्रलोभन के रहते हुए भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो उसी लगन के साथ काम कर रहे हैं और करते रहेंगे जिस लगन से उन्होंने पहले काम किया था।

मैं चाहता हूँ कि हमारे यहाँ के युवक इस ध्येय को सदा अपने सामने रखें क्योंकि पुरानी पीढ़ी के लोग एक-एक करके उठते जा रहे हैं और जो बचे हुए हैं वे भी बुढ़ापे के कारण काम से अलग होते जाएँगे। देश का भार आज युवकों को उठाना पड़ेगा। इसलिए उन्हें अपने को उस बड़ी परीक्षा के लिए तैयार करना है। मैं आशावादी हूँ, इसलिए मुझे कभी आगे की चिन्ता नहीं होती। मैं समझता हूँ कि जब समय आएगा तो उसके लिए योग्य पुरुष भी निकल आएँगे। देश का जैसा भाग्य होगा उसको वैसे ही निर्माता मिलेंगे।

ईश्वर ने इस देश को सुन्दर और हर प्रकार से सम्पन्न बना रखा है। हमने अपनी भूल से उसको बिगाड़ रखा था। आज हम सुधरे हैं और सुधर कर स्वराज्य तक पहुँचे हैं। इसलिए मुझे आशा है कि हम उन भूलों की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे। हो सकता है कि यहाँ की सरकार जो जनता की बनायी हुई सरकार है, कोई गलती कर दे अथवा उससे कोई काम ऐसा हो जाये जो बहुत लोगों को अरुचिकर हो तो अब जब कि हम अपने को गण-राज्य मानते हैं और सब अधिकार जनता के हाथ में ही है, हमें यह सोचना है कि उस गलती को दूर करने का अधिकार भी हमारे ही हाथों में है। उसके लिए कानून तोड़ने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए समय आने पर जो गलती करते हों उनको अपना मत देकर दूर किया जा सकता है।

इसलिए आवश्यक यह है कि अब देश के लोग इस बात को समझें कि वे अपने परिश्रम तथा अपनी तपस्या से देश का भला कर सकते हैं और गलती करके उसको बिगाड़ भी सकते हैं। यदि हमने पुरानी गलतियों की पुनरावृत्ति की तो हमारी क्या दुर्दशा होगी उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसकी कल्पना करने की आवश्यकता भी नहीं है। हमको तो दूसरी कल्पना करनी चाहिए कि हम इस देश को भव्य, सम्पन्न और सुन्दर कैसे बनायें जिससे इस देश के लोग सुखी हों। ईश्वर पर भरोसा रखकर हमें अपना काम करना है।

मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ कि आप इस देश को अपना देश समझें और ऐसा समझकर सब की रक्षा करें तथा सब का भला करने का प्रयास करें। इसी प्रकार से देश की उन्नति होगी और लोकमान्य तिलक ने जो स्वप्न देखा था उसको हम पूरा कर सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यवतमाल के लोग लोकमान्य तिलक के स्वप्न को अवश्य पूरा करेंगे।

पंचायतों की गौरवमय परम्परा

आज के इस समारोह का अपना अलग महत्त्व है। 'पंचायत' भारतवर्ष की एक बहुत पुरानी संस्था है और जैसा अभी कहा गया इन्हीं पंचायतों के कारण ही भारतवर्ष अब तक जीवित रह सका है। हम पर बाहर से बार-बार आक्रमण हुए, विदेशियों की विजय हुई पर ग्राम पंचायतें अपने स्थान पर ज्यों की त्यों बनी रहीं।

अंग्रेजी शासन के विस्तार के फलस्वरूप अन्य संस्थाओं के बिखर जाने के साथ-साथ ये पंचायतें भी नष्ट हो गयीं। जिस समय हम लोग ब्रिटिश सरकार से भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे हुए थे उस समय गाँव-गाँव में जो कांग्रेस कमिटियाँ स्थापित हुईं वे एक प्रकार से पंचायतें ही तो थीं। पर उस समय हमारे हाथों में अधिकार नहीं था और जो पंचायतें स्थापित हुईं वे जनता की इच्छा से ही स्थापित हुईं।

हमारे हाथों में जब अधिकार आया तो उस समय ये ग्राम पंचायतें सभी स्थानों पर थीं। संविधान बनाते समय भी यही सोचा गया कि ऊँची व्यवस्थापिका सभाओं तक पहुँचने के लिए पंचायतें ही सबसे पहली कड़ी होंगी। उसके बाद सभी प्रदेशों और राज्यों की सरकारों ने पंचायत सम्बन्धी कानून पास किये और पंचायतें स्थापित होने लगीं। इस समय प्रायः सभी राज्यों में पंचायतें हैं। यह दूसरी बात है कि कहीं पर उनका काम भलीभाँति चल रहा है और कहीं उतने सुचारु रूप से नहीं चल रहा।

आज यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि आपके इस राज्य में पंचायतों को ठीक रूप से चलाने पर बड़ा ज़ोर दिया जा रहा है। जिनका काम सबसे अच्छा और सुन्दर समझा जाता है उनको पुरस्कार दिया जाता है। इसलिए मैंने आपकी ओर से आज दो-चार पंचायतों के मुखिया लोगों को अनुदान दिया। मैं उनको बधाई भी देना चाहता हूँ कि उनका काम चार हज़ार ग्राम-पंचायतों में सबसे अच्छा समझा गया।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पहले की हमारी पंचायतें क्यों मिट गयीं। हमारे देश में पंचायतें परम्परा से चली आ रही थीं। अंग्रेज़ों ने भी मुक्त कण्ठ से इस बात को स्वीकार किया कि भारत का प्रत्येक गाँव गणराज्य था। पर एक समय आया जब गाँव

पंचायत पर्व समारोह (नागपुर) में सर्वोत्तम ग्राम पंचायतों को पुरस्कार देते समय भाषण, १३ सितम्बर, १९५६

स्वतन्त्र गणराज्य न रहे और देश परतन्त्र हो गया। इसका कारण हममें कमज़ोरियों का आना था। हमें उन कमज़ोरियों से अभी भी बचते रहना चाहिए जिससे फिर से वह दिन न देखना पड़े। वह कमजोरी थी उन पंचायतों का संकीर्ण दृष्टिकोण। लोगों ने पंचायतों की परिधि के क्षेत्र को ही अपना देश माना और इस कारण जब एक पंचायत पर आक्रमण हुआ तो दूसरी पंचायतों ने उसकी रक्षा में हाथ बँटाना अपना धर्म नहीं समझा। इसी प्रकार विदेशियों ने एक-एक पर आक्रमण करके सारे देश पर अपना अधिकार कर लिया। हमारे शत्रुओं ने हमारे पारस्परिक वैमनस्य और भेदभाव से भी लाभ उठाया।

अभी हाल में जब भाषावार राज्यों का प्रश्न उपस्थित हुआ तो गाँव की छोटी-छोटी पंचायतों ने जैसी सम्मतियाँ प्रकट कीं उनसे यह स्पष्ट हो गया कि वे एक दूसरे की शत्रु नहीं तो मित्र भी नहीं हैं। देश में इस प्रकार के वातावरण से यह भय होने लगा कि इस देश के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे और इसकी एकता नष्ट हो जाएगी। ईश्वर की दया से अब वह वातावरण बदल गया है और जो भय था वह भी दूर हो गया है। इन पंचायतों का काम इतना ही नहीं है कि वे गाँव के उतने ही क्षेत्र को जो उनके अधिकार में है, सुन्दर और समृद्ध बनायें बल्कि उनका काम यह भी है कि वे सारे देश की एकता को बनाये रखने में यथाशक्ति सहायता दें। जब यह भावना सारे देश में फैलेगी और शहरों से लेकर गाँवों तक में जब सब लोग इसी भावना से प्रभावित होकर काम करने लगेंगे तब इस देश पर किसी प्रकार का संकट नहीं आ सकेगा। मैं आशा करता हूँ कि पंचायतें इस भावना को दृढ़ करने में सहायता देंगी और वे इस देश के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

पूर्वकाल में कई स्थानों पर पंचायतें इस कारण भंग हो गयीं कि लोगों ने पंचायतों सामने अपने पारस्परिक झगड़े रखने आरम्भ कर दिये और इस कारण गाँवों में दलबन्दी होने लगी। पंचायतों को छोटे न्यायालयों का रूप दे दिया गया। जहाँ-जहाँ पंचायतों को मुक़द्दमों का निर्णय करने का अधिकार दिया जाता है वहाँ दलबन्दियाँ बन जाती हैं क्योंकि लोगों में अपना निजी अधिकार चलाने की भावना पैदा हो जाती है। मैं नहीं जानता कि आपने अपनी पंचायतों को मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार दिया है या नहीं। नहीं दिया है तो अच्छा किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप अपने को दलबन्दियों से अलग रखेंगे और पंचायतों को मुकदमों का अखाड़ा नहीं बनने देंगे क्योंकि इसी कारण हमारी पहली पंचायतें भंग हुईं।

कुछ दिन हुए मैंने दिल्ली में एक नाटक देखा। वह नाटक प्रेमचन्द जी का लिखा हुआ 'पंच परमेश्वर' शीर्षक नाटक था। उसकी कहानी यह है कि एक गाँव में दो आदमी रहते थे। दोनों मित्र थे। उनकी आपस में अनबन हो गयी और मामला पंचायत के सामने गया। इनमें से एक ने उसी आदमी को पंच नियुक्त कर दिया जो दूसरे आदमी के विरुद्ध था। अब उसके सामने प्रश्न यह आया कि वह उसको पंच माने या नहीं। उसने पंच को परमेश्वर का रूप मान कर उस आदमी को पंच मान लिया। जब वह आदमी पंच की गद्दी पर बैठा तो उसने भी विचारा कि पंच परमेश्वर होता है और उस व्यक्ति से अपनी शत्रुता भूलकर उसे सच्ची बात ही कहनी चाहिए। उसने वैसा ही निर्णय दिया। मैं चाहता

कि गाँवों में सब काम पंच को परमेश्वर मानकर हो और पंच भी अपने को वैसा ही मान कर सच्चाई के साथ काम करें तो सब कुछ ठीक चलेगा।

जनमत-निर्माण और समाचारपत्र

पत्रकार जगत् से इतना निकट सम्बन्ध रखने वाले आप सब मित्रों से भेंट करने के इस अवसर का मैं स्वागत करता हूँ। आपकी सोसाइटी में देश के लगभग सभी प्रमुख पत्र सम्मिलित है। आपकी संस्था सम्मिलित प्रयत्न द्वारा सभी सदस्य समाचारपत्रों के हितों की भली प्रकार देख-रेख कर सकी है। समाचारपत्र उद्योग का महत्त्व देखते हुए यह मानना होगा कि संवाद प्रसारक और जनमत-निर्माता के रूप में समाचारपत्र शक्तिशाली साधन हैं। इसलिए आपकी सोसाइटी का राष्ट्रीय जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अन्य उद्योगों और प्रत्येक राष्ट्रीय गतिविधि की भाँति समाचार पत्रों को भी समय-समय पर बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप बनना होता है। हमारे स्वाधीनता-संग्राम के अवसर पर राष्ट्रीय पत्रों ने बहुत बड़ा काम किया जिसे राष्ट्र प्रशंसा की भावना के साथ सदा स्मरण रखेगा। देश के स्वाधीन होने के बाद से समाचारपत्रों के दायित्व में मौलिक परिवर्तन हुआ है। देश से विदेशी सत्ता के जाते ही शासनतन्त्र राष्ट्र के प्रतिनिधियों के हाथ में आ गया। यह स्वाभाविक था कि इस परिवर्तन के बाद सभी समाचारपत्र अथवा उनमें से अधिकांश अपनी नीति पर पुनर्विचार करें। इन नौ वर्षों में अधिकांश पत्र ने इस दायित्व को सुचारु रूप से निभाया है। मैं यह प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ कि पत्रों ने राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नों पर सरकार का समर्थन कर उसका बल ही नहीं बढ़ाया, वल्कि जब कभी विचार-स्वातन्त्र्य और सच्चे मतभेद की माँग हुई तो पत्रों ने आलोचना का आश्रय भी लिया।

किसी भी पत्र का मूल्य अन्ततोगत्वा महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर उसके निर्भीक और निष्पक्ष विचारों के आधार पर ही आँका जा सकता है। मैं समझता हूँ, एक साधारण पाठक की दृष्टि में आदर्श समाचारपत्र वही है जो निष्पक्षता तथा निर्भीकता से सभी उचित बातों का समर्थन करे और प्रत्येक अनुचित कार्यवाही की निन्दा करे। ऐसे देश में जहाँ विचार-स्वातन्त्र्य की पूर्ण व्यवस्था है, समाचारपत्र ही अपने निष्पक्ष तथा वस्तुगत मूल्यांकन से जनता

इण्डियन और ईस्टर्न न्यूज़पेपर सोसाइटी के भवन (नयी दिल्ली) का उद्घाटन करते हुए भाषण, ५ अक्तूबर, १९५६

का पथप्रदर्शन कर सकते हैं। यह काम उतना ही आवश्यक है जितना जन-साधारण में संवादों का प्रसार करना।

भारत में समाचारपत्र उद्योग लगभग १०० वर्ष पुराना है। इस काल में पत्रों ने बहुत प्रगति की है और शक्ति तथा यश का उपार्जन किया है। किन्तु जब हम भारतीय पत्रों की दूसरे प्रगतिशील देशों के पत्रों से तुलना करते हैं, तो हम बहुत-सी बातों में, विशेष कर प्रकाशन-संख्या की दृष्टि से अपने पत्रों को बहुत पिछड़ा हुआ पाते हैं। लघु प्रकाशन-संख्या का प्रमुख कारण हमारे देश में साक्षरता का भारी अभाव है। यह हर्ष का विषय है कि कुछ समय से पत्रों की प्रकाशन-संख्या बढ़नी आरम्भ हो गयी है। मेरा विश्वास है कि अब साक्षरता-आन्दोलन और भारतीय भाषाओं के पत्रों की उन्नति के फलस्वरूप हमारे पत्रों की प्रकाशन-संख्या बराबर बढ़ती जाएगी और देर-सवेर उसकी दूसरे देशों के पत्रों की प्रकाशन-संख्या से तुलना की जा सकेगी।

यह कहना असंगत न होगा कि समाचारपत्र उद्योग दूसरे उद्योगों से कुछ भिन्न है। वास्तव में इस उद्योग और दूसरे उद्योगों में यदि कोई सामान्य बात है तो यही कि दोनों ही की गणना उद्योगों में होती है। इसके अतिरिक्त समाचारपत्रों और अन्य उद्योगों में बहुत कुछ भेद है। किसी भी उद्योग पर राष्ट्रीय संगठन और राष्ट्र के लोगों के विचार, उनके लक्ष्य तथा महत्वाकांक्षाओं को व्यक्त करने का इतना भारी उत्तरदायित्व नहीं जितना समाचारपत्र उद्योग पर है। पत्रों और पत्रिकाओं का प्रकाशन संसार के सभी देशों में आरम्भ में एक साधारण प्रचार कार्य के रूप में आरम्भ हुआ। उस समय यह कार्य आर्थिक लाभ से ऊपर था। धीरे-धीरे जैसे पत्रों के पाठकों तथा ग्राहकों की संख्या बढ़ती गयी और पत्र विज्ञापन का माध्यम माने जाने लगे, इनके प्रकाशन में व्यापारिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ।

कुछ समय बाद जैसे ही समाचारपत्रों में बहुत से लोग काम करने लगे और प्रकाशन कार्य के लिए व्ययसाध्य यन्त्रों की आवश्यकता पड़ी, इस कार्य ने उद्योग का रूप धारण किया। निःशुल्क प्रचार अथवा सेवा की भावना अब अव्यावहारिक जान पड़ी और प्रायः लुप्त हो गयी। समाचार पत्र उद्योग का यह विकास सम्भवतः स्वाभाविक है और आधुनिक विचारधारा के अनुरूप है। फिर भी, यद्यपि पत्रों का प्रकाशन एक उद्योग के रूप में होता है, समाचारपत्र सोद्देश्य राष्ट्र सेवा की भावना तथा नैतिक दायित्व से एकदम मुँह नहीं मोड़ सकते। यह भी स्वीकार करना होगा कि इस उद्योग की यथोचित उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि दूसरे उद्योगों की भाँति यह भी उन सभी साधनों से सम्पन्न हो जो अन्य उद्योगों ने या तो प्राप्त कर लिये हैं या वे उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। इसलिए यह सभी के हित में है कि समाचारपत्र उद्योग उन्नत हो और इसका आधार अधिक से अधिक ठोस हो।

इधर कुछ वर्षों से हमारे देश के समाचारपत्रों में जागृति की लहर आयी है। उद्योग की आवश्यकताओं, श्रमजीवी पत्रकारों की माँगों और पाठकों के हितों ने मिलकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि समाचारपत्रों की दशा पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया।

समाचारपत्र आयोग की नियुक्ति, आयोग की सिफारिशों का प्रकाशन और उन सिफारिशों पर सरकार का निर्णय—ये सभी उक्त समस्या को सुलझाने के सम्मिलित प्रयत्न हैं। मैं आशा करता हूँ कि इन प्रयत्नों द्वारा समस्या का समाधान हो सकेगा, समाचारपत्र उन्नत होंगे और इस उद्योग में कार्य करने वाले सभी लोगों को सन्तुष्ट किया जा सकेगा। मैं जानता हूँ कि यह सब कहना सरल दिखायी देता है, किन्तु व्यवहार में लाना बहुत कठिन होता है। परन्तु मुझे सुशिक्षित श्रोताओं से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मानवीय गतिविधि के सभी क्षेत्रों में, चाहे वह राजनीति, उद्योग अथवा प्रशासन का क्षेत्र हो, विभिन्न हितों और विचारों में सहयोग की भावना से राष्ट्र तथा समाज के हितों को सामने रखकर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास आवश्यक है।

मैं इतना निराशावादी नहीं कि मैं यह समझूँ कि वे लोग जिनके सुझाव बड़ी-बड़ी समस्याओं को सुलझाने में सहायक होते हैं, निजी समस्याओं का निबटारा करने में असफल रहेंगे। हाल में भारतीय संसद् ने इस सम्बन्ध में जो अधिनियम पास किये हैं, उनका उद्देश्य समाचारपत्रों की समस्याओं को सुलझाना है। यह कहना अनावश्यक होगा कि कोई भी अधिनियम, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में सुधार के लिए लागू किया जाये, प्रभावपूर्ण रूप से तभी कार्यान्वित हो सकता है जब सभी सम्बद्ध दल उसे सहयोग की भावना से ही कार्य रूप दें। इन मामलों में अधिनियम के शब्दों का इतना महत्त्व नहीं जितना उनके पीछे निहित भावना का होता है। क्या मैं आपकी संस्था से यह अनुरोध कर सकता हूँ कि इस मामले में आप समाचारपत्रों को मार्ग दिखायें।

आपकी संस्था निश्चय ही प्रमुख तथा अत्यन्त प्रभावशाली समाचारपत्रों की प्रतिनिधि संस्था है। प्रायः सभी बड़े और सुस्थापित समाचारपत्र आपके सदस्य हैं। मेरा यह परामर्श है कि जहाँ तक हो सके आपको छोटे समाचारपत्रों, विशेष रूप से भारतीय भाषाओं के पत्रों के हितों की भी रक्षा करनी चाहिए। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ऐसा करना देश और समाचारपत्रों के हित की बात होगी। मैं आपकी सोसाइटी तथा इसके सभी सदस्यों के प्रति अपनी शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ और उनकी सम्पन्नता की कामना करता हूँ।

भारत के सच्चे सपूत

राष्ट्रपति के रूप में और अपने सार्वजनिक जीवन में मैंने अनेकों उत्सवों में भाग लिया है, अनेकों सभाओं में भाषण दिये हैं और बहुत से स्मारकों का उद्घाटन किया है किन्तु यह स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि जिस स्मारक के उद्घाटन के लिए आप लोगों ने मुझे आज निमन्त्रित किया है उससे और जिन शहीदों की स्मृति में यह स्थापित किया जा रहा है उनसे मेरा सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि इस अवसर पर भावुकता से ऊपर उठना मुझे कठिन जान पड़ रहा है। बिहार में १९४२ के व्यापक आन्दोलन में भाग लेने वालों के अनुभव तथा आयु का ध्यान न करते हुए मैं यही कहूँगा कि वे सब मेरे सहयोगी थे और हैं, क्योंकि मैंने भी उस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था।

हममें से कुछ लोगों को कार्य करने का अवसर मिला, कुछ लोग आन्दोलन के आरम्भ में ही बन्दी बना लिये गये और उनकी गतिविधियों को जेल की चारदीवारी में सीमित कर दिया गया, परन्तु हममें से कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें देशभक्ति की भावना ने जीवन-मरण के भेदभाव से ऊपर उठा दिया और जो आन्दोलन की पहली लहर में ही गोली का निशाना बन वीरगति को प्राप्त हुए। आप मुझसे सहमत होंगे कि देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वालों में इन शहीदों का स्थान सर्व प्रथम है। यह स्मारक हँसी-खुशी जान पर खेल जाने वाले ऐसे शहीदों की स्मृति में ही स्थापित किया जा रहा है। आज जबकि हम सौभाग्य से स्वाधीन हो चुके हैं और जिस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हमारे नवयुवकों ने जीवन की आहुति दी थी वह उद्देश्य हम प्राप्त कर चुके हैं, तो हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि हम उन शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करें और उनकी स्मृति को सदा अपने हृदय में बनाये रखें। उनका साहस और निस्वार्थ देशप्रेम स्वाधीन भारत के लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

मुझे स्मरण है कि अंग्रेजी सत्ता द्वारा देश के नेताओं की माँग ठुकरा दिये जाने के कारण १९४२ में भारत के कोने-कोने में रोष की कैसी लहर फैली थी। महात्मा गान्धी और अन्य राष्ट्रीय नेता जन-साधारण की भावना से परिचित थे।

१९४२ के आन्दोलन में बिहार के शहीदों के स्मारक का उद्घाटन करते समय भाषण (पटना), २४ अक्तूबर, १९५६

उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उस भावना और जन-शक्ति का लोकतन्त्र के लिए लड़ने का दावा करने वाले मित्रराष्ट्रों की सच्ची सहायता करने में सदुपयोग किया जाये। यह तभी सम्भव होता यदि भारत को तत्काल एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया जाता या कम से कम सिद्धान्त रूप से एक स्वाधीन राष्ट्र मान लिया जाता। किन्तु दुर्भाग्य से इंगलैण्ड में उस समय जिस दल के हाथ में सत्ता थी वह इतना दूरदर्शी न था। यही नहीं, अंग्रेजी सत्ता ने हमारे देशवासियों की नैसर्गिक भावनाओं और युक्तिसंगत महत्वाकांक्षाओं का बलपूर्वक दमन करने का निश्चय किया। इसका परिणाम संघर्ष के अतिरिक्त और क्या हो सकता था। उसी संघर्ष में सैकड़ों लोगों की जानें गयीं और हजारों-लाखों ने अनेक प्रकार की कड़ी यातनाएँ सहीं।

जब मैं विगत ५० वर्षों के इतिहास पर दृष्टिपात करता हूँ, तो स्वाधीनता-संग्राम में बिहार ने जो योग दिया, उस पर मुझे गर्व होता है। इस गर्व की भावना का कारण केवल यही नहीं कि संयोग से मैं भी इसी राज्य का रहने वाला हूँ। इसका वास्तविक कारण यह है कि आरम्भ से अन्त तक बिहार के सार्वजनिक जीवन और सार्वजनिक आन्दोलन से मेरा व्यक्तिगत परिचय रहा है। यदि विनम्रतापूर्वक मैं यह कहूँ कि इन सार्वजनिक घटनाओं से मेरा परिचय दूर से नहीं बल्कि सक्रिय रूप में निकट का रहा है, तो यह अत्युक्ति नहीं होगी।

हम सब इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि सत्याग्रह प्रणाली का सबसे पहला परीक्षण गान्धी जी द्वारा बिहार में ही किया गया। उसके बाद जितने सार्वजनिक आन्दोलन हुए, जितने संघर्ष और सत्याग्रह हुए, उन सभी में बिहार के लोगों ने उत्साह के साथ भाग लिया। किन्तु एक आन्दोलन ऐसा था जिसके साथ बिहार राज्य ने अपने आपको आत्मसात् कर लिया। वह आन्दोलन अगस्त १९४२ का आन्दोलन था। जहाँ तक मैं जानता हूँ और इस सम्बन्ध में मेरी जानकारी काफी है, १९४२ के आन्दोलन में बिहार के लोगों ने जो बलिदान दिया और हँसी-खुशी जो कष्ट सहे उनका उदाहरण हमारे स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सरलता से नहीं मिलेगा। उस आन्दोलन का आधार देशव्यापी था, इसलिए उन दिनों बिहार में जो कुछ हुआ वह भारतीय इतिहास का एक अंग है। बिहार के जो लोग उस आन्दोलन में सम्मिलित हुए, उन्होंने भारतीय होने के नाते ही अपना जीवन दिया।

मेरा विश्वास है कि आपके प्रदेश में उस समय जो कुछ हुआ वह बिहार के लिए ही नहीं बल्कि समस्त भारत के लिए गर्व का विषय है। इन शहीदों को जिनके लिए आपने यह स्मारक स्थापित किया है, भारत का सपूत ही कहा जाएगा। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि इनकी स्मृति किसी भी प्रकार की सीमाओं को स्वीकार नहीं कर सकती बल्कि सारे देश में व्याप्त है। आइए, आज हम उन शहीदों की स्मृति में मस्तक झुकायें जिन्होंने देश के नाम पर और देश के मान के लिए अपने-आपको न्योछावर किया। उन नवयुवकों ने अपने जीवन का अन्त इसलिए किया कि भारत में नवयुग का आरम्भ हो सके। उन्होंने बड़े से बड़ा त्याग इसलिए किया कि उनके देशवासी स्वाधीनता का उपभोग कर सकें।

इन शहीदों की स्मृति बनाये रखने के सम्बन्ध में बिहार सरकार ने जो कुछ किया है उसके लिए वह बधाई की पात्र है। मानव जीवन में भावना तथा कामना की अवहेलना नहीं की जा सकती। भावनाओं और कामनाओं के आधार पर ही परम्परा की स्थापना होती है। मानव अपने जीवन में इन्हीं से सत्प्रेरणा ग्रहण करता है और इन्हीं से उसका जीवन-पथ आलोकित होता है। यह स्मारक निस्सन्देह धातु का बना है, परन्तु इसके पीछे जो भावना है और इसके कारण जो श्रद्धा उमड़ती है तथा जो प्रेरणा मिलती है, उसका मूल्य आँकना सरल नहीं।

मैं प्रसिद्ध कलाकार श्री देवी प्रसाद राय चौधरी को बधाई देता हूँ जिन्होंने इस प्रेरणादायक स्मारक की रूपरेखा तैयार की और इसका निर्माण किया। इसे जो कोई भी देखेगा इन नवयुवकों के साहस से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेगा। १९४२ की उस स्मरणीय घटना को इतने सुन्दर और प्रभावोत्पादक ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत कर सकने के लिए हम सब श्री देवीप्रसाद राय चौधरी के आभारी हैं।

यह स्मारक जिन शहीदों की स्मृति में बना है मैं उनके सभी सम्बन्धियों और प्रिय-जनों को भी बधाई देता हूँ। यह स्मारक एक पुण्य तीर्थ के समान है। इसलिए यह अवसर समवेदना प्रकट करने का नहीं बल्कि अभिनन्दन करने का है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस स्मारक से हमारे देशवासियों में सदा उत्साह का संचार हो और देशप्रेम की भावना प्रेरित हो।

लोक सेवक मण्डल

लोक सेवक मण्डल के इस समारोह में आकर मुझे हर्ष ही नहीं सन्तोष भी हो रहा है, क्योंकि मेरा मण्डल की व्यापक गतिविधि से पिछले ३० वर्षों से काफी परिचय रहा है। विभाजन से पहले लाहौर यात्रा के समय मैं लाजपत राय भवन में ठहरा था। विभाजन के बाद जो दुखद घटनाएँ घटीं उनका लोक सेवक मण्डल पर गहरा प्रभाव पड़ा और उसकी सारी अचल सम्पत्ति पाकिस्तान में ही रह गयी। उस प्रतिकूल स्थिति में भी मण्डल के सदस्यों ने जिस धैर्य और सन्तोष का परिचय दिया वह असाधारण है।

स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी ने जिस उद्देश्य से लोक सेवक मण्डल की स्थापना की थी वह उद्देश्य ज्यों का त्यों बना है और पूर्ति की माँग कर रहा है, यद्यपि इधर

लोक सेवक मण्डल के भवन (नयी दिल्ली) का शिलान्यास करते समय भाषण, २२ नवम्बर, १९५९

परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हुआ है। लालाजी श्री गोखले की विचारधारा से प्रभावित हुए थे और उनकी यह धारणा थी कि राजनीतिक, सामाजिक और अन्य प्रकार के लोक सेवी कार्यक्रम के लिए अवैतनिक और आंशिक समय देने वाले कार्यकर्ता ही काफी नहीं। राष्ट्र और समाज के उत्थान का कार्य इतना व्यापक तथा आवश्यक है कि इसके लिए पूर्णकालीन वेतनभोगी कार्यकर्ता अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं, जो आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहें और भौतिक सम्पन्नता की महत्वाकांक्षा से दूर रह कर देश-सेवा के काम में रत रहें। मैं मानता हूँ कि स्वाधीनता से पहले राजनीतिक कार्य अर्थात् सत्याग्रह-आन्दोलन में सहयोग देना सभी समाज-सेवियों का सर्वप्रथम कर्त्तव्य था। आजकल जबकि सौभाग्य से हम पूर्ण रूप से स्वाधीन हैं और विदेशी सत्ता यहाँ से हट चुकी है, राजनीतिक कार्यक्रम का रूप दूसरा हो गया है। आज की परिस्थितियों में सामाजिक कार्य और रचनात्मक कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारत सरकार देश में जन-कल्याण राज्य की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी है और इसके लिए सभी दिशाओं में यथासम्भव प्रयत्न भी किये जा रहे हैं।

इन सब प्रयत्नों के बावजूद देश की स्थिति से परिचित कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि अब गैरसरकारी संस्थाओं की या स्वेच्छा से राष्ट्र-निर्माण का कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता नहीं रही अथवा अब उनकी उपयोगिता पहले की अपेक्षा किसी प्रकार कम हो गयी है। मेरी दृष्टि में राजनीतिक स्वाधीनता ने राष्ट्रसेवियों के लिए ठोस रचनात्मक कार्य का द्वार खोल दिया है। समाज-सेवा के काम में जितनी सुविधाएँ आजकल के कार्यकर्ताओं को प्राप्त हैं वे पहले कभी नहीं रहीं। एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिए इससे बढ़कर और क्या प्रोत्साहन या सुविधा हो सकती है कि उसके द्वारा प्रतिपादित कार्यक्रम और सुझावों के प्रति जनता की प्रतिक्रिया अनुकूल हो अर्थात् लक्ष्य और लक्ष्य की पूर्ति के लिए किये गये परिश्रम का सर्वसाधारण में आदर की भावना से स्वागत किया जाये। मैं समझता हूँ, आजकल की परिस्थितियों में ऐसी सम्भावना है। जन-साधारण ही नहीं बल्कि देश का शिक्षित समाज और राष्ट्र के कर्णधार भी निस्सन्देह ऐसे प्रयत्नों का स्वागत करेंगे क्योंकि गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा किये गये राष्ट्रनिर्माण के प्रयास सच्चे अर्थों में सरकार की विकास योजनाओं के पूरक हैं।

मैंने जो कुछ अभी कहा, लोक सेवक मण्डल के सदस्यों के लिए वह कोई नयी बात नहीं और शायद न ही उन्हें यह बताने की आवश्यकता है। मण्डल के सदस्य सभी परिस्थितियों में, चाहे वे अनुकूल रही हों या प्रतिकूल, देश-सेवा के व्रत का पालन करते रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक, हरिजनोद्धार देहात-सुधार, शिक्षा प्रचार आदि के क्षेत्रों में लोक सेवक मण्डल के सदस्यों ने विभाजन से पहले और उसके बाद प्रशंसनीय कार्य किया है। राजनीतिक तथा सांवैधानिक क्षेत्र में मण्डल के सदस्यों द्वारा जो कार्य किया गया है और किया जा रहा है, वह सर्वविदित है। केन्द्र में और विभिन्न राज्यों में मण्डल के सदस्यों ने जो योग दिया है और विभिन्न पदों पर कार्य करके राष्ट्र की जो सेवा की है, उनके सम्बन्ध में सभी जानते हैं। इन सदस्यों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण राष्ट्र-

सेवा इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्र के जीवन में लोक सेवक मण्डल जैसी संस्थाओं की कितनी उपादेयता है। ऐसी संस्थाओं में जो प्रशिक्षण मिलता है और सेवा के जो अवसर प्राप्त होते हैं किसी भी देश-सेवक के लिए वह गौरव का विषय ही नहीं बल्कि बहुमूल्य अनुभव सिद्ध होते हैं। मैं कह सकता हूँ कि राष्ट्र लोक सेवक मण्डल जैसी संस्थाओं का ऋणी है। देश के इतिहास में मण्डल द्वारा किये गये कार्य का सदा ऊँचा स्थान रहेगा।

जिस महान् देश-भक्त द्वारा, ३५ वर्ष हुए, आपकी संस्था की स्थापना की गयी थी, उनकी जीवनी से लोक सेवक मण्डल ही नहीं समस्त देश आज भी सत्प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। लाला लाजपत राय की निर्भीकता, सभी प्रकार के कष्टों के प्रति उदासीनता, उनका अदम्य उत्साह और अडिग आत्मविश्वास आदि गुण ऐसे हैं जो किसी भी जननायक को सुशोभित कर सकते हैं। लाला लाजपत राय जी में ये सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने कठिन समय में देश की जो सेवा की, वह हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम के इतिहास का विषय है। उनके लगाये हुए लोक सेवक मण्डल रूपी पौधे को फलते-फूलते देखकर हम सबको प्रसन्नता होनी स्वाभाविक है।

विभाजन के फलस्वरूप अनेक विपत्तियों और असाधारण परिस्थितियों के बावजूद लोक सेवक मण्डल अपना सेवा-कार्य यथासम्भव पूर्ववत् करता रहा है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह नवीन भवन और कार्यालय शीघ्र ही सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधि का फिर से केन्द्र बन सकेगा। मेरी यह कामना है कि लोक सेवक मण्डल यथापूर्व राष्ट्रसेवा के कार्य में अग्रसर हो और स्वर्गीय ला० लाजपत राय जी ने जिस ऊँचे उद्देश्य से इस लोकोपयोगी संस्था की स्थापना की थी, मण्डल सदा उसकी पूर्ति करता रहे।